

श्रीधवल, जयधवल, महाधवल सिद्धान्तग्रन्थ श्रावकोंने पढना चाहिये या नही इस विषयकी चर्चा ।

सिद्धान्तरहस्यका अध्ययन श्रावककू मना है, ऐसा श्रोवसुनदिश्रावकाचारमें तथा सागार धर्माश्रुतमें लिखा है, जिसका आधार पकडकर मूढविदरोंके श्री धवल, जयधवल, महाधवल अं श्रावकोंने पढना नहीं, ऐसी वहाके तरफके कोई लोक शका बताते हैं । लेकिन वह शका नभू है, ऐसा प्रमाण मिलता है । वसुनदि श्रावकाचारकी गाथा इस मुजब है:—

दिणपडिम वीरचरिया । तियाळजोयेसु णत्थि अहियारो ॥

सिद्धांतरहस्साणवि । अद्दयणं देसविरदाणां ॥ ३१२ ॥

अर्थ:—त्रिकाल सध्यामें, दिवसमें प्रतिमा-योग और वीरासन करनेको तथा सिद्धान्तरहस्यका अध्ययन करनेको श्रावककू अधिकार नहीं है ।

सागारधर्माश्रुतका श्लोक इस मुजब:—

श्रावको वीरचर्याहःप्रतिमातापनादिषु ॥

स्यान्नाधिकारी सिद्धांतरहस्याध्ययनेपि च ॥ ५० ॥ अ. ७ ॥

टीका:— × × × सिद्धांतस्य परमागमस्य सूत्ररूपस्य च प्रायश्चित्तशास्त्राध्ययने श्रावको अधिकारी न स्यात् ॥

अर्थ:— × × × परमागम सूत्ररूप जो सिद्धांत और प्रायश्चित्तशास्त्र, इनका अध्ययन करनेका श्रावकको अधिकार नहीं है । इससे फगत ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके सूत्रोंके श्रावकको अधिकार नहीं है । लेकिन अंग पूर्वोंसे उद्धृत जो धवल, जयधवल, महाधवल पढनेके वास्ते श्रावकको आज्ञा है । देखो सागारधर्माश्रुतके द्वितीयाध्यायमें लिखा है—

तत्त्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथनादादाय देशव्रतं ।

तदीक्षाग्रधृतापराजितमहामंत्रोऽस्तदुदैवतः ॥

आंगं पौर्वमथार्थसंग्रहमधीत्याधीतशास्त्रांतरः ।

पर्वाते प्रतिमासमाधिमुपयन् धन्यो निहंत्यहंसी ॥ २१ ॥

सागारधर्मा. अ. २.

टीका:—× × × किंविशिष्ट. सन् अधीतशास्त्रांतरः अधीतानि विपठितानि शास्त्रांतराणि सौगतादिग्रंथा व्याकरणादीनि च येनासौ । किं कृत्वा अधीत्य पठित्वा । क अर्थसंग्रह च ग्रंथमुपश्रुत्य । सूत्रमपि । किं विशिष्टमांगं आचारागादिद्वादशांगाश्रित । न केवलमांग पौर्वं च चतुर्दशपूर्वगतश्रुताश्रितम् । अथशब्दोऽत्र चार्थे ॥

अर्थ:—जो श्रावक तीर्थ कहिये धर्माचार्य अथवा गृहस्थाचार्यके उपदेशसे जं अजीवादिक तत्वोंका श्रद्धान करके देशव्रत माने अणुव्रत ग्रहण करता है; गृहस्थकी दीक्षान्वय क्रियाओंमेंसे आठ क्रिया धारण करता है, अपराजित पंचमहामंत्रको धारण करता है

पट्टखंडागम-धवलग्रन्थके ग्राहकोको भेट ।



श्रीसर्वज्ञवीतराजाय नमः

॥ शास्त्र-स्वाध्यायका प्रारंभिक मंगलाचरण ॥

ओकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः । कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
अविरलशब्दधनौघप्रक्षालितसकलभूतलम्बकलङ्का । मुनिभिरुपासिततीर्थी सरस्वती हरतु नो दुरितात् ॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

॥ श्रीपरमगुरवे नमः, परंपराचार्यगुरवे नमः ॥

सकलकलुषविविधसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकं,
पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री पट्टखंडागमो नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः
श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य
श्रीकुन्दकुन्दाद्यान्नायी श्री पुण्डदन्तभूतबालिभ्यविरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मंगलं भगवात् वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाद्या जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥ १ ॥
सर्वभगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं । प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥ २ ॥

जैनविजय प्रेस-सरत

श्रीधवल, जयधवल, महाधवल सिद्धान्तग्रन्थ श्रावकोंने पढना चाहिये या नही इस विषयकी चर्चा ।

सिद्धान्तरहस्यका अध्ययन श्रावककू मना है, ऐसा श्रीवसुनदिश्रावकाचारमें तथा सागार-धर्माभृतमें लिखा है, जिसका आधार पकडकर मूढविद्वरके श्री धवल, जयधवल, महाधवल ग्रंथ श्रावकोंने पढना नहीं, ऐसी वहांके तरफके कोई लोक शका बताते हैं । लेकिन वह शका निर्मूल है, ऐसा प्रमाण मिलता है । वसुनदि श्रावकाचारकी गाथा इस मुजब है:—

दिणपडिम वीरचरिया । तियाळजोयेसु णत्थि अहियारो ॥

सिद्धांतरहस्साणवि । अइझयणं देसविरदाणां ॥ ३१२ ॥

अर्थ:—त्रिकाल सध्यामें, दिवसमें प्रतिमा-योग और वीरासन करनेको तथा सिद्धान्तके रहस्यका अध्ययन करनेको श्रावककू अधिकार नहीं है ।

सागारधर्माभृतका श्लोक इस मुजब—

श्रावको वीरचर्याहःप्रतिमातापनादिषु ॥

स्यान्नाधिकारी सिद्धांतरहस्याध्ययनेपि च ॥ ५० ॥ अ. ७ ॥

टीका:— × × × सिद्धांतस्य परमागमस्य सूत्ररूपस्य च प्रायश्चित्तशास्त्राध्ययने पाठे श्रावको अधिकारी न स्यात् ॥

अर्थ:— × × × परमागम सूत्ररूप जो सिद्धांत और प्रायश्चित्तशास्त्र, इनका अध्ययन करनेका श्रावकको अधिकार नहीं है । इससे फगत ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके सूत्र पढनेको श्रावकको अधिकार नहीं है । लेकिन अंग पूर्वोंसे उद्धृत जो धवल, जयधवल, महाधवल इनको पढनेके वास्ते श्रावकको आज्ञा है । देखो सागारधर्माभृतके द्वितीयाध्यायमें लिखा है—

तत्त्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथनादादाय देशव्रतं ।

तद्दीक्षाग्रधृतांपराजितमहामंत्रोऽस्तदुदैवतः ॥

आंगं पौर्वमथार्थसंग्रहमधीत्याधीतशास्त्रांतरः ।

पवाते प्रतिमांसमाधिमुपयन् धन्यो निहंत्यंहसी ॥ २१ ॥

सागारधर्मा. अ. २.

टीका:— × × × किंविशिष्टः सन् अधीतशास्त्रांतर. अधीतानि विपठितानि शास्त्रा-तराणि सौगतादिग्रंथा व्याकरणादीनि च येनासौ । किं कृत्वा अधीत्य पठित्वा । क अर्थसंग्रह उद्धार-ग्रथमुपश्रुत्य । सूत्रमपि । किं विशिष्टमार्गं आचारांगादिद्वादशागाश्रित । न केवलमांगं पौर्वं च चतुर्दश-पूर्वगतश्रुताश्रितम् । अपशब्दोऽत्र चार्थे ॥

अर्थ:—जो श्रावक तीर्थ कहिये धर्माचार्य अथवा गृहस्थाचार्यके उपदेशसे जीव-अजीवादिक तत्वोंका श्रद्धान करके देशव्रत माने अणुव्रत . ग्रहण करता है, गृहस्थकी दीक्षान्वय क्रियाओंमेंसे आठ क्रिया धारण करता है; अपराजित पंचमहामंत्रको धारण करता है ;

पदखंडागम-धवलश्रन्धके ग्राहकोको भेट ।



ॐ



श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नमः

॥ शास्त्र-स्वाध्यायका प्रारंभिक मंगलाचरण ॥

ओकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः । कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
अविरलशब्दधनोद्यप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का । मुनिभिरुपासिततीर्थी सरस्वती हरतु नोदुरिताव ॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशालाकया । चक्षुरन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

॥ श्रीपरमगुरवे नमः, परंपराचार्यगुरवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकं,
पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री पदखंडागमो नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः
श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य
श्रीकुन्दकुन्दाद्याम्नायी श्री पुण्ड्रन्तभूतबालिभ्यविरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मंगलं भगनात् वीरो, मंगलं भौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाद्या जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥ १ ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं । प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥ २ ॥

ॐ

जैनविजय भैरव-स्वरत

ॐ

हे ।

नोट—इस मंगलाचरणके बाद शास्त्रजीका मंगलाचरण पढकर शास्त्रजी वाचना चाहिये । इसको रद्दीमें ढाकना पापका कारण है ।
विनामूल्य भेट—छवमीचन्द मूलचन्द छावड़ा, नयापुरा-उज्जैनसे भेगाइये ।

कुदेवोंका त्याग करता है, तदनंतर ग्यारह अगसंवधी उद्धारप्रथसूत्र आदि प्रयोगोंको पढ़ता है, फिर चौदह पूर्वसंवधी शास्त्रोंको पढ़ता है; इसके बाद वह न्याय, अलंकार, व्याकरण, गणित और बुद्ध-मीमांसा न्याय आदिके दर्शनशास्त्रोंको पढ़ता है, तदनंतर वह प्रत्येक महिनेकी दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशीको रात्रोंको प्रतिमायोग धारण करनेका अभ्यास करता है। इस प्रकार आठों संस्कार कर वह धन्य और पुण्यवान् पुरुष द्रव्य और भाव दोनों प्रकारके पापोंको नष्ट करता है।

फिर भी दीक्षान्वयक्रियायोंमेंसे पूजाराध्यक्रिया और पुण्ययज्ञक्रिया गृहस्थियोंके लिये श्रीमज्जिमेसेनाचार्यने महापुराणमें कही है सो इस मुजब है:—

पूजाराध्याख्यया ख्याता क्रियास्य स्यादतः परा ।

पूजोपवाससंपत्त्या गृह्यतोगार्थसंग्रहं ॥

ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी ।

शृण्वतः पूर्वविद्यानामर्थं सत्रह्यचारिणः ॥

अर्थ:—तदनंतर ग्यारह अगसंवधी उद्धारप्रथसूत्र आदि पढ़ता है, इसे पूजाराध्यक्रिया कहते हैं। फिर ब्रह्मचारी लोगोंसह चौदह पूर्वसंवधी शास्त्रोंको पढ़ता है, इसे पुण्ययज्ञक्रिया कहते हैं।

इस परसे सिद्ध होता है कि, सिद्धान्तरहस्य जो सूत्ररूप ग्यारा अग चौदा पूर्व जिनवाणी श्रुतकेवली पढ़ते हैं, उनके पढ़नेको श्रावकको अधिकार नहीं है। धवल, जयधवल, महाधवल इन सिद्धान्त ग्रन्थोंको पढ़नेको हरकत नहीं है। देखिये सूत्र किसको कहते हैं:—

सुत्तं गणहरकाहियं तदेव पत्तेयबुद्धकाहियं च ॥

सुदकेवल्लिणा काहियं अभिन्नदसपुत्तिकहियं च ॥

अर्थ:—जो श्रीगणधर देवोंने कहा होय, प्रत्येकबुद्धने कहा होय, श्रुतकेवल्लियोंने कहा होय, तथा अभिन्न दसपूर्वपाठोंने कहा होय, उसको सूत्र कहते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि श्रीधवल, जयधवल, महाधवल प्रथ पढ़नेको श्रावकको कोई हरकत नहीं, यदि कोई मनई करेगा तो उसको ज्ञानावरणीय करमका बंध पड़ेगा। देखो तत्त्वार्थ-सूत्रके छठे अध्यायमें सूत्र लिखा है:—

सूत्र—तत्प्रदोषनिन्हवमात्सर्यांतरायासादनोपधाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥

टीका:—तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते कस्यचिदनभिग्याहरतः अतःपैशून्य-परिणामः प्रदोषः। कुतश्चित्कारणानास्ति न वेद्रीत्यादि ज्ञानस्य व्यपलेपन निन्हवः। कुतश्चित्कारणा-द्भावितमपि विज्ञान दानार्हमपि यतो न दीयते तन्मात्सर्यम्। ज्ञानव्यवच्छेदकरणमतरायः। कायेन वाचा च परंप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादन। प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः। एतेन ज्ञानदर्शनावरणयोः आस्रवाः भवति ॥

(सर्वार्थसिद्धौ पूज्यपादस्वामिना)

अर्थ:—मोक्षका कारण जो तत्त्वज्ञान ताका कथन प्रशंसा-कोई पुरुष करता होय ताकूं कोई सराहै नाहीं, तथा ताकूं सुनकर आप मौन राखैं, अतरंग विखैं वासू अदेखसा भावकर तथा

ज्ञानकूँ दोष लगावनेके अभिप्राय करि वाका साधक न रहै, ताके ऐसे परिणामकूँ प्रदोष कहिये । बहुरि आपकूँ जिसका ज्ञान होय अर कोई कारणकरि कहे, जो नाहीं है तथा मै जानू नाहीं । जैसे काहूँने पूछ्या जो हिंसातैं कहा होय ? तहां आप जाने है जो हिंसातैं पाप होय है, तहां कोई हिंसक पुरुष बैठ्या होय, ताके भयतैं तथा आपकूँ हिंसा करनी होय अथवा आपके अन्य कुछ कार्यका आरम्भ होय, इत्यादिक कारणनितैं कहे जो, मै तो जानू नाहीं, तथा कहे हैं, हिंसामें पाप नाहीं इत्यादि करि अपने ज्ञानकूँ छिपावैं, ताकूँ निन्दव कहिये । बहुरि आप शास्त्रादिका ज्ञान भले प्रकार पढ्या होय, पैलेकूँ शिखावने योग्य होय, तोऊ कोई कारणतैं शिखावे नाहीं । ऐसे विचारैं, जो पैलेकूँ ज्ञान हो जायगा तो मेरी बरोबरी करेगा, इत्यादि परिणामकूँ मात्सर्य कहिये । बहुरि ज्ञानका विच्छेद करे, विघ्न पाड़े ताकूँ अतराय कहिये । बहुरि परके तथा आपका प्रगट करनेयोग्य ज्ञान होय ताकूँ वचनकरि तथा कायकरि वर्जे, प्रगट करे नाहीं, तथा परकूँ कहे ज्ञानकूँ प्रकाशैं मति, इत्यादि कहैं सो आसादना कहिये । बहुरि सराहने योग्य साचा ज्ञान होय ताकूँ दूषण लगावैं सो उपघात कहिये । ऐसे ये प्रदोषादिक ज्ञानदर्शनावरणकर्मके आस्रवके कारण हैं ।

हिराचंद नेमचंद, सोलापूर.

श्रीमान माननीय पंडित गोपालदासजी बरैयाकी सेवामें प्रश्न.—

श्री धवल जयधवलदि प्रथम हम श्रावकको वाचने चाहिए या नहीं ?

हिराचंद नेमचंद, सोलापूर.

उत्तर.

धवल, जयधवल आदिप्रथम जो अग और पूर्वरूप नहीं है, उनके वाचनेमें श्रावकको कुछ हरकत नहीं है, ऐसी हमारी समति है ।

ता. २४।८।१६.

हस्ताक्षर गोपालदास बरैया.

„ बंसीधर

„ देवकीनंदन नायक

„ पन्नालाल वाकलीवाल.

इस वखत श्रीयुत पंडित गोपालदासजी जैनसिद्धान्तके अच्छे ज्ञाता हैं । मैं उनके अभिप्रायको प्रामाणिक मान सकता हूँ । इत्यलम् ।

ता. २०।९।१६.

नेमिसागर वर्णी

संपादक— जीवराज गौतमचंद दोशी, सोलापूर.

यांनी फलटणगल्लीत घर नंबर २,८८२ येथें प्रसिद्ध केलें

प्रिंटर—गोविंद नारायण काकडे, सोलापूर,

यांनी नवीपेट, घरनंबर ५५ येथें “ कल्पतरु ” छापखान्यात छापिलें

[सरस्वती प्रेस, अमरावती.]

श्री भगवत्-पुरुषदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-ध्वला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-कुलनात्मकटिप्पण-गणितोदाहरण-प्रस्तावनेकपरिशिष्टैः सम्पादिताः

क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगमाः ४

खंड १.
भाग ३, ४, ५.

सम्पादक

अमरावतीस्थ-किंगएडवर्डकालेज-संस्कृताध्यापकः, एम्. ए., एल्. एल्. बी., इत्युपाधिवारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादक

पं. हीरालालः सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थः

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं देवकीनन्दनः * डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः
सिद्धान्तशास्त्री उपाध्यायः, एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशक

श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फुड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. १९९८] वीर-निर्वाण-सवत् २४६८ [ई. स. १९४२

मूल्यं रूप्यक-द्वादशकम्



प्रकाशकः

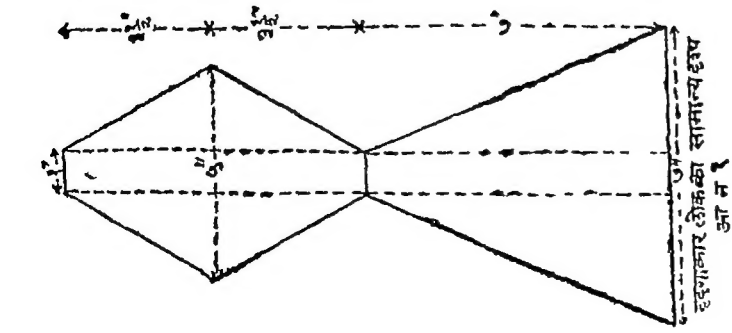
श्रीमन्त सेठ शिवाबराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय
अमरावती (बारा)



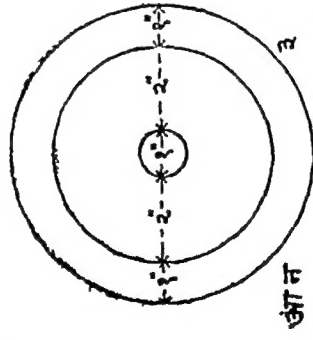
मुद्रक—

टी. एस्. पाटील,
मैनेजर,

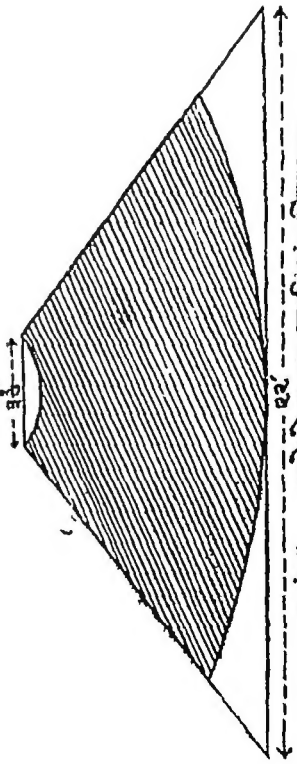
सaraswati Printing Press, Amravati (Bara)



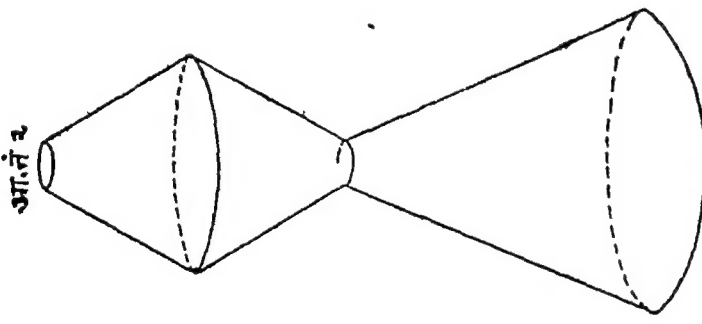
(पृ १२)



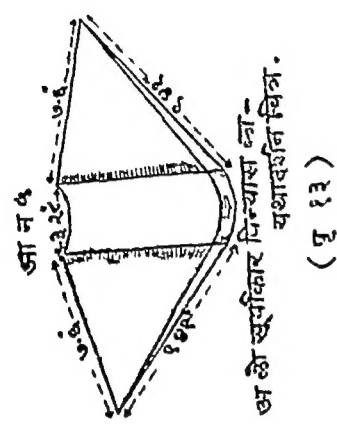
(पृ १२)



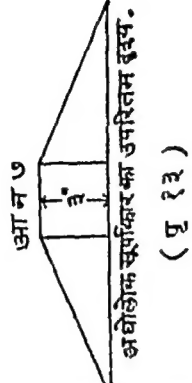
(पृ १३)



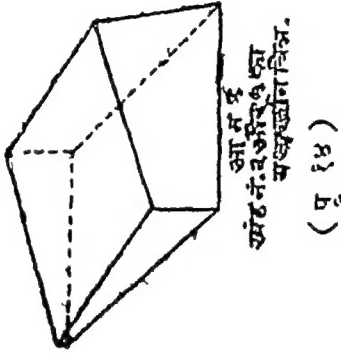
(पृ १२)



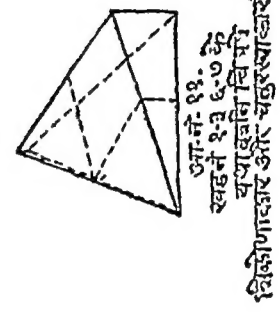
(पृ १३)



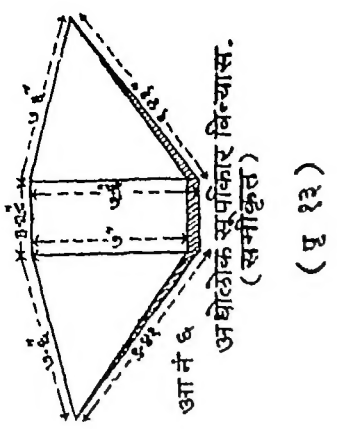
(पृ १३)



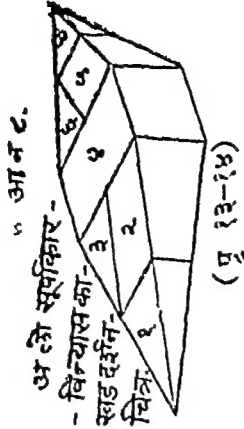
(पृ १४)



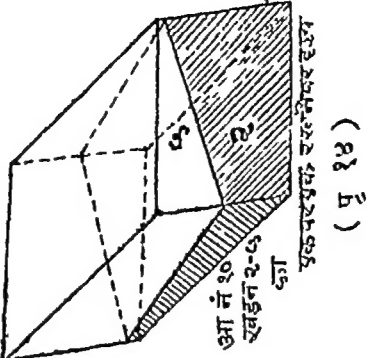
(पृ १४)



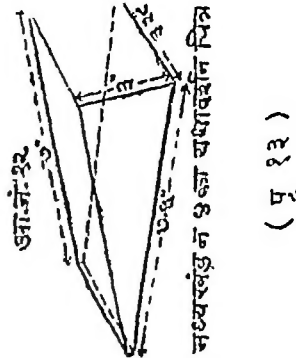
(पृ १३)



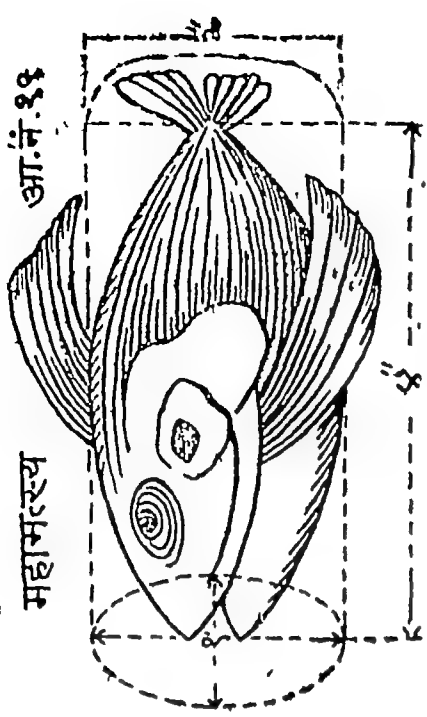
(पृ १३-१४)



(पृ १४)

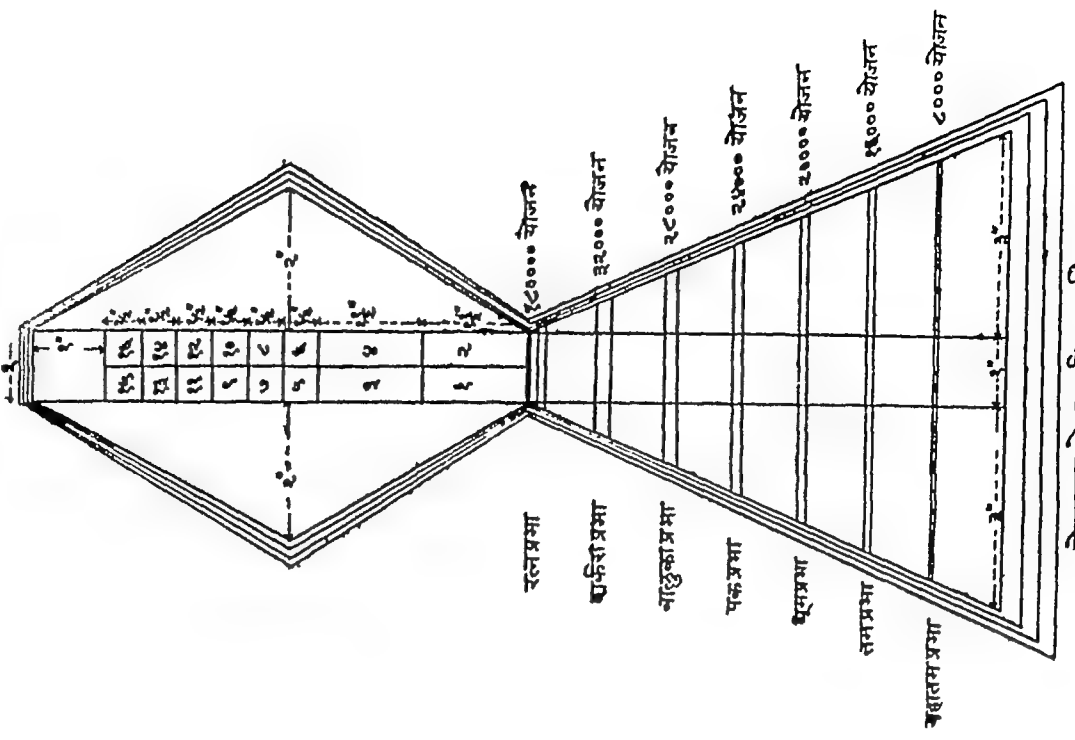


(पृ १३)



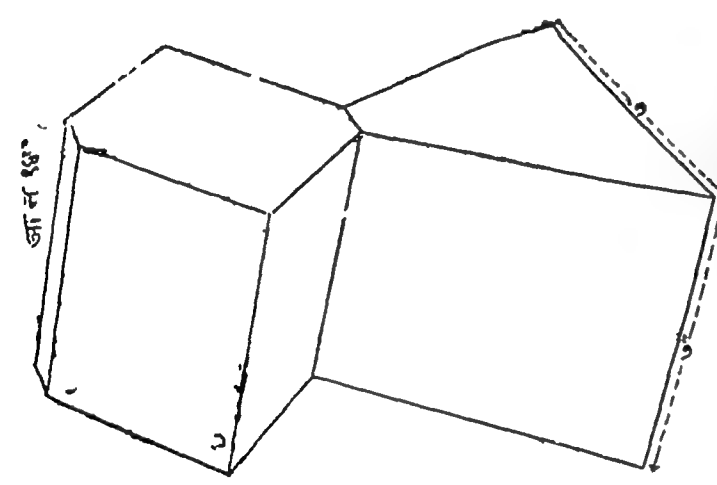
महामत्स्य
आ.नं. १९

(पृ ३६)



— लोकाकाशाने स्वर्गनरक विभाग —
(आ न २०)

(पृ ८८-९१)



आ न १९

चतुरस्तराकार लोक
अथवा चतुरस्तराकार

(पृ १९-२०)



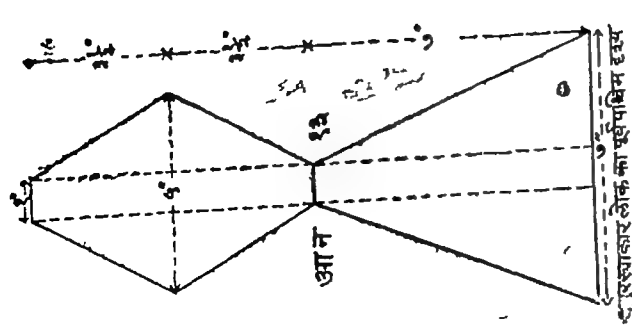
आ.नं. १६

(पृ ३४)



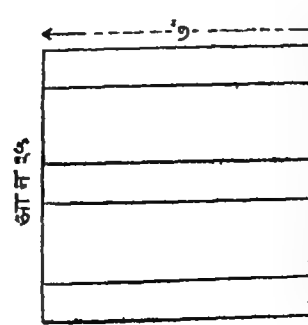
कांचन

(पृ ३५)



आ न

(पृ १९-२०)



आ न २५

चतुरस्तराकार लोक का तल मिन्यास

(पृ १९-२०)



गोम्ही

आ न १७

(पृ ३४)

विषय सूची

पृष्ठ	पृष्ठ
प्राक् कथन	१-४
प्रस्तावना	१
Introduction	1-14
Mathematics of Dhavala	i-114
(with index)	
(by Dr. A. N. Singh)	
१ सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार	१
२ शंका-समाधान	... १६
३ नियम-परिचय	... २३
४ विषय-सूची	... ३०
५ छुट्टियाँ	... ५९
६ क्षेत्र-स्पर्शन-मातृमण्डलदर्शन चार्ट २९ अ-आ	...
मूल, अनुवाद और टिप्पण	१-४८८
क्षेत्रानुगता	... १-१३८
स्पर्शानुगता	... १३९-३०९
कालानुगता	... ३११-४८८
परिशिष्ट	३
१ क्षेत्रप्ररूपणा सूत्रपाठ	... १-४२
स्पर्शनप्ररूपणा सूत्रपाठ	... १
कालप्ररूपणा सूत्रपाठ	... ५
अवतरण-मायासूची	... १३
न्यायोक्तियाँ	... २६
अभ्योक्षण	... २७
अभ्योक्षण	... २८
पारिभाषिक शब्दसूची	... ३०-४२

चित्र सूची

पृष्ठ	पृष्ठ
१ मृदंगाकार लोकता सामान्य दृश्य	मुल पृष्ठ
२ मृदंगाकार लोकता यथादर्शन चित्र	११ खंड नं. १, ३, ६ व ७ के यथादर्शन
३ मृदंगाकार लोकता तलविन्यास	चित्रमें निमोणाकार और चतुस्ताकार
४ अधोलोकता सर्पिका विन्यास	खंड
५ अधोलोक सर्पिका विन्यासका यथादर्शन चित्र	१२ मध्यखंड नं. ४ का यथादर्शन चित्र
६ अधोलोक सर्पिका विन्यासका (समीकृत) चित्र	१३ चतुस्ताकार लोकता पूर्व-पश्चिम दृश्य
७ " " " का उपरितन दृश्य	१४ " " यथादर्शन चित्र
८ अधोलोक सर्पिका विन्यासका खंड-दर्शन चित्र	१५ " " का तलविन्यास
९ खंड नं. २ और ५ का यथादर्शन चित्र	१६ अक्षर चित्र
१० खंड नं. २ और ५ का एकपर एक खंड-नेपर दृश्य	१७ गोम्ही
	१८ खंड
	१९ महात्म्य
	२० लोकाकाशमें स्वर्ग-नरक विभाग

प्राक् कथन

पट्खडामगका तीसरा भाग अग्रेल १९४१ में प्रकाशित हुआ था। वर्ष पूरा होते होते उसका चौथा भाग भी तैयार होकर पाठकों के हाथों पहुँच रहा है। इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका सतोष है। विद्वत्समाज अब इस कितना उत्सुक और तपस्वी हो उठा है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसी अल्प-कालमें हमें इस सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें पंडिताचार्यवर्य मध्वाक चारुर्त्तिजी स्वामी तथा पर्वोत्ती रूपसे मूढविद्वि सस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जिससे अब सिद्धान्तग्रन्थका मूल पाठ बहाकी ताडपत्रीय प्रतियोंके मिलान परसे ही निश्चित किया जाता है। इस कारण अब इतर प्रतियोंके मिलान प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी बीच द्वितीय सिद्धान्तग्रन्थ कथायाप्राभूत और उसकी टीका जयधवलके प्रकाशनके लिये भी एक नहीं अनेक सप्ताह उत्सुक हो उठी हैं, और जैनसंघ, मथुरा, ने उस ओर कार्य प्रारम्भ भी कर दिया है। उक्त शोलपुरवाले स्वर्गीय सेठ रावजी सखारामजी दोषीके सरक्षणमें जो सिद्धान्तोद्धारसवधी फंड था, उसकी उन्नेके सुयोग्य उत्तराधिकारी सेठ गुलाबचंदजीने सुव्यवस्था करके महाधवलके निमित्त एक समिति सुसंगठित कर दी है। यही नहीं, श्रीयुक्त मजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठों ताडपत्रीय प्रतियोंके अनुसार प्रकाशित करानेकी भी एक स्वीम प्रस्तुत की है। साहित्योद्धारके महत्त्व और उसकी आवश्यकताओं अनुभव करके शोलपुरने अत्यन्त धर्मानुरागी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोषीने गम्भीर विचार और विद्वत्परमर्शोंके पश्चात् 'जैन सस्कृति सरक्षक संघ' का आयोजन किया है, और उसके लिये अपनी ओरसे तीस हजाररुपया दान भी दे दिया है। इस संघका ध्येय बहुत विशाल और सर्वांगव्यापी है, जिसकी पूर्ति धीरे धीरे ही हो सकती है तथा समाजने सहयोगपर अवलम्बित है। किन्तु उसने अन्तर्गत जो एक 'जीवराज जैन ग्रन्थालय' के संचालनका निश्चय किया गया था, उसका भेरे प्रियमित्र डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय और भेरे सम्पादकत्वमें कार्य प्रारम्भ हो गया है, और उस मालाका प्रथम पुष्प, उक्त सिद्धान्तग्रन्थोंकी ही कोटिका प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ 'तिलोपपण्णत्ति' (तिलोपप्रज्ञप्ति) मुरणधीन है। इस प्रकार यह सिद्धान्तोद्धारका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अब अनेक कर्मोंद्वारा संचाला जा रहा है, जिससे हमें अब अपना बोलबाला कुछ हलका हुआ प्रतीत होने लगा है। इसकी हमें प्रसन्नता है।

किन्तु गतिके साथ गति-अवरोधोंके प्रयत्नोंका भी सर्वथा अभाव नहीं है। प्रकाशित सिद्धान्त ग्रन्थोंकी धार्मिक ज्ञानवृद्धिमें बड़ी भारी उपयोगिताका अनुभव करके वर्तमानकी माणिकचंद्र जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्यरूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करना आवश्यक समझा। इसका अधिकांश पाठकों और विद्यार्थियोंने बड़ा हर्ष मनाया। किन्तु, मोरेना जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान अध्यापक प मखनलालजी

शास्त्रीने इसका घोर विरोध प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी है जिसमें उन्होंने यह बतलानेका प्रयत्न किया है कि गृहस्थ जैनियोंको इन सिद्धान्तग्रन्थोंके पढ़नेका विलकुल अधिकार नहीं है और इसलिये इनका पढ़ना पढ़ाना व छपाना एकदम बंद कर देना चाहिये। इस पुस्तिकाके आधारसे जैन पाठशालाओंके अध्यापकोंके ऐसे मत स्पष्ट करनेका भी प्रयत्न किया जा रहा है कि वे धवल, जयधवल, महाधवल, इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका पठन-पाठन नहीं करेंगे। अपनी अपनी समझ और विवेकके अनुसार तो प्रत्येकको अपना मत बनाने और उसका प्रचार करनेका अधिकार है, किन्तु उक्त पुस्तिकामें जो इस मतके लिये प्राचीन प्रमाण दिये गये हैं, उनसे साधारण पाठकोंको एक भ्रम पैदा हो जानेकी संभावना है। अतएव हमने यह आवश्यक समझा कि हम अपने पाठकोंके लिये उन प्राचीन प्रमाणोंकी जांच पड़ताल करके अपना निष्कर्ष उनके समुख रख दें, ताकि वे उक्त मतकी सारहीनताको समझ सकें। हमारे इस विवेचनको पाठक प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनामें 'सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक लेखमें देखेंगे जिससे उन्हें पता चल जायगा कि जुद्धकुन्द, समन्तभद्र आदि जैसे अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक आचार्योंने गृहस्थोंको सिद्धान्त शास्त्र पढ़नेका प्रतिषेध नहीं किया, किन्तु खूब उपदेश दिया है। तथा सिद्धान्त अध्ययनका प्रतिषेध करनेवाले जो ग्रन्थ हैं वे बहुत पछिके १२ हवीं शताब्दि और उसने पश्चात् के अत्यन्त साधारण लेखकों द्वारा रचे गये हैं, और उन्होंने भी यह कहीं नहीं कहा कि धवल-जयधवल ग्रन्थ ही सिद्धान्त ग्रन्थ हैं, व गोमटसारादि सिद्धान्त ग्रन्थ नहीं हैं। यह सब उक्त पुस्तिकाके लेखकनी ही मौलिक कल्पना है जिसका यथार्थ मर्म वे ही जानें। स्वयं धवलदि सिद्धान्त ग्रन्थोंमें बार बार यह कहा गया है कि इन ग्रन्थोंकी रचना, सर्व प्राणियोंके हितके लिये, मनुष्यमात्रके उपयोगके लिये, मूर्खसे मूर्ख और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् पुरुषोंके उपकारार्थ हुई है। अतएव उनके पठन-पाठनका सभीको पूरा अधिकार है।

पूर्व-प्रकाशित द्रव्यप्रमाणानुगममें जो गणित आया है, और उसके सवर्गमें हमें जो कुछ सहायता लेखनज विश्वविद्यालयके गणिताध्यापक डॉ० अवधेश नारायण सिंघ जति मिली थी उसका हम उसी भागमें उल्लेख कर आये हैं। वहा हमारे अप्रेजी नोटमें हमने यह भी कहा था कि डॉ० साहब उस गणितका विशेष अध्ययन कर रहे हैं। हमें बड़ा हर्ष है कि डॉ० सिंहजीने अब अपने अध्ययनका फल इस भागमें पाठकोंके समुख उपस्थित कर दिया है। उन्होंने उस भागकी गणित पर अप्रेजीमें एक विद्वत्पूर्ण लेख लिखकर हमें भेजा है जो इस भागमें प्रकट हो रहा है। उससे पाठक समझ सकेंगे कि जैनियोंके द्वारा भारतीय गणितशास्त्रमें किन्ती उन्नति हुई है, और धवलके अन्तर्गत गणितशास्त्र किस कोटिका है। अगले भागमें हम इस लेखका पूरा हिन्दी अनुवाद भी अपने पाठकोंको भेंट करेंगे, और उसमें प्रस्तुत भागने क्षेत्रमिति सवधी गणित पर भी ऐसा ही विद्वत्पूर्ण लेख सम्मिलित करेंगे। इस सहयोगके लिये हम डॉ० सिंहके बहुत ऋणी हैं।

प्रस्तुत खडाशमें जीवद्वणकी तीन प्ररूपणाए आई हैं—क्षेत्र, स्पर्शन और काल । इनमें क्रमशः ९२, १८५ और ३४२ सूत्र पाये जाते हैं । इनकी टीकामें क्रमशः लगभग १०१, १२४ और ११५ शक्ता-समाधान आये हैं । हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करने के लिये क्रमशः ३५, १७ और ८ विशेषार्थ, तथा २७ और २५ गणितके उदाहरण जोड़े गये हैं । तुलनात्मक व पाठ-भेदसवधी टिप्पणियोंकी सख्या क्रमशः १९७, १४८ और २७६ है । इस प्रकार इस ग्रंथभागमें लगभग ३४० शक्ता-समाधान, ६० विशेषार्थ, ५२ गणितोदाहरण, तथा ६२१ टिप्पण पाये जावेंगे ।

इनमें और विशेषतः प्रथम दो प्ररूपणओंमें द्रव्यप्रमाणप्ररूपणके सदृश बहुतसा गणित भाग आया है । विशेषता यह है कि यहाँका गणित प्रायः क्षेत्रमिति [Geometry] से सवध रहता है, जब कि द्रव्यप्रमाणका गणित अकृगणितसमधी था । लोकके आकारसवधी मान्यताओंमें मतभेद और उनमें तथ्यातथ्य-निर्णयके लिये उनके वनप्रमाण लानेकी प्रक्रियाएँ जैन करणानुयोगकी िलजुल नई चीजें हैं । उसी प्रकार शब्दक्षेत्र, गोलीक्षेत्र, श्रमरक्षेत्र व मत्स्यक्षेत्रके घनफलकी प्रक्रियाएँ भी ध्यान देने योग्य हैं । स्पर्शनप्ररूपणमें द्वीपसागरोंके विस्तार और तत्सवधी चर्चोंके प्रमाणका गणित भी बड़ा सूक्ष्म है और अनेक गणितसूत्रोंसे सवध रहता है ।

इस सन गणितको विधिवत् समझने व समझानेमें हमें पुनः हमारे कालेजके गणित अध्यापक प्रोफेसर काशीदत्तजी पांडे से बहुत सहायता मिली है । जैसे परिश्रामसे उन्हेंने द्रव्य-प्रमाणके गणितको व्यवस्थित करा दिया था, वैसे ही उन्हेंने यहाँ भी बड़ा योग दिया । लोककार सवधी मतभेद व प्रमाणके गणितको समझनेके लिये हमें उस उस आकारके काग़ादशी (wooden models) की आवश्यकता पड़ी जो हमारे प्रियमित्र, श्रेष्ठ पं. सूरजभानुजी वर्माके सुपुत्र, कुलवंदरायजी जैनी के परिश्रमसे तैयार हो गये । उन्हेंने उनके कुछ चित्रादि बनाकर भी दिये जिनसे विषयके स्पष्टीकरणमें हमें बड़ी सहायता मिली । उन्हीं काग़ादशी व चित्रोंके आधारसे तथा अन्य गणित परसे हमारे नगरके 'न्यू हाइस्कूल' के डाइंग मास्टर श्रीयुक्त एम. वाय. पतसी, डी. टी. सी. ने हमें वे वीस चित्र बनाकर दिये जिनके ब्याक इस भागमें प्रकट किये जा रहे हैं, तथा जिनकी सहायतासे तत्सवधी गणित हमारे पाठकोंको भी सुग्राह्य हो सकेगा । इस सन सहायताके लिये हम उक्त सज्जनोंके बहुत कृतज्ञ हैं । हमारी प्रतियोगी साधन-सामग्री पूर्ववत् नायम है जिसके लिये हम अमरावती जैन मंदिर, सिद्धान्तभवन वारा, तथा काका बलचर्चाश्रमके अनुगृहीत हैं । हमारे सशोधनसहायक भी पूर्ववत् स्थिर हैं ।

गत भागकी प्रस्तावनाके भीतर हमने एक शक्ता-समाधानका स्तम्भ भी रखा था जिसमें उस समय तक आई हुई चौबीस शक्ताओंके उत्तर दिये गये थे । समालोचकोंने इस स्तम्भ पर

हर्ष प्रकट किया, और आगे भी उसे नियत रखनेकी प्रेरणा की । किन्तु इस बार हमारे पास कोई विशेष शक्ताएँ नहीं आई । तब हमने इसके लिये पत्रोंमें एक सूचना निकाली, जिसके फलस्वरूप जो शक्ताएँ हमारे पास आईं उनका हमने पूरा उपयोग किया है, और प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनाके अन्तर्गत शक्ता-समाधान, एवं शुद्धिपत्रमें पूर्वभागोंके पाठका संशोधन उसाकी सुपरणिम है । इस और विशेषरूपसे रुचि दिखलानेके लिये श्रीयुक्त नानकचंदजी, खेतौली, श्रीयुक्त रतनचंदजी मुल्तार, सहानपुर, और श्रीयुक्त नेमिचंदजी वर्मा, सहानपुर, को हम धन्यवाद देते हैं । यदि उनकी भेजी गई कोई शक्ताएँ या शुद्धियाँ, यहा सम्मिलित नही की गई हैं तो समझना चाहिये कि उनका सक्तन पूर्वभागोंमें हो चुका है जिनका पाठकोंको सदैव ध्यान रखना चाहिये । कभी कभी शक्ताकार हमसे ऐसा पत्र भी कर बैठते हैं कि अमुरु वात अमुरु प्रकार से क्यों नही कही या अमुरु वात क्यों नही जोड़ी गई ! इसके उत्तर में हम अपने पाठकोंका ध्यान केवल हमारे इस आदर्श की ओर आकर्षित करते हैं कि—

‘ नामूलं लिख्यते किञ्चित्, नानपेक्षितमुच्यते ’

इस महान् कार्यमें हमें अब उत्तरोत्तर कठिनाइयोंका अनुभव हो रहा है । जैसा कि हम पूर्व भागमें प्रकट कर चुके हैं, हमारे एक सहयोगी प. फलचंदजी शाली उस भागके सम्युर्ण हो सकनेके पूर्व ही आक्रमिक प्रियातिके कारण यहासे चले गये थे । तमसे वे फिर वापिस नहीं आसके । अतएव इस भागका सपूर्ण कार्य केवल पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीकी सहायतासे हुआ है । प्रफ और प्रति मिलानमें तिलोपण्णति—विभागके कार्यकर्ता प. बालचन्द्रजी शालीका साहाय्य रहा है । इधर यूरोपीय युद्धके कारण कागज आदि-का भाग ब्रेहद बढ़ता गया । यथेष्ट मागज ठीक समय पर मिलना भी अशक्य हो गया । इन्ने पर अमरावती नगरमें साम्प्रदायिक झगड़ेने कुछ समयके लिये ऐसा भीषणरूप धारण किया कि आफिस और प्रेसका कार्य बंद रहना पडा । पुस्तकोंकी बिक्री भी इतनी नहीं होरही जिससे आगेका कार्य चलता जाये । इससे हमारा फंड भी कुछ कुछ कम होता जा रहा है । इन सिद्धान्त प्रयोगोंके प्रचारको रोक्नेका भी जो प्रयत्न हो रहा है उसका हम ऊपर उठेउत कर ही आये हैं । किन्तु इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे कार्य अप्रसर होता ही गया । हम कहाँ तक अपने आदर्शको स्थिर रख सके हैं, इसका निर्णय करना हमारे मर्मज्ञ पाठकोंके अधिकारमें है ।

किंग एडवर्ड मलेज,

अमरावती

१५-१२-४१

हीरालाल जैन

INTRODUCTORY

The present volume contains three *prarūpaṇās*, namely, *Kṣhetra*, *Sparśana* and *Kūla*, out of the eight *prarūpaṇās* of *Jīvātthāna*, of which two, namely, *Sat* and *Dravya-pramāṇa* have already been published in the previous three volumes, while the last three, namely, *Antara*, *Bhāva* and *Alpa-bahutva* are going to be included in the next volume.

The *Kṣhetra-prarūpaṇā* contains 92 *Sūtras* and concerns itself with the determination of the volume of space that living beings occupy under the various conditions of life and existence. The *Sūtras* confine themselves to the treatment of the subject under the usual fourteen spiritual stages (*Gūṇasthānas*) and the fourteen soul-quests (*Mārgaṇḍa-sthānas*). But the commentator introduces ten other conditions of life which have to be taken into consideration. These fall under three main classes, namely, the place of habitation of the beings (*Svasthāna*), their expansion (*Samudghāta*) and their journey for rebirth (*Upapāda*). The first of these includes the usual place of habitation (*Svasthāna-vasthāna*) and places of occasional visits (*Vihāravat-svasthāna*). The expansion of the soul-substance beyond its usual volume (*Samudghāta*) may be due to pain (*Vedanā*), or passion (*Kāshāya*), or for a temporary transformation of personality (*Vikriya*), or for a visit to the next place of birth just before death (*Māraṇāntika*), or by effulgence of lustre for evil or good (*Tajasa*), or for reaching a learned person for the removal of a doubt in knowledge in the case of saints (*Ahāraka*), or for getting rid of the remnant karmic bonds in the case of an all-knowing saint (*Kevali-samudghāta*). Thus, the commentator calculates the volume of space occupied by the living beings in these ten different conditions under the different spiritual stages and soul-quests.

The spatial units adopted for these measurements are five, namely, (1) the entire universe (*Sarva-loka*), (2) the lower universe (*Adhloka*), (3) the upper universe (*Urdhva-loka*), (4) the middle world (*Madhyaloka*), and (5) the human world (*Manusa-loka*). To make these standards definite and precise, the commentator divides the limitless space into two, namely, the *Alokakaśa* which is pure void and limitless, and the *Lokakaśa* which is situated in the middle of the former, where life and matter subsist and which is limited. It is this *Lokakaśa* which has been adopted as the largest measure in the treatment of volumes. As regards the shape and

volume of this universe, the commentator is confronted with two divergent views. According to one view it is in the form of three conical frusta with a common circular section in the middle, while according to the other view it is in the form of three frusta of pyramids with a common rectangular base in the middle. *Vīrasena* with his philosophic insight, discriminating genius and mathematical skill ultimately rejects the former view and adopts the latter. His conclusions are that the entire universe (*Lokakaśa*) has a total height of 14 *rajjus* and is in its volume $7^3 = 343$ cubic *rajjus*, consisting of the lower universe which is 196 cubic *rajjus* and the upper universe which is 147 cubic *rajjus*. Between the lower and the upper universe is the rectangular section called the middle world which is $1 \times 7 = 7$ square *rajjus*, and which contains in its middle the human world which is a circular area of 45 lakhs of *yojanas* in diameter. The *rajju* is thus the standard unit of this spatial measurement and it is only determined as innumerable *yojanas* long, equal to the smaller side, and $\frac{1}{7}$ of the larger side of the rectangular middle world, $\frac{1}{7}$ of the height of the lower or upper world and $\frac{1}{11}$ of the total height of the entire universe. This discussion as well as similar others bring to light several geometrical problems that confronted our ancient thinkers, and their solutions throw a considerable light upon the evolution of mathematical processes and theories in this country. We have tried to illustrate some of these by twenty diagrams in addition to a large number of examples.

Under the *Sparśana-prarūpaṇa* which contains 185 *Sūtras*, we find the volumes of space similarly considered from the point of view of the past as well as the future status of those beings, in addition to the present to which *Kṣhetra-prarūpaṇa* confines itself. The question here is the volume of space which beings of different spiritual stages and soul-quests ever happen to touch under one of the ten conditions mentioned above. In this connection the determination of the number of heavenly luminaries shining above the innumerable islands and seas gives rise to a number of interesting mathematical exercises, (see pp 150-161 of the text).

In the *Kāla-prarūpaṇa* which contains 342 *Sūtras*, the consideration is of the minimum and maximum periods of time spent by the souls, singly or in aggregates, in the various spiritual stages and soul-quests. The smallest period of time comprehended is an instant (*Samaya*) of which innumerable are included in an *avali* and a breath (*Prana*) which is equal to ²⁸⁸⁰/₃₇₇₃ of a second (see Vol. III, Introduction p. 34). The series

of periods of time rises on to a Muhurta (48 Minutes), a day, a fortnight, a month, a year, a Yuga a Purvanga, a Purva, and so on to a Palyopama and a Sagaropama and ultimately to an Utsarpini and Avasarpini which constitute a Kalpa. The longest period of time conceived and denominated is a Pudgala-parivartana (for which see p. 330 text and explanatory note).

In interpreting the mathematical part of these texts I again received very valuable assistance from my colleague Mr K D. Pandey, professor of mathematics in King Edward College, Amraoti. Without his help here, as in the previous volume, it would have been almost an impossible task for me to explain adequately the mathematical portions. As I mentioned in the previous volume, Dr. Avadhesh Narain Singh, professor of Mathematics in the Lucknow University and author of the History of Hindu Mathematics, has taken a keen interest in the mathematical contents of these texts. He has now studied the mathematical portions of the III volume and has obliged me by writing out a dissertation on the mathematical contents of that volume. The same is being published here under the caption " Mathematics of Dhavala." It is expected that he would continue his valuable study of these texts and the readers might look forward to a very interesting note on the geometries of the present volume in the volume to be issued next.

Another topic dealt with in the Hindi Introduction of this volume is an answer to the objection raised in a certain quarter that Jaina traditions prohibit the study of these Sacred Texts by laymen, and therefore these texts should neither be published in a printed form, nor should they be taught in Jaina Pathasalas, nor should they be allowed to be read anywhere by any body except by the Jaina ascetics. A critical examination of all the traditions bearing on this subject shows that an injunction against the study of Siddhanta by the laymen is found in a few books dealing with the duties of Jaina house-holders. But all these books are found to have been written by a few obscure and insignificant writers belonging to a period subsequent to the 12th century A. D. Again, they either do not make clear what is meant by Siddhanta, or explain it in a manner so as to make the present texts, as well as all other available books, fall outside the sphere of Siddhanta. The injunction is, moreover, in direct conflict with the statements of the most ancient and authoritative Jaina writers who have strongly recommended the study of the Jaina texts of the highest kind by all, laymen as well as ascetics. The author of the Dhavala himself lays down in clear and unmistakable terms at every step of his commentary that the Sutras as well as the commentary are so designed

as to be useful to all mankind, dull as well as intelligent. The tradition is thus found to be a very late one invented by some man of narrow outlook and small brain during the age of decadence, and it is altogether incompatible with the whole spirit and ideology of Jainism and with the clear and definite recommendations of all other writers of far greater importance and authority.

A number of queries concerning the meaning and significance of certain statements in the previous volumes have also been answered in the Hindi Introduction.

MATHEMATICS OF DHAVALA

Introductory Remarks

It has been known that in India the study of *Ganita*—arithmetic, algebra, mensuration etc.—was carried on at a very early date. It is also well known that the ancient Indian mathematicians made substantial and solid contributions to mathematics. In fact they were the originators of modern arithmetic and algebra. We have been accustomed to think that amongst the vast population of India only the Hindus studied mathematics and were interested in the subject, and that the other sections of the population of India, e.g. the Buddhists and the Jains, did not pay much attention to it. This view has been held by scholars because mathematical works written by Buddhist or Jaina mathematicians had been unknown until quite recently. A study of the Jaina canonical works, however, reveals that mathematics was held in high esteem by the Jains. In fact the knowledge of mathematics and astronomy was considered to be one of the principal accomplishments of the Jaina ascetics.¹

We know now that the Jains had a school of mathematics in South India, and at least one work—the *Ganita-sara-samgraha* by Mahāvīracīrya—of this school was in many ways superior to any other existing work of that time. Mahāvīracīrya wrote in 850 A. D. and his work although similar in general outline to the works of the Hindu mathematicians like Brahmagupta, Śrīdhara, Bhāskara and others, is entirely different in details, e.g. the problems in the *Ganita-sara-samgraha* are almost all different from those in the other works.

From the mathematical literature available at present we can say that important schools of mathematics flourished at Paṭaliputra (Patna), Ujjain, Mysore, Mahābar, and probably also at Benares, Taxila and some other places. Until further evidence is available, it is not possible to say precisely what the relation between these schools was. At the same time we find that works coming from the different schools resemble each other in their general outline, although they differ in details. This shows that there was intercommunication between the various schools—that scholars and students travelled from one school to another, and that discoveries made at one place were soon communicated throughout the length and breadth of India.

It seems that the spread of Buddhism and Jainism gave an impetus to the study of the various sciences and arts. The religious literature of India in general and of Buddhism and Jainism in particular is full of big numbers. The use of big numbers necessitated the development of a simple symbolism for writing those numbers, and

1 Cf. Bhagavati sūtra with the commentary of Abhayadeva Sūri edited by Āgamadevasamiti of Mehesana, 1919, Sūtra 90, English translation by Jacob of the Uttarādhiyana-sūtra, Oxford, 1895, Ch 7, 8, 38

has been responsible for the invention of the decimal place value notation. It is now established beyond doubt that the place value system of notation was invented in India about the beginning of the Christian Era—the brightest period of Buddhism and Jainism. The new notation was an instrument of great power and accelerated the development of mathematics from the crude Vedic stage—as found in the *Sūbha* sutras—to the finished stage of the fifth century—as found in the works of Aryabhata and Varāhamihira.

One very significant fact which has escaped the notice of historians of mathematics is the following: whilst the general literature of the Hindus, the Buddhists, and the Jains is continuous from the third or the fourth century B. C. right up to the middle ages, in the sense that works representing each century are found, there is a gap in the mathematical literature. In fact there is hardly any mathematical text earlier than the *Aryabhatīya* which was composed in 499 A. D. The only exception is a fragmentary manuscript known as the *Bakhshali manuscript*, which probably belongs to the second or the third century A. D. This manuscript, however, fails to give us any detailed information regarding the state of mathematical knowledge at the time of its composition for the reason that it is not strictly speaking a mathematical text as the treatises of Aryabhata, Brahmagupta or Śrīdhara etc. It is of the nature of notes on some selected mathematical problems. All that we can infer from the manuscript is that the place value numerals as well as the fundamental operations of arithmetic with them were well known, and that some types of problems treated by later mathematicians were also known.

It has already been pointed out that mathematics as found in the *Aryabhatīya* is highly developed, for we find in it a treatment of the entire elementary arithmetic of today including the rules of proportion, interest, barter and exchange, and of algebra up to the solution of the simple and the quadratic equations, simple indeterminate equations etc. The question arises: Did Aryabhata borrow from some foreign source or is the material contained in the *Aryabhatīya* indigenous and of Indian origin? Aryabhata writes:—

“Having paid reverence to Brahman, the Earth, the Moon, Mercury, Venus, the Sun, Mars, Jupiter, Saturn, and the asterisms, Aryabhata sets forth the science which is honoured here at Kusumapura.”¹ This shows that he did not borrow from a foreign source. The study of the history of mathematics in other countries leads to the same conclusion, for the mathematics of the *Aryabhatīya* was far in advance of what was known at that time in any other country of the world. The possibility of borrowing from some foreign source having been ruled out, the question arises: How is it that practically no mathematical work anterior to that of Aryabhata is available? The explanation is simple enough. The place value system of notation was invented some time about the beginning of the Christian Era. It must have taken four or five hundred years to come into general use. Aryabhata's work seems to be the first good text book employing the new arithmetic of the place value numerals. Works anterior

to Aryabhata's either used the old type of numerals or were not good enough to stand the test of time. I think that Aryabhata's great popularity as a mathematician was, in a great measure, due to his being the first to write a good text book employing the place value numerals. Aryabhata was responsible for driving out and killing all previous text books. This explains why we get a series of works from 499 A. D. onwards while no works belonging to earlier times are available.

Thus we have practically no material to trace the development and growth of mathematics in India before 500 A. D. It becomes a question of paramount importance to hunt and trace out works which may give information regarding the knowledge of mathematics in India anterior to Aryabhata. Mathematical works having been lost, we have to scan and analyse Hindu, Buddhist and Jain literature in general, and their religious literatures in particular, to find what material we can in order to reconstruct the history of mathematics in India before 500 A. D. In several of the Puranas we have portions dealing with mathematics and astronomy. Likewise in most of the Jain canonical works there is to be found some mathematical or astronomical material. This material represents the traditional mathematics of India, and such material is generally about three to four centuries older than the age of the work in which it is contained. Thus if we examine a religious or philosophical work written in the period 400 to 800 A. D., its mathematical content will belong to 0 A. D. to 400 A. D.

It is in the light of the above remarks that we regard the discovery of the *Dhavalā*, a commentary on the *Saṅkhaṇḍagama*, written in the beginning of the ninth century as very important. Mr. H. L. Jaina has placed scholars under a permanent debt of gratitude by editing the work and getting it published.

The Jaina school of mathematics

Since the discovery and publication of the *Ganita-sara-saṅgraha* by Rāṅgacārya, in 1912, scholars¹ have suspected the existence of a school of mathematics run exclusively by Jaina scholars. A recent study of some of the Jaina canonical works has brought to light various references to Jaina mathematicians and mathematical works.² The religious literature of the Jains is classified into four groups, called *anuyoga*, meaning "the exposition of the principles (of Jainism)". One of them is called *karāṇanuyoga* or *ganitanuyoga*, i. e. the exposition of the principles dependent upon mathematics. This shows the high position accorded to mathematics in Jaina religion and philosophy.

Although the names of several Jaina mathematicians are known, their works have been lost. The earliest among them is Bhadrabāhu who died in 273 B. C. He is known to be the author of two astronomical works (1) a commentary on the

1 See the Introduction by D. E. Smith to the *Ganita-sara-saṅgraha* ed. by Rāṅgacārya Madras, 1912.

2 B. Datta *The Jaina school of Mathematics*, Bulletin, Cal. Math. Soc., Vol. XXI (1929), pp. 115-145.

Sūryaprajñapti and (ii) an original work called the *Bhadrabāhavi Samhitā*. He is mentioned by *Malayagiri* (c. 1150) in his commentary on the *Sūryaprajñapti*, and has been quoted by *Bhāttotpāl* (966).¹ Another Jaina astronomer of the name of *Siddhasena* has been quoted by *Varāhamihira* (505) and *Bhāttotpāl*. Mathematical quotations in *Artha-magadhī* and *Prakṛit* are met with in several works. The *Dhavalā* contains a large number of such quotations. These quotations will be considered at their proper places, but it must be noted here that they prove beyond doubt the existence of mathematical works written by Jaina scholars which are now lost.² Works written by Jaina scholars under the title of *Kṣetra-samasa* and *Karāṇa-bhavana* dealt with mathematics, but no such works are available to us now. Our knowledge of Jaina mathematics which is of an extremely fragmentary character is gleaned from a few non-mathematical works such as *Sthānanga-sūtra*, *Tattvārthadhigama-sūtra*-bhāṣya of *Umasvati*, *Sūryaprajñapti*, *Anuyogadvāra-sūtra*, *Triloka Prajñapti*, *Trilokasara*, etc. To these may now be added the *Dhavalā*.

The importance of the Dhavalā

The *Dhavalā* was written by *Vīrasena* in the beginning of the ninth century. *Vīrasena* was a philosopher and religious divine. He certainly was not a mathematician. The mathematical material contained in the *Dhavalā* may therefore be attributed to previous writers, especially to the previous commentators of whom five have been mentioned by *Indranandi* in the *Sūtravārtā*. These commentators were *Kundakunda*, *Śāmakunda*, *Tumbhura*, *Śamantabhadra* and *Bhappadeva*, of whom the first flourished about 200 A. D. and the last about 600 A. D. Most of the mathematical material in the *Dhavalā* may therefore be taken to belong to the period 200 to 600 A. D. Thus the *Dhavalā* becomes a work of first rate importance to the historian of Indian mathematics, as it supplies information about the darkest period of the history of Indian Mathematics—the period preceding the fifth century A. D. The view that the mathematical material in the *Dhavalā* belongs to the period before 500 A. D. is corroborated by detailed study. For instance, many of the processes described in the *Dhavalā* are not to be found in any known mathematical work. Furthermore, there is a certain imperfection which, one acquainted with the later Indian mathematical works, can easily discern. The mathematics in the *Dhavalā* lacks the finish and the refinement of the *Aryabhatīya* and later works.

Mathematical Content of the Dhavalā

Numbers and Notation—The author of the *Dhavalā* is fully conversant with the place value system of notation. Evidence of this is to be found everywhere. We quote some methods of expressing numbers taken from quotations given in the *Dhavalā*—

1 *Bṛhat Samhitā*, ed. by S. Dravid, Benares, 1895, p. 226.

2 *Silanka* in his commentary on the *Sūtrakṛtāṅga Sūtra*, *smayadīpāyana*, *anuyogadvāra*, verse 28, quotes three rules regarding permutations and combinations. These rules are apparently taken from some Jaina mathematical work.

(i) 7999998 is expressed as a number which has 7 in the beginning, 8 at the end, and 9 repeated six times in between¹

(ii) 4666664 is expressed as sixty-four, six hundreds, sixty-six thousands sixty-six hundred-thousands, and four kotis².

(iii) 22799498 is expressed as two kotis, twenty-seven, ninety-nine thousands, four and ninety-eight³.

The method used in (i) is found elsewhere also in Jaina literature and at some places in the *Ganita-sara-samgraha*⁴. It shows familiarity with the place value notation. In (ii) the smaller denominations are expressed first. This is not in accordance with the general practice current in Sanskrit literature. Likewise, the scale of notation is hundred and not ten as is generally found in Sanskrit literature⁵. In Pali and Prakrit, however, the scale of hundred is generally used. In (iii) the highest denomination is expressed first. Quotations (ii) and (iii) are evidently from different sources.

Big numbers—It is well known that big numbers occur frequently in Jaina literature. In the *Dhavala* also the various kinds of *jiva-rāsi*, *dravya-pramāṇa* etc are discussed. The biggest number that is definitely stated is the number of developable human souls. In the *Dhavala*⁶ it is stated to lie between the sixth-square of two and the seventh square of two, or to be more precise, between *koti-koti-koti* and *koti-koti-koti-koti*, i.e.,

$$\begin{array}{ccc} & 6 & 7 \\ & 2 & 2 \\ \text{between} & 2 & \text{and} \\ & 2 & 2 \end{array}$$

and more definitely, between $(1,00,00,000)^3$ and $(1,00,00,000)^4$. The actual number of such souls known from other works⁷ is 79,22,81,62,51,42,64,33,75 93,54,39,50,336. This number occupies twenty-nine notational places. It has the same, number of notational places as $(1,00,00,000)^4$ but is greater. This is known to the author of *Dhavala* who calculates the area of the world inhabited by men and shows that the larger number of men can not be contained in it, and hence that view was wrong.

The Fundamental Operations—Mention is found of all the fundamental operations—addition, subtraction, division, multiplication, the extraction of square and cube-roots, the raising of numbers to given powers, etc. These operations are mentioned

1. *Dhavala* III, p. 38, quoted verse 51 cf. *Gommatasāra*, *Jiva kāṇḍa*, p. 683
2. *Dhavala* III, p. 33, quoted verse 52
3. *Dhavala* III, p. 100, quoted verse 53
4. cf. *Ganita-sāra-samgraha*, i, 27. See also *History of Hindu Mathematics* by Datta and Singh, Vol. I, Lahore, 1935 p. 16
5. Datta and Singh, i, c, p. 14.
6. *Dhavala* III, p. 253
7. cf. *Gommatasāra*, *Jivakāṇḍa* S B J. Series, p. 104

both with respect to integers and fractions. The theory of indices as described in the *Dhavala* is somewhat different from what is found in the mathematical works. This theory is certainly primitive and is earlier than 500 A. D. The fundamental ideas seem to be those of (i) the square, (ii) the cube, (iii) the successive square, (iv) the successive cube (v) the raising of a number to its own power, (vi) the square-root (vii) the cube root (viii) the successive square-root, (ix) the successive cube-root, etc. All other powers are expressed in terms of the above. For example, $a^{3/2}$ is expressed as the first square-root of the cube of a , a^3 is expressed as the cube of the cube of a , a^6 is expressed as the square of the cube or the cube of the square of a , etc.¹ The successive squares and square-roots are as below—

1st square of a means	$(a)^2 = a^2$
2nd square of a means	$(a^2)^2 = a^4 = a^{2^2}$
3rd square of a means	$a^8 = a^{2^3}$
...	...
n th square of a means	a^{2^n}

Similarly,

1st square-root of a means	$a^{1/2}$
2nd square-root of a means	$a^{1/2^2}$
3rd square-root of a means	$a^{1/2^3}$
...	...
n th square-root of a means	$a^{1/2^n}$

Vargita-samvargita—The technical term *vargita-samvargita* has been used for the raising of a number to its own power. For instance, n^n is the *vargita-samvargita* of n . In connection with this the *Dhavala* mentions an operation called *Viralana-deya*—“spread and give”. The *Viralana* (spreading) of a number means the separating of the number into its unities, i.e., the *viralana* of n is—

$$1 \ 1 \ 1 \ 1 \ \dots \ n \text{ times}$$

Deya (giving) means the substitution of n in the place of 1 everywhere in the above. The *vargita-samvargita* of n is obtained by multiplying together the n 's obtained by the *viralana-deya*. The result is the first *vargita-samvargita* of n , i.e.,

1st *vargita-samvargita* of n is n^n

The application of the process of *viralana-deya* once again, i.e., to n^n , gives the

2nd *vargita-samvargita* of n $(n^n)^n$

A further application of the same procedure gives the—

$$\text{3rd vargita-samvargita of } n \quad \left\{ \begin{array}{c} n^n \\ (n^n) \end{array} \right\}$$

The Dhavalā does not contemplate the application of the above more than three. The third vargita-samvargita has been used very often¹ in connection with the theory of very large or infinite numbers. That the process yields very big numbers can be seen from the fact that the 3rd vargita-samvargita of 2 is ²³⁶²⁵⁶

The laws of indices—From the above description it is obvious that the author of the Dhavalā was fully conversant with the laws of indices, viz.,

$$\begin{aligned} (1) \quad a^m a^n &= a^{m+n} \\ (ii) \quad a^m / a^n &= a^{m-n} \\ (iii) \quad (a^m)^n &= a^{mn} \end{aligned}$$

Instances of the use of the above laws are numerous. To quote one interesting case,² it is stated that the 7th varga of 2 divided by the 6th varga of 2 gives the 6th varga of 2. That is—

$$2^7 / 2^6 = 2^1$$

The operations of *duplation* and *mediation* were considered important when the place value numerals were unknown. There is no trace of these operations in the Indian mathematical works. But these processes were considered to be important by the Egyptians and the Greeks and were recognised as such in their works on arithmetic. The Dhavalā contains traces of these operations. The consideration of the successive squares of 2 or other numbers was certainly inspired by the operation of duplation which must have been current in India before the advent of the place value numerals. Similarly, there are traces of the method of mediation. In the Dhavalā we find generalisation of this operation into a theory of logarithms to the base 2, 3, 4, etc.

Logarithms—The following terms have been defined in the Dhavalā³—

(1) Ardhaccheda of a number is equal to the number of times that it can be halved. Thus the ardhaccheda of $2^m = m$. Denoting ardhaccheda by the abbreviation *Ac*, we can write in modern notation—

$Ac \text{ of } x \text{ (or } Ac \ x) = \log x$, where the logarithm is to the base 2

(ii) Vargasalākā of a number is the ardhaccheda of the ardhaccheda of that number,¹ e.,

Vargasalākā of $x = Vs \ x = Ac \ Ac \ x = \log \log x$, where the logarithm is to the base two.

(iii)⁴ Trkaccheda of a number is equal to the number of times that it can be divided by 3. Thus—

1 Dhavalā III, 20 ff. 2 Ibid p 253 ff. 3 Ibid p 21 ff. 4 Ibid p 56.

Trkaccheda of $x = Tc \ x = \log 3x$, where the logarithm is to the base 3

(iv)¹ Caturthaccheda of a number is the number of times that it can be divided by 4. Thus—

Caturthaccheda of $x = Cc \ x = \log 4x$, where the logarithm is to the base 4.

The following results regarding logarithms have been used in the Dhavalā:

- (1)² $\log (m^n) = \log m \cdot \log n$.
- (2) $\log (m \cdot n) = \log m + \log n$
- (3)³ $\log m = m$, where the logarithm is to the base 2
- (4)⁴ $\log (x^2) = 2x \log x$.
- (5)⁵ $\log \log (x^2) = \log x + 1 + \log \log x$,
(for the left side $= \log (2x \log x)$
 $= \log x + \log 2 + \log \log x$
 $= \log x + 1 + \log \log x$
as $\log 2$ to the base 2 is 1).

$$(6)^6 \log (x^2)^{x^2} = x^2 \log x^2$$

(7) Let a be any number, then—

$$\begin{aligned} 1st \text{ vargita-samvargita of } a &= a^a = B [aay] \\ 2nd \text{ vargita-samvargita of } a &= B^B = y [aay] \\ 3rd \text{ vargita-samvargita of } a &= y^y = D [aay] \end{aligned}$$

The Dhavalā gives the following results⁷—

- (i) $\log B = a \log a$
- (ii) $\log \log B = \log a + \log \log a$.
- (iii) $\log y = B \log B$
- (iv) $\log \log y = \log B + \log \log B$
 $= \log a + \log \log a + a \log a$.
- (v) $\log D = y \log y$
- (vi) $\log \log D = \log y + \log \log y$
and so on

$$(8)^8 \log \log D < B^3$$

This inequality gives the inequality—

$$B \log B + \log B + \log \log B < B^3$$

1 Ibid p. 56. 2 Ibid p. 60. 3 Ibid p 55. 4 Ibid p 21 ff. 5 I c

6 I.c. It should be mentioned here that nowhere in the text are these logarithms restricted to be integral. The number x is any number x^2 is the first vargita-samvargita rasi

and $(x^2)^x$ is the second vargita-samvargita rasi

7 Dhavalā III, p 21-24

8 Ibid p 24

Fractions.— Besides the fundamental arithmetical operations with fractions, knowledge of which has been assumed in the Dhavalā, we find a number of interesting formulae relating to fractions, which are not found in any known mathematical work. Amongst these may be mentioned the following —

$$[1]^1 \frac{n^2}{n \pm (n/p)} = n \pm \frac{n}{p \pm 1}$$

[2]² Let a number m be divided by the divisors d and d' , and let q and q' be the quotients (or the fractions). The following formula gives the result when m is divided by $d \pm d'$ —

$$\frac{m}{d \pm d'} = \frac{q'}{(q'/q) \pm 1}$$

$$\text{or} = \frac{q}{1 \pm (q/q')}$$

[3]³ If $\frac{m}{d} = q$ and $\frac{m'}{d} = q'$, then—

$$d(q - q') + m' = m$$

[4]⁴ If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + \frac{b}{n}} = q - \frac{q}{n + 1},$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - \frac{b}{n}} = q + \frac{q}{n - 1}$$

[5]⁵ If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + c} = q - \frac{q}{\frac{b}{c} + 1},$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - c} = q + \frac{q}{\frac{b}{c} - 1}$$

[6]⁶ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b'} = q + c$, then—

1 Dhavalā p 46

2 Ibid p 47, quoted verse 27

3 Ibid p 46, quoted verse 24

4 Ibid p 46, quoted verse 24

5 Ibid p 46, quoted verse 26

2 Ibid p 46

$$b' = b - \frac{b}{\frac{q}{c} + 1},$$

and if $\frac{a}{b'} = q - c$, then—

$$b' = b + \frac{b}{\frac{q}{c} - 1}.$$

[7]¹ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b'}$ is another fraction, then—

$$\frac{a}{b} - \frac{a}{b'} = q \left(\frac{b' - b}{b'} \right)$$

[8]² If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b + x} = q - c$, then—

$$x = \frac{bc}{q - c}$$

[9]³ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b - x} = q + c$, then—

$$x = \frac{bc}{q + c}$$

[10]⁴ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b + c} = q'$, then—

$$q' = q - \frac{qc}{b + c}$$

[11]⁵ If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b - c} = q'$, then—

$$q' = q + \frac{qc}{b - c}$$

The above results are all found in quotations given in the Dhavalā. They are not found in any known mathematical work. The quotations are from Ardhā-Māgadhī or Prakrit works. The presumption is that they are taken from Jaina works on mathematics or from previous commentaries. They do not represent any essential arithmetical operation. They are relics of an age when division was considered a difficult and tedious operation. These rules certainly belong to an age when the place-value notation was not in common use for arithmetical operations.

The rule of three—The rule of three is mentioned and used at several

1 Ibid p 46, quoted verse 28

2 Ibid p 48, quoted verse 29

3 Ibid p 49, quoted verse 30

4 Ibid p 49, quoted verse 31

5 Ibid p 49, quoted verse 32

places¹. The technical terms in connection with the process are *phala*, *iccha* and *pramana*, the same as found in the known mathematical works. This suggests that the rule of three was known and used in India even before the invention of the place-value notation.

The Infinite.

Use of big numbers—The word infinite used in various senses is found in the literature of all ancient peoples. A correct definition and appreciation of the idea, however, came much later. It is natural that the correct definition was evolved by people who used big numbers, or were accustomed to such numbers in their philosophy. The following will show that in India the *Jaina philosophers succeeded in classifying the various notions connected with the term infinite, and in evolving the correct definition of the numerical infinite.*

The evolution of suitable notation for expressing big numbers as well as of the idea of the infinite arise when abstract reasoning and thinking reach a certain high standard. In Europe, Archimedes tried to estimate the number of sand particles on the sea-shore and the Greek philosophers speculated about the infinite and the limit. They, however, did not possess suitable symbols for the expression of big numbers. In India, the Hindu, Jaina and Buddhist philosophers used very big numbers and evolved suitable symbolism for the purpose. In particular, the Jains tried to form an estimate of all living beings in the Universe, of time instants, of locations [points or places] in the Universe and so on.

Three methods of expressing big numbers were employed —

- (1) The place-value notation using the scale of ten. In this connection it may be noted that number-names based on the scale of ten² were coined to express numbers as large as 10¹⁴⁰.
- (2) The law of indices (*varga-samvarga*) was employed to give compact expressions for big numbers, e.g. —

$$(1) \quad (2^2) = 4,$$

$$(11) \quad (2^2)^2 = 4^2 = 256,$$

$$(111) \quad \left\{ (2^2)^2 \right\} \left\{ (2^2)^2 \right\} = 256^{256}$$

Vargita-samvargita of 2. This number is greater than the number of protons and electrons in the Universe.

¹ See, for example, Dhavala III, p. 69 and 100 etc.

² For details of big numbers and numerical denominations, see Datta and Singh, History of Hindu Mathematics (Published by Motilal Banarasi Dass, Lahore) Part I, pp. 11 f.

- (3) The logarithm (*ardhaccheda*) or the logarithm of a logarithm (*ardhaccheda-salaka*) was used to reduce the consideration of big numbers to those of smaller ones, e.g. —

$$(1) \quad \text{Log}_2 2^2 = 2$$

$$(11) \quad \text{Log}_2 \log_2 4^4 = 3,$$

$$(111) \quad \text{Log}_2 \log_2 256^{256} = 11.$$

It is no wonder to find that today we take recourse to one or the other of the above three methods of expressing numbers. The decimal place-value notation has become the common property of all nations. Logarithms are used whenever calculations with big numbers have to be made. Instances of the use of the law of indices to express magnitudes in modern physics is common. For instance, the number of protons in the Universe has been calculated and expressed as —

$$136 \cdot 2^{256}.$$

And Stewes' number which gives information regarding the distribution of primes is expressed in the form —

$$\begin{matrix} 34 \\ 10 \\ 10 \\ 10 \end{matrix}$$

All the above methods of expressing numbers have been used in the Dhavala. It follows that the methods were commonly known before the seventh century A.D. in India.

¹ The number $136 \cdot 2^{256}$ expressed in the decimal notation is 15,747,724,136,275,002,577 605,653,961,181,553 468,044,717,914, 572,116,703,366,231,423 076,185 631,031,296

It will be observed that the third *vargita-samvargita* of 2, i. e., 256^{256} is greater than the number of protons in the Universe. If we imagine the entire Universe as a chess-board, and the protons in it as chessmen, and if we agree to call any interchange in the position of two protons a 'move' in this cosmic game, then the total number of possible moves would be the number —

$$\begin{matrix} 84 \\ 10 \\ 10 \\ 10 \end{matrix}$$

This number is also connected with the theory of the distribution of primes

Classification of the infinite The Dhavalā gives a classification of the infinite. The term infinity has been used in literature in several senses. The Jain classification takes into account all these. According to it there are eleven kinds of infinity as follows.—

(1) **Namananta**—Infinite in name. An aggregate of objects which may or may not really be infinite might be called as such in ordinary conversation, or by or for ignorant persons, or in literature to denote greatness. In such a context the term infinite means infinite in name only, i. e., *Nāmānanta*.

(2) **Sthapanananta**—Attributed, or associated infinity. This too is not the real infinite. The term is used in case infinity is attributed to or associated with some object.

(3) **Dravyananta**—Infinite in relation to knowledge which is not used. This term is used for persons who have knowledge of the infinite, but do not for the time being use that knowledge.

(4) **Gananananta**—The numerical infinite. This term is used for the actual infinite as used in mathematics.

(5) **Apradesikananta**—Dimensionless, i. e., infinitely small.

(6) **Ekananta**—One directional infinity. It is the infinite as observed by looking in one direction along a straight line.

(7) **Ubhayananta**—Two directional infinite. This is illustrated by a line continued to infinity in both directions.

(8) **Vistaranananta**—Two dimensional or superficial infinity. This means an infinite plane area.

(9) **Sarvananta**—Spatial infinity. This signifies the three dimensional infinity, i. e. the infinite space.

(10) **Bhavananta**—Infinite in relation to knowledge which is utilised. This term is used for a person who has knowledge of the infinite, and who uses that knowledge.

(11) **Saswatananta**—Everlasting or indestructible.

The above classification is a comprehensive one, including all senses in which the term *ananta* is used in Jain literature!

Gananananta (numerical infinite)

The Dhavalā clearly lays down that, in the subject-matter under discussion, by the term *ananta* (infinite) we always mean the numerical infinite,² and not any

1 Dhavalā III, p 11-16

2 ibid p 16

of the other infinities enumerated above. For, in the other kinds of infinity "the idea of enumeration is not found".¹ It has also been stated that the "numerical infinite is describable at great length and is simpler". This statement probably means that in Jain literature *ananta* (infinite) was defined more thoroughly by different writers and had become commonly used and understood. The Dhavalā, however, does not contain a definition of *ananta*. On the other hand, operations on and with the *ananta* are frequently mentioned along with numbers called *samkhyāta* and *asamkhyāta*.

The number *samkhyāta*, *asamkhyāta* and *ananta* have been used in Jain literature from the earliest known times, but it seems that they did not always carry the same meaning. In the earlier works *ananta* was certainly used in the sense of infinity as we define it now, but in the later works *anantānanta*, takes the place of *ananta*. For example, according to the *Trilokasara* a work written in the 10th century by Nemicandra, *Parita-ananta*, *Yuktananta* and even *Jaghanya-anantānanta* is a very big number, but is finite. According to this work, numbers may be divided into three broad classes —

- (i) *Samkhyāta*, which we shall denote by- s,
- (ii) *Asamkhyāta*, which we shall denote by- a,
- (iii) *Ananta*, which we shall denote by- A.

The above three kinds of numbers are further sub-divided into three classes as below —

- I. *Samkhyāta* (numerable) numbers are of three kinds.
 - (i) *Jaghanya-samkhyāta* (smallest numerable) which we shall denote by sj,
 - (ii) *Madhyama-samkhyāta* (intermediate numerables) which we shall denote by- sm,
 - (iii) *Utkṛsta-samkhyāta* (the highest numerable) which we shall denote by- su.

II. *Asamkhyāta* (un-numerable) numbers are divided into three classes —

- (i) *Parita-asamkhyāta* (first order unnumerable) which we shall denote by- ap,
- (ii) *Yukta-asamkhyāta* (medium unnumerable) which we shall denote by- ay,
- (iii) *Asamkhyāta-asamkhyāta* (unnumerable-unnumerable) which we shall denote by- an.

Each of the above three classes is further sub-divided into three classes, viz. *Jaghanya* (smallest), *Madhyama* (intermediate) and *Utkṛsta* (highest). Thus we

Buddhist origin is interesting—

It will be observed that in the above series $asamkhyeyn$ is the last denomination. This probably implies that numbers beyond the $asamkhyeyn$ are beyond numerical, i. e. unnumerable.

...e, unnumerable
...must have towered from time to time
Nemicaandra's

asmkbyāta is certainly different from the asmkhyeya defined above, which is 10

Asamkhyata.—As already me

to broad classes, and each of these

n above, we have, according to N

Jaghianya-parira-asamkhyata

Madhyama-parita-asambhaya

Uchṛsta-parita-asamkhyata

ore—

Ṭṅḷanya-yaktṛ-asamkhyata

Madhyama-yukta-asamkhyata

Utkrsta-yukta-asamkhyata

—070—

Jachanya-asamkhyata-asamkha

śādhvāna-śāma-khyata-śāma-

Пікрат-намакхата-агмак'б'в

are—

Apj stands for Jaghanya-paritsa

Ananta.—The numbers of the

Jachanyā-narīṣa-nanta [Apr

University of Pennsylvania
Total

NOTES

$$(\text{[80]})$$
$$\{[a_n]\}$$
$$\left. \begin{array}{l} \text{[for]} \\ \text{]} \end{array} \right\}$$
$$\{ [u\bar{u}] \}$$

—

1

Let $C = B + \text{six dravyas}^1$.

$$\text{Let } D = \{(C^0)C^0\} \{(C^0)C^0\} + \text{four aggregates}^2$$

Then, Jaghanya parita-ananta [Apy] =

$$\{(D^D)D^D\} \{(D^D)D^D\} \\ \text{Madhyama-parita-ananta [Apm] is } > \text{Apy, but } < \text{Apu,} \\ \text{Utkrsta-parita-ananta [Apu] = Apy} - 1,$$

where—

$$\text{Jaghanya-yukta-ananta [Aji] = (apy)(apy)} \\ \text{Madhyama-yukta-ananta [Aym] is } > \text{Ayi, but } < \text{Ayi;} \\ \text{Utkrsta-yukta-ananta [Ayu] = Aji} - 1,$$

where—

$$\text{Jaghanya-ananta-ananta [AAj] = (Ayi)^2} \\ \text{Madhyama-ananta-ananta [AAm] is } > \text{AAj, but } < \text{AAu,}$$

where—

AAu stands for Utkrsta-ananta-ananta, which, according to *Nemicañdra*, is obtained as follows—

Let—

$$z = \left[\left\{ (AAj)AAj \right\} \left\{ (AAj)AAj \right\} \right] \left[\left\{ (AAj)AAj \right\} \left\{ (AAj)AAj \right\} \right] \\ + \text{six rasas}^3;$$

$$y = \left\{ (z^z)z^z \right\} \left\{ (z^z)z^z \right\} + \text{two rasas}^4,$$

1 The six dravyas are the spatial points of (1) Dharma, (2) Adharma, (3) one Jiva (4) Lokākāśa, (5) apratisthita (vegetable souls) and (6) Pratisthita (vegetable souls)
2 The four aggregates are (1) instants of a kalpa, (2) spatial units of the Universe, (3) anubhāgabandha-adhyavasāya-sāhāna, and (4) aribhāga praticheda of Yoga
3 These are (1) suddha, (2) sādākrāma-rānaspati-nigoda, (3) rānaspati, (4) pud-gala (5) vyavahāra kālā, and (6) ālokakāśa
4 These are (1) Dharma dravya, (2) adharma dravya, (3) aguru-laghu-guna-aribhāga praticheda, of both

$$z = \{(y^y)y^y\} \{(y^y)y^y\}$$

Now, the aggregate known as kevalajñāna is greater than z, and—

$$AAu = \text{Kevalajñāna} - z + z \\ = \text{Kevalajñāna}$$

Remarks—From the above it follows that—

[1] Jaghanya-parita-ananta [apy] is not infinite unless one or more of the six dravyas or the one of the four aggregates, which have been added to obtain it, is infinite.

[2] Utkrsta-ananta-ananta [AAu] is equivalent to the aggregate called *Kevalajñāna*. The description above seems to imply that the utkrsta-ananta-ananta can not be reached by any arithmetical operation, however far it may be carried. In fact it is greater than any number z which can be reached by arithmetical operations. It seems to me, therefore, that *Kevalajñāna* is infinite, and hence that utkrsta-ananta-ananta is infinite.

Thus, the description found in the *Trilokasara* leaves us in doubt as to whether any of the three classes of parita-ananta and the three classes of yukta-ananta and the jaghanya-ananta is actually infinity or not, in as much as they are all said to be the multiples of asamkhyata and even the aggregates that have been added are also asamkhyata only. But the Ananta of the Dhavala is actual infinity, for it is clearly stated that "a number which can be exhausted by subtraction cannot be called ananta."¹ It is further stated in the Dhavala that by ananta-ananta is always meant the madhyama-ananta-ananta. So the madhyama-ananta-ananta, according to the Dhavala, is infinite.

The following method of comparing two aggregates given in the Dhavali² is very interesting. Place on one side the aggregate of all the past Atsarpinis and Utsarpinis (i.e., the time-instants in a kalpa, which are supposed to form a continuum and are consequently infinite) and on the other the aggregate of *Mūhādrśh jīva-ras*. Then taking one element of the one aggregate and a corresponding element from the other, discard them both. Proceeding in this manner the first aggregate is exhausted, whilst the other is not.³ The Dhavala, therefore, concludes that the aggregate of *mūhādrśh-jīva-ras* is greater than that of all the past time-instants.

The above is nothing but the method of one-to-one correspondence which forms the basis of the modern theory of infinite cardinals. It may be argued that the method is applicable to the comparison of finite cardinals also, and so was taken recourse to for comparing two very big finite aggregates, so big that their elements

1 Dhavala III, p 25 2. *ibid* p 28. 3 *ibid* p 28

could not be counted in terms of any known numerical denomination. This view-point is further supported by the fact that the Jaina works fix the duration of a time-instant, and so the number of time-instants in a Kalpa (*Avasarpini* and *Utsarpini*) must be finite, as the Kalpa itself is not an infinite interval of time. According to this latter view the Jāghanya-parita-ananta (which according to definition is greater than the aggregate of time instants) is finite.

As already pointed out, the method of one-to-one correspondence has proved to be the most powerful tool for the study of infinite cardinals, and the discovery and first use of the principle must be ascribed to the Jains.

In the above classification of numbers I see a primitive attempt to evolve a theory of infinite cardinal numbers. But there are some serious defects in the theory. These defects would lead to contradictions. One of these is the assumption of the existence of the number $c-1$, where c is infinite and a limiting number of a class. On the other hand, the Jaina conception that the *vargika-samvargta* of a cardinal c ($1, e, c^0$) would lead to a new number is justifiable. If it be true that the *Ukṛsta-asamkhyata* of the early Jaina literature corresponds to infinity, then the creation of the numbers of the ananta class anticipated to some extent the modern theory of infinite cardinals. Any such attempt at such an early age and stage in the growth of mathematics was bound to be a failure. The wonder is that the attempt was made at all.

The existence of several kinds of infinity was first demonstrated by George Cantor about the middle of the nineteenth century. He gave a theory of transfinite numbers. Cantor's researches in the domain of infinite aggregates, have provided a sound basis for mathematics, a powerful tool for research, and a language for correctly expressing the most abstruse mathematical ideas. The theory of transfinite numbers however, is at present in an elementary stage. We do not as yet possess a calculus of these numbers, and so have not been able to bring them effectively in mathematical analysis.

A. N. Singh, D. Sc.,
Lucknow University.

INDEX

(Owing to deficiency of types, proper diacritical marks could not be used in the 'Mathematics of Dhavala.' The following index will be helpful in reading the Sanskrit and Prakrit technical terms correctly.)

Ababa (अब) xviii	Bhadrabahu (भद्रबाहु) iii
Abbuda (अबुद, sk अर्बुद) xviii	Bhagavati-sutra (भगवतीसूत्र) i fn
Abhayadeva Suri (अभयदेवसुरि) i fn	Bhaskara (भास्कर) i
Acalapra (अचलप्र) xvii fn	Bhattotpala (भट्टोत्पल) iv
Adharma (अधर्म) xix fn	Bhavananta (भावानन्त) xviii
Agamodaya samiti (आगमोदय समिति) i fn	Bindu (बिन्दु) xviii
Aguru laghu guṇa (अगुरुलघु गुण) xix fn	Brahmagupta (ब्रह्मगुप्त) i, ii.
Ahaha (अहह) xviii	Brhat Samhita (बृहत्संहिता) iv fn
Akhobhini (अक्षेपिनी, sk, अक्षोहिणी) xviii	Caturthachhedā (चतुर्थच्छेद) viii
Alokakaśa (अलोककाश) xix fn	Dasā (दस, sk दश) xviii
Amama (अमम) xvii fn	Deya (देय) vi
Amamanga (अममंग) xvii fn	Dharma (धर्म) xix fn
Ananta (अनन्त) xiv, xv etc	Dhavaḷa (धवला) iii, iv, etc
Anantananta (अनन्तानन्त) xiv etc.	Dravyananta (द्रव्यानन्त) xiii
Anubhagabandha-adhyasnyāsthana (अनुमानवध-अध्यवसायस्थान) xix fn	Dravya pramana (द्रव्यप्रमाण) v
Anuyoga (अनुयोग) iii	Eka (एक) xviii
Anuyogadvara-sutra (अनुयोगद्वारसूत्र) iv	Ekananta (एकानन्त) xiii
Apradeśikananta (अप्रदेशिकानन्त) xiii	Ganita (गणित) i
Apratiṣṭhita (अप्रतिष्ठित) xix fn	Gananananta (गणनानन्त) xiii
Arddhaccheda (अर्धच्छेद) vii, xii	Ganita-yoga (गणिताद्योग) iii
Arddhaccheda-salaka (अर्धच्छेदसलका) xii	Ganita-sara-saṃgraha (गणितसारसंग्रह) i, iii, v,
Ardha magadhi (अर्धमगधी) iv, x	Gommatasara (गोमटसार) v fn
Aryabhata (आर्यभट) ii, iii	Haha (हाहा) xvii fn
Aryabhātiya (आर्यभटीय) ii, iv	Hahanga (हाहंग) xvii fn
Asamkhyata (असंख्यत) xiv, xvii	Hativamsapurana (हतिवामपुराण) xvii fn
Asamkhyeya (असंख्येय) xviii	Hastaprahelita (हस्तप्रहेलित) xvii fn
Atata (अटट) xvii fn, xviii	Hahanga (हहंग) xvii fn
Atatanga (अटटांग) xvii fn	Huhu (हूहू) xvii fn
Avbhaga-pratichhedā (अविभाग-प्रतिच्छेद) xix fn	Iccha (इच्छा) xi
Avasarpini (अवसर्पिणी) xx, xxi	Indranāthi (इन्द्रनाथि) iv
Bappadeva (बप्पदेव) iv	Jāghanyā ⁿ (जघन्य ⁿ) xiv, xv, xvii
Benares (बनारस) i	Jāghanya-anantananta (जघन्य-अनन्तानन्त) xiv, xv, xix
Bhadrabahavi Samhita (भद्रबाहवी संहिता) iv	Jāghanya-asamkhyata (जघन्य-असंख्यत) xv, xviii etc.

Jaghanya-parita-ananta (जघन्य-परीत-अनन्त) xv, xviii etc	Madhyama-yukta-asamkhyata (मध्यम-युक्त-असंख्यत) xv, xviii etc
Jaghanya-parita-asamkhyata (जघन्य-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Mahakathana (महाकथन) xviii
Jaghanya-yukta-ananta (जघन्य-युक्त-अनन्त) xv, xix	Mahalata (महालता) xvii fn
Jaghanya-yukta-asamkhyata (जघन्य-युक्त-असंख्यत) xv, xviii etc	Mahalatanga (महालतंग) xvii fn
Jaghanya-yukta-asamkhyata (जघन्य-युक्त-असंख्यत) xv, xviii etc	Mahavracarya (महाव्रतचार्य) i
Jambudvipa (जम्बूद्वीप) xvi	Malabar (मलबार) i
Jiva (जीव) xix fn	Malayagiri (मलयगिरि) iv
Jivakanda (जीवकाण्ड) v fn	Mithyadestu Jiva-rasi (मिथ्यादेति जीवराशि) xx
Jiva-rasi (जीवराशि) v	Mysore (मैसूर) i
Kalpa (कल्प) xix fn, xx, xxi	Nahuta (नहुत) xviii
Kamala (कमल) xvii fn	Nalina (नलिन) xvii fn
Kamalanga (कमलंग) xvii fn	Nalinanga (नलिनंग) xvii fn
Karana-bhavana (करणभावना) iv	Namananta (नामानन्त) xvii
Karananuyoga (करणनययोग) iii	Nayuta (नयुत) xvii fn
Kathana (कथन) xviii	Nayutanga (नयुतंग) xvii fn
Kevala-jnana (केवलज्ञान) xx	Nemicaandra (नैमिचन्द्र) xiv, xviii, xix
Koti (कोटि) v, xviii	Ninnahuta (निन्नहुत, sk निन्हुत) xviii
Koṭippakoṭi (कोटिपकोटि) xviii	Nirabbuda (निरबुद्ध, sk निरुद्ध) xviii
Ksetra-samasa (क्षेत्रसमास) iv	Padma (पद्म) xvii fn
Kumuda (कुमुद) xvii fn, xviii	Padmanga (पद्मंग) xvii fn
Kumudanga (कुमुदंग) xvii fn	Paduma (पदुम, sk पद्म) xviii
Kundakunda (कुण्डकुण्ड) iv	Pakoti (पकोटि, sk पकोटि) xviii
Kusumapura (कुसुमपुर) ii	Pali (पाली) v
Lata (लता) xvii fn	Parita-ananta (परित-अनन्त) xiv
Latanga (लगंग) xvii fn	Pataliputra (पाटलिपुत्र) i
Lokakasa (लोककाश) xix fn	Phala (फल) xi
Madhyama-ananta-ananta (मध्यम-अनन्त-अनन्त) xv, xix	Prakrit (प्राकृत) iv, v, x
Madhyama-asamkhyata-asamkhyata (मध्यम-असंख्यत-असंख्यत) xv, xviii etc	Pramana (प्रमाण) xi
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Pratiṣṭhita (प्रतिष्ठित) xix
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Pudgala (पुद्गल) xix fn
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Pundarika (पुण्डरीक) xviii
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Purana (पुराण) iii
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Purva (पूर्व) xvii fn
Madhyama-parita-ananta (मध्यम-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Purvanga (पूर्वांग) xvii fn
Madhyama-yukta-ananta (मध्यम-युक्त-अनन्त) xv, xix	Rajavartuka (राजवर्तिक) xvii fn
	Rangacarya (रंगचार्य) iii
	Sadharana-vana-spati-nigoda (साधारण-वनस्पति निगोद) xix fn

Sahasra (सहस्र, sk सहस्र) xviii	Sahasra (सहस्र, sk सहस्र) xviii
Samanantabhadra (समन्तभद्र) iv	Samanantabhadra (समन्तभद्र) iv
Samkhyata (संख्यत) xiv, xv	Samkhyata (संख्यत) xiv, xv
Sarvananta (सर्वानन्त) xiii	Sarvananta (सर्वानन्त) xiii
Sasvatananta (सश्वतानन्त) xiii	Sasvatananta (सश्वतानन्त) xiii
Sata (शत, sk शत) xviii	Sata (शत, sk शत) xviii
Satkhandagama (सत्खण्डगम) iv	Satkhandagama (सत्खण्डगम) iv
Siddha (सिद्ध) xix fn	Siddha (सिद्ध) xix fn
Siddhasena (सिद्धसेन) iv	Siddhasena (सिद्धसेन) iv
Silanka (शिलांक) iv fn	Silanka (शिलांक) iv fn
Sogandhika (सोगंधिका, sk सोगंधिक) xviii	Sogandhika (सोगंधिका, sk सोगंधिक) xviii
Smayadhiyasyana (स्मयधीयस्यना) iv fn	Smayadhiyasyana (स्मयधीयस्यना) iv fn
Sridharacarya (श्रीधराचार्य) i, ii	Sridharacarya (श्रीधराचार्य) i, ii
Strikalpa (स्ट्रिकल्प) xvii fn	Strikalpa (स्ट्रिकल्प) xvii fn
Strutavakara (स्ट्रुतवाकर) iv	Strutavakara (स्ट्रुतवाकर) iv
Sthananga sutra (स्थानंग सूत्र) iv	Sthananga sutra (स्थानंग सूत्र) iv
Sthapanananta (स्थापनानन्त) xviii	Sthapanananta (स्थापनानन्त) xviii
Subasutra (सुभासूत्र) ii	Subasutra (सुभासूत्र) ii
Sutraprajapathi (सूत्रप्रज्ञापथि) iv	Sutraprajapathi (सूत्रप्रज्ञापथि) iv
Sutrakṭanga sutra (सूत्रकृत्तंग सूत्र) iv fn	Sutrakṭanga sutra (सूत्रकृत्तंग सूत्र) iv fn
Tathavarthadhigama sutra-bhasya (तथार्थधिगमसूत्र-भाष्य) iv	Tathavarthadhigama sutra-bhasya (तथार्थधिगमसूत्र-भाष्य) iv
Taxila (तक्षशिला) i	Taxila (तक्षशिला) i
Tiloka-prajnapu (तिलोक-प्रज्ञापु) iv, xvii fn	Tiloka-prajnapu (तिलोक-प्रज्ञापु) iv, xvii fn
Trilokasata (त्रिलोकाशत) iv, xiv, xv, xv, xv	Trilokasata (त्रिलोकाशत) iv, xiv, xv, xv, xv
Trikachhedra (त्रिकोणच्छेद) xvii	Trikachhedra (त्रिकोणच्छेद) xvii
Trutita (त्रुति) xvii fn	Trutita (त्रुति) xvii fn
Trutitanga (त्रुतिंग) xvii fn	Trutitanga (त्रुतिंग) xvii fn
Tumbulura (तुम्बलुरा) iv	Tumbulura (तुम्बलुरा) iv
Ubhayananta (उभयानन्त) xiii	Ubhayananta (उभयानन्त) xiii
Ujjain (उज्जैन) i	Ujjain (उज्जैन) i
Umasvili (उमास्वलि) iv	Umasvili (उमास्वलि) iv
Uppala (उपपल, sk उपपल) xviii	Uppala (उपपल, sk उपपल) xviii
Utkrsta-ananta-ananta (उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त) xv, xix	Utkrsta-ananta-ananta (उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त) xv, xix
Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata (उत्कृष्ट-असंख्यत-असंख्यत) xv, xviii etc	Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata (उत्कृष्ट-असंख्यत-असंख्यत) xv, xviii etc
Utkrsta-parita-ananta (उत्कृष्ट-परीत-अनन्त) xv, xix	Utkrsta-parita-ananta (उत्कृष्ट-परीत-अनन्त) xv, xix
Utkrsta-parita-asamkhyata (उत्कृष्ट-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc	Utkrsta-parita-asamkhyata (उत्कृष्ट-परीत-असंख्यत) xv, xviii etc
Utkrsta-pukta-asamkhyata (उत्कृष्ट-पुक्त-असंख्यत) xv, xix	Utkrsta-pukta-asamkhyata (उत्कृष्ट-पुक्त-असंख्यत) xv, xix
Utsarpini (उत्सर्पिणी) xv, xvi	Utsarpini (उत्सर्पिणी) xv, xvi
Uttaradhyayana sutra (उत्तराध्यायनसूत्र) i fn	Uttaradhyayana sutra (उत्तराध्यायनसूत्र) i fn
Vaṇaspati (वनस्पति) xiv fn	Vaṇaspati (वनस्पति) xiv fn
Varshamhira (वार्षमहिर) ii, iv	Varshamhira (वार्षमहिर) ii, iv
Varga (वर्ग) vi	Varga (वर्ग) vi
Varga-samvarga (वर्ग-संवर्ग) xi	Varga-samvarga (वर्ग-संवर्ग) xi
Varga-salaka (वर्ग-सलाका) vii	Varga-salaka (वर्ग-सलाका) vii
Vargita samvargita (वर्गित-संवर्गित) vi, vii, viii, xi, xii fn, xxi	Vargita samvargita (वर्गित-संवर्गित) vi, vii, viii, xi, xii fn, xxi
Varga (वर्ग) xvii fn	Varga (वर्ग) xvii fn
Vitalana (वितलन) vi	Vitalana (वितलन) vi
Vitalana-deya (वितलन-देय) vi	Vitalana-deya (वितलन-देय) vi
Virasena (वीरसेन) iv	Virasena (वीरसेन) iv
Vistarananta (विस्तारानन्त) xiii	Vistarananta (विस्तारानन्त) xiii
Vyavaharika (व्यवहारिका) xix fn	Vyavaharika (व्यवहारिका) xix fn
Yoga (योग) xix fn	Yoga (योग) xix fn
Yojana (योजना) xv	Yojana (योजना) xv
Yuga (युग) xvi n	Yuga (युग) xvi n
Yuka (युक्त) xiv, xv	Yuka (युक्त) xiv, xv
Yuktananta (युक्तानन्त) xiv	Yuktananta (युक्तानन्त) xiv

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

जैनधर्म ज्ञान और विवेक प्रधान है। यहा मनुष्यके प्रत्येक कार्यकी अछाई आर दुराईका निर्णय वस्तुस्वरूपके विचार और भावोंकी शुद्धि या अशुद्धिके अनुसार किया गया है। ज्ञानका स्थान यहां बहुत उच्चा है। मोक्षका मार्ग जो रत्नत्रयरूप कहा गया है उसमें ज्ञानका स्थान चारित्र्यसे पूर्व रखा है। जब कुछ ज्ञान हो जायगा तभी तो चारित्र सुघर सकेगा, और जितनी मात्रा में ज्ञान विबुद्ध होता जायगा उतनी मात्रा में ही चारित्र निर्मल होने की सम्भावना हो सकती है। इसीलिये जैनी देवके साथ ही शास्त्रकी भी पूजा करते हैं। दैनिक आवश्यक क्रियाओंमें शास्त्र-स्वाध्यायका स्थान विशेष रूपसे है। चार प्रकारके दानोंमें शास्त्रदानकी भी बड़ी महिमा है। जैन आचार्योंको ज्ञान या कि धर्मका प्रचार और परिपालन शास्त्रोंके आधारसे ही हो सकता है, अतः उन्होंने समय समय पर सभी स्थानों और प्रदेशोंकी भाषाओंमें ग्रन्थ रचकर उनका प्रचार व पठन-पाठन बढ़ानेका प्रयत्न किया। स्वयं तीर्थंकर भगवान् की दिव्यवाणीकी यह एक विशेषता कही जाती है कि उसे सब प्राणी सुन और समझ सकते तथा उससे लाभ उठा सकते हैं। प्राचीन कालकी शिष्ट भाषा कहलनेवाली संस्कृत को छोड़कर जैन सिद्धान्तको प्राकृत-भाषा-निबद्ध करनेमें यह भी एक हेतु कहा जाता है कि जिससे बाल, लो, मन्द, मूर्ख सभी चारित्र सुधारनेकी बाछा रखनेवाले उससे लाभ उठा सकें।

किन्तु धर्मका उदात्त ध्येय और स्वरूप सदैव एकात्म नियत नहीं रहने पाता। ज्यों ही उसमें गुरु कहलानेकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई, और ज्ञानकी हीनता होते हुए भी वे मर्यादासे बाहरकी बातें कहने सुनने लगे, त्यों ही उसमें अनेक विवेकहीन और तर्कशून्य बातें व विश्वास भी आ धुसते हैं, जो मोली समाजमें घर करके कभी कभी बड़े अनर्थके कारण बन जाते हैं। जैनशास्त्र-स्वाध्यायके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक बात उत्पन्न हुई है जिसका हमें यहां विचार करना है।

षट्खण्डागमकी इससे पूर्व तीन विरुद्ध प्रकाशित हो चुकी हैं और अब चौथी जिल्द पाठकोंके हाथमें पहुच रही है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयभी समलताका संतोष हो रहा है। इस ओर समाजके औत्सुक्य और तत्परता का अनुमान इसीसे हो सकता है कि इतने अल्प कालमें हमें सिद्धान्तकारके कार्यमें मूढविद्वि-सस्यानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जयधवलके प्रकाशनके लिये भी अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठीं और जैन संघ,

- १ देवपूजा गुरुपाति स्वाध्याय समयस्तप । दान चेति गृहस्थाना पद कर्माणि दिने दिने ॥
- २ औपधिदान, शास्त्रदान, अमयदान और आहारदान ।
- ३ बालस्त्रीमदमूर्खोणा नृणा चारित्र्यकाक्षिणाम् । अनुग्रहाय तत्त्वज्ञे सिद्धान्त प्राकृत कृत ॥

(२) सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

मधुरा, की ओरसे उसका कार्य भी प्रारम्भ हो गया, तथा सेठ गुलाबचंदजी शोलापुरकी सद्भावनासे महाधवलके सम्बन्धमें भी एक समिति सुसंगठित हो गई है। श्रीयुक्त मजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताडपत्रीय प्रतियोंके आधारसे प्रकाशित करनेकी स्त्रीम भी प्रस्तुत की है। प्रकाशित सिद्धान्तका स्वाध्याय भी अनेक मदिरों और शालभंडारों व गृहोंमें हो रहा है। यही नहीं, बम्बईकी माणिकचंद जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम माग सखरूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित कर इन सिद्धान्तोंके समर्थोचित पठन-पाठन का मार्ग भी खोल दिया है।

इस सब प्रगतिसे विद्वत्संसार को बड़ा हर्ष है। किन्तु एकाध विद्वान् अभी ऐसे भी हैं जिन्हें इन सिद्धान्तोंका यह उद्धार-प्रचार उचित नहीं जचता*। उनके विचारसे न तो इन ग्रंथोंका मुद्रण होना चाहिये, और न इन्हें विद्यालयोंमें अध्ययन-अध्यापनका विषय बनाना चाहिये। यहां तक कि गृहस्थमात्रको इनके पढ़नेका नियेव कर देना चाहिये। उनका यह विवेक निम्न-लिखित आगम और युक्ति पर निर्भर है—

(१) अनेक प्राचीन ग्रंथोंमें यह उपदेश पाया जाता है कि गृहस्थोऽनो सिद्धान्तोऽनो श्रवण, पठन या अध्ययनका अधिकार नहीं है।

(२) सिद्धान्तग्रन्थ दो हो हैं जो कि धवल, जयधवल, महाधवलके रूपमें टीका द्वारा उपलब्ध हैं, बाकी सभी शास्त्र सिद्धान्तग्रन्थ नहीं हैं।

प्रथम बातकी पुष्टिमें निम्न लिखित ग्रंथोंके अवतरण दिये गये हैं—

(१) वसुनिन्दि श्रावकाचार, (२) श्रुतसागरकृत षट्प्राश्रुतटीका, (३) वामदेवकृत भावसंग्रह, (४) मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार (५) धर्मोपदेशपर्यायवर्णन श्रावकाचार,

* देखो प मस्तनलाल शास्त्री लिखित 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार', मोरना, बी स २४६८

१ दिष्णपटिम वीरचरिया तियालजोगेसु णस्थि अधियारो । सिद्धत-रहस्साण वि अउस्यण देताविरदण ॥ ३१ ॥
(वसुनिन्दि श्रावकाचार)

२ वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा त्रैकाल्ययोगनियमश्च । सिद्धान्तरहस्यादिवच्ययन नास्ति देशविरतानाम् ॥
(श्रुतसागर-षट्प्राश्रुतटीका)

३ नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चार्कसंमुला । रहस्यप्रणसिद्धान्तश्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥

४ कल्पन्ते वीरचर्याह प्रतिमातापनादय । न श्रावकस्य सिद्धान्तरहस्याध्ययनादिकम् ॥ ७४ ॥
(वामदेव भावसंग्रह)

(मेधावी धर्मसंग्रहश्रावकाचार)
५ त्रिकालयोगनियमो वीरचर्या च सर्वथा । सिद्धान्ताध्ययन सूर्यप्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥

(धर्मोपदेशपर्यायवर्णन-श्रावकाचार)

(३)

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

(६) इन्द्रनिन्दित नीतिसार और (७) आशाधरकृत सागारधर्ममृत ।

इन सब ग्रंथोंमें केवल एक ही अर्थता और प्रायः उन्हीं शब्दोंमें एक ही पद्य पाया जाता है जिसमें कहा गया है कि देशनित श्रावक या गृहस्थको वीरचर्या, सूर्यप्रतिभा, त्रिकाल-योग और सिद्धान्तरहस्यके अध्ययन करनेका अधिकार नहीं है ।

जिन सात ग्रंथोंमेंसे गृहस्थको सिद्धान्त-अध्ययनका निषेध करनेवाला पद्य उद्धृत किया गया है उनमेंसे न. ५ और ६ की छोटकर शेष पांच ग्रंथ इस समय हमारे सम्मुख उपस्थित हैं । वसुनान्दिकृत श्रावकाचारका समय निर्णीत नहीं है तो भी चूँकि आशाधरके ग्रंथोंमें उनके अवतरण पाये जाते हैं और उनके स्वयं ग्रंथोंमें अतिगतिके अवतरण आये हैं, अतः वे इन दोनोंके बीच अर्थात् विक्रमकी १२ हवीं १३ हवीं शब्दादिमें हुए होंगे । उनके ग्रंथकी कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है, जिससे लेखकका ठीक अभिप्राय समझमें आ सकता । उनकी गाथाकी प्रथम पंक्तिमें कहा गया है कि दिनप्रतिदिन, वीरचर्या और त्रिकालयोग इनमें (देशवितोना) अधिकार नहीं है । दूसरी पंक्ति है 'सिद्धतरहरसाण वि अहयणं देसविरदण' । यथार्थतः इस पंक्तिकी प्रथम पंक्ति 'गणिय अहियारो' से सगति नहीं बैठती, जब तक कि इसके पाठमें कुछ परिवर्तनादि न किया जाय । 'सिद्धतरहरसाण' का अर्थ हिन्दी अनुवाद करने 'सिद्धान्तके रहस्यका पढ़ना' ऐसा किया है, जो आशाधरजीके किये गये अर्थसे भिन्न है । ग्रन्थकारका अभिप्राय समझनेके लिये जब आगे पढ़ेंगे तब उलटते हैं तो सम्यक्त्वके लक्षणमें देखते हैं—

अचागमवचाण ज सव्वणं सुणिम्मल होदि । मकादोमरोहिय व मम्मत्तं मुनेस्सव्व ॥ ६ ॥

अर्थात्, जब आप्त आगम और तत्त्वोंमें निर्मल श्रद्धा हो जाय और शंका आदिक कोई दोष नहीं रहे तब सम्यक्त्व हुआ समझना चाहिये । अब क्या सिद्धान्त ग्रंथ आगमसे बाहर हैं, जो उनका अध्ययन न किया जाय ? या शकादि सब दोषोंका परिहार होकर निर्मल श्रद्धा उठे बिना पढ़े ही उत्पन्न हो जाना चाहिये ? आगमकी पद्धिचानके लिये आगमकी गाथाओं कहा गया है—

अत्रा योगनिमुखो गुप्तापरदोमर्गनिम वण ।

अर्थात्, जिसमें कोई दोष नहीं वह आप्त है, और जिसमें पूर्णपर शिरोधरणी दोष न हो वह वचन आगम है । तब क्या आगमको बिना देखे ही उसके पूर्णपर-प्रतिश्रद्धाहिसको स्वीकार कर निःशक, निर्मल श्रद्धान कर लेना यहाँ उपदेश दिया गया है ? जैसा हम देखेंगे, आगम और सिद्धान्त एक ही अर्थके चोतरक पर्यायवाची शब्द हैं । कहीं इनमें भेद नहीं किया गया । आगे देशवित्तके कर्तव्योंमें कहा गया है—

६ आर्थिकणा गृहस्थानां निव्याणमत्सनेयसाय् । न वाकर्णाय पुरत सिद्धान्तावायुत्तकम् ॥

(इन्द्रनिन्दितसार)

• श्रावको वीरचर्याह प्रविमातापनादिषु । स्वाग्रधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽसि ॥ ७, ५० ॥

(आशाधर-सागरधर्ममृत)

(४)

सिद्धान्त औरउनके अध्ययनका अधिकार

गाणे नापुव्वरणे नागरागमि वद य मत्तीय । ज पडियरण कोरु निरुद्धं वं नागप्रिमाप्पो ॥ ३२२ ॥

अर्थात्, ज्ञान, ज्ञानके उपकरण अर्थात् शास्त्र, और ज्ञानवाचना नील्य मक्ति करना ही ज्ञाननिमय है । और भी—

विमविचरिन्नु मुणमुपनि अकलममरुद्धं वपण । मक्कात्रेयगणि नं चापुमापय पायेको रिगको ॥ ३२३ ॥

अर्थात्, श्रित, भित, प्रिय और मृतके अनुसार वचन बोल्ना.... आदि वचनविमय है । इन गाथाओंमें जो ज्ञान, ज्ञानोपकरण और ज्ञानी का अलग अलग उल्लेख कर उनके विनयका उपदेश दिया गया है, तथा जो मृतके अनुसार वचन बोलेने का आदेश है, क्या इस विनय और अनुसरणमें सिद्धान्त गभित नहीं है ? क्या मृतका अर्थ सिद्धान्त वात्स्य नहीं है ? हम आगे चलकर देखेंगे कि मृतका अर्थ साक्षात् जिन भगवान् की द्वादशांग वाणी है । तब फिर द्वादशांगसे सम्बन्ध रखनेवाले सिद्धान्त मर्थोंके पठनका गुरुत्त्वको निम्न किन्त प्रकार किया जा सकता है ?

अब श्रुतसागरकी ही गद्यामृतटीकासे लीजिये । श्रुतश्रुतार्चार्कन नूतगाड्डको २१ वीं गाथा है—

पुरव च गुणखिगं शब्दं प्रर मारणनं च ।

नित्य मनेश् पत्तो समिर्मानेन बोजेन ॥

इस गाथामें आचार्यने ग्याश्रयी प्रतिभाशरी उल्लेख श्रावकके लक्षण बतलाये हैं कि वह भाषासमितिना पाठन करता हुआ या मौनसहित भिक्षाके लिये भ्रमण करनेका पात्र है । इसी गाथाकी टीका समाप्त हो जानेके पश्चात् 'वर्ग च मम चरधेन मरुदविग' कथके चार आर्थोपर उद्धृत की गई है, जिनमें चौथी गाथा है 'बोरेवत्तं च गुणवत्तेन' आदि । यहाँ न तो इसका कोई प्रसंग है और न पाण्डुउपायोंमें उसके लिये कोई आधार है । यह भी पता नहीं चलता कि कौनसे सम्मन्त नरानिरीष रचनाओंमें ये पद्य उद्धृत किये गये हैं । जैनसहित्यमें जो सगन्तमद सुप्रसिद्ध हैं उनकी उल्लेख और प्रगित रचनाओंमें ये पद्य नहीं पाये जाते । प्रत्युत इसके उनके रचित श्रावकाचार्यों जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, श्रावकों पर ऐसा कोई निन्दन नहीं लगाया गया । अनएव बाध अयत्तण कहा तत्त प्रामाणिक माना जा सकता है मर शतस्वर ही है ।

स्वयं श्रुतश्रुतार्चार्ककी इसकी विस्तृत रचनाओंमें कहीं भी इस प्रकारका कोई निन्दन नहीं है । इसी सूत्रमागुडकी गाथा ५ और ७ को देखिये । यहाँ कहा गया है—

मुणयं विममिणं तीषा विमदिबुद्धिह भव ।

देवदेवं च मत्ता ये जगद सो दु मत्तिरे ॥ ५ ॥

मुण्यण्णोत्तहो विज्जादिहो दु तो मुणेस्सो ॥ ७ ॥

अर्थात्, जो कोई विममिण्यारके कोटि दूर सूत्रोंमें स्थित जीव, अजीव आदि सत्त्वन्धी नाना प्रकारके अर्थोंको तथा ऐसे और ओरियोंको जानता है वही सम्यग्दृष्टि है । सूत्रोंके बाधोंसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य मिथ्यादृष्टि है । यहाँ श्रुतसागरजी अपनी टीकामें कहते हैं 'सुदस्सायं जियेन

(५)

षट्खण्डागमकी प्रस्तावना

भणित प्रतिपादित य पुमान् जानाति वेति स पुमान् स्फुट सम्प्रदाष्टिमन्ति । सूत्रार्थपदविन्द्य पुमान् मित्याष्टिरिति ज्ञातव्य ।

यहां श्रुतसागरजी स्वयं जिनोक्त सूत्रोंके अर्थको ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग मान रहे हैं, और उस ज्ञानके बिना मनुष्य मित्याष्टि रहता है यह भी स्वीकार कर रहे हैं । वे 'पुमान्' शब्द के उपयोगसे यह भी स्पष्ट बतला रहे हैं कि जिनोक्त सूत्रोंका अर्थ समझना केवल मुनिगणोंके लिये ही नहीं, किन्तु मनुष्यमात्रके लिये आवश्यक है । ऐसी अवस्थामें वे सिद्धान्त प्रयोगोंको जिनोक्त सूत्रोंसे बाहर समझकर श्रावकोंको उन्हें पढ़नेका निषेध करते हैं, या श्रावकोंको मिथ्याष्टि बनाना चाहते हैं, यह उनकी स्वयं परस्पर-विरोधी बातोंसे कुछ समझमें नहीं आता । इससे स्पष्ट है कि उस निषेधवाली बातका न तो भगवान् कुंडकुदाचार्यके वाक्योंसे सामंजस्य बैठता है, और न स्वयं टाकामारके ही पूर्व कथनोंसे मेल खाता है । श्रुतसागरजीका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दि सिद्ध होता है^१ । श्रुतसागरजी कैसे लेखक थे और उनकी पट्पाण्डुमें कैसी कैसी रचना है इसके विषयमें एक विद्वान् समालोचकका मत देखिये ।

“वे (श्रुतसागरजी) कहर तो थे ही, असहिष्णु भी बहुत ज्यादा थे । अन्य मतोंका खडन और विरोध तो औरोंने भी किया है, परन्तु इन्होंने तो खण्डनके साथ बुरी तरह गलियाँ भी दी हैं । सबसे ज्यादा आक्रमण इन्होंने मूर्तिपूजा न करनेवाले लोंकागच्छ (ब्रह्मियों) पर किया है । जरूरत नैरजरत जहां भी इनकी इच्छा हुई है, वे उनपर द्रुट पड़े हैं । इसने लिये उन्होंने प्रसंगकी भी परवा नहीं की । उदाहरणके तौरपर हम उनकी षट्पाण्डुलीका को पेश कर सकते हैं । षट्पाण्डुड भगवत्कुंदकुदका प्रथम है, जो एक परमसहिष्णु, शान्तिप्रिय और आध्यात्मिक विचारक थे । उनके प्रयोगमें इस तरहके प्रसंग प्रायः ही नहीं कि उनकी टीकामें दूसरोंपर आक्रमण किये जा सकें, परन्तु जो पहलेसे ही भरा बैठा हो, वह तो कोई न कोई वहाना ढूढ़ ही लेता है । दर्शनपाण्डुडकी मंगलाचरणके बादकी पहली ही गाथा है—

दसणमूलो धम्मो उव्वट्ठो जिणवरोहिं सिस्साण । त सोज्जण सक्खणे वसणहीणो ण वव्विच्चो ॥

इसका सीधा अर्थ है कि जिनेद्वेने शिष्योंको उपदेश दिया है कि धर्म दर्शनमूलक है, इसलिये जो सम्यग्दर्शनसे रहित है उसकी बदना नहीं करनी चाहिये । अर्थात्, चास्त्रि तभी बन्दनीय है जब वह सम्यग्दर्शनसे युक्त हो ।

इस सर्वथा निरुपद्रव गाथाकी टीकामें कलिकालसर्वज्ञ स्थानकवासिर्गोपर बुरी तरह बरस पड़ते हैं और कहते हैं—

^१ षट्पाण्डुतादिसंग्रह (मा अ, मा) श्रुमिका पृ ७.

^२ जैनताहिल और इतिहास, प नाथूरामप्रेमी कृत पृ ४०७-४०८.

(६)

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

‘कोड चौ दर्शनहीन इति चेत् तीर्थंकरपरमदेवप्रतिमा न मानयन्ति, न पुण्यादिना पूजयन्ति ... यदि जिनसूत्रमुपजते तदाऽऽस्तिकेभ्युक्तिवचनेन निषेधनीया । तथापि यदि कदाग्रह न नुज्जन्ति तदा समर्थैरास्तिकैः स्थानं गृहाल्लिप्ताभिमुखे ताडनीया, तत्र पाप नास्ति’ ।

अर्थात्, दर्शनहीन कौन है, जो तीर्थंकरप्रतिमा नहीं मानते, उसे पुण्यादिसे नहीं पूजते, जत्र ये जिनसूत्रका उल्लंघन करें तत्र आस्तिकोंको चाहिए कि शक्तियुक्त वचनोंसे उनका निषेध करें, फिर भी यदि वे कदाग्रह न छोड़ें तो समर्थ आस्तिक उनको मुँहपर विष्टासे लिपेटे हुए जले मों, इसमें जरा भी पाप नहीं ।”

यह है श्रुतसागरजीकी भाषासमिति और उनकी आतता । ऐसे द्वेयपूर्ण अर्लील वाक्य एक प्रामाणिक विद्वान् तो क्या साधारण शिष्ट व्यक्तिके मुखसे भी न निकल सकेंगे ।

अन वामदेवजीकेभाव संग्रहको लीजिये जिसके ५४७ वें श्लोक ‘नास्ति त्रिकालयोगो’ आदिमें ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी श्रावकको ‘सिद्धान्त-श्रवण’ के अधिकारसे वर्जित किया गया है । वामदेवजीका काल विक्रमकी २५ हवीं या १६ हवीं शताब्दि अनुमान किया गया है^१ । उनकी प्रेरचना मौलिक नहीं है, किन्तु १० वीं शताब्दिके देवसेनाचार्यके प्राकृत भावसंग्रहका कुछ परिवर्धित सस्कृत रूपान्तर है । उनकी इस कृतिके विषयमें उस प्रथमी भूमिकामें कहा गया है—

“यह भावसंग्रह प्रायः प्राकृत भावसंग्रहका ही सस्कृत अनुवाद है, दोनों प्रयोगों आने सामने रखकर पढ़नेसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है । यद्यपि प. वामदेवजीने इसमें जगह जगह अनेक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन आदि किये हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्वतंत्र ग्रंथ है । शिष्टताकी दृष्टिसे अच्छा होता, यदि प. वामदेवजीने अपने प्रथमें यह बात स्वीकार कर ली होती ।”

इस परसे जाना जा सकता है कि वामदेवजी किस दर्जेके लेखक और विद्वान् थे । एक प्राचीन और प्रामाणिक आचार्यकी रचनाका उसका नाम लिये बिना ही चुपचाप उसका रूपान्तर करके उन्होंने ग्रंथकार वननेका यश छुटा है । उसमें यदि उन्होंने कुछ परिवर्धन किया है तो वह उसी प्रकारका है जिसका एक उदाहरण हमारे सम्मुख है । उनसे कोई छहसौ वर्ष प्राचीन उक्त प्राकृत भावसंग्रहमें ऐसे निषेधका नाम निशान तक नहीं है । अतएव स्पष्ट है कि वामदेवजीने १६ वीं शताब्दिके लगभग कहाँसे यह बात जोड़ी है ।

अब इन्द्रनन्दिजीके नीतिसारान्तर्गत उपदेशको लीजिये । इसमें उक्त निषेधने और भी बड़ा उपरूप धारण किया है । यहाँ कहा गया है कि—

आर्थिकाणां गृहस्थानां निष्यणामल्पमेधसाम् । न वाचनीयं पुरतः सिद्धान्तवाचपुस्तकम् ॥

अर्थात्, “आर्थिकाओंके सामने, गृहस्थोंके सामने और थोड़ी बुद्धिवाले शिष्य मुनियोंके

^१ भावसंग्रहादि (मा वि. जै. अ) श्रुमिका पृ. ३

सामने भी सिद्धान्त शास्त्र नहीं पढ़ने चाहिये ।” इसके अनुसार गृहस्थ ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धि मुनि और समस्त अजिक्काए भी निषेधके लपेटमें आगये । इसका उत्तर ह्य स्वयं सिद्धान्त-प्रपञ्चोंके शब्दोंमें ही देना चाहते हैं ।

पाठक संक्षेपरूपणके सूत्र ५ और उसकी धवला टीकाको देखें । सूत्र है—

पुदेसि चैव चोदसहं जीवसमासाण परुणद्वयाए सय इमाणि अट्ठ अणियोगएराणि णारसवाणि भवति ॥ ५ ॥

इसकी टीका है—

‘सय इमाणि अट्ठ अणियोगएराणि’ पुरदेवालं, शेषस्य नागदरीयरूपपरिधिरि देव्यं शेष, मन्द-बुद्धिसत्त्वानुप्रवर्धयन्वात् ।

अर्थात्, ‘सय इमाणि अट्ठ अणियोगएराणि’ इतने मात्र सूत्रसे काम चल सकता था, शेष शब्दोंकी सूत्रमें आवश्यकता ही नहीं थी, उनका अर्थ वही गणित हो सकता था । इस शंकाका धवलाकार उत्तर देते हैं कि नहीं, यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्रकारका अभिप्राय मन्दबुद्धि जीवोंका उपकार करना रहा है । अर्थात्, जिस प्रकारसे मन्दबुद्धि प्राणिमात्र सूत्रका अर्थ समझ सकें उस प्रकार स्पष्टतासे सूत्र-रचना की गई है । यहां दो बातें ध्यान देने योग्य हैं । धवलाकारके स्पष्ट मतानुसार एक तो सूत्रकारका अभिप्राय अपना प्रय केवल मुनियोंको नहीं, किन्तु सरस्वामन, पुरुष की, मुनि, गृहस्थ आदि सभीको प्राप्त बनानेका रहा है, और दूसरे उन्होंने केवल प्रतिभाशाली बुद्धिमानोंका ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धियों, अल्पमेधाधर्मियोंका भी पूरा ध्यान रखा है ।

ऐसी बात आचार्यजीने केवल यही कह दी हो, सो बात भी नहीं है । आगेका नीचां सूत्र देखिये जो इस प्रकार है ‘भोषणं अणियं मिण्डादिट्ठो’ । यहा धवलाकार पुन कहते हैं कि—

यथोदेवस्तथा निर्देसा इति न्यायात् ओचाभिधानसम्भवेणपि भोतोऽवगम्यते, तस्यैवपुनरुच्चारण-मनर्थकमिति न, वस्य बुभुषेजानामनुप्रवर्धयन्वात् । सर्वसत्त्वानुप्रवर्धकारिणो हि जिनाः, नीरागराणां ।

अर्थात्, जिस प्रकार उपदेश होता है, उसी प्रकार निर्देश किया जाता है, इस नियमके अनुसार तो ‘ओष’ शब्दको सूत्रमें न रखकर भी उसका अर्थ समझा जा सकता था, फिर उसका यहां पुनरुच्चारण अनर्थक हुआ । इस शंकाका आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं, दृग्भेद, अर्थात् अस्वन्त मन्दबुद्धिवाले लोगोंके अनुग्रहके ध्यानसे उसका सूत्रमें पुनरुच्चारण कर दिया गया है । जिनेदेव तो नीराग होते हैं, अर्थात् किसीसे भी रागद्वेष नहीं रखते, और इस कारण वे सभी प्राणियोंका उपकार करना चाहते हैं केवल मुनियों या बुद्धिमानोंका ही नहीं । (सप्र. १, पृ. १६२)

और आगे चखिये । सप्र. सूत्र १० में कहा गया है कि सत्ती पंचेन्द्रिय भिष्याद्यष्टिसे लेकर संन्यासपत गुणस्थान तक तिर्यच मिश्र होते हैं । इस सूत्रकी टीका करते हुए आचार्य प्रश्न उठाते हैं कि ‘गतिमार्गणकी प्ररूपणा करने पर इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं, और इतने नहीं’ इस प्रकारके निरूपणसे ही यह जाना जाता है कि इस गतिकी इस गतिके साथ गुणस्थानोंकी अपेक्षा

समानता है, इसको इसने सांग नहीं । अतः फिरसे इसका कथन करना निष्फट है । इस प्रश्नका आचार्य समाधान करते हैं कि—

‘न, तस्य बुभुषेजानामपि स्पष्टीकरणार्थंवा । प्रणिपथस्य बुभुषेजानामपिप्रियनिर्जकोत्तादन यत्तु-यथमः कथम् इति न्यायात् ।

अर्थात्, प्रौढक शंका ठीक नहीं, क्योंकि, दृग्भेद लोगोंको उसका भाव स्पष्ट हो जाये, यह उसका प्रयोजन है । न्याय यही कहता है कि जिहासित अपेक्षा निर्णय कर देना ही बलाने वचनोंका फल है ।

इसी प्रकार पृ. २७५ पर कहा है कि—

‘अन्यगतस्य विमृष्टस्य वा निमित्तस्य प्रभवतादस्य गृहस्थात्तात्पर्य’ अर्थात् उसे जिस बातका अभी तक ज्ञान नहीं है, अगरवा दोसर विमृष्ट हो गया है, ऐसे शिष्यके प्रश्न-वत्स इस सूत्रस्य अन्तार गुहा है । पृ. ३२२ पर कहा है ‘वृत्त्यार्थिकनगरं सारानुपश्यं प्रप्रवृत्ते ।... बुद्धीनां मेक्षिष्यात् । अन्तर्गतस्य विद्यागंगागतनगरात्प्रवेसया प्रवृत्त्यात् ।

अर्थात् उक्त निरूपण द्रव्यार्थिक नयानुसार समस्त प्राणिमैक अनुग्रहके लिये प्रवृत्त हुआ है । भिन्न भिन्न मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रस्तावकी बुद्धि होती है । और इस आर्य-मयभी प्रवृत्ति तो त्रिमातृश्री अनन्त प्राणिमैक ही अपेक्षामें ही हुई है । पृ. ३२३ पर कहा है कि ‘जालोक्तस्य मय्यन्तर्गतानिस्तरांगमाह’

अर्थात्, अमुक ज्ञान किभी भी मध्य जीवही शंस्वक निराणार्थ कह दी गई है । पृ. ३७० पर कहा है—

निरालुबुद्धिजनानुग्रहार्थं वृत्त्यार्थं च प्रागादेरज्ञा, मन्दरियामनुग्रहार्थं पर्याप्तार्थिकन्यायेरज्ञा ।

अर्थात्, तीक्ष्ण बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये द्रव्यार्थिकनयका उपदेश दिया गया है, और मन्द बुद्धिवालोंके लिये पर्याप्तार्थिकनयका । तृतीय भाग पृ. २७७ पर कहा है—

ण पुण्णतदेवो ति निगरपणे मभवद्, मन्दबुद्धिरणपुण्णद्वयाए वस्स सक्कसादो ।

अर्थात्, जिन भगवान्को वचनोंमें पुनरुक्त दोषकी संभावना भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि, मंदबुद्धि नीचोंका उससे उपकार होता है, यही उसका साफल्य है । पृ. ४५३ पर कहा है—

गुह्यमप्यन्वयेण किण्णं पुब्बे ? न, मेक्षितं मन्दरियमप्यन्वयेण विज्जणहकारेण तदोत्तरसा ।

अर्थात्, अमुक बातका सूत्रम प्ररूपणमात्र यों नही कर दिया, विस्तार क्यों किया ? इसका उत्तर है कि मेधाही, मन्दबुद्धि और अल्पत मंदबुद्धि, इन सभी प्रकारके लोगोंका अनुग्रह करनेके लिये उस प्रकार उपदेश दिया गया है ।

इसी चतुर्थ भागके पृ. ९ पर कहा है—

विमद्विमुग्धयया निर्देसो कीरसे ? न, उभयतयावस्थिततारवानुप्रवर्धयन्वात् । न तद्धमो निर्देसो अपि, अप्यण्णद्विगुणोपवदिरित्तोच्चारणं अस्सत्तादो ।

अर्थात्, प्रश्न होता है कि ओष और आदेश, ऐसा दो प्रकारसे ही क्यों निर्देश किया गया है ?

इसका उत्तर है कि दोनों नयोंवाले जीवोंके उपकारके लिये । तीसरे प्रकारका कोई निर्देश ही नहीं है, क्योंकि, उक्त दो नयोंमें स्थित जीवोंके अतिरिक्त तीसरे प्रकारके श्रोता होना असम्भव है । पुनः पृ. ११५ पर कहा है—

पटुण दन्वपञ्चद्विगणपञ्चापपरिणदन्वाणुगहकारिणो जिणा इदि जाणाविदु ।

अर्थात्, असुक्त प्रकार कथनसे यह ज्ञात कराया गया है कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयवर्ती जीवोंका अनुग्रह कानेवाले होते हैं ।

पृ. १२० पर कहा है—

‘ किमिदं एदेसु तीसु सुत्तेसु पज्जयणपदेसणा ’ बहूण जीवागमणुगहट्ट । सगहहज्जविदेहितो बहूण विथरख्खजीवाणसुवलभादो ।

अर्थात्, इन तीन सत्रोंमें पर्यायार्थिकनयसे क्यों उपदेश दिया गया है ? इसका उत्तर है कि जिससे अधिक जीवोंका अनुग्रह हो सके । संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे विस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं । पृ. २४६ पर पाया जाता है—

उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे फलामावा ? ण, मदुद्धिसवियजणसमालणुगदुवारोण फलोवलभादो ।

अर्थात्, एक बार कहीं हुई बात यहाँ पुनः क्यों दुहराई जा रही है, इसका तो कोई फल नहीं है ? इसका उत्तर आचार्य देते हैं— नहीं, मदुद्धि भव्यजनोंके संमालद्वारा उसका फल पाया जाता है ।

ये थोड़ेसे अवतरण धवल्सिद्धान्तके प्रस्तावित अशोभसे दिये गये हैं । समस्त धवल और जयधवलमेंसे दो चार नहीं, सैकड़ों अवतरण इस प्रकारक दिये जा सकते हैं जहाँ स्वयं धवलने रचयिता वीरसेनस्वामीने यह स्पष्टतः बिना किसी श्रान्तिक प्रकट किया है कि यह सूत्र-रचना और उनकी टीका प्राणमात्रने उपयोगके लिये, समस्त भव्यजनोंके हितके लिये, मन्दसे मन्द बुद्धि-वाले और महोमेधावी शिष्योंके समाधानके लिये हुई है, और उनमें जो पुनरुक्ति व विस्तार पाया जाता है वह इसी उदार ध्येयकी पूर्तिके लिये है । स्वयं धवलाकारके ऐसे सुस्पष्ट आदेशके प्रकाशमें इन्द्रनन्दि आदि लेखकोंका आर्थिकाओं, गृहस्थों और अल्पमेधावी शिष्योंको सिद्धान्त-पुस्तकोंके न पढनेका आदेश आर्प या आगमोक्त है, या अन्यथा, यह पाठक स्वयं विचार कर देख सकते हैं ।

अब हमारे सम्मुख रह जाता है पंडितप्रवर आशाधरजीका वाक्य, जो विक्रमकी १३ हवीं शताब्दिका है । उनका वह निपेयात्मक श्लोक सागरधर्मामृतके सप्तम अध्यायका ५० वा पद्य है । इससे पूर्वके ४९ वें श्लोकमें ऐलककी स्वपणिपात्रादि क्रियाओंका विधानात्मक उल्लेख है । तथा आगेके ५१ वें श्लोकमें श्रावकोंको दान, शील, उपवासादिका विधानात्मक उपदेश दिया गया है । इन दोनोंके बीच केवल बड़ी एक श्लोक निषेधात्मक दिया गया है । सौभाग्यसे आशाधरजीने

अपने श्लोकोंपर स्वयं टीका भी लिख दी है जिससे उनका श्लोकगत अभिप्राय खूब सुस्पष्ट हो जाय । उन्होंने अपने—

‘स्यान्नाधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च’ का अर्थ किया है ‘ निद्वान्तस्य परमागमस्य सूत्र-रूपस्य रहस्यस्य च प्रायश्चित्तशास्त्रस्य अध्ययने षडे श्रान्तो नाधिकारी स्यादिति सवय ।

अर्थात्, सूत्ररूप परमागमके अध्ययनका अधिकार श्रावकको नहीं है । अत्र प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सूत्ररूप परमागम किसे कहना चाहिये । क्या वीरसेन-जिनसेन रचित धवला जयधवला टीकाएँ सूत्ररूप परमागम हैं, या यतिवृषभके चूर्णिसूत्र परमागम हैं, या भागवत् पुण्यदन्त और भूतत्रलि तथा गुणधर आचार्योंके रचे कर्मप्राप्त और कथायत्रामृतके सूत्र व सूत्र-गाथाएँ सूत्ररूप परमागम हैं ? या ये सभी सूत्ररूप परमागम हैं ? सूत्रकी सामान्य परिभाषा तो यह है—

अल्पाक्षरमसद्विग्य साख्यद् गृहनिर्णयम् । अस्तोममनवय च सूत्र सूत्रविदो विदु ॥

इसके अनुसार तो पाणिनिके व्याकरणसूत्र और वात्स्यायनके कामसूत्र भी सूत्र हैं, और पुण्यदन्त-भूतत्रलिभूत कर्मप्राप्त या पटुखडागम और उमास्वामिके तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथ सभी सूत्र कहे जाते हैं । किन्तु यदि जैन आगमानुसार सूत्रका विशेष अर्थ यहाँ अपेक्षित है तो उसकी एक परिभाषा हमें शिवकोटि आचार्यके भगवती आराधनामें मिलती है जहाँ कहा गया है कि—

सुत्त गणहरकहिय तदेव पत्तेयबुद्धकहिय च । सुदुक्खल्लिणा कहियं अमिण्णदसबुद्धिकहिय च ॥ ३४ ॥

इस गाथाकी टीका विजयोदयामें कहा है कि तीर्थंकरोंके कहे हुए अर्थको जो प्रथित करते हैं वे गणधर हैं, जिन्हें बिना परोपदेशके स्वयं ज्ञान उत्पन्न हो जाय, वे स्वयंबुद्ध हैं, समस्त श्रुतांगके धारक श्रुतकेवली हैं और जिन्होंने दशगुणोंका अध्ययन कर लिया है और विद्याओंसे चलायमान नहीं होते, वे अभिन्नदशपूर्वा हैं । इनमेंसे किसीके द्वारा भी प्रथित ग्रंथको सूत्र कहते हैं ।

अत्र यदि हम इस कसेटी पर पटुखडागम सिद्धान्तको या अन्य उपलब्ध ग्रंथोंको कसें तो ये ग्रंथ ‘सूत्र’ सिद्ध नहीं होते, क्योंकि, न तो इनके रचयिता तीर्थंकर हैं, न प्रत्येकबुद्ध, न श्रुत-केवली और न अभिन्नदशपूर्वा हैं । धरसेनाचार्यको तो केवल अग-पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्य-परम्परासे मिला था । वह उन्होंने प्रयथिच्छेदेके भयसे पुण्यदन्त और भूतत्रलि आचार्योंको सिखा दिया और उसके आधार पर कुछ प्रयथचना पुण्यदन्तने और कुछ भूतत्रलिने की, जो पटुखडागमके नामसे उपलब्ध है और जिस पर विक्रमकी नौवीं शताब्दिमें वीरसेनाचार्यने धवला टीका लिखी । इस प्रकार यदि हम आशाधरजी द्वारा उक्त सूत्रको सामान्य अर्थमें लेते हैं तो पटुखडागम सूत्रोंके अनुसार तत्त्वार्थधिगमसूत्र भी सूत्र हैं, सर्वार्थसिद्धि भी सूत्र ही ठहरता है, क्योंकि, इसमें भी पटुखडागमके सूत्रोंका सस्कृत रूपान्तर पाया जाता है, गोमटसार भी सूत्र है, क्योंकि, इसमें भी षट्खडागमके प्रमेयांशका संग्रह, अर्थात् सूत्ररूपसे समुद्धार किया गया है, इत्यादि । पर यदि हम सूत्रका अर्थ भगवती आराधनाकी परिभाषानुसार लें, तो ये कोई भी ग्रंथ सूत्र नहीं सिद्ध होते । इस स्थितिसे बचनेका कोई उपाय उपलब्ध नहीं है ।

(११)

पदचन्द्रिका प्रस्तावना

अब इन्हीं आशाधर्मात्मिक इसी साधारणार्थगुणके प्रथम अर्थायके १० वें श्लोक और उद्धृते द्वारा लिखी गई उसकी टीकाको देखिये—

बालाकलेयात्पतिराज्यपदमपेक्षामार्गं मणिरत्नं यः स्वप्नम् ।
मनोऽपि त्वया कृपितसु तद्वत् भाग्यदत्तो सांध्यवहारिकाणां ॥

अर्थात्, जिस प्रकार एक मोती जो कि क्षति-रहित है, उसमें भी यदि सलाईके द्वारा छिद्र कर सूत (डोरा) विरोधे योग्य मार्ग कर दिया जाय और उसे कालिगले मोतियोंकी माछामें पिरो दिया जाय तो यह क्षति-रहित मोती भी क्षतिगले मोतियोंके साथ वैसा ही, अर्थात् क्षति-रहित ही सुशोभित होता है । इसी प्रकार जो पुरुष रास्यदृष्टि नहीं है वह भी यदि सूर्यके बलनोंके द्वारा अरुहदेवके कंधे हुये सूर्यमें प्रवेश करेगा मार्ग प्राप्त कर ले, तो वह सम्यक्त्व-रहित होकर भी सम्यक्दृष्टियोंमें नयोंके जाननेवाले न्यवहारी लोगोंको सम्यक्दृष्टिसे समान ही सुशोभित होता है । साधारणार्थगुणकी टीका भी स्वयं आशाधर्मात्मिकी बनाई हुई है । उस श्लोककी टीकामें रूपका अर्थ परमात्मन और प्रवेशमार्गका अर्थ ' अन्तस्तरंगपरिच्छेदनीपाय ' किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आशाधर्मात्मिक ही मतानुसार अतितसम्पददृष्टिकी तो बात नया, सम्यक्त्व-रहित व्यक्ति-को भी परमात्मनके अन्तस्तरंग-ज्ञान करनेका पूर्ण अधिकार है । और भी साधारण-धर्मागुणके दूसरे अर्थायके २१ वें श्लोकमें आशाधर्मात्मिकी कहते हैं—

तत्पार्थ प्रतियम लोपेक्षामासुराण्यपेक्षतः तदीक्षामपदपरतजितगतमन्योऽन्तर्गुणतः ।
भर्तुं वैर्वैस्यार्थसमद्वयवीर्यवीर्यतास्त्रास्त्रतः क्वांते प्रतिगम्यमग्निपुण्यमन्यन्ते निहन्त्यकम्प्यी ॥

अर्थात्, तीर्थ याने धर्माचार्य य गुरुवाचार्यके कथनसे जीवादिक पदार्थोंको निश्चित करके, एक देशगतको धरके, दीक्षासे पूर्ण अपराजित गह्वामन्त्रका धारी और मिथ्या देवताओंका खागी तथा अंगों (बाह्यशरीर) च पूर्वी (चौदह पूर्वों) के अर्थसंप्रदाय अध्ययन करके अन्य शास्त्रोंका भी अधीता पर्यन्त अन्तर्गत प्रतिमायोगको धारण करनेवाला गुणवाला जीव पापोंको नष्ट करता है ।

इस पद्यमें आशाधर्मात्मिकी अर्थात् अनेकसे अनेकसे आठ संस्कारों, अर्थात् अतार, घृतलाभ, स्नानलाभ, गणपद, पूजाराध्य, पुण्यपत्र, दृढचर्या और उपशोभिताका संश्लेषण किया है, जिसमें उद्धृते अनेक ब्रह्मर्षि पूर्ण ही अर्थात् अपनी अनेक अस्यामों ही अनेक श्रुतियों अर्थात् ब्राह्म अंग और चौदह पूर्वोंके ' अर्थसंप्रदाय ' के अध्ययन कर लेनेका उपदेश दिया है । पूजाराध्य, पुण्यपत्र और दृढचर्या क्रियाओंका साहस स्वयं धीरेनस्वार्थान्ति शिष्य तथा जयभङ्गके उत्तरभागके रचयिता जिनसेन स्वाधीने गह्वरगुणों भी इस प्रकार बतलाया है—

पूजाराध्यात्मस्य कृतात् क्रियाऽप्य स्वायत्तः परा । पूजोत्तमासुरगणता गुरुकोऽन्तर्गततमम् ॥
स्तोत्रस्य पुण्यपत्रात्मस्य क्रिया पुण्यपत्रात्मिकी । दृढचर्या पूर्वविज्ञानमार्गं रासमन्त्राणि ॥
तत्पार्थ दृढचर्यात्मिका क्रिया स्वर्गमये भुवम् । शिक्षास्य गुरुको प्रथमपञ्चाशत्सर्गाश्च कबीजम् ॥

यहाँ भी जैन ब्रह्मर्षि पूर्ण ही गुरुत्वको अंगोंके अर्थसंप्रदाय तथा पूर्वोंकी विद्याओंको गुण लेनेका पूरा अधिकार दिया गया है । यद्यपि वेधाधीन धर्मसंप्रदायका आधार इस समय ब्रह्मर्षिसे सम्बन्ध नहीं

(१२)

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

है तथापि यह तो सुनिश्चित है कि पं. भेभागी या मीरा जिनचन्द्रभट्टात्मिके शिष्य थे और उद्धृते अपना यह ग्रन्थ पि. सं. १५४१ में विस्तार (पंजाब) नगरमें यमुनानदि, आशाधर और समस्तभद्रके प्रयोगोंके आधारसे बनाया था । भर्माधर्मात्मिकी साधारणका तो हमने नाम ही इसी समय प्रथम बार देना है, और यहाँ भी न तो उसके कर्ताका कोई नाम-धाम बतलाया गया और न उसकी किसी प्रति सुदृष्ट या इतिहासितका उल्लेख किया गया । अतएव हम अज्ञात कुल-शील भर्मात्मिकी हम परीक्षा न्या करे ' यह कोई प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ तो ज्ञात नहीं होता । ऐलकने एक वर्तमान रचयिता मुनि सुधर्मसागरजीके जिन हुए ' सुधर्मश्रमकाचार ' का मत भी उद्धृत किया है । किन्तु प्राचीन प्रमाणोंकी उद्धृष्टों उसे उना हमने उचित नहीं समझा । यह तो पूर्वोक्त प्रयोगोंके आधारसे ही आजका उनका मत है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुत्वको सिद्धान्त मंत्रोंका निरूपण करनेवाले मंत्रोंमें जिन रचनाओंका समय निश्चितः ज्ञात है वे १३ वीं शताब्दिसे पूर्वकी नहीं हैं । उनमें सिद्धान्तका अर्थ भी स्पष्ट नहीं किया गया और जहाँ किया गया है वहाँ पूर्वोक्त-विशेष पाया जाता है । कोई सचित गुणिक या तर्क भी उनमें नहीं पाया जाता । यह तो गुणत ही है कि जिन प्रयोगोंमें पूर्वोक्त-विशेष या नियत-भेदात्मिक पाया जाये वे प्रामाणिक आगम नहीं कहें जा सकते । इन्द्रादिके यास्योक्ता तो सीधे सिद्धान्त मंत्रोंके ही गानोंसे विशेष पाया जाता है, अतः वह प्रामाणिक किस प्रकार गिना जा सकता है ! यद्यपि तः प्रामाणिक जैन शास्त्रोंकी रचना और शासनके प्रवर्तनका चरमोक्त काठ तो उक्त समस्त मंत्रोंकी रचनासे पूर्णतः ही है । तब क्या कारण है कि इससे पूर्वके मंत्रोंमें हमें गुरुत्वके सिद्धान्त मंत्रोंके अध्ययनके सम्बन्धमें किसी नियमका उल्लेख नहीं मिलता ! श्रावकाचारका सबसे प्रमाण, प्राचीन, उत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रन्थ शागी समस्तभद्रश्रुत रत्नकण्डश्रावकाचार है, जिसे नादिराजसूरिने ' अभयसुताचर ' और प्रमाणन्दने ' अखिल सागरात्मिकी प्रकाशित कलेवाला निर्गुण सूर्य ' कहा है । इस मंत्रमें श्रावकोंके अध्ययनपर कोई नियमन नहीं उगाया गया, किन्तु इसके विपरीत साधारणज्ञान, ज्ञान और चारित्रिकी सम्पत्ति करना ही गुरुत्वका सत्ता धर्म कहा है, तथा ज्ञान-गिरिधरम्, प्रमाणानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगसम्बन्धी समस्त आगमका स्वरूप दिनाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि इनका अध्ययन गुरुत्वके लिये हितकारी है । द्रव्यानुयोगका अर्थ भी वहाँ टीकाकार प्रभाकरजीने ' द्रव्यानुयोग सिरान्तासूत्र ' किया है, जिससे स्पष्ट है कि गुरुत्वके सिद्धान्तार्थमंत्रोंमें उन्हें किसी प्रकारकी फेर-अभीष्ट नहीं है । इस श्रावकाचारमें उपवासक दिन गुरुत्वको ज्ञान-ध्यान परमाणु होनेका विशेषरूपसे उपदेश है, तथा उक्त आगमके लिये समय या आगमका ज्ञान अत्यन्त आग्रहक बतलाया है—मन्त्रं यदि जलिते, धेनो जला पुनं भवति ॥ ५, १० ' यदि तत्पर्व आगमं जलीये, भगवन्तो यदि भवति, तदा भुवं निब्रवेन भवो ज्ञाना स भवति ' (प्रमाणदत्त टीका)

१ तल्लप्यश्रावकाचार (मा. भ. मा.) १, ५. २ तल्लप्यश्रावकाचार (मा. भ. मा.) ४, १८.

(१३) षट्खडागमकी प्रस्तावना

धर्मपरीक्षादि ग्रन्थोंके विद्वान् कर्ता अभितगति आचार्य विक्रमकी ११ हवीं शताब्दिमें हुए हैं। इनका बनाया हुआ श्रावकाचार भी खूब सुविस्तृत ग्रंथ है। इस ग्रंथमें उन्होंने 'जिन' प्रवचनका अभिज्ञ 'होना उत्तम श्रावकका आवश्यक लक्षण माना है। यथा—

ऋजुभूतमनोबुद्धिर्युस्त्युपगोयत । जिनप्रवचनाभिज्ञ श्रावक सस्योचतम् ॥ १३, २

आगे चलकर उन्होंने गृहस्थोंको आगमका अध्ययन करना भी आवश्यक बतवाया है—

भक्तमाध्ययन कार्यं कृतकालादिशुद्धिना । वितयास्त्वचित्तेन बहुमानविधायिना ॥ १३, १०

गृहस्थोंको स्वाध्यायके उपदेशमें स्वाध्यायके पांच प्रकारोंमें वाचना, आत्मज्ञ और अनुप्रेक्षाका भी विधान है। यथा—

वाचना दृच्छनाऽऽज्ञायानुप्रेक्षा धर्मेवेदना । स्वाध्याय पचथा कृत्य पंचमीं गतिमिच्छता ॥ १३, ८१

गृहस्थोंको जहां तक हो सके स्वयं जिनभगवान्‌के वचनोंका पठन और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि, उनके विना वे कल्याणकल-विवेककी प्राप्ति, व आनन्द-अहितका त्याग नहीं कर सकते।

जानात्यक्त्य न जने न कृत्य जैनेऽथर्व चाक्यमनुद्धमानः ।

करोत्यक्त्य विजहति कृत्यं ततस्ततो गच्छति दुःखमुग्रम् ॥ १३, ८९

अनात्मनीय परिहृत्येकमा ग्रीहीकामा पुनरात्मनीयम् ।

पठन्ति शमलिजनानाथवाक्यं समस्तकल्याणविधायि सत ॥ १३, ९०

यथार्थतः वे मूढ़ हैं जो स्वयं जिनभगवान्‌के कहे हुए सूत्रोंको छोड़कर दूसरोंके वचनोंका आश्रय लेते हैं। जिनभगवान्‌के वाक्यके समान दूसरा अमृत नहीं है—

सुखाय ये सूत्रमपास्य जैनं मूढा श्रयते वचन परेषाम् ॥ १३, ९१

निधाय वाक्य जिनचन्द्रद्व पर न पीयूषमिहास्ते किंचित् ॥ १३, ९२ इत्यादि

यथा-कीर्तिश्रुत प्रबोधसार' भी श्रावकाचारका उत्तम ग्रंथ है। इसमें गृहस्थोंको उपदेश दिया गया है कि श्रुतके अभावमें तो समस्त शासनका नाश हो जायगा, अतः सब प्रयत्न करके श्रुतके सारका उद्धार करना चाहिये। श्रुतसे ही तत्त्वोंका परामर्श होता है और श्रुतसे ही शासन की वृद्धि होती है। तीर्थंकरोंके अभावमें शासन श्रुतके ही आधीन है, इत्यादि।

नश्यत्येव ध्रुव सर्वं भुताभावोऽत्र शासनम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुतसार समुद्धरेत् ॥

भुतात्तत्त्वपरामर्शं भुतात्समयवर्द्धनम् । तीर्थशाभावत सर्वं भुताधीन हि शासनम् ॥ ३, ६३-६४.

इस प्रकार प्राचीन श्रावकाचार-ग्रंथोंने गृहस्थोंके लिये न केवल सिद्धान्ताध्ययनका निषेध नहीं किया, किन्तु प्रवृत्तासे उसका उपदेश दिया है। हम ऊपर बतला ही आये हैं कि स्वयं भगवान् कुदकुदाचार्य अपने सूत्रपाण्डुमें जिनभगवान्‌के कहे हुए सूत्रके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग कहते हैं, और सूत्रार्थसे जो च्युत हुआ उसे वे मित्यादृष्टि समझते हैं।

सिद्धान्त किसे कहना चाहिये, इस बातकी पुष्टिमें केवल इन्द्रनिन्द और विबुधश्रीधरकृत

१ सखाराम नेमचंद ग्रथमाला, सोलापुर, १९२८-

२ जननकीर्ति जैनग्रथमाला, बम्बई, १९७९

(१४)

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

भुतावतारोंके ऐसे अवतरण दिये गये हैं, जिनमें कर्मप्राप्त और कर्मायप्राप्तको 'सिद्धान्त' कहा गया है, तथा अपव्रथा कवि पुण्यदन्तका वह अवतरण दिया है जहां उन्होंने धवल और जयधवलको सिद्धान्त कहा है। किन्तु इन ग्रंथोंके सिद्धान्त कहे जानेसे अन्य ग्रंथ सिद्धान्त नहीं रहे, यह कौनसे तर्कसे सिद्ध हुआ, यह समझमें नहीं आता। इस सिलसिलेमें गोम्मतसारको असिद्धान्त सिद्ध करनेके लिये गोम्मतसारकी टीकाके वे अश उद्धृत किये गये हैं जिनमें कहा गया है कि षट्खडागमका निरवशेष प्रमेयाश लेकर गोम्मतसारकी रचना की गई है। लेखकके अनुसार "इस कथनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गोम्मतसार सिद्धान्तग्रंथ नहीं है, किन्तु सिद्धान्तग्रंथोंसे सार लेकर बनाया गया है। सिद्धान्त ग्रंथ दो ही हैं, यह बात भी इन पक्तियोंसे सिद्ध हो जाती है।"

किन्तु उन पक्तियोंमें हमें ऐसा व्यवच्छेदक मात्र जरा भी दृष्टिगोचर नहीं होता। न तो लेखक सिद्धान्तकी कोई परिभाषा दे सके, जिससे केवल उक्त दो ही सिद्धान्त-ग्रंथ ठहर जायें और अन्य गोम्मतसारदि ग्रंथ सिद्धान्तश्रेणी के बाहर पड़ जायें। और न कोई ऐसा प्राचीन उल्लेख ही बता सके, जहां कहा गया हो कि सिद्धान्त-ग्रंथ केवल दो ही हैं, अन्य नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि सिद्धान्त, आगम, प्रवचन ये सब शब्द एक ही अर्थके पर्यायवाची शब्द हैं। स्वयं धवलकारने कहा है—'बागमो सिद्धतो पययणिमिदि एयदो' (सत्य १ पृ. २०)

अर्थात्, आगम, सिद्धान्त, प्रवचन, ये सब एक ही अर्थके बोधक शब्द हैं। लेखकने भी आगम और सिद्धान्तको एकार्थवाची स्वीकार किया है। यही नहीं, किन्तु गृहस्थोंको सिद्धान्ताध्ययनका निषेध करनेवाले पूर्वोक्त साधारण परस्पर-विरोधी कथन करनेवाले और युक्तिहीन वाक्योंको भी वे 'आगम' करके मानते हैं। किन्तु सिद्धान्तोंके निरवशेष प्रमेयाशका समुद्धार करनेवाले गोम्मतसारको सिद्धान्त माननेमें उन्हें ऐतराज है। षट्खडागम भी तो महाकर्मप्रकृतिपाण्डुका सधित्त समुद्धार है। फिर यह कैसे सिद्धान्त बना रहता है, और गोम्मतसार कैसे सिद्धान्त-बाह्य हो जाता है, यह युक्ति समझमें नहीं आती। यदि किसीके किन्हीं ग्रंथोंको सिद्धान्त कहनेसे ही अन्य दूसरे ग्रंथ असिद्धान्त हो जाते हों, तो गोम्मतसारदि ग्रंथोंके भी सिद्धान्तरूपसे उल्लिखित किये जानेके प्रमाण दिये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, राजमण्डकृत लाटीसहिता नामक श्रावकाचार ग्रंथमें उल्लेख है—

तदुक्त गोम्मतसारं सिद्धान्तं सिद्धसाधने । तत्स्य च ययान्मायात् प्रतीत्यै वचि सम्प्रतम् ॥ ५, १३४

इस प्रकारके उल्लेखोंसे क्या गोम्मतसार सिद्धान्त ग्रंथ सिद्ध नहीं होता ? और क्या उसके सिद्धान्त ग्रंथ सिद्ध हो जानेसे शेष ग्रंथ सिद्धान्तबाह्य सिद्ध हो जाते हैं ?

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो समस्त जैनधर्म और सिद्धान्तका ध्येय जिनोक्त वाक्योंको सर्वव्यापी बनानेका रहा है। स्वयं तीर्थंकरके समवसरणमें मनुष्यमात्र ही नहीं, पशु-पक्षी आदि तक सम्मिलित होते थे, जो सभी भगवान्‌के उपदेशोंको सुन समझ सकते थे। जब द्वादशराग वाणीकी आधारभूत दिग्बन्धि तकको सुननेका अधिकार समस्त प्राणियोंको है, तब उस वाणीके साराशको ग्रहित करने-

वाले कोई भी सिद्धान्त ग्रंथ श्रावकोंके लिये क्यों निषिद्ध नित्ये जायेंगे, यह समझमें नहीं आता । सम्यग्दर्शनको निर्मल बनानेके लिये सिद्धान्तका आश्रय अत्यंत वाञ्छनीय है । समस्त शक्तियोंका निवारण होकर निःशक्ति-अंगकी उपलब्धिका सिद्धान्ताध्ययनसे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं । जिन सैद्धान्तिक बातोंके तर्क-वितर्कमें विद्वानोंका और जिज्ञासुओंका न जाने कितना बहुमूल्य समय व्यय हुआ करता है और फिर भी वे ठीक निर्णय पर नहीं पहुच पाते, ऐसी अनेक गुत्थियां इन सिद्धान्त ग्रंथोंमें सुलझी हुई पड़ी हैं । उनसे अपने ज्ञानको निर्मल और विकसित बनानेका सीधा मार्ग गृहस्थ जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको क्यों न बताया जाय ? स्वयं धवलसिद्धान्तमें कहाँ भी ऐसा नियंत्रण नहीं लगाया गया कि ये ग्रंथ मुनियोंको ही पढ़ना चाहिये, गृहस्थोंको नहीं । बल्कि, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, जगह जगह हमें आचार्यका यही संकेत मिलता है कि उन्होंने मनुष्यमात्रका ख्याल रखकर व्यख्यान किया है । उन्होंने जगह जगह कहा है कि 'जिन भगवान् सर्वसत्त्वोपकारी होते हैं, और इसलिये सबकी समझदारीके लिये असुख बात असुख रीतिसे कही गई है । यदि सिद्धान्तोंको पढ़नेका नियेध है, तो वह अर्थ या विषय की दृष्टिसे है कि भाषाकी दृष्टिसे, यह भी विचार कर लेना चाहिए । धवलदि सिद्धान्तप्रयोगकी भाषा कही है जो कुटुम्बदाचार्यादि प्राकृत ग्रंथकारोंकी रचनाओंमें पाई जाती है, जिसके अनेक व्याकरण आदि भी हैं । अतएव भाषाकी दृष्टिसे नियंत्रण लगानेका कोई कारण नहीं दिखता । यदि विषयकी दृष्टिसे देखा जाय तो यहांकी तत्वचर्चा भी कही है जो हमें तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, गोमटसार आदि ग्रंथोंमें मिलती है । फिर उसी चर्चाको गृहस्थ इन ग्रंथोंमें पढ़ सकता है, लेकिन उन ग्रंथोंमें नहीं, यह कैसी बात है ? यदि सिद्धान्त-पठनका नियेध है तो ये सब ग्रंथ भी उस नियेध-कोटिमें आवेंगे । जब सिद्धान्ताध्ययनके निषेधवाले उपर्युक्त अत्यंत आधुनिक पुस्तकोंको सिद्धान्तके पर्यायवाची शब्द आगमसे उल्लिखित किया जा सकता है, तब एतदाल्यत हीन दलीलेके पोषण-निमित्त गोमटसार व सर्वार्थसिद्धि जैसे ग्रंथोंको सिद्धान्तवाक्य कह देना चरमसीमाका साहस और भारी अविनय है । यथार्थतः सर्वार्थसिद्धिमें तो कर्मप्राप्त्युक्तके ही सूत्रोंका अक्षरशः उसी क्रमसे सस्फुट रूपान्तर पाया जाता है, जैसा कि धवलने प्रस्तावित भागोंके सूत्रों और उनके नीचे टिप्पणोंमें दिये गये सर्वार्थसिद्धि के अवतरणोंमें सहज ही देख सकते हैं । राजवार्तिक आदि ग्रंथोंको धवलकाले स्वयं बड़े आदरसे अपने मतोंकी पुष्टिमें प्रस्तुत किया है । गोमटसार तो धवलदिना सारभूत ग्रंथ ही है, जिसकी गथाएँ की गथाएँ सीधी वहासे ली गई हैं । उसके सिद्धान्तरूपसे उल्लेख किये जानेका एक प्रमाण भी ऊपर दिया जा चुका है । ऐसी अवस्थामें इन पूज्य ग्रंथोंको 'सिद्धान्त नहीं है' ऐसा कहना बड़ा ही अनुचित है ।

भैं इस विषयको विशेष बढाना अनावश्यक समझता हूँ, क्योंकि, उक्त निषेधके पक्षमें न प्राचीन ग्रंथोंका बल है और न सामान्य युक्ति या तर्कता । जान पड़ता है, जिस प्रकार वैदिक धर्मके इतिहासमें एक समय वेदके अध्ययनका हिज्रोंके अतिरिक्त दूसरोंको निषेध किया गया था,

उसी प्रकार जैन समाजके गिरतीके समयमें किसी 'गुरु' ने अपने अज्ञानको छुपानेके लिये यह सार-हीन और जैन उदार-नीतिके विपरीत बात चला दी, जिसकी गतानुगतिक थोड़ीसी परम्परा चलकर आज तक सद्विज्ञानके प्रचारमें बाधा उत्पन्न कर रही है । सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र और चामुण्डरायजी के विषयमें जो कथा कही जाती है वह प्राचीन किसी भी ग्रंथमें नहीं पाई जाती और पण्डित निराधार निरी कल्पना प्रतीत होती है । ऐसी ही निराधार कल्पनाओंका यह परिणाम हुआ कि गत सैकड़ों वर्षोंमें इन उत्तमोत्तम सिद्धान्त प्रयोगोंका पठन-पाठन नहीं हुआ और उनका जैन साहित्यके निर्माणमें जब जितना उपयोग होना चाहिये था, नहीं हुआ । यही नहीं, इनकी एक मात्र अवशिष्ट प्रतिया भी धीरे धीरे विनष्ट होने लगी थीं । महाशयलकी प्रतिमेंसे कितने ही पत्र अप्राप्य हैं और कितने ही छिद्रित आदि हो जानेसे उनमें पाठ-स्खलन उत्पन्न हो गये हैं । यह जो लिखा है कि इन सिद्धान्त प्रयोगोंकी कापियाँ करा कराने जगह जगह विराजमान करा दी जानी चाहिए, सो ये कापियाँ कौन करेगा ? श्रावक ही तो ? या मुनिजनोंको दिया जायगा, सो भी अल्पवृद्धि नहीं, विद्वान् मुनियोंको ? यथार्थतः गृहस्थों द्वारा ही तो उनकी प्रतिलिपियाँ की गईं, और की जा सकती हैं, तथा गृहस्थों द्वारा ही उनका जो कुछ उद्धार समभव है, किया जा रहा है । इसमें न तो कोई दूषण है, न विगाड । अब तो जैन सिद्धान्तको समस्त ससारमें घोषित करनेका यही उपाय है । हाथ कर्मजनों आरसी क्या :

२. शंका-समाधान

पुस्तक १, पृष्ठ २३४

१. शंका—'तत्प्रभ्रमणमदरेणमुद्रमश्रुवात् अत्र भ्रूश्रुयादिदर्शानुपपत्तेः इति' । इस वाक्यका अर्थ मुझे स्पष्ट नहीं हो सका । उसमें पृथ्वीके परिभ्रमणका उल्लेखसा प्रतीत होता है । उसका अर्थ खोलकर समझानेकी कृपा कीजिये । (नेमीचन्द्रजी व नील, सहालपुर, पृ २४-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें शंका यह उठाई गई है कि द्रव्योद्भियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं होता, ऐसा क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि, सर्व जीव-प्रदेशोंके भ्रमण माननेपर उनके शरीरोंके साथ सम्बन्ध-विच्छेदका प्रसंग आता है ? इस शंकाका उत्तर आचार्य इस प्रकार देते हैं कि 'यदि द्रव्योद्भियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं माना जाये, तो अत्यन्त दुर्लभातिसे भ्रमण करते हुए जीवोंको भ्रमण करती हुई पृथ्वी आदिका ज्ञान नहीं हो सकता है ।' इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति शीघ्रतासे चक्कर लेता है तो उसे कुछ क्षणके लिये अपने आस पास चारों ओरका समस्त भ्रूमण्डल पृथिवी, पर्वत, वृक्ष, गृहादि घूमता हुआ दिखाई देता है । इसका कारण उपर्युक्त समाधानमें यह सूचित किया गया है, कि उस व्यक्तिके शीघ्रतासे चक्कर लेनेकी

अवस्थामें उसके जीवप्रदेश भी शरीरके भीतर ही भीतर शीघ्रतासे भ्रमण करते लगते हैं, जिसके कारण उसे पृथिवी आदि सब धूमते हुए दिखाई देने लगते हैं। यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीवप्रदेशोंको स्थिर माना जाय तो उक्त अवस्थामें भूमण्डलादिके घूमते हुए दिखनेका कोई कारण नहीं रह जाता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि 'आत्मप्रदेशोंके भ्रमण करते समय द्रव्येन्द्रियप्रमाण आत्मप्रदेशोंका भी भ्रमण स्वीकार कर लेना चाहिये'। आधुनिक मान्यतासम्बन्धी भूभ्रमणका तो दर्शन किसीको किसी अवस्थामें भी होता नहीं है। इसलिये यहां उस भूमिभ्रमणका कोई उल्लेख नहीं प्रतीत होता।

पुस्तक २, पृ. ४२३.

२ शंका—नकशा न. २ में प्राणके खानेमें सयोगिकेवलकी अपेक्षा २ प्राण भी होना चाहिये।

(तत्तत्त्वज्ञानी मुस्ताफा, सहालपुर पत्र, ३-४-४१)

समाधान—प्रस्तुत प्रकारमें अपर्याप्त जीवोंके सामान्य आलाप वतलाए गए हैं, जिनमें क्रमशः संक्षी पंचेन्द्रियसे लगाकर एकेन्द्रिय तकके समस्त जीवोंकी विवक्षा है, केवलिसमुद्रात जैसी विशेष अवस्थाओंकी यहा विनक्षा नहीं है। इसी कारण शक्ताकार द्वारा वतलाये गये २ प्राण न मूल टीकामें कहे गये, न अनुवादमें लिये गये, और न उक्त नकशोंमें दिखाये गये। किन्तु पृष्ठ नं. ४४४ नकशा नं. २५ पर जहा सयोगिकेवलकी ही आलाप वतलाये गये हैं, वहांपर साधारण अवस्थामें होनेवाले चार प्राणोंका और विशेष अवस्थामें होनेवाले उक्त दो प्राणोंका उल्लेख किया ही गया है।

पुस्तक २, पृ. ४३२-४३५

३ शंका—अर्थमें तथा नकशा न. १५, १५, १६ और १७ में वेदके आलापमें जो तीन वेद कहे हैं सो वहा ३ मात्र वेद कहना चाहिये।

(नानकचव्दी, खतौली, पत्र ता १०-११-४१)

समाधान—नकशा न. १४, १५, १६, १७ संवधी आलापोंमें तथा इससे आगे पछि सभी आलापोंमें मावेदकी ही विवक्षा की गई है। धवलकाने लेख्या आलापमें जैसे द्रव्येन्द्रिया और भावलेख्याका विभाग कर पृथक् पृथक् वर्णन किया है, वैसा वेद आलापमें द्रव्यवेद और भाववेदका विभाग कर मूलमें कहीं वर्णन नहीं किया है। वात. उक्त नकशोंमें भी मावेद लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि तात्पर्य यहा तथा अन्यत्र मावेदसे ही है।

पुस्तक २, पृ. ४३४

४ शंका—पृष्ठ ४३३ पर जो प्रमत्तसयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तका कथन है, उनके यत्र क्यों नहीं बनाए गए।

(नानकचव्दी, खतौली, पत्र ता १०-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत ग्रंथभागमें उन्हीं यंत्रोंको बनाया गया है, जिनका वर्णन धवला टीकामें पाया जाता है। प्रमत्तसयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तके आलापोंका धवला टीकामें कथन नहीं है, अतः उनके पृथक् यंत्र भी नहीं बनाये गये। तो भी विषयके प्रसंगवश विशेषार्थके अन्तर्गत सर्व साधारण

पाठमोंके परिज्ञानार्थ पृ. ४३३ पर उनका कथन किया गया है।

पुस्तक २, पृ. ४५१

५ शंका—पृ. ४५१, पत्र ३१, में प्राणमें अ, लिखा है सो नहीं होना चाहिये।

(नानकचव्दी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—जिन गुणस्थानों या जीवसमासोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप सम्भव हैं, उनके सामान्य आलाप कहते समय पाठकोंको भ्रम न हो, इसलिये पर्याप्त कालमें सम्भव प्राणों के आगे प लिखा गया है। तथा अपर्याप्त कालमें सम्भवित प्राणोंके आगे अ लिखा गया है। इसी नियमके अनुसार प्रस्तुत यंत्र न ३१ में नारक सामान्य मिय्याद्वयोंके आलाप प्रकट करते समय पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले १० प्राणोंके नीचे प और अपर्याप्त अवस्थामें सम्भव ७ प्राणोंके आगे अ लिखा गया है।

पुस्तक २, पृ. ६२३

६ शंका—पृ. ६२३ के विशेषार्थमें यह और होना चाहिए कि चौदहवें गुणस्थानमें पर्याप्तका उदय रहता है, लेकिन नोक्र्मवर्णना नहीं आती।

(तत्तत्त्वज्ञानी मुस्ताफा, सहालपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान—उक्त विशेषार्थमें जो वात सयोगिकेवलकी लिये कही गई है, वह अयोगिकेवलकी लिये भी उपयुक्त होती है। अतएव वहा उक्त भावार्थको लेनेमें कोई आपत्ति नहीं।

पुस्तक २, पृ. ६३८

७ शंका—यंत्र न. २५३ के प्राणके खानेमें ३, २ भी होना चाहिए, क्योंकि, योगके खानेमें ६ योग लिखे हैं।

(तत्तत्त्वज्ञानी मुस्ताफा, सहालपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान—योगके खानेमें ६ योग लिखे जानेसे ३ और २ प्राण और भी कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होना स्वाभाविक ही है। किन्तु, यहांपर ६ योगोंका उल्लेख विवक्षाभेदसे ही किया गया है, जैसा कि मूलके 'अथवा तीन योग' इस कथन से स्पष्ट है, और जिसका कि अभिप्राय वहाँ पर विशेषार्थमें स्पष्ट कर दिया गया है (देखो पृ. ६३८)। इसी कारण प्राणोंके खानेमें ३ और २ प्राणोंका उल्लेख नहीं किया गया है।

पुस्तक २, पृ. ६४८

८ शंका—पृ. ६४८ पर काययोगी अप्रमत्तसयत जीवोंके आलापमें वेद लिखा है सो यहा भाववेद होना चाहिए।

(नानकचव्दी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर शक्ता नं. ३ में दे दिया गया है।

पुस्तक २, पृ. ६५४, ६६०

९ शंका—पृष्ठ ६५४ पर समाधान जो पहला किया गया है, उसमें लिखा है कि 'अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्रातगत सयोगिकेवलकीका पहलके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं

रहता है। यही पृष्ठ ६६० पर समाधान करते हुए लिखा है। यह किस अपेक्षासे कहा है? क्या समुद्रातमे पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है? (नानकवली, खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—‘अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्रातगत सयोगनेत्रलीका पहलके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता,’ इसका अभिप्राय यह लेना चाहिये कि उक्त अवस्थामें जो आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर फैल गए हैं, उनका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेपर भी यदि शरीरके साथ सम्बन्ध माना जायगा, तो जिस परिमाणमें जीव-प्रदेश फैले हैं, उतने परिमाणवाला ही औदारिकशरीरको होना पड़ेगा। किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं, अतः यह कहा गया है कि कपाटसमुद्रातगत सयोगनेत्रलीका पहलके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता। किन्तु जो आत्मप्रदेश उस समय शरीरके भीतर हैं, उनसे तो सम्बन्ध बना ही रहता है। इसी प्रकार किसी भी समुद्रातनी दशामें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध नहीं छूटता है। समुद्रातके लक्षणमें स्पष्ट ही कहा गया है कि मूलशरीरको न छोड़कर जबिके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्रात कहते हैं।

पुस्तक २, पृ. ८०८

१० शंका—पृ. ८०८ पक्ति १२ में सात प्राणके आगे दो प्राण और होना चाहिए, क्योंकि, सयोगीने अपर्याप्त अवस्थामें दो प्राण होते हैं। (नानकवली मुस्तार, सहालपुर, पत्र ३४-४-१)

यत्र नं. ७७७ में प्राणमें ४-१ प्राण और लिखना चाहिए

(नानकवली, खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर वही है जो कि शंका न. २ में दिया गया है।

पुस्तक २, पृ. २३

११ शंका—२^अ की वर्गशालाका अ होगी यह शुद्ध ज्ञात नहीं होता, क्योंकि २^अ = २५६ होता है, और २५६ की वर्गशालाका ३ है, ४ नहीं?

(नेमीचवली वकील, सहालपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—२^अ का अर्थ है २ का २ के प्रमाण वर्ग। अत्र यदि हम अ को ४ के बराबर मान लें तो—२^अ = २^अ = २^अ = २^अ × २^अ = ६५५३६, जिसकी वर्ग-शाला ४ होगी। शंकाकाले मूल यह की है कि २^अ = (२^अ) मान लिया है। किन्तु ऐसा नहीं है। प्रचलित पद्धतिके अनुसार २^अ = २^(अ) होता है। अतएव अनुवादमें उदाहरण-रूपसे जो बात कही गई है उसमें कोई दोष नहीं है।

पुस्तक २, पृ. ३०

१२ शंका—यहां सोलह राशिगत अल्पबहुत्व निरूपणमें जो अभव्योंसे सिद्धकालका गुणकार छह महिनोंके अष्टम भागमें एक मिला देनेपर उत्पन्न हुई समय-सह्यासे भाजित अतीत कालका अनन्तभा भाग कहा है वह अशुद्ध प्रतीत होता है। मेरी राय में अतीत कालको छह माह आठ समयसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको ६०८ से गुणा करनेपर उत्पन्न हुई राशिका अनन्तभा भाग गुणकार होना चाहिये? (नेमीचवली वकील, सहालपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—उक्त शंकामें शंकाकारकी दृष्टि उस प्रचलित मान्यता पर है जिसके अनुसार प्रत्येक छह माह आठ समयमें ६०८ जीव मौक्ष जाते हैं। किन्तु ध्वलामें उक्त स्थलपर दिये गये अल्पबहुत्वमें उक्त पाठ द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती, जत्र तक कि उस पाठको विशेषरूपसे परिवर्तित न किया जाय। उक्त स्थलका अर्थ करते समय हमारी भी दृष्टि इस बातपर थी। किन्तु उपलब्ध पाठ वैसा होने तथा मूडविद्वित्रीनी ताडपत्रीय प्रतियोगेके मिलानसे भी उस पाठमें कोई परिवर्तन प्राप्त न होनेसे हम उस पाठको बदलने या मूलको छोड़कर अर्थ करने में असमर्थ रहे। यथार्थतः उक्त पाठसे आगे जो सिद्धांका गुणकार हमने ‘रूपशतपृथक्त्व’ ग्रहण कर लिया था वह उपर्युक्त दृष्टिसे ही केवल एक प्रतिभे आधार पर किया था। किन्तु दो प्रतियोगेमें उसमें रयानपर ‘रूपदर्श-पृथक्त्व’ पाठ था, और मूडविद्वित्रीके प्रति-मिलानसे भी इसी पाठकी पुष्टि हुई है। अतः इससे वह सदर्भ और भी शंकास्पद और विचाराणीय हो गया है। अतएव जत्र तत्र कोई स्पष्ट प्रमाण इस सम्बन्धका न मिल जावे तत्र तक उस सम्बन्धमें निर्णयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता।

पुस्तक २, पृ. ३५

१३ शंका—“रज्जुके अर्धच्छेद उत्तरोत्तर एक एक द्वीप और एक एक समुद्रमें पड़ते हैं, किन्तु लवणसमुद्रमें दो अर्धच्छेद पड़ेंगे।” यह बात समझमें नहीं आती। जत्र घातकी-खडमें एक अर्धच्छेद पड़ेगा, और लवणसमुद्र उसका आधा है, तत्र उसमें दो अर्धच्छेद कैसे पड़ जायगे? (नेमीचवली वकील, सहालपुर, पत्र २३-११-४१)

समाधान—उपर्युक्त शंकाका समाधान रज्जुके अर्धच्छेदोंकी व्यवस्थाको स्पष्टतः समझ लेनेसे सहज ही हो जाता है। समस्त तिर्यग्लोक एक रज्जुप्रमाण है। अतः रज्जुको प्रथम बार आधा करनेसे प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्यमें भरपर पड़ा। दूसरी बार जब हम रज्जुको आधा करेंगे तो यह दूसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमणद्वीपकी परिधिसे कुछ आगे चलकर स्वयंभूरमण-समुद्रमें पड़ेगा, क्योंकि, उक्त समुद्रका विस्तार भीतरके समस्त द्वीप-समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे कुछ अधिक है। इसी प्रकार रज्जुको तीसरी बार आधा करनेपर तीसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमण-द्वीपमें उसकी प्रारम्भिक सीमासे कुछ और विशेष आगे चलकर पड़ेगा। इस प्रकार रज्जु उत्तरोत्तर छोटा होता जायेगा और उत्तरोत्तर अर्धच्छेद प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें पड़ते जायेंगे, किन्तु उनका स्थान

यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उक्त ३४३ घनराजुप्रमाण केवल असंलग्न प्रदेशात्मक अत्यन्त परिमित क्षेत्रमें अनन्त जीव व अनन्त पुद्गल परमाणु कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जीवों और पुद्गल-परमाणुओंमें अप्रतिघातरूपसे अन्योन्याध्याहन शक्ति विद्यमान है जिसके कारण अणुके असंख्यातवें भागमें भी अनन्तानन्त जीवोंका और जीवके भी प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकादि पुद्गल परमाणुओंका अस्तित्व बन जाता है ।

औद्य अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंका क्षेत्र ४ मूत्रोंमें बतला दिया गया है कि भिर्याष्टयी जीन सर्वलोकमें व अयोगिकनली और शेष सासादनसम्बन्धित आदि समस्त बाह्य गुणस्थानोंमें प्रत्येक गुणस्थाननर्ती जीन लोकमें असंख्यातवें भागमें, और सयोगिकनली लोकमें असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहु भागोंमें, तथा सर्वलोकमें रहते हैं । धनलान्कारने इन सूत्र-वचनोंको एक और जीवोंकी नाना अस्याओंका विचार करके, और दूसरी ओर सूक्ष्मतर क्षेत्रमानके लिये लोकोंको पांच विभागोंमें बांटकर बड़े विस्तारसे समझाया है ।

क्षेत्रागाहनकी अपेक्षासे जीवोंकी तान अस्याए हो सकती है (१) स्वस्थान (२) समुद्रात और (३) उपपाद । स्वस्थान भी दो प्रकारका है—अनेक स्यायी निवासके क्षेत्रको स्वस्थान-स्वस्थान, और अपने विहारके क्षेत्रको विहार-स्वस्थान कहते हैं । जीनके प्रदेशोंका उनके स्वामाधिक सगटनसे अधिक फैलना समुद्रात कहलाता है । वेदना और पीढ़ाके कारण जीव-प्रदेशोंके फैलनेको वेदनासमुद्रात कहते हैं । क्रोधादि कर्मायोंके कारण जीन-प्रदेशोंके विस्तारको कर्मायसमुद्रात कहते हैं । इसी प्रकार अपने स्वाभाविक शरीरके आकारको छोड़कर अन्य शरीराकार परिवर्तनको वैक्रीयिकसमुद्रात, मर्त्यके समय अपने पूर्ण शरीरको न छोड़कर नवीन उत्पत्तिस्थान तक जीव-प्रदेशोंके विस्तारको मारणान्तिक, तैजसशरीरकी अप्रशस्त व प्रशस्त भित्तियोंको तैजसमुद्रात, ऋद्धि-प्राप्त मुनियोंके शान्त-निवारणार्थ जीवप्रदेशोंके प्रस्तारको आहारकसमुद्रात, और सर्वज्ञताप्राप्त केवलीके प्रदेशोंका शेष कर्मभय-निमित्त दंडाकार, कपाटाकार, प्रतराकार, व लेम्बपूणरूप प्रस्तारको केनलिसमुद्रात कहते हैं—जीवता अपनी पूर्व पर्यायको छोड़कर तोरके समान सीधे, व एक, दो या तीन मोड़ें लेकर अन्य पर्यायके ग्रहणक्षेत्र तक गमन करनेको उपपाद कहते हैं । इन्हीं दशा-वर्थात् (१) स्वस्थानस्वस्थान (२) विहारस्वस्थान (३) वेदनासमुद्रात (४) कर्मायसमुद्रात (५) वैक्रीयिकसमुद्रात (६) मारणान्तिकसमुद्रात (७) तैजससमुद्रात (८) आहारकसमुद्रात (९) केवलि-समुद्रात और (१०) उपपाद अवस्थाओंकी अपेक्षासे यथासम्भव जीवके भिन्न भिन्न गुणस्थानों और मार्गास्थानोंका क्षेत्रप्रमाण इस क्षेत्ररूपणोंमें बतलाया गया है ।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर क्षेत्रमानके लिये धनलान्कारने पांच प्रकारसे लोकका ग्रहण किया है (१) समस्त लोक या सामान्य लोक जो ७ राजुका घनप्रमाण है; (२) अधोलोक जो १९६ घनराजुप्रमाण है, (३) ऊर्ध्वलोक जो १४७ घनराजुप्रमाण है (४) तिर्यकलोक या मध्यलोक

३. विषय-परिचय

जीवस्थानकी पूर्व प्रकाशित दो प्ररूपणार्थों—सत्प्ररूपण और द्रव्यप्रमाणानुगममें क्रमशः जीवता स्वरूप, गुणस्थान व मार्गणास्थानानुसार भेद, तथा प्रत्येक गुणस्थान व मार्गणास्थानसंबन्धी जीवता प्रमाण व सख्या बतलाई जा चुकी है । अब प्रस्तुत भागमें जीवस्थानसन्धी आगेकी तीन प्ररूपणए प्रकाशित की जा रही हैं—क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और कालानुगम ।

१ क्षेत्रानुगम

क्षेत्रानुगममें जीवोंके निवास व विहारादिसंबन्धी क्षेत्रता परिमाण बतलाया गया है । इस सबधमें प्रथम प्रश्न यह उठता है कि यह क्षेत्र है कहां ? इसके उत्तरमें अनन्त आन्ताशने दो विभाग किये गये हैं । एक लोकान्ताश और दूसरा अलोकान्ताश । लोकान्ताश समस्त आकाशके मध्यमें स्थित है, परिमित है और जीवादि पांच द्रव्योंका आधार है । उसके चारों तरफ शेष समस्त अनन्त आकाश अलोकान्ताश है । उक्त लोकान्ताशके स्वरूप और प्रमाणके सबधमें दो मत हैं । एक मतके अनुसार यह लोकान्ताश अपने तलभागमें सातराजु व्यासवाला गोलाकार है । पुनः ऊपरको क्रमसे घटता हुआ अपनी आधी उचाई अर्थात् सात राजुपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है । वहसि पुनः ऊपरको क्रमसे बढ़ता हुआ साढ़े तीन राजु ऊपर जाकर पांच राजु व्यासप्रमाण हो जाता है और वहासे पुनः साढ़े तीन राजु घटता हुआ अपने सर्वोपरि उच्च भागपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है । इस मतके अनुसार लोकता आकार ठीक अधोभागमें, वेत्रासन, मध्यमें झुल्लरी और ऊर्ध्वभागमें मृदगके समान हो जाता है । किन्तु धनलान्कारने इस मतको स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि, ऐसे लोकमें जो प्रमाणलोकका घनफल जगश्रेणी अर्थात् सात राजुके घनप्रमाण कहा है, वह प्राप्त नहीं होता । यह बात स्पष्टतः दिखलानेके लिये उन्होंने अपने समयके गणितज्ञानकी विविध और अश्रुतपूर्व प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रकारके लोकके अधोभाग व उर्ध्वभागका घनफल निकाला है जो कुल $१६४ \times ३६६ = ६०६३६$ घनराजु होनेसे श्रेणीके घन अर्थात् ३४३ घनराजुसे बहुत हीन रह जाता है । इसलिये उन्होंने लोकता आकार पूर्व-पश्चिम दो दिशाओंमें तो ऊपरकी ओर पूर्वोक्त क्रमसे घटता बढ़ता हुआ, किन्तु उत्तर-दक्षिण दो दिशाओंमें सर्वत्र सात राजु ही माना है । इस प्रकार यह लोक गोलाकार न होकर समचतुराकार हो जाता है और दो दिशाओंसे उसका आकार वेत्रासन, झुल्लरी और मृदगके सदृश भी दिखाई दे जाता है । ऐसे लोकता प्रमाण ठीक श्रेणीका घन $७ = ७ \times ७ \times ७ = ३४३$ घनराजु हो जाता है । यही लोक जीवादि पाँचों द्रव्योंका क्षेत्र है ।

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

(२५)

जो १ राजुके प्रतर या वर्गप्रमाण है, और (५) मनुष्यलोक जो अढाई द्वीपप्रमाण, अर्थात् ४५ लाख व्यासवाला वृत्तलकार क्षेत्र है। किसी भी एक प्रकारके जीवोंका क्षेत्रमान वतलनेके लिये ध्वलाकारने उस उस जातिविशेषवाली प्रधान राशिजो लेऊ उसने क्षेत्रवागाहनका विचार किया है। उदाहरणार्थ—विहारवत्स्थानवाले भिम्याद्यष्टियोंके क्षेत्रका विचार करते समय उन्होंने त्रस-पर्याप्तराशिजो ही विहार करनेकी योग्यता रखनेवाली मानकर पहले यह निर्दिष्ट कर दिया कि किसी भी समयमें इस राशिका सल्यातवा भाग ही विहार करेगा। फिर उन्होंने इस विहार करनेवाली राशिमें स्वयंप्रमनागेन्द्र पर्वतके परभागवर्ती बड़े बड़े त्रस जीवोंका विचार किया, जिनमें द्वीन्द्रिय जीव शब बारह योजनाका, त्रीन्द्रिय गोप्ही तीन कोसकी, चतुरिन्द्रिय भ्रमर एक योजनाका और पंचेन्द्रिय मच्छ एक हजार योजना होता है। अतएव ऐसे प्रत्येक जीवका उन्होंने क्षेत्रमितिजके सूत्र व विधान देकर प्रमाणागुलोंमें घनफल निकाला, और फिर इस उत्कृष्ट अवगाहनामें जघन्य अवगाहनाका अगुलका असल्यातवा भाग जोड़कर उसका आधा किया जिससे उस राशिजो एक जीवकी मध्यम अर्थात् औसत अवगाहना सल्यात घनागुल आगई। समस्त त्रस पर्याप्तराशि प्रतरागुलके सल्यातवें भागसे माजित जगप्रतरप्रमाण है और इसका केवल सल्यातवा भाग विहार करता है। अत इस सल्यातवें भागजो पूर्वोक्त घनफलसे गुणा करने पर विहारवत्स्थान भिम्याद्यष्टिराशिका क्षेत्र सल्यात सूच्यगुलगुणित जगप्रतरप्रमाण होता है, जो लोकका असल्यातवा भाग, और उसी प्रकार अथेलोक और ऊर्ध्वलोकका भी असल्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका सल्यातवा भाग और मनुष्यलोक या अढाईद्वीपसे असल्यात गुणा होगा।

२ स्पर्शनानुगम

स्पर्शनप्ररूपणमें यह वतलाया गया है कि भिन्न भिन्न गुणस्थानवाले जीव, तथा गति आदि भिन्न भिन्न मार्गास्थानवाले जीव तीनों कालोंमें पूर्वोक्त दश अवस्थाओंद्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श कर पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र और स्पर्शन प्ररूपणओंमें विशेषता इतनी ही है कि क्षेत्रप्ररूपण तो केवल वर्तमानकालकी ही अपेक्षा रखती है, किन्तु स्पर्शनप्ररूपणमें अतीत और वनागतकालका भी, अर्थात् तीनों कालोंका क्षेत्रमान ग्रहण किया जाता है।

उदाहरणार्थ—क्षेत्रप्ररूपणमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र लोकका असल्यातवा भाग वताया गया है। यह क्षेत्र वर्तमानका उसे ही समन्वय रखता है, अर्थात् वर्तमानमें इस समय स्वस्थानादि यथासंभव पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव लोकके असल्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके विद्यमान हैं। यही बात स्पर्शनप्ररूपणमें वर्तमानकालिक स्पर्शनको वताते समय कही है। उसके पश्चात् दूसरे सूत्रमें अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र वतलाया गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह (४४) और बारह बटे चौदह (१३) भाग स्पर्श किए हैं। इसका अभिप्राय जान लेना आवश्यक है। तीनों तैतालीस घनराजुपरिमित इस लोकाकाशके ठीक मध्य भागमें वृक्षमें सारके समान एक राजु लम्बी चौड़ी और

(२६)

विषय-परिचय

चौदह राजु ऊंची लोकनाली अवस्थित है। इसे त्रसनाली भी कहते हैं, क्योंकि, त्रसजीवोंका सचार इसके ही भीतर होता है। केवल कुछ अपवाद हैं, जिनमें कि इसके भी बाहर त्रस-जीवोंका पाया जाना संभव है। इस त्रसनालीके एक एक राजु लम्बे, चौड़े और मोटे भाग बनाए जावें तो चौदह भाग होते हैं। उनमेंसे जो जीव जितने घनराजुप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करता है, उसका उतना ही स्पर्शनक्षेत्र माना जाता है। जैसे प्रकृतिमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र आठ बटे (१४) या बारह बटे चौदह (१३) भाग वताया गया है। इनमेंसे विहारवत्स्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने उक्त त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागोंको स्पर्श किया है, अर्थात् आठ घनराजुप्रमाण त्रसनालीके भीतर ऐसा एक भी प्रदेश नहीं है कि जिसे अतीतकालमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (देव, मनुष्य, तिर्यच और नारकी, इन सभीने मिलकर) स्पर्श न किया हो। यह आठ घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके भीतर जहां कहीं नहीं लेना चाहिए, किन्तु नीचे तीसरी वाक्या पृथिवीसे लेऊ ऊपर सोलहवें अच्युतकल्प तक लेना चाहिये। इसका कारण यह है कि भवनवासी देव स्वत नीचे तीसरी पृथिवी तक विहार करते हैं, और ऊपर सौर्यविमानके गिखरखजदड तक। किन्तु उपरिम देवोंके प्रयोगसे ऊपर अच्युतकल्प तक भी विहार कर सकते हैं [देवो. पृ. २२९]। उनके इतने क्षेत्रमें विहार करनेके कारण उक्त क्षेत्रका मध्यवर्ती एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं बचा है कि जिसे अतीत कालमें उक्त गुणस्थानवर्ती देवोंने स्पर्श न किया हो। इस प्रकार इस स्पर्श किये गये क्षेत्रको लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं। मारणान्तिजसमुद्रातकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्श किये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि छठी पृथिवीके सासादनगुणस्थानवर्ती नारकी मध्यलोक तक मारणान्तिजसमुद्रात कर सकते हैं, और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनवासी आदि देव आठवीं पृथिवीके ऊपर त्रियमान पृथिवीकायिक जीवोंमें मारणान्तिजसमुद्रात कर सकते हैं, या करते हैं। इस प्रकार मेरुतलसे छठी पृथिवी तकके ५ राजु, और ऊपर लोकान्त तकके ७ राजु, दोनों मिलकर १२ राजु हो जाते हैं। यही बारह घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके बारह बटे चौदह (१३) भाग, अर्थात् त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा जाता है।

इस उक्त प्रकारसे वताए गए स्पर्शनक्षेत्रको यथासंभव जान लेना चाहिए। ध्यान रखनेकी बात केवल इतनी ही है कि वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र तो लोकके असल्यातवें भागप्रमाण ही होता है, किन्तु अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे यथासंभव १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ तक होता है। तथा भिम्याद्यष्टि जीवोंका मारणान्तिज, वेदना, कषायसमुद्रात आदिकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शनक्षेत्र होता है, क्योंकि, सारे लोकमें सर्वत्र ही एकोन्द्रिय जीव ठसाठस भरे हुए हैं और गमनागमन कर रहे हैं, अतएव उनके द्वारा समस्त लोकाकाश वर्तमानमें भी स्पर्श हो रहा है और अतीतकालमें भी स्पर्श किया जा चुका है।

इन एकेन्द्रिय मियाद्याधि जीवोंके अतिरिक्त सयोगिज्वली भगवान् भी प्रतःसमुद्रातके समय लोकके असंख्यात बहु भागोंको और लोकपूर्णसमुद्रातके समय सर्व लोकाकाशको सरी करते हैं। तथा उपपाद और मारणान्तिकसमुद्रातवाले त्रसजीवोंका भी त्रसनालीके बाहर अस्तित्व पाया जाता है। वह इस प्रकारसे कि लोकके अन्तिम वातवलयमें स्थित कोई जीव मरण करके विभ्रहगतिद्वारा त्रसनालीके अन्तःस्थित त्रसपर्यायमें उत्पन्न होनेवाला है वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोडा होता है, उस समय त्रसपर्यायको धारण करने पर भी वह त्रसनालीके बाहर है, अतएव उपपादकी अपेक्षा त्रसजीव त्रसनालीके बाहर रहता है। इसी प्रकार त्रसनालीमें स्थित किसी ऐसे त्रसजीवने जिसे कि त्रसनालीके बाहर मरकर उत्पन्न होना है, मारणान्तिकसमुद्रातके द्वारा त्रसनालीके बाहरके आकाश-भेदशोका स्पर्श किया, तो उस समय भी त्रसजीवका अस्तित्व त्रसनालीके बाहर पाया जाता है, (देखो पृ. २१२)। उक्त तीन अवस्थाओंको छोड़कर शेष त्रसजीव त्रसनालीके बाहर कभी नहीं रहते हैं।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणस्थानोंमें उक्त स्वस्थानादि दश पदोंको प्राप्त जीवोंका स्पर्शक्षेत्र इस स्पर्शनप्ररूपणमें बतलाया गया है।

स्पर्शनप्ररूपणकी कुछ विशेष बातें

सासादनसम्यदधि जीवोंका क्षेत्र निकालते हुए प्रसंगवश असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके ऊपर आकाशमें स्थित समस्त चद्रोंके प्रमाणको भी गणितशास्त्रके अनेक अदृष्टपूर्व कारणसूत्रोंके द्वारा निकाला गया है और साथ ही यह बतलाया गया है कि एक चद्रके परिवारमें एक सूर्य, अठारसी ग्रह, अष्टाईस नक्षत्र और छयासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोडकोडी (६६९७५०००००००००००००००) तोरे होते हैं। इस चारों प्रकारके परिवारके प्रमाणसे चन्द्रबिम्बोंकी सख्याको गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिष्क देवोंका प्रमाण निकल आता है।

इसी बीचमें ध्वलकारने ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिके बलसे यह सिद्ध किया है कि चूकि-स्वयभूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद पाये जाते हैं, इसलिए स्वयभूरमणसमुद्रके परभागमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके व्यास-रुद्ध योजनोंसे संख्यात हजार गुने योजन आगे जाकर तिर्यलोककी समाप्ति होती है, अर्थात् स्वयभूरमणसमुद्रकी बाह्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है, वहा भी राजुके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहापर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं। (देखो पृ १५०-१६०)

इसी प्रकरणमें उन्होंने अपनी उक्त बातकी पुष्टि करते हुए जो उदाहरण दिए हैं, उनसे एकदम तीन ऐसी बातोंपर प्रकाश पड़ता है, जिनसे पता चलता है कि वे बातें वीरसेनाचार्यके पूर्ववर्ती दिगम्बर साहित्यमें प्रतिष्ठित नहीं थीं और सर्व प्रथम इन्होंने उनकी प्रतिष्ठा की है।

वे नवीन प्रतिष्ठित तीनों बातें इस प्रकार हैं—

(१) 'संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है' इस प्रचलित और सर्वमान्य

मान्यता को भी 'एवेहि पल्लोवममवहिरदि बल्लोमुहूर्तेण कालेण' (द्रव्यप्र. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए अन्तर् शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है।

(२) दूसरी बात आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशकी है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिये इसी भागके पृ. ११ से २२ तकका अंश देखिए। उससे ज्ञात होता है कि ध्वलकारके सामने विद्यमान करणायुगसम्बन्धी साहित्यमें लोकके आयतचतुरस्राकार होनेका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतःसमुद्रातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कहां गईं दो गाथाओंके (देखो इसी भागके पृ. २०-२१) आधारपर यही सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयतचतुरकोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४^{३२६} घनराजु प्रमाण मृदगके आकार। साथ ही उनका दावा है कि यदि ऐसा न माना जायगा तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) तीसरी बात स्वयभूरमणसमुद्रके परभागमें पृथिवीके अस्तित्व सिद्ध करनेकी है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। (देखो पृ १५५-१५८ तक)

इस प्रकार बड़े जोरदार शब्दोंमें उक्त तीनों बातोंका समर्थन करनेके पश्चात् भी उनकी निष्पक्षता दर्शनीय है। वे लिखते हैं— 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आप्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परमगुरुओंकी परम्परासे आए हुए उपदेशको युक्तिके, बलसे अयार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्य जीवोंके अनुरोधसे तथा अन्युत्पन्न शिष्यजनोंके अविसंवादी होनेका नियम नहीं है। अत एव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परिखाग न करके हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अन्युत्पन्न शिष्यजनोंके व्युत्पादनके लिये यह दिशा भी दिखाना चाहिए। (देखो पृ १५७-१५८)

तिर्थचोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रका निकालते हुए द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल अनेक कारण-सूत्रोंद्वारा पृथक् पृथक् और संमिश्रित निकालनेकी प्रक्रियाएँ दी गई हैं, और साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि इस मध्यलोकमें कितना भाग समुद्रसे रुका हुआ है। (देखो पृ ११४-२०३)

कायमार्गणोंमें बाहर पृथिवीवैयक जीवोंके स्पर्शन-क्षेत्रको बतलाते हुए रत्नप्रभादि सातों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाईका भी प्रमाण बतलाया गया है।

३. कालानुगम

उक्त प्ररूपणओंके समान कालप्ररूपणोंमें भी ओष और आदेशकी अपेक्षा कालका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणस्थानमें कमसे कम कितने काल तक रहता है, और अधिकसे अधिक कितने काल रहता है।

उदाहरणार्थ—मियाद्याधि जीव मियाद्यगुणस्थानमें कितने काल तक रहते हैं? इस प्रश्नके

गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके क्षेत्र, स्पर्शन और कालका प्रमाण

(पृ. ४ प्रस्ता. पृ. २९ अ)

गुणस्थान	क्षेत्र	स्पर्शन		नानाजीवोंकी अपेक्षा	काल		एकजीवकी अपेक्षा
		वर्तमानकालिक	अतीत अनागतकालिक		जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल	
१ मियादधि	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वकाल	(सा सां मि) अन्तर्मुहूर्त	उत्कृष्टकाल	देशोन अर्धपुल्लपरिवर्तन
२ सासादनसम्पदधि	लोकका असल्यातवां माग	लोकका असल्यातवां माग	देशोन ६ और १३ राज	जघन्य उत्कृष्ट	पुस्तमय	छद् आवली	
३ सम्यग्मियादधि	"	"	" ६ राज	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	
४ असयतसम्पदधि	"	"	" "	सर्वकाल	"	साधिक तेतीस सागोपम	
५ सयतासयत	"	"	" ६ "	"	"	देशोन पूर्वकोटी वर्ष	
६ प्रमत्तसयत	"	"	लोकका असल्यातवां माग	"	पुस्तमय	अन्तर्मुहूर्त	
७ अमत्तसयत	"	"	"	"	"	"	
८ अर्धवर्कण	"	"	"	जघन्य उत्कृष्ट	पुस्तमय अन्तर्मुहूर्त	"	
९ अनिवृत्तिकरण	"	"	"	{ उप० पुस्तमय अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	"	
१० सुससात्पराय	"	"	"	{ क्षपक अन्तर्मुहूर्त	पुस्तमय	"	
११ उपशान्तकषाय	"	"	"	{ क्षपक अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	"	
१२ क्षीणमोह	"	"	"	{ क्षपक अन्तर्मुहूर्त	पुस्तमय	"	
१३ सयोगिकेवली	{ लोकका असल्यातवां माग " असल्यात बहु "	{ लोकका असल्यातवां माग " असल्यात बहु "	{ लोकका असल्यातवां माग " असल्यात बहु "	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटी वर्ष	
१४ अयोगिकेवली	लोकका असल्यातवां माग	लोकका असल्यातवां माग	लोकका असल्यातवां माग	अन्तर्मुहूर्त	"	अन्तर्मुहूर्त	

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	क्षेत्र	स्पर्शन		नानाजीवोंकी अपेक्षा	काल	
			वर्तमानकालिक	अतीत अनगतकालिक		अधुनकाल	उत्कृष्टकाल
६ कषायमार्गणा	क्रोधादिचतुष्कार्या अक्षयी	सर्वलोक { लोकका असल्यातर्वा माग " असल्यात बहु " सर्वलोक	सर्वलोक { लोकका असल्यातर्वा माग " असल्यात बहु " सर्वलोक	सर्वलोक { लोकका असल्यातर्वा माग " असल्यात बहु " सर्वलोक	सर्वकाल अन्तर्मुहूर्त कोर सर्वकाल	एकसमय एकसमय, अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त { अन्तर्मुहूर्त, और देशोन पूर्वकोटी वर्ष
		"	"	"	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन " तैतीस सागरोपम
	कुमति कुशुतज्ञानी विमग्नज्ञानां	लोकका असल्यातर्वा "	लोकका असल्यातर्वा "	देशोन ६ राहु सर्वलोक	"	"	साधिक " "
		"	"	देशोन ६ राहु लोकका असल्यातर्वा माग	"	"	देशोन पूर्वकोटी वर्ष
७ ज्ञानमार्गणा	मति-युत अवधि मनःपर्ययज्ञानी	"	"	"	"	"	"
		"	"	"	"	"	"
	केवलज्ञानी	"	"	"	"	"	"
		" असल्यात बहु "	" असल्यात बहु "	" असल्यात बहु "	"	"	"
८ संयममार्गणा	सामायिक आदि चार समयी	लोकका असल्यातर्वा माग	लोकका असल्यातर्वा माग	लोकका असल्यातर्वा माग	अधुन्य एकसमय	एकसमय	अन्तर्मुहूर्त
		"	"	"	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	"
	यथास्यातसयमी	"	"	"	"	"	देशोन पूर्वकोटी वर्ष
		" असल्यात बहु "	" असल्यात बहु "	" असल्यात बहु "	"	"	"
९ दर्शनमार्गणा	सयमासयमी असयमी	लोकका असल्यातर्वा माग	लोकका असल्यातर्वा माग	देशोन ६ राहु सर्वलोक	सर्वकाल	"	देशोन पूर्वकोटी वर्ष
		सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक	"	"	"
	अचक्षुदर्शनी चक्षुदर्शनी	"	"	"	"	"	अर्धपुद्गलपरिवर्तन
		लोकका असल्यातर्वा माग	लोकका असल्यातर्वा माग	देशोन ६ राहु सर्वलोक	"	"	अनन्तकाल असल्यात पुद्गलपरिवर्तन
१० दर्शनमार्गणा	अविदर्शनी केवलदर्शनी	"	"	"	"	"	दो हजार सागरोपम
		"	"	"	"	"	साधिक तैतीस "
	अविदर्शनी केवलदर्शनी	"	"	"	"	"	देशोन पूर्वकोटी वर्ष
		" असल्यात बहु "	" असल्यात बहु "	" असल्यात बहु "	"	"	"

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	क्षेत्र	स्पर्शन		नानाजीवोंकी भगेशा	काल	
			वर्तमानशक्ति	अतीत अनागतशक्ति		अव्ययकाल	एकजीवकी अपेक्षा उत्तृष्टकाल
१० लेस्यामार्गणा	कुण्ड	{ सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग	{ सर्वलोक लोकका असंख्यातवा भाग	{ सर्वलोक देखोन १/४ रात्र	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	साथिक तेतीस सागरोपम
	नील	" "	" "	{ सर्वलोक देखोन १/४ रात्र	"	"	" सचरद् "
	कापोत	" "	" "	{ सर्वलोक देखोन १/४ रात्र	"	"	" सात "
	तेज	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	" १/४ और १/४ रात्र	"	" पृथ्वीसमय	" दो "
	पद्म	" "	" "	" १/४ रात्र	"	"	" अठारह "
	शुद्ध	{ " " " असंख्यात बहु "	{ " " " असंख्यात बहु "	" १/४ "	"	"	" तेतीस "
११ सव्यमार्गणा	अलेख्य	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
	मय	{ " " " असंख्यात बहु "	{ " " " असंख्यात बहु "	" " " "	सर्वकाल	"	देशोन अर्धपुत्रलपविर्बर्तन
	असम्य	" "	" "	" "	"	×	अनादि अनन्त
	क्षोपक्षमिरुत्तम्यकस्य	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन १/४ रात्र	{ अन्तर्मुहूर्त पत्न्यो अत्तं माग पृथ्वीसमय अन्तर्मुहूर्त	{ अन्तर्मुहूर्त पृथ्वीसमय	अन्तर्मुहूर्त
	क्षायोपवृद्धिमिक "	" "	" "	" " " "	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	साथिक छयात्त सागरोपम
	सायिक "	{ " " " असंख्यात बहु "	{ " " " असंख्यात बहु "	" " " "	"	"	" तेतीस "
१२ सम्यक्समार्गणा	सम्यग्भिषाद्यादि	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन १/४ रात्र	अन्तर्मुहूर्त पत्न्यो अत्तं माग	"	अन्तर्मुहूर्त
	सासादनसम्यग्दृष्टि	" "	" "	" १/४ और १/४ रात्र	पृथ्वीसमय " " "	पृथ्वीसमय	"
	भिषाद्यादि	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	देखोन अर्धपुत्रलपविर्बर्तन
	समी	लोकका असंख्यातवा भाग	लोकका असंख्यातवा भाग	देखोन १/४ रात्र	"	"	सागरोपमसप्तपृथक्क
१३ सक्तिमार्गणा	असक्ती	सर्वलोक	सर्वलोक	" "	"	"	अनन्तकाल असंख्यात पुत्रलपविर्बर्तन
	आहारक	" "	" "	" "	"	"	{ अगुलके असंख्यातवे मागप्रमाण असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तीन समय, अन्तर्मुहूर्त

उत्तरमें बतलाया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल ही मिथ्यात्व गुण-स्थानमें रहते हैं, अर्थात् तीनों कालोंमें ऐसा एक भी समय नहीं है, जब कि मिथ्यादृष्टि जीव न पाये जाते हों। किन्तु, एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका काल तीन प्रकारका होता है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। जो अमय्य जीव हैं, अर्थात् त्रिकालमें भी जिनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होना है, ऐसे जीवोंके मिथ्यात्वका काल अनादि-अनन्त होता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका न कभी आदि हैं, न अन्त। जो अनादिमिथ्यादृष्टि मय्य जीव हैं, उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त है, अर्थात् अनादि कालसे आज तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति न होनेसे तो उनका मिथ्यात्व अनादि है, किन्तु आगे जाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति और मिथ्यात्वका अन्त हो जानेसे वह मिथ्यात्व सान्त है। ध्वलाकारने इस प्रकारके जीवोंमेंसे बर्द्धनकुमारका दृष्टान्त दिया है, जो कि उस पर्यायमें सर्व प्रथम सम्यक्त्व ही हुए थे। इस प्रकार सर्व प्रथम सम्यक्त्वको उपन कलेवाल जीवोंके सम्यक्त्वप्राप्तिके पूर्व समय तक उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त समझना चाहिए। जिन जीवोंने एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया, तथापि परिणामोंके संश्लेशादि निमित्तस जो फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त माना जाता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका आदि और अन्त, ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकारके जीवोंमें भी श्रीकृष्णका दृष्टान्त ध्वलाकारने दिया है।

प्रकृतमें अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त मिथ्यात्वके कालको छोड़कर सादि-सान्त मिथ्यात्व-कालकी ही विवेक्षा की गई है, और उसीकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असयतसम्यग्दृष्टि या सयतासयत या प्रमत्तसयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मिथ्यात्वदर्शमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको, या असयतसम्यक्त्वको, या सयतासयत अथवा अप्रमत्तसयतको प्राप्त हो गया, तो ऐसे जीवके मिथ्यात्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। ऐसे मिथ्यात्वको सादि-सान्त कहते हैं, क्योंकि, उसका आदि और अन्त, दोनों पाये जाते हैं। इसी सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव प्रथम बार सम्यक्त्व ही होकर पुनः मिथ्यात्वी हो जाता है तो वह अधिकसे अधिक अर्धपुद्गल-परिवर्तनकालके भीतर अवश्य ही पुनः सम्यक्त्व प्राप्तकर मोक्ष चला जाता है। (अर्धपुद्गलपरिवर्तन-कालके लिये देखिये पृ. ३२५-३३२)

इसी प्रकार शेष-गुणस्थानोंके भी जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाये गये हैं।

४ क्षेत्रानुगम-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	विषयकी उत्थानिका	१-९	११	सृदंगाकार लोक घनलोकके संख्यातवै भाग है, यह वृत्तलाकर घनलोकको ही प्रमाणलोक या द्रव्यलोक माननेमें युक्ति	१८-१९
२	क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश भेद-कथन	२	१२	लोकका आयाम, विष्कम्भ और उत्सेधका निरूपण	१९-२०
३	क्षेत्रानुयोगद्वारेके अवतारकी उपयोगिता	"	१३	लोकका तीनसौ तेतालीस घन-राजु न मानने पर दो सूत्रगाथाओंके अप्रमाणताका अनिश्च-पादन	२०-२१
४	निक्षेपकी उपयोगिता, उसका स्वरूप और भेद, तथा निक्षे-पोंका नयोंमें अन्तर्भाव	२-७	१४	असंख्यातप्रवेशी लोकमें अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं, इस आशकाका परिहार	२२-२४
५	क्षेत्रशब्दकी निरुक्ति, एकार्थ-वाचक नाम, तथा निर्देशादि छह अनुयोगद्वारोंसे क्षेत्रपदार्थ का निर्णय	७-८	१५	आकाशकी अवगाहना शक्तिका निरूपण	२४-२५
६	लोकशब्दकी निरुक्ति, भेद और उसका स्वरूप	९	१६	जीवोंकी स्वस्थान, समुद्रात और उपपाद, इन तीन अवस्थाओंके भेद व स्वरूपका वर्णन	२६-३०
७	क्षेत्रानुगमका अर्थ तथा निर्देश का स्वरूप	"	१७	स्वस्थानस्वस्थान, विद्वारव-त्त्वस्थान, सात समुद्रात और उपपाद, इन दश अवस्थाओंके द्वारा यथासंभव मिथ्यादृष्टि आदि चौदह जीवसमासेके क्षेत्र-निरूपणकी प्रतिष्ठा, तथा स्वस्थानस्वस्थान आदि राशि-योंका प्रमाण-निरूपण	३१
८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र-निरूपण	१०-५६	१८	अघोलोक और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण	३२
९	लोक पदसे घनलोकका ही अभिप्राय है, इस बातका शंका-समाधानपूर्वक समर्थन	१०	१९	त्रसकाधिक पर्याप्तशक्तिके संख्यातवै भाग-प्रमाण विद्वार-वत्त्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल कैसे जाना ? इस शंकाका समाधान	३३
१०	अन्य-आचार्य-प्रकाशित सृदंगा-कार लोकके प्रमाणका निरूपण और तत्सम्बन्धी घनफल-निकालनेके लिए सूर्योकार, आयतचतुरस्र, त्रिकोण आदि अनेक माकारोंकी कल्पना तथा उनके प्रमाणका निर्णय आदि	१०-११	२०	अमरक्षेत्रके निकालनेका विधान	३४

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२१	गोमिश्रणके निकालनेका विधान	३५	५३	लक्ष्यपर्याप्तपंचेन्द्रियतियर्थोंका क्षेत्र	७३-७७
२२	शंखसेत्रके निकालनेका विधान	३६	५४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंके क्षेत्रका वर्णन	७३-७७
२३	महामारस्यक्षेत्रके निकालनेका विधान	३७	५५	सयोगिकेवलीका क्षेत्र	७७-८१
२४	तिर्यंग्लोकाका स्वरूप	३७	५६	लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका क्षेत्र (देवगति)	७७-८१
२५	धैक्रियसमुदागत मिथ्या-दृष्टि जीवोंका क्षेत्र निरूपण	३८	५७	मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुण-स्थानवर्ती सामान्यदेवोंका क्षेत्र	७७
२६	देव अपने अविद्यानके क्षेत्र-प्रमाण गिनिया करते हैं, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके कथनका निराकरण	३८	५८	भवनवासी देवोंसे लेकर नव-प्रेयस्क तकके चारों गुणस्थान-वर्ती देवोंका क्षेत्र	७७
२७	सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान-तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	३९-४७	५९	भवनवासी, व्यन्तर और ल्योतिष्क देवोंके शरीरकी ऊंचाईका वर्णन	७९
२८	देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेधक्रमशः दृश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इस बातका निरूपण	४०	६०	नव अनुविश और पांच अनुत्तर विमानवासी देवोंका क्षेत्र	८१-८७
२९	ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यंग्लोकाका प्रमाण वर्णन	४१	६१	सामान्य पंचेन्द्रिय, वादर पंचेन्द्रिय, सूक्ष्म पंचेन्द्रिय और इन तीनोंके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रोंका वर्णन	८१-८७
३०	सूक्ष्मपतिधि निकालनेका कारण-सूत्र	४२	६२	चैक्रियकसमुदागत पंचेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण, तथा उनका क्षेत्रनिरूपण	९२
३१	भरत, पेरवत और विदेह-सम्बन्धी प्रसक्तसंयतादि संयमी जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणका निरूपण	४५	६३	स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदागत और कपायसमुदागत वादरपंचेन्द्रिय और वादरपंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	९३
३२	तेजससमुदागत क्षेत्रका प्रमाण	४७	६४	सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त विकलज्र जीवोंके स्वस्थानादि क्षेत्रोंका निर्णय	९३
३३	सयोगिकेवलीके क्षेत्रका निरूपण	४८	६५		
३४	वडसमुदागत केवलीका क्षेत्र	४८	६६-७३		
३५	कपाटसमुदागत केवलीका क्षेत्र	४९	६७		
३६	प्रतरसमुदागत केवलीका क्षेत्र	५०			
३७	लोकके चारों ओर स्थित तीनों यातयलोंके क्षेत्रफलका निरूपण	५१-५५			
३८	लोकपूर्णसमुदागत केवलीका क्षेत्र	५६			

षट्छाण्डगमकी प्रस्तावना			(३३)	क्षेत्रानुगम-विषय-सूची		
क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.
७३	वातकी सिद्धिके लिए वेदना-क्षेत्रविधानमें कहे गये अवगा-हना-वृंङकका अवतरण	१४-१८	१३	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण तकके खोवेदी और पुरुषवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	१११-११३	१७ ज्ञानमार्गणा ११७-१२१
७२	वादनिगोदप्रतिष्ठित जीवोंके सूत्रमें नहीं कहनेका कारण	१९	१०५	१४ मिथ्यादृष्ट्यादि नौ गुणस्थान-वर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	१११	१०३ मत्तज्ञानी और शुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र
७३	वादवायुकायिक जीवोंके क्षेत्रका निर्णय	"	"	१५ अपगतवेदी जीवोंका क्षेत्र	११२	१०४ मत्तज्ञानी और शुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका क्षेत्र
७४	बाहर, सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्तक वनस्पति-कायिक वा निगोद जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१००	१०६	६ कपायमार्गणा ११३-११७	११३	१०५ अवेतन और क्षणक्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है, इस शंकाका समाधान
७५	मिथ्यादृष्ट्यादि अयोगिकेवल्यन्त ब्रह्मकायिक और ब्रह्मकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	१०१	"	१६ क्रोध, मान, माया और लोभ-कपायी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११३-११७	१०६ विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र, तथा स्वस्थानादि पद-गत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यलोकके संस्थातवै भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें ही क्यों रहते हैं, इस शंकाका समाधान
७६	लक्ष्यपर्याप्तक ब्रह्मजीवोंका क्षेत्र-वर्णन	"	"	१७ सासादनसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके क्रोध, मान, माया और लोभकपायी जीवोंका क्षेत्र	११४	१०७ असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवितरग-छन्नस्थ गुणस्थान तक मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंका क्षेत्र
७७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक पाँचों मनोयोगी और पावों चचनयोगी जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१०२	१०७	१८ सूत्रमें ओघपद क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	"	१०९ प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकपा-यान्त मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका क्षेत्र
७८	वैक्रियकसमुदागत, मार-णान्तिकसमुदागत, तथा मूर्च्छित जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे समभव हैं ? इन शंकाओंका समाधान	१०२	१०८	१९ 'लोकके असंख्यातवै भागमें' इतना ही पद सूत्रमें कहनेसे प्रकृतमें 'मानुषक्षेत्रके भी असं-ख्यातवै भागमें रहते हैं' यह अर्थ क्यों नहीं लेना चाहिए, इस शंकाका, तथा इसीके अन्तर्गत एक और भी शंकाका समाधान	११५	११० केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका क्षेत्र
७९	वैक्रियकसमुदागत, मार-णान्तिकसमुदागत, तथा मूर्च्छित जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे समभव हैं ? इन शंकाओंका समाधान	१०३	१०९	१०० लोभकपायी सूक्ष्मसाम्परा-यिक शुद्धिसंयतोंका क्षेत्र	११६	१११ स्वस्थानस्वस्थान पदका स्वरूप वतलाकर क्षीणमोही अयोगिकेवलीमें उसकी असं-भवताका आपादन और समाधान
८०	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायगुणस्थान काययोगी जीवोंका क्षेत्र	"	"	१०१ अक्रपायी जीवोंका क्षेत्र	"	"
८१	काययोगी सयोगिकेवलीका क्षेत्र	१०४	११०-१११	१०२ उपशान्तकपायी जीवको अक-पाय कैसे कहा, इस शंकाका तथा इसीके अन्तर्गत कुछ अन्य भी शंकाओंका समाधान	११७	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१२२	८ संयममार्गणा	१२१-१२५	१२३	लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंमें चक्षु-दर्शन पाया जाता है, या नहीं, इस शंकाका समाधान	१२६
१२३	संयमी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१२१	१२४	अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्या-रहितसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकका क्षेत्र-निरूपण	१२७
१२४	ब्रह्मार्थिक नयवेदानाका प्रयोजन	१२२	१२५	अवधिदर्शनी और केवल-दर्शनी जीवोंका क्षेत्र	"
१२५	सयोगिकेवलीका क्षेत्र और पृथक् सूत्र-निर्माणका प्रयोजन	"	१२६	कृष्ण, नील और कापोत लेइयावाले मिथ्याहृदि, सासा-वनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-हृदि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-वर्णन	१२८
१२६	सामागिक और छेदोपस्थापना संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके संयत जीवोंका क्षेत्र	१२२-१२३	१२७	तेज और पयलेइयावालोंमें मिथ्याहृदिसे लेकर अप्रमत्त-संयत तकके जीवोंका क्षेत्र	१२९
१२७	परिहारविशुद्धिसंयत, सामा-यिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें पृथग्भूत क्यों नहीं, इस शंकाका समाधान	"	१२८	मारणास्तिक समुदातगत तेजोलेइयावाले मिथ्याहृदि जीवोंके क्षेत्रमें विशेषता का वर्णन	"
१२८	परिहारविशुद्धिसंयमी प्रमत्त-और अप्रमत्त संयतोंका क्षेत्र	"	१२९	वैकियिक, मारणास्तिक और उपपादपदगत पयलेइयावाले जीवोंमें कौनसी राशि प्रधान है, इस बातका निरूपण	१३०
१२९	यथाक्यातसंयमी, संयमासंयमी और असंयमी मिथ्याहृदि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-निरूपण	१२४	१३०	शुद्धेइयावाले जीवोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय तकके जीवोंका क्षेत्र का क्षेत्र और अलेइय जीवोंका क्षेत्र नहीं कहनेका कारण	"
१३०	ओघप्रकरणके भेद-भेद और प्रयोजन है, यह बताकर तरसस्पन्धी शंका-समाधान	१२५	१३१	शुद्धेइयावाले सयोगिकेवली जीवोंमें किस ओघमें प्रयोजन है, यह बताकर तरसस्पन्धी शंका-समाधान	१३१
१३१	असंयमी सासावनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्याहृदि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१२६-१२८	१३२	मध्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्या-हृदि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीवोंका क्षेत्र	१३२
१३२	चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्याहृदि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तक क्षेत्र-निरूपण	१२६-१२८	१३३	मध्यमार्गणा	१३३-१३३

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३३	अभव्यसिद्धिक जीवोंका क्षेत्र	१३२	१३४	उपशम श्रेणीसे उत्तरकर मरनेवाले उपशमसम्यक्त्व जीवोंके सिवाय अन्य उपशम-सम्यक्त्व जीवोंका मरण क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	१३५
१३४	विहारवत्सवस्थान और वैकिक-यिकसमुदातगत अभव्य जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवे भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यात-गुण-क्षेत्रमें रहते हैं, इस बातका सप्रमाण निरूपण	"	१३५	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्याहृदि और मिथ्याहृदि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-निरूपण	१३६
१३५	सादिव्यंघ करनेवाले जिव पर्योपमेके असंख्यातवे भाग-मात्र होते हैं, इस बातका सयुक्तिक वर्णन	१३२-१३३	१३६	संज्ञा जीवोंमें मिथ्याहृदि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	"
१३६	पक्षेन्द्रियोंमें संचित अनन्त सादिव्यंघकोंमेंसे जगप्रतरेके असंख्यातवे भागवमाण सादि-व्यंघक जीव असंज्ञाओं क्यों नहीं उत्पन्न होते, इस शंकाका समाधान	१३३	१३७	आहारक जीवोंमें मिथ्याहृदि-गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र-निरूपण	१३७-१३८
१३७	सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३-१३६	१३८	अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवलीका क्षेत्र	"
१३८	वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयत गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३	१३९	उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतगुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१३८
१३९	उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतगुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१३४	१४०	मारणास्तिकसमुदात और उप-पादपदगत असंयत उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्याका निरूपण	१४१

स्पर्शनानुगम

१ ध्वलाकारका मंगलाचरण और प्रतीका	१४१-१४५
२ स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-कथन	१४१
३ नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, प्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, काल-	"

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

(३७)

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
स्पर्शन और भावस्पर्शन, इन छह प्रकारके स्पर्शनोंका समेद स्वरूप और नयोंमें अन्तर्भाव	१४१-१४४	१५७-१५८	स्पर्शनीय निष्पक्ष मनोवृत्तिका परिचय	१५७-१५८	१५९
४ स्पर्शनशब्दकी निश्चिन्ता, ओष-शब्दके पदार्थक नाम और प्रमाणवाक्यके अभावकी आशंकाका समाधान	१४४-१४५		१६ चन्द्रविम्बशलाकाओंकी उत्पत्ति १७ ज्योतिषी देवोंके विमानोंका प्रमाण उत्सेधागुलसे ही लेना चाहिये, प्रमाणागुलसे नहीं, अन्यथा जम्बूद्वीप-समन्धी तारे जम्बूद्वीपमें समा नहीं सकते, इस बातका पक्षान्तर स्वीकारके साथ उल्लेख	१६०	१६१
५ ओषसे स्पर्शानुगमनिर्देश १४५-१७३ मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र निरूपण	१४५-१४६	१४५-१७३	१८ सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर-देवोंका स्वस्थानक्षेत्र निरूपण	१४५-१४६	१४६-१४७
१ स्पर्शानुयोगद्वारेके अवतारकी आवश्यकताका प्रतिपादन	१४६-१४७	१४७	१९ सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, या केवल मारणान्तिकसमुद्रात करते हैं, इस बातका प्रमाण निर्णय	१४७-१४८	१४८-१४९
२ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४८-१४९	१४९	२० जय कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्रात करते हैं, तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं करते, इस शकाका सयुक्तिक समाधान	१४९-१५०	१५०-१५१
१० सासादनसम्यग्दृष्टि तीर्थचोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र	१५०-१५१	१५१	२१ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कैसे घटित होता है, वे वायुकाधिक जीवोंमें मारणा-न्तिकसमुद्रात क्यों नहीं करते, इन शकाओंका समाधान	१५१-१५२	१५२
११ सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र	१५२-१५३	१५३	२२ उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देशोन ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी सिद्धि	१५३-१५४	१५४
१२ एक चन्द्रके परिवारका प्रमाण	१५४-१५५	१५५	२३ जिन आचार्योंका यह अभिमत है कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रविष्ट होकर ही मरण करते हैं, और इसी अपेक्षा उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका	१५५-१५६	१५६
१३ ज्योतिष्कदेवोंके सर्व विमानोंका प्रमाण	१५६-१५७	१५७	१५ राजुके अर्धच्छेद सर्व द्वीप-सागरोंके प्रमाणसे तद्वायोन्य संख्यात रूपाधिक हैं, यह कथन केवल त्रिलोकप्रभसिंहके अनु-सार है, यह बतलाते हुए असंख्यात आबलियोंके अवधार-कालके तथा आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशका उल्लेख और	१५७-१५८	१५८

क्षेत्रानुगम-विषय-सूची

(३८)

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
स्पर्शनक्षेत्र देशोन दश बटे चौदह भागप्रमाण कहते हैं, उनके कथनका सप्रमाण विरोध-निरूपण	१६६	१६७-१६८	२४ सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६७-१६८	१६८-१६९
२५ संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६८-१६९	१६९	२६ स्वयम्भूरमणसमुद्र और स्वय-म्भूपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रका विष्कम्भ बतलाते हुए संयता-संयत जीवोंके स्वस्थानक्षेत्रकी सप्रमाण सिद्धि	१६९-१७०	१७०-१७१
२७ प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा विक्रियादि ऋद्धिसम्पन्न ऋद्धि-योंने सर्व मनुष्यक्षेत्रका स्पर्श किया है, या नहीं, क्या मेरु-शिखर तक जाने आनेवाले ऋषि मनुष्यक्षेत्रमें सर्वत्र नहीं जा आ सकते, क्या तीर्थचोंका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना सम्भव नहीं है, इत्यादि अनेक शकाओंका समाधान	१७०-१७१	१७१-१७२	२८ सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र	१७२-१७३	१७३
३९ आदेशसे स्पर्शनक्षेत्र-निर्देश १७३-३०९ १ गतिमार्गणा (नरकगति)	१७३-३०९	३०९-३१०	२९ नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	३०९-३१०	३१०-३११
३० अतीतकालकी अपेक्षा विद्यारव-त्स्वस्थानादि पदगत नारकी	३१०-३११	३११-३१२	३१ स्पर्शनक्षेत्र	३११-३१२	३१२-३१३

मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवै भाग प्रमाण क्यों नहीं, इस शंकाका तथा इसीके अन्तर्गत और भी अनेकों शकाओंका समाधान ३१ विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह सहेतुक होते हैं, या अहेतुक, इस बातका निर्णय करते हुए नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव-गति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियोंके भेदोंका निरूपण और उनके क्षेत्र-विपाकित्वकी सिद्धि ३२ सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र ३३ नारकाओंके आकारोंका, तथा वर्तमानकालमें नारकियोंसे रोकें हुए क्षेत्रका वर्णन ३४ सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शन-क्षेत्र बतलाते हुए एक नारका-वासका क्षेत्रफल, तथा मारणा-न्तिक समुद्रातगत असंयत-सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शन-क्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यात गुणा क्यों है, इस बातका अनेक युक्तियोंके साथ समर्थन ३५ प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानादि-पदगत नारकियोंके स्पर्शन-क्षेत्रकी सयुक्तिक सिद्धि करते हुए प्रसंगागत मृदगाकार लोकके अनुसार एक लाख योजन बाह्य और एक राशु गोल तिर्यग्लोकके प्रमाणका, जगत्प्रेणी जगत्पतर, घनलोकका पारिकर्मके अवतरण पूर्वक स्वरूप-निरूपण

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
३६	करते हुए अनेक श्रुतियों और प्रमाणों से खडन	१८२-१८७	५४	कार शलाकाओं का निरूपण और उनसे विवक्षित द्वीप और समुद्र के क्षेत्रफल निकालने का विधान	१९५-१९८
३७	पृथिवी तल के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों का वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१८८-१८९	५५	स्वयम्भूरमण समुद्र के क्षेत्रफल निकालने का विधान	१९८
३८	उक्त पृथिवियों के सम्यग्मिथ्या-दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का स्पर्शनक्षेत्र	१८९-१९०	५६	सर्व समुद्रों के क्षेत्रफल का संकलन-निरूपण	१९०-२०१
३९	सातवीं पृथिवी के मिथ्यादृष्टि नारकियों का वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा देशोक्त क्षेत्र का स्पर्शीकरण	१९०-१९१	५७	स्वयम्भूरमण समुद्र के अतिरिक्त शेष सर्व समुद्रों के क्षेत्रफल को निकालने का विधान	२०२-२०३
४०	सातवीं पृथिवी के सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों का स्पर्शनक्षेत्र	१९१-१९२	५८	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच मेरु-मूल से नीचे मारणान्तिकसमुद्रांत कर्षण नहीं करते हैं, उनकी भवनवासी देवों में उत्पत्ति होती है, कि नहीं; इत्यादि अनेक शंकाओं का समाधान	२०४-२०६
४१	तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र तथा असंयतसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शनक्षेत्र	१९२-१९३	५९	सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचों का स्पर्शनक्षेत्र	२०६
४२	जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल	१९३-२०६	६०	असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतसंयत तिर्यचों का वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२०७-२११
४३	लवणसमुद्र का क्षेत्रफल	१९४	६१	नवैवेयकों में यदि मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतसंयत तिर्यचों की उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिये ? यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्य-लिंग से उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंग से ही उत्पन्न होंगे ? इस शंका का समाधान	२०८
४४	घातकीकंड आदि द्वीपों और कालोदक आदि समुद्रों के क्षेत्र-फल के निकालने के लिए गुण-	१९५	६२	उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचों के स्पर्शनक्षेत्र के करणसूत्र द्वारा निकालने का विधान	२०९-२१०
			६३	विद्वारवत्त्वस्थानादि पदपरिणत संयतसंयत तिर्यचों का स्पर्शनक्षेत्र	२१०-२११

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
५४	मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त और योनिमती तिर्यचों का वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र,	२११-२१२	६४	मनुष्यों में उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियों का स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्या-तत्वां भाग नहीं हो सकता, इस बात का सयुक्तिक आक्षेप और परिहार	२१८-२२०
५५	त्रसनाली के बाहिर त्रसकायिक जीवों के अभाव होने से मारणान्तिक और उपपादगत उक्त तिर्यचत्रिकों का स्पर्शनक्षेत्र सर्व लोक कैसे सम्भव है, इस शंका का समाधान	२१२	६५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के मनुष्यों का स्पर्शनक्षेत्र	२२०-२२३
५६	संयतसंयत गुणस्थान तक उक्त पंचेन्द्रियत्रिकों का स्पर्शनक्षेत्र	२१३	६६	मारणान्तिक समुद्रांतगत अत्यंतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों ने तिर्यग्लोक का संख्यातत्वां भाग कैसे स्पर्श किया, इस शंका का समाधान	२२१
५७	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यचों का वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	"	६७	बद्धायुक्त असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यों के उपपादक्षेत्र के निकालने का विधान	२२१-२२२
५८	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यचों का अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा उसके निकालने का विधान	२१४	६८	सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिसेत्र के निकालने का करणसूत्र	२२१
५९	अगुल के असंख्यातत्वां भागमात्र अवगाहनावाल लब्धपर्याप्त जीवों के संख्यात अगुलप्रमाण उत्सेध कैसे सम्भव है, इस शंका का समाधान	"	६९	संयोगिकेवली जिनों का स्पर्शनक्षेत्र	२२३
६०	महामच्छकी अवगाहना में एक बन्धन से यद्ध षट्कायिक जीवों का अस्तित्व कैसे जाना जाता है, इस शंका का समाधान	२१५	७०	लब्धपर्याप्त मनुष्यों का वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	"
६१	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवों का वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१६-२१७	७१	लब्धपर्याप्त मनुष्यों का अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२४
६२	उक्त तीनों प्रकार के सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यों का वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१६-२१७	७२	मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२४
६३	मनुष्यों से अगम्य प्रदेशवाले	२१७-२२०	७३	उक्त जीवों का अतीत और अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र का सोपपत्तिक निरूपण	२२५
			७४	दिशा और विदिशा का स्वरूप, तथा घृष्टापकमनियम के होने में सुक्ति	२२६

षट्खण्डागमकी प्रस्तावना

(११)

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
७५	भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यकोंका उपपाद सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र साविक पांच राजु क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	२२६-२२७	८५	सौधर्म और ईशानकल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३३-२३६
७६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि देवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२७	८६	इन्द्रक, श्रेणीगुह्य और प्रकीर्णक विमानोंके विस्तारका निरूपण	२३४
७७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२२७	८७	सौधर्मादि सर्व कल्पोंके विमानोंकी संख्याका निरूपण	२३५-२३६
७८	उक्त देवोंके अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२८-२२९	८८	सौधर्मकल्पवासी देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान क्यों है, इसका सोप-पत्तिक निरूपण	२३६
७९	उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि भवन-वासी देवोंके स्पर्शनक्षेत्रसम्बन्धी अनेक अपूर्व शकाओंका समाधान	२२९-२३२	८९	सनत्कुमारकल्पसे लेकर सह-स्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३७-२३८
८०	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि व्यन्तरदेवोंके स्वस्था-नादि पदोंके स्पर्शनक्षेत्रका सोप-पत्तिक निरूपण	२३०-२३१	९०	आततकल्पसे लेकर अन्त्युत-कल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३९
८१	उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमान-कालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तरदेव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातवर्ग भागको स्पर्श करते हैं, इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	२३१	९१	नवत्रैवेयकोंके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४०-२४१
८२	व्यन्तरोंके प्रसंगोपात्त आवास-स्थानोंका निरूपण	२३२	९२	नव अन्तुविश और पांच अनु-स्रार विमानवासी असंयतसम्य-ग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०
८३	उपपादगत ज्योतिष्क देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३२-२३३	२	(इन्द्रियमार्गणा)	२४०-२४६
८४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३३-२३४	९३	बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त अप-र्याप्त पकेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२४०-२४२
			९४	बादर पकेन्द्रिय और बादर पकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र सामान्य लोक आदि	

(१२)

स्पर्शनगुणम-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
९५	सामान्य एवं पर्याप्त और अप-र्याप्त विकलत्रय जीवोंका वर्त-मानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४१	१०२	बादर तेजस्कायिक और वायु-कायिक जीवोंके वैक्रियिक-समुद्घातसम्बन्धी स्पर्शन-क्षेत्रका सोपपत्तिक वर्णन	२४१-२५०
९६	उक्त तीनों प्रकारके विकलत्रय जीवोंके अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४२	१०३	बादर पृथिवीकायिक, जल-कायिक, अग्निकायिक और वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तथा तदन्तर्गत शका समा-धानोंका सप्रमाण वर्णन	२५०-२५२
९७	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४३	१०४	बादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंका वर्तमान तथा अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५२-२५३
९८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान-तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४५	१०५	वनस्पतिकायिक, निगोद, तथा उनके बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२५३-२५४
९९	लब्धपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४६	१०६	असंकायिक और असंकायिक-पर्याप्त जीवोंके मिथ्यादृष्टि आदि चौदहों गुणस्थानों सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२५४-२५५
१००	सामान्य तथा बादर पृथिवी-कायिक, जलकायिक, अग्नि-कायिक, वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर, तथा इन्हींके अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मअग्नि-कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और इन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४७-२५५	१०७	असंकायिक लब्धपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५५-२५५
१०१	उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र कैसे स्पर्श किया है, यह बतलाते हुए आठों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाई और मोटाईका निरूपण	२४७-२४८	१०८	पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५५-२५६
			१०९	सासादनसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५६-२५७
			११०	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तक	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१११	काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र, तथा पृथक् स्पर्शनक्षेत्र द्वारा यतलानेका सयुक्तिक कारण-निरूपण	२५८-२५९	१२०	वैक्तियिकमिश्रकाययोगी मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६८-२६९
११२	औदारिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५९-२६०	१२१	आहारककाययोगी और आहार-रकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंय-तोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९
११३	औदारिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्र	२६०-२६१	१२२	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९-२७०
११४	औदारिककाययोगी सम्य-गिमिथ्यादृष्टि, असंयतसम्य-ग्दृष्टि और संयतसंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२६१-२६२	१२३	कार्मणकाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-ग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७०-२७१
११५	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके औदारिककाययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६२-२६३	१२४	कार्मणकाययोगी सयोगि-केवलीका स्पर्शनक्षेत्र	२७१
११६	औदारिकमिश्रकाययोगी मि-थ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२६३-२६४	५ वेदमार्गणा		२७१-२७९
११७	औदारिकमिश्रकाययोगी सा-सादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तद-न्तर्गत शंका-समाधान पूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	२६४-२६५	१२५	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्या-दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२७१-२७२
११८	वैक्तियिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२६५-२६६	१२६	स्त्री और पुरुषवेदी सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समा-धानके साथ निरूपण	२७२-२७४
११९	वैक्तियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यगिमिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६६-२६७	१२७	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्य-गिमिथ्यादृष्टि तथा असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्र	२७४
१२०	वैक्तियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यगिमिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६७-२६८	१२८	स्त्री और पुरुषवेदी संयता-सम्यत्तोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७४-२७५

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३०	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके तदन्तर्गत शंका-समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२७५-२७६	१३९	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायगुणस्थान तकके मति, श्रुत और अधि-क्षानी जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८३-२८४
१३१	नपुंसकवेदी सासादनसम्य-ग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७६-२७७	१४०	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययक्षानी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४
१३२	सम्यगिमिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७७-२७९	१४१	केवलक्षानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४-२८५
१३३	अपगतवेदी जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२७९	८ संयममार्गणा		२८५-२८८
१३४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके चारों कपायवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०-२८१	१४२	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके संयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८५-२८६
१३५	लोभकपायवाले सूक्ष्मसांस्पर्शगुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षणिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०	१४३	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके सामाधिक और छेदोपस्थापना संयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८६
१३६	उपशान्तकपाय आदि अन्तिम चार गुणस्थानवाले अक्रपायी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०-२८१	१४४	प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुण-स्थानवर्ती परिहारविशुद्धि-संयत्तोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१३७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि मत्तक्षानी तथा श्रुताक्षानी जीवोंके स्पर्शन-क्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समा-धानपूर्वक निरूपण	२८१-२८२	१४५	उपशामक और क्षणिक सूक्ष्म-सांस्पर्शसंयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८७
१३८	विभंगक्षानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८२-२८३	१४६	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथास्थानसंयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१३९	संयमासंयम वाले जीवोंका तद-न्तर्गत शंका-समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्र-निरूपण	२८२	१४७	मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण-स्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८८

पट्टखडगमकी प्रस्तावना

(४५)

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१४९	९ दर्शनमार्गणा चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२८८-२९०	१५८	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र क्रमशः वारह घटे चौदह, ग्यारह घटे चौदह और नौ घटे चौदह भागप्रमाण क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८९	१५८	तिर्यचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंके तीनों अशुभलेख्याओंका उपपादपदसम्बन्धी क्रमशः ग्यारह घटे चौदह, दश घटे चौदह और आठ घटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"	१५९	उक्त तीनों अशुभलेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका सयुक्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९२
१५२	अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"	१६०	तेजोलेख्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९३-२९४
१५३	केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९०	१६१	तेजोलेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९४-२९५
१५४	१० लेख्यमार्गणा रुग्ण, नील और रूपोत्त-लेख्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका सौपपत्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९०-३०१	१६२	तेजोलेख्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९५-२९६
१५५	उक्त तीनों अशुभलेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९१-२९३	१६३	तेजोलेख्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९६-२९७
१५६	देवोंसे ऐकैन्द्रियोंसे मारणा-नितक समुदात करोवाले सासादनलस्यग्दृष्टि जीवोंका तीनों अशुभ लेख्यासम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र यथाक्रमसे बारह घटे चौदह भाग, ग्यारह घटे चौदह भाग और नौ घटे चौदह भागप्रमाण क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२	१६४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके पञ्चलेख्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९७-२९८

(४६)

स्पर्शनानुगमन-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१६५	पञ्चलेख्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीत अनगतकालसंबन्धी स्पर्शनक्षेत्र	२९८	१७५	उपपादपदगत असंयत क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातवै भागप्रमाण कैसे है, इस शंकाका समाधान	३०२-३०३
१६६	पञ्चलेख्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयताका स्पर्शनक्षेत्र	२९९	१७६	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके सायिकसम्यक्त्व जीवोंका सौपपत्तिक स्पर्शनक्षेत्र-वर्णन	३०३-३०४
१६७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके शुक्लेख्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीत-अनगतकाल-संबन्धी स्पर्शनक्षेत्र	२९९-३००	१७७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०४
१६८	शुक्लेख्यावाले तिर्यच, शुक्लेख्यावाले देवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं, इस शंकाका समाधान	३००	१७८	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-वर्ती औपशामिकसम्यक्त्व जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा उसके ओघके समान कहनेमें उपस्थित आपत्तिका परिहार	३०४-३०५
१७०	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके शुक्लेख्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"	१८०	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् स्पर्शनक्षेत्र	३०५
१७१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके भव्यजीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३००-३०१	१८१	संक्षी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	३०६-३०७
१७२	अभव्य जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०१	१८२	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-से लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके संक्षी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०७

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१८३ अंसंघी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	१४ आहारमार्गणा	३०७-३०९	७ व्यवहारकालके अस्तित्वकी पुष्टिमें पंचास्तिकायप्राप्तकी गथाओंका उल्लेख	३१७	
१८४ आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र		३०८	८ प्रकृतमें नोआगमभावकालका प्रयोजन और उसके समय, आवली, सुहृत्, वर्ष आदि स्वरूप होनेका निरूपण	"	
१८५ आहारमार्गणाकी अपेक्षा उप-पादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता, अतः सर्वलोक प्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इस शंकाका समाधान		"	९ कालशब्दकी निरुक्ति और उसके पर्यायवाची नामका निरूपण	३१७-३१८	
१८६ सासावनसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकका स्पर्शनक्षेत्र		"	१० समय, आवली, उश्वासनिःश्वास स्तोत्र, लवः, नाली, सुहृत् और दिवसके कालप्रमाणका सम्प्रमाण निरूपण	३१८	
१८७ अनाहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र		३०९	११ दिन और रात्रिसम्बन्धी तीस सुहृत्तोंके नाम	३१८-३१९	
			१२ पक्षका प्रमाण और दिवसोंके नाम	३१९	
			१३ मास, वर्ष और युग आदिका स्वरूप	३२०	
१ घट्याकारका मंगलाचरण और प्रतिष्ठा	विषयकी उत्थानिका	३१३-३२३	१४ निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे कालका स्वरूप-निरूपण	३२०-३२२	
२ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-निरूपण		३१३	१५ यदि काल एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही अवस्थित है, तो उसके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जा सकते हैं, इस शंकाका समाधान	३२०	
३ नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्य-काल और भावकाल, इन चार प्रकारके कालनिर्देशोंका समेद स्वरूप निरूपण		"	१६ देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है, इत्यादि कालसम्बन्धी अनेकों शंकाओंके अपूर्व समाधान	३२१	
४ तद्द्वयतिरिक्त नोआगमद्रव्य-कालका स्वरूप और उसकी पुष्टिमें पंचास्तिकायप्राप्त, जीव-समास और आचारांगकी गथा-ओंका उल्लेख		३१३-३१७	१७ निर्देशके पर्यायवाची नाम बतला कर दोनों प्रकारके निर्देशोंकी सार्यकताका निरूपण	३२२-३२३	
५ द्रव्यकालके अस्तित्वको सम-यन करते हुए तत्पर्यायसूत्रका सूत्रप्रमाण निरूपण		३१४-३१६			
६ प्रकृत जीवस्थान आदिमें द्रव्य-कालके न कहनेका कारण		"			

कालानुगम

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	२		२६ पुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका बोधक यंत्र	३३०	
१८ मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा कालनिरूपण		३२३	२७ अगृहीत, मिश्र और गृहीत संघंधी तीनों प्रकारके कालोंका सकारण अल्पयष्टुत्व-निरूपण	३३१	
१९ एक जीवकी अपेक्षा कालके तीन भेदोंका सदृष्टान्त उल्लेख, और प्रकृतमें सादि-सान्त कालकी अपेक्षा जघन्यकालका निरूपण		३२४	२८ नोकरमें पुद्गलपरिवर्तनके समान ही कर्मपुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका उल्लेख और तत्सम्बन्धी विशेषताओंका निरूपण	३३२	
२० सासावनसम्यग्दृष्टि जीवको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुँचा कर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया, इस शंकाका समाधान		३२५	२९ क्षेत्र, काल, भव और भाव-पुद्गलपरिवर्तनोंका सूत्रगथाओं द्वारा स्वरूप-निरूपण	३३३ ३३४	
२१ एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट सादि-सान्त मिथ्यात्वकालका निरूपण		"	३० एक जीवकी अपेक्षा पाँचों परिवर्तनवारोंका अल्पयष्टुत्व	३३४	
२२ अर्धपुद्गलपरिवर्तनका स्वरूप बतलाते हुए पाँच प्रकारके परिवर्तनोंका नामोल्लेख कर द्रव्यपरिवर्तनका विशद स्वरूप-निरूपण		३२५-३३६	३१ पाँचों परिवर्तनोंका कालसंघंधी अल्पयष्टुत्व	"	
२३ यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो 'तबे वि गोगला एलु' इत्यादि सूत्र-गथाओंके साथ विरोध क्यों नहीं होगा, इस शंकाका समाधान		३२६	३२ सादि-सान्त मिथ्यात्वके कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालका निदर्शन	३३५	
२४ प्रथम समयमें गृहीत पुद्गल-पुंज द्वितीय समयमें निर्जीण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी जीवमें नोकरमपर्यायसे परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना, इस शंकाका समाधान		३२६	३३ सम्यक्सत्त्वकी उत्पत्ति और मिथ्या-त्वका विनाश, इन दोनों विभिन्न कार्योंका एक समय कैसे हो सकता है, इस शंकाका समाधान	"	
२५ पुद्गलपरिवर्तनकालके प्रकारोंका स्वरूप		३२७	३४ मिथ्यात्व नाम पर्यायका है, वह पर्याय उत्पाद विनाशालम्बक है, क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव है। और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके द्रव्यपना प्राप्त होता है, इस शंकाका समाधान	३३६-३३७	
			३५ अनन्तका स्वरूप और उसके प्रमाणमें आरंभगथाका उल्लेख	३३८	
			३६ व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राक्षियोंके अनन्तपना किस अपेक्षासे है, इसका स्पष्टीकरण	"	
			३७ अक्षय अनन्त राक्षिका विवेचन	३३९	

परद्वंद्वानुगमकी प्रस्तावना			
क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	विषय
३८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य कालनिरूपण	३३९	तत्सम्बन्धी अनेकों शंकाओंका समाधान
३९	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका सयुक्तिक कालवर्णन	३४०	५० एक जीवकी अपेक्षा असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका सनिदर्शन निरूपण
४०	एक जीवकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका निरूपण	३४१	५१ एक जीवकी अपेक्षा असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक सोपपत्तिक निरूपण
४१	उपशमसम्यक्कालके अधिक माननेमें क्या दोष है, इस शंकाका समाधान करते हुए सासादनगुणस्थानके कालका सप्रमाण निरूपण	३४१	५२ संयतासंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल
४२	एकजीवकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सप्रमाण निरूपण	३४२	५३ एक जीवकी अपेक्षा संयतासंय-तोंका जघन्य काल
४३	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल	३४२-३४३	५४ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमा-संयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान
४४	अप्रमत्तसंयत जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होते, इस शंकाका समाधान	३४३	५५ एक जीवकी अपेक्षा संयता-संयतोंका उत्कृष्ट काल
४५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको, अथवा संयमासंयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	३४३	५६ प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल-निरूपण
४६	नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल	३४३	५७ एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंके जघन्य कालका सोपपत्तिक निरूपण
४७	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	३४४	५८ एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका उत्कृष्ट काल
४८	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक प्रतिपादन	३४४	५९ चारों उपशमकोंका नाना जीवोंकी जघन्य काल
४९	असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, तथा	३४५	६० अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरण गुणस्थानमें ले जाकर और द्वितीय समयमें मरण करके अपूर्वकरण गुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की, इस शंकाका समाधान
		३४५	६१ नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों उपशमकोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण

कालानुगम-विषय-सूची			
क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	विषय
६२	एक जीवकी अपेक्षा चारों उप-शमकोंका जघन्य काल	३५३-३५४	और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोपपत्तिक निरूपण
६३	एक जीवकी अपेक्षा चारों उप-शमकोंका उत्कृष्ट काल	३५४	(तिर्यचगति)
६४	चारों श्रमक और अयोगि-केवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल	३५४-३५५	७४ तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल वर्णन
६५	उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५५	७५ एक जीवकी अपेक्षा तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल
६६	संयोजिकवली जिनका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५६-३५७	७६ 'असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन' इस वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, अतः सूत्रमेंसे अनन्त पद क्यों न निकाल दिया जाय, इस शंकाका समाधान
	आदेशसे काल प्रमाण-निर्देश ? गतिमार्गणा (नरकगति)	३५७-३६३	७७ सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका प्रमाण
६७	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका निरूपण	३५७	७८ असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल
६८	एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५७-३५८	७९ संयतासंयत तिर्यचोंका नाना और एकजीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल
६९	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३५८	८० पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल
७०	असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५८-३५९	८१ पंचानवे पूर्वकोटियोंकी पूर्व-कोटिपृथक्स्वसंज्ञा कैसे हो सकती है, इस शंकाका समाधान
७१	सातों पृथिवियोंके नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका प्रतिपादन	३६०-३६१	८२ लक्ष्यपर्याप्तिकोमें स्त्रीविवेकी संभवता-असंभवताका विचार
७२	सातों पृथिवियोंके सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३६१	८३ उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि तिर्यचोंका काल वर्णन

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
८४	उक्त तीनों प्रकारके असंयत-सम्यग्दृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६९-३७१	९४	सासाधन और असंयतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योका काल	३८१	१०४	बादर एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८-३८९
८५	उक्त तीनों प्रकारके संयत-संयत त्रिव्योका काल	३७१	९५	भवनवासियोंसे लगाकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	"	१०५	'कर्मस्थितिको आवलीके असं-ख्यातवै भागसे गुणा करने पर बादरस्थिति होती है,' इस परिकर्मवचनके साथ बतलाये गये बादर एकेन्द्रियों-के एक जावगत उत्कृष्ट कालका विरोध क्यों नहीं होगा, इस शंकाका समाधान	३९४-३९५
८६	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७१-३७२	९६	भवनवासियोंसे लेकर सास्त्रार-कल्प तकके सासाधनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि त्रिव्योका काल	३८२-३८४	१०६	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९०
८७	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३७२-३७३	९७	घातगुप्तक सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि त्रिव्योके कालमें विशेषता	३८३	१०७	शुद्धभ्रमग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, इस बातका प्रमाण निरूपण	३९०-३९४
८८	उक्त तीनों प्रकारके सासाधन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७४-३७५	९८	उक्त त्रिव्योकी स्थिति बतलाने-वाले कालसूत्रका और त्रिलोक प्रगतिस्त्रिका विरोध उद्घावन कर उसका परिहार	३८४	१०८	अन्तर्मुहूर्त भी संख्यात आवली-प्रमाण होता है, अतः अन्त-मुहूर्त और शुद्धभ्रमके कालमें कोई भ्रम नहीं मानना चाहिए, इस शंकाका समाधान	३९५
९०	उक्त तीनों प्रकारके असंयत-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७५-३७६	९९	भवनवासियोंसे लेकर नवधैये-यको तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	३८५	१०९	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असंयत चर्यप्रमाण क्यों नहीं होती है, इस शंकाका समाधान	३९२
९१	उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका संयत-संयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेबली तक काल निरूपण	३७६-३७८	१००	आनतकल्पसे लेकर नवधैये-यको तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योके असं-चार अनुवृत्त त्रिमानोंके असं-यतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८५-३८६	११०	यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रि-योंमें उत्कृष्ट संख्यात चार या उसके संख्यातमें भागप्रमाण चार उत्पन्न हो, तो असंख्यात चर्यप्रमाण बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट भव-स्थिति क्यों नहीं हो जायगी, इस शंकाका समाधान	३९२
९२	लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७८-३८०	१०१	नौ अनुवृत्त और विजयादि चार अनुवृत्त त्रिमानोंके असं-यतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८६-३८७	१११	बादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल, वा तत्सम्बन्धी शंका-समाधान	३९३
९३	मिथ्यादृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८०-३८७	१०२	सर्वार्थसिद्धि विमानयासी असंयतसम्यग्दृष्टि त्रिव्योका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८७-३८९	११२	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना	३९४

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
११९	और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९२-४००	१२७	कार्यक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल	४०५-४०६
१२०	सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंका कालवर्णन	४००	१२८	वनस्पतिकार्यक जीवोंका काल	४०६
१२१	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल	४००-४०१	१२९	निगोदिया जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०६-४०७
१२२	३ कायमार्गणा पृथिवीकार्यक, जलकार्यक, अक्षिकार्यक और वायुकार्यक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४०१-४०९	१३०	वाटरनिगोद जीवोंका काल	४०७
१२३	वाटरपृथिवीकार्यक, वाटर-जलकार्यक, वाटरअक्षिकार्यक वाटरवायुकार्यक और वाटर-वनस्पतिकार्यक प्रत्येकशरीर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०१-४०३	१३१	व्रसकार्यक और व्रसकार्यिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्सम्यन्धी शका-समाधान-पूर्वक निरूपण	४०७-४०८
१२४	कर्मस्थितिसे किल कर्मकी स्थितिका अभिप्राय है, दर्शन-मोहनीयकर्मकी स्थितिको प्रधानता क्यों है, इन शकाओंका समाधान	४०३-४०४	१३२	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-से लगाकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके व्रसकार्यिक और व्रसकार्यिक पर्याप्त जीवोंका काल	४०८
१२५	उक्त पांचों प्रकारके पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका पृथक् पृथक् निरूपण	४०३-४०४	१३३	व्रसकार्यिक लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल	४०८-४०९
१२६	उक्त पांचों प्रकारके लब्ध-पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०५	१३४	४ योगमार्गणा पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असं-यतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और संयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	४०९-४१०
१२७	उक्त पांचों प्रकारके लब्ध-पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०५	१३५	एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंके जघन्य कालका योग-परिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारके द्वारा सोदाहरण काल निरूपण	४११-४१२
१२८	सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक पांचों स्थावर-		१३६	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका वर्णन	४१२

(५४)

कालानुगमन-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३६	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दष्टि जीवोंका काल	४१२-४१३	१४६	औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२१-४२३
१३७	उक्त योगवाले सम्यग्मिथ्या-दष्टि जीवोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट काल	४१३-४१४	१४७	औदारिकमिश्रकाययोगी सयो-गिकेवलीके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट कालका तत्सम्बन्धी अनकों शंकाओंके समाधान-पूर्वक निरूपण	४२३-४२४
१३८	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामकों और चारों क्षणकोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट काल	४१४-४१५	१४८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जयन्य और उत्कृष्ट काल	४२५-४२६
१३९	एक समयसम्बन्धी विकर्षणका मायासूत्रद्वारा निरूपण	४१५	१४९	वैक्रियिककाययोगी सासादन-सम्यग्दष्टि और सम्यग्मिथ्या-दष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४२६
१४०	काययोगी मिथ्यादष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट काल	४१५-४१७	१५०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मि-थ्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंकेनाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	४२६-४२९
१४१	सासादनसम्यग्दष्टि गुणस्थान-से लेकर सयोगिकेवली गुण-स्थान तकके काययोगी जीवोंका काल	४१७	१५१	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२९-४३०
१४२	औदारिककाययोगी मिथ्या-दष्टि जीवोंका नाना और एक जीवसम्बन्धी जयन्य और उत्कृष्ट काल	४१७-४१८	१५२	आहारककाययोगी प्रमत्त-संयतोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जयन्य और उत्कृष्ट काल	४३१-४३२
१४३	सासादनसम्यग्दष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगिकेवली गुण-स्थान तकके औदारिककाय-योगी जीवोंका काल	४१८	१५३	आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्त-संयतोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जयन्य और उत्कृष्ट काल	४३२-४३३
१४४	औदारिकमिश्रकाययोगी मि-थ्यादष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट काल	४१८-४१९	१५४	औदारिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट काल	४३३-४३४
१४५	औदारिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट काल	४२०-४२१			

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३२-४३३	१६३ सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर गुणस्थान तकके पुरुषवेदी जीवोंका काल	४३१		
१५४ कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३३-४३५	१६४ नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३१-४३२		
१५५ तीन विग्रहवाली गति किन जीवोंके होती है, यह बतलाकर तीन विग्रह करनेकी दिशाका निरूपण	४३४-४३५	१६५ नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४३२		
१५६ कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३५-४३६	१६६ नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३२-४३३		
१५७ कर्मणकाययोगी सयोगिकेवलीका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३६-४३७	१६७ संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका काल	४३३		
५ वेदमार्गणा	४३७-४४४	१६८ अपगतवेदी जीवोंका काल	४३४		
१५८ स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३७	१६९ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके चारों कपायवाले जीवोंके कालका कपायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा निरूपण	४३४-४३५		
१५९ स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल-निरूपण	४३८	१७० किस कपायसे मरा हुआ जीव किस गतिमें उत्पन्न होता है, इस बातका विवेचन	४३५		
१६० स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३८-४३९	१७१ कोय, मान और माया, इन तीन कपायवाले आठवें और नवें गुणस्थानबर्ती उपशामकों का, तथा लोमकपायवाले आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानबर्ती उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३६-४३७		

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१७२	उक्त कपाय तथा उक्त गुणस्थानवाले क्षणिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४७-४४८	१८३	परिहारविशुद्धिसंयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल	४५२
१७३	कपायरहित जीवोंका काल निरूपण	४४८	१८४	सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतोंका काल	"
७	ज्ञानमार्गणा	४४८-४५१	१८५	अस्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाव्याप्तविहारविशुद्धिसंयतोंका काल	४५३
१७४	मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४४८-४४९	१८६	संयतासंयत जीवोंका काल	"
१७५	विमंगलानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४९-४५०	१८७	असंयत जीवोंका काल	"
१७६	विमंगलानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४५०	९	दर्शनमार्गणा	४५३-४५५
१७७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके मतिशानी, श्रुतज्ञानी और अवाधिज्ञानी जीवोंका काल	४५०-४५१	१८८	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४५३-४५४
१७८	अवाधिज्ञानी संयतासंयतोंके एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट कालकी विशेषताका निरूपण	"	१८९	निवृत्त्यपर्याप्तकोंके समान लक्ष्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४५४
१७९	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका काल	४५१	१९०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका काल	"
८	संयममार्गणा	४५१-४५३	१९१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका काल	४५५
१८०	केवलज्ञानियोंका काल निरूपण	"	१९२	अवधिदर्शनी जीवोंका काल	"
१८१	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके संयतोंका काल	४५१-४५२	१९३	केवलदर्शनी जीवोंका काल	"
१८२	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामाधिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंका काल	४५२	१०	लेश्यामार्गणा	४५५-४७६
			१९४	कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण, तथा तत्सम्बन्धी शकाओंका सयुक्तिक समाधान	४५५-४५८
			१९५	तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४५८

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१९६ तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्य- निमध्यादृष्टि जीवोंका काल	४५९	स्थानोंके तेज और पञ्चलेश्या- वाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही, इस शंकाका समाधान	४६७-४६८		
१९७ तीनों अशुभ लेश्यावाले असं- यतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल-निरूपण, तथा तद्वर्तमान अनेकों शंकाओंका समप्रमाण समाधान	४५९-४६२	२०५ तेज और पञ्चलेश्याके समान कापोत और नील लेश्याओंका भी एक समय पाया जाता है, फिर उसे क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	४६८		
१९८ तेजोलेश्या और पञ्चलेश्या- वाले मिथ्यादृष्टि तथा असंयत- सम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदा- हरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४६२-४६५	२०६ तेज या पञ्चलेश्याके कालमें एक समय शेष रहनेपर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयमा- संयमको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तधृत भी संयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	४७०		
१९९ मिथ्यादृष्टि जीवके तेजो- लेश्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्द्धाई साग- रोपण प्रमाण क्यों नहीं होती, इस शंकाका, तथा इसीसे सम्यग्निधृत धन्य कई शंकाओंका अपूर्व समाधान	४६२-४६५	२०७ पञ्चलेश्याके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यासे परि- णत होकर दूसरे समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४७०-४७०		
२०० तेजोलेश्या और पञ्चलेश्या- वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४६५	२०८ एक प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानोंको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता, इस शंकाका समाधान	४७०		
२०१ एक दोनों लेश्यावाले सम्य- निमध्यादृष्टि जीवोंका काल	४६५-४६६	२०९ तेज और पञ्चलेश्यावाले संयतासंयतादि तीन गुणस्थान- वाले जीवोंका उत्कृष्ट काल	४७१		
२०२ एक दोनों लेश्यावाले संयता- संयत, प्रमत्तसंयत और अप्र- मत्तसंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	४६६	२१० शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७१-४७२		
२०३ एक जीवोंके एक जीवकी अपेक्षा लेश्यापरिवर्तन, गुण- स्थानपरिवर्तन और मरण, इन तीनोंके द्वारा जघन्य कालका निरूपण	४६६-४७१				
२०४ मिथ्यादृष्टि और असंयत- सम्यग्दृष्टि, इन दो गुण-					

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
२११	शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्निमध्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४७२-४७३	२१२	शुक्लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षालेश्यापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७३-४७५
२१३	तेज, पञ्च और शुक्ल लेश्यासम्वन्धी एक एक समयके भंगोंका निरूपण	४७५	२१४	शुक्ल लेश्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और संयोगिकेवलीका काल वर्णन	४७६
२१५	मध्यतिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४७६-४८०	२१६	मिथ्यात्वके अनादि और अकृत्रिम होनेसे उसका विनाश नहीं होना चाहिये, कारण रहित वस्तुका विनाश नहीं होता. अतः अज्ञान या कर्मबन्धका विनाश नहीं होना चाहिये, इत्यादि अनेक अपूर्व शंकाओंका अद्वितीय समाधान	४७६-४८३
२१७	मोक्षको जानेके कारण निरन्तर व्ययशील भव्य राशिका विच्छेद क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४७८	२१८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर भयोभि-	४७८
२१९	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्निमध्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल वर्णन	४८४-४८५	१३	संज्ञिमार्गणा	४८५-४८६
२२०	सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल	४८१-४८५	२२१	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४८२
२२२	असंयत और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८३	२२३	उक्त सम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८३
२२४	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपाय गुणस्थान तकके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोदाहरण निरूपण	४८३-४८४	२२५	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्निमध्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल वर्णन	४८४-४८५
२२६	संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका	४८५-४८६	२२६	संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका	४८५-४८६

पटुखंडागमनी प्रस्तावना

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.	क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
२२७	नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८५	२३०	नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६-४८७
२२८	सासाधनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तकके संबंधी जीवोंका काल	"	२३१	सासाधन गुणस्थानसे लेकर सयोनिक्केचली गुणस्थान तकके आधारक जीवोंका काल	४८७
२२९	असंखी जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६	२३२	अनाहारक मिथ्यादृष्टि, सासाधनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोनिक्केचली जीवोंका काल	४८७-४८८
२३०	आहारमार्गणा		२३३	अनाहारक अयोनिक्केचलीका काल	४८८

शुद्धिपत्र

(पुस्तक १)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	७	ज्ञानारणादि आठ कर्मोंके	ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंके
२६४	१६	कार्यमार्गणा	कार्यमार्गणा
३७६	१४	छेदोपस्थापना	सूक्ष्मसाम्प्रदाय
"	१८	"	"
३८४	"	अविबिज्ञान	अविधिदर्शन
४४७	१२	क्षीण, सज्ञा	क्षीणसंज्ञा,
४५१	२०	और कर्मणकाययोग	और धैर्यनियुक्तकाययोग
४७३	१	सम्यक्त्व,	छद्म सम्यक्त्व,
४८१	८	आहारक, अनाहारक,	आहारक,
४८८	१४	द्रव्यसे जापोत-	आदिके दो दर्शन, द्रव्यसे जापोत-
५४०	१०	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देखनेके अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देखनेके आलाप

(पुस्तक २)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७७	६	संज्ञिक,	असंज्ञिक,
६३०	८	एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,	एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,
६४८	६	संज्ञिक,	औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक,
७१५	३	आदिके तीन दर्शन,	आदिके दो दर्शन,
७२९	१३	तथा अक्रमापस्थान भी है,	तथा अक्रमापस्थान भी है,
७३५	४	प्रगारद्व जोग,	प्रगारद्व जोग, अजोगो वि अतिय;
"	१५	ग्याह,	ग्याह योग और अयोगरूप भी स्थान है;
४२१	१	संज्ञा	क्षीणसंज्ञा
"	"	योग	अयोगी,
"	"	लेख्या	अलेख्य
"	"	संज्ञि०	अनुभव
४२९	१०	आहा०	२
"	११	"	१
४३१	१२	"	२
४३८	२१	गति	१ मनुष्यगति
"	"	कपाय	१ लोभ
४४७	२६	संज्ञा	० क्षीणसंज्ञा
४५२	३२	जीव०	१ स. प.
४५६	३८	लेख्या	मा० १ कापोत
४५८	४०	ज्ञान	१
४६०	४४	पर्याप्ति	६ अप०
५०३	१०१	योग	अयोग
५१४	११४	"	"
५६९	१८३	संज्ञि०	१ असं०
५७२	१८७	काय	५ त्रस विना.
"	"	संज्ञि०	१ असं०
५८४	२०३	प्राण	७, ७, २.
६१२	२१४	योग	अयोग

शुद्धिपत्र

(६०)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७७	६	संज्ञिक,	असंज्ञिक,
६३०	८	एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,	एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,
६४८	६	संज्ञिक,	औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक,
७१५	३	आदिके तीन दर्शन,	आदिके दो दर्शन,
७२९	१३	तथा अक्रमापस्थान भी है,	तथा अक्रमापस्थान भी है,
७३५	४	प्रगारद्व जोग,	प्रगारद्व जोग, अजोगो वि अतिय;
"	१५	ग्याह,	ग्याह योग और अयोगरूप भी स्थान है;

(आलापिका)

पृष्ठ	संयंत्र नं	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध, या जो होना चाहिए
४२१	१	संज्ञा	×	क्षीणसंज्ञा
"	"	योग	×	अयोगी,
"	"	लेख्या	×	अलेख्य
"	"	संज्ञि०	×	अनुभव
४२९	१०	आहा०	१	२
"	११	"	२	१
४३१	१२	"	१	२
४३८	२१	गति	१	१ मनुष्यगति
"	"	कपाय	१	१ लोभ
४४७	२६	संज्ञा	१	० क्षीणसंज्ञा
४५२	३२	जीव०	१ स. व.	१ स. प.
४५६	३८	लेख्या	मा. ३ अशु.	मा० १ कापोत
४५८	४०	ज्ञान	९	१
४६०	४४	पर्याप्ति	६	६ अप०
५०३	१०१	योग	×	अयोग
५१४	११४	"	×	"
५६९	१८३	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
५७२	१८७	काय	१ त्रस विना.	५ त्रस विना.
"	"	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
५८४	२०३	प्राण	७, ७,	७, ७, २.
६१२	२१४	योग	×	अयोग

पंक्ति	यंत्र नं०	खाना नाम	अष्टाद्व	शुद्ध
६१७	२२८	दर्शन	१ चक्षु०	अचक्षु०
६२२	२३५	आह्ला०	१ आह्ला०	२ आह्ला० अना०
६२३	२३६	"	२ आह्ला० अना० अनु०	२ आह्ला० अना०
६३१	२४५	दर्शन	२ चक्षु०	२ चक्षु० अचक्षु०
६३४	२४९	सज्ञा	X	क्षीणसंज्ञा
६४०	२५५	उपयो०	२ साका० अना० यु० उ०	२ साका० अना०
६५५	२७४	"	२ साका० अना०	२ साका० अना० यु० उ०
७१९	३५८	जीव.	५ अ०	६ अ०
७३५	३७७	योग	X	अयोग
७४३	३८७	गुण०	९	१२
७५४	४००	गति	१	३
८०८	४७७	प्राण	१०	१०, ४, १
८०९	४७८	संयम०	४ अस० सामा० छेदो० परि०	४ अस० सामा० छेदो० यया०
८३४	५१४	भन्य०	१ म०	२ म० अ०
"	"	सहि०	१ सं०	१ अस०
८३५	५१६	"	"	"
८५१	५३९	प्राण	X	अतीतप्राण

(पुस्तक ३)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९	३ (ख-क)	(क-ख)	
१०९	अन्तिम ३२७६७	३०४९६	
१५३	१२ १२८	३२२६	
"	"	१२८	
२७७	२ -गुग्गहृदा पदस्स	"	
२७८	८ सूच्यगुलके प्रथम वर्गमूलको द्वितीय वर्गमूलसे	-गुग्गहृदाए तस्स	
		सूच्यगुलको उसके प्रथम वर्गमूलसे	
२९८	४ अप्रमत्त	अप्रमत्त	

पंक्ति	पृष्ठ	अनुवृद्ध	पंक्ति	पृष्ठ	अनुवृद्ध
४	३	विषय है ।	२९	४	वेडविषयो
३९	४	वेडविषयओ	३४	८	तीन भागोंमेंसे आठ भाग
४४	७	व्यासं त्रिगुणितसहितं	४२	७	व्यासत्रिगुणितसहितं
५५	२१	१४४ + १४४ +	५५	२१	१४४ + १४४ +
६३	५	विद्वारवि-	६३	५	विद्वारवि-
७८	६	तदावासा	७८	६	तदावासा
८८	५	लोणाणा-	८८	५	लोणाणा-
१०६	८	अजोगिकेवली	१०६	८	अजोगिकेवली
१३७	१६	सज्ञी जीव	१३७	१६	सज्ञी जीव
१५७	३	-सुत्ताणुसारी जोदिसिय-	१५७	३	-सुत्ताणुसारी जोदिसिय-
१५९	३	सकलणाणं	१५९	३	सकलणाणं
१७६	१७	आमाशके प्रदेशके	१७६	१७	आमाशके प्रदेशके
१९१	४	-पवेसादो	१९१	४	-पवेसादो
"	१८	योजन उस	"	१८	योजन उस
३०२	२	सजोगिकेवलि	३०२	२	सजोगिकेवलि
३०३	२०	वन जाना	३०३	२०	वन जाना
३०९	३	आहारएसु	३०९	३	आहारएसु
३२०	१-२	वैपर्युगः	३२०	१-२	वैपर्युगः
३२१	७	ण, एस दोसो,	३२१	७	ण एस दोसो,
३२८	२	अगद्धिदगहणद्धा	३२८	२	अगद्धिदगहणद्धा
३६०	२	णाणजीवं	३६०	२	णाणजीवं
३६४	१७	इस प्रकारसे	३६४	१७	इस प्रकारसे
३९१	२	जिन्नाए	३९१	२	जिन्नाए
३९२	९	सुप्पसिद्ध-	३९२	९	सुप्पसिद्ध-
"	२६	सुप्पसिद्ध	"	२६	सुप्पसिद्ध
४१४	२१	और क्षपक	४१४	२१	और क्षपक
४५६	६	-मत्तोमन्डिछय	४५६	६	-मत्तोमन्डिछय
४६१	१२	प्रस्तारके	४६१	१२	प्रस्तारके
४६३	२१	उद्धर्तनाधात	४६३	२१	उद्धर्तनाधात

(प्रस्तावना)

या यह कार्य मुनिजनोंको

||
ω
ω
X
ω
ω

१६ ११ या मनिजनेको

$$22 \times 22 = 22$$

कृतज्ञता

खेत्ताणुगमेण दुविहो निद्देशो, ओधेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

किंफलो खेत्ताणिओगद्वारस्स अवयारो ? उच्चदे । तं जहो- संताणिओगद्वारदो अत्थित्तेणावगयाणं दव्वाणिओगद्वारे अवगययमाणं चोदसजीवसमासाणं खेत्तपमाणा- वगमफलो । अधवा अणंतो जीवरासी असंखेज्जपएसिए लोगागासे किं सम्मादि, ण सम्मादि त्ति संदेहेण घुलंतस्स सिस्सस्स संदेहविणासणहो वा खेत्ताणिओगद्वारस्स अवयारो । एत्थ खेत्तं णिक्खिविदब्बं । णिक्खेवो त्ति किं ? संशये विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितं तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः^१ । अथवा चात्थार्थविकल्पो निक्षेपः । अप्रकृत- निराकरणद्वारेण प्रकृतप्ररूपको^२ वा । उक्तं च—

अपगयणिवारणह पयदस्स परूखणाणिमित्तं च ।

ससयविणासणहं तच्चत्यवधारणहं च ॥ १ ॥

खेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

शंका—यहां क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका क्या फल है ?

समाधान—उक्त शंकाका उत्तर देते हैं । वह इस प्रकार है—सत्प्ररूपणा नामके अनुयोगद्वारसे जिनका अस्तित्व जान लिया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें जिनका संख्यारूप प्रमाण जाना है, ऐसे चौदह जीवसमालोक (गुणस्थानोंके) क्षेत्रसंबंधी प्रमाणका जानना ही क्षेत्रानु- योगद्वारके अवतारका फल है । अथवा, असंख्यत प्रदेशवाले लोककाकाशमें अनन्त प्रमाणवाली जीवराशि क्या समाती है, या नहीं समाती है, इस प्रकारके संदेहसे घुलनेवाले शिष्यके संदेहके विनाश करनेके लिए इस क्षेत्रानुयोगद्वारका अवतार हुआ है ।

इस क्षेत्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें क्षेत्रका निक्षेप करना चाहिये ।

शंका—निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान—संशय, विपर्यय और अनध्यवसायमें अवस्थित वस्तुको उनसे निकाल- कर जो निश्चयमें क्षेत्रण करता है, उसे निक्षेप कहते हैं । अथवा, बाहरी पदार्थके विकल्पको निक्षेप कहते हैं, अथवा, अप्रकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररूपण करनेवाला निक्षेप है । कहा भी है—

अप्रकृतके निवारण करनेके लिये, प्रकृतके प्ररूपण करनेके लिये, और तत्त्वार्थके अव- धारण करनेके लिये निक्षेप क्रिया जाता है ॥ १ ॥

१ क्षेत्रपुच्यते, तत् द्विविधम् । सामान्येन विक्षेपेण च ॥ स सि १, ८.

२ म २ प्रती 'जथा' इति पाठः ।

३ उपायो न्यास इत्येते । लघीय ३, ५२. तदधिगतानां वाच्यतामापन्नानां वाचकेषु भेदोपन्यासो न्यास । लघीय ३, ७४. विवृति ।

४ स किमर्थः ? अप्रकृतनिराकणाय प्रकृतिरूपणाय च । स. सि. १, ५. अप्रस्तुतार्थोपाकरणत् प्रस्तुतार्थन्याकरणत् निक्षेप-फलवान् । लघीय स्तो वि. पु. २६



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदचलि-पणीदो

छत्रखंडागमो

सिरि-वीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समणिणदो

तत्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

खेत्ताणुगमो

लोयालेयपयासं गोदमथेरं पुणो जिणं वीरं ।

णमिऊणं खेत्तसुचं जहोवएसं पयासेमो ॥

केवलज्ञानरूप सूर्यसे लोक और अलोकके प्रकाशक अर्थात् सर्वज्ञ, गौतम अर्थात् उत्तमवर्णके स्वविर^१ अर्थात् विघाता (दिव्यध्वनिके प्रणता), और जिन अर्थात् वीतराग, ऐसे त्रिविध विशेषणविशिष्ट श्रीवीर भगवान्को; अथवा, द्वादशांग ग्रन्थ-रचनासे प्रकाशित किया है लोक और अलोकको जिन्होंने ऐसे, तथा जिन अर्थात् काम क्रोधादि भाव शत्रुओंके जीतनेवाले, और धीर^२ अर्थात् विशेषरूपसे जो प्राणियोंको मोक्षके लिए प्रेरणा करते हैं, या मोक्षमार्गकी ओर चलते हैं; ऐसे गौतमस्थविर श्रीइन्द्रभूति गणधरको नमस्कार करके क्षेत्रसूत्रको अर्थात् क्षेत्रानु- योगद्वारसम्बन्धी सूत्रोंके अर्थको जैसा उपदेश अर्थरूपसे दिव्यध्वनिके द्वारा श्रीवीर भगवान्ने दिया और ग्रन्थरूपसे श्री गौतम गणधरने दिया, उसीके अनुसार हम (वीरसेन) भी प्रका- शित करते हैं ।

१ म १ प्रती 'णमिऊण' इति पाठः ।

२ 'धरो विही विरिचो' पाठ ना २ धरो के, धरो ज्ञाता दे. ना. मा ५, २९ स्थिति..... घाता विघाता है को २, १२५-१२६.

३ विक्षेपेण ईरयति मोक्ष प्रति ईरयति गमयति वा प्राणिन इति वीर । (अभि. रा वीर.)

तो च एत्थ चउव्विहो गिक्खेवो' गाम-द्ववणा-द्वव-भाववेत्तभेएण । कवं गिक्खेवस्स चउव्विहत्तं ? द्ववद्विय-पज्जवद्वियणयावलंविषयणवावारादो । उत्तं च—

गामं ठवणा दविय ति एस द्ववद्वियस्स गिक्खेवो ।

भावो दु पज्जवद्वियपरुवणा एस परस्सो' ॥ २ ॥

जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणम्हि पयट्ठो' खेत्तसदो गामखेवं । सो च गामगिक्खेवो वयण-वत्तव्वणिच्चज्झवसायमंतरेण ण हेदि ति, तन्भव-सरिससामण्णि-नंघणो ति वा, वाच्य-वाचकशक्तिद्वयात्मकैकशब्दस्य पर्यायार्थिकनये असंभवाद्वा द्ववद्विय-

...

यह निक्षेप यहाँ पर नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है ।

शंका—निक्षेप चार प्रकारका कैसे है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके आश्रय करनेवाले घटनोंके स्थापारकी अपेक्षासे निक्षेप चार प्रकारका होता है । कहा भी है—

नाम, स्थापना और द्रव्य, ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणके विषय हैं और भावनिक्षेप पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणका विषय है । यही परमार्थ सत्य है ॥ २ ॥

जीव, अजीव और उभयरूप कारणोंकी अपेक्षासे रहित होकर अपने आपमें प्रवृत्त हुआ 'क्षेत्र' यह शब्द नामक्षेत्रनिक्षेप है । यह नामनिक्षेप, वचन और वाच्यके नित्य अर्थ-यसाय अर्थात् वाच्य वाचक-सम्बन्धके सार्वकालिक निश्चयके विना नहीं होता है इसलिये, भयवा तद्भव-सामान्य-निश्चयनक और सादृश्य-सामान्य-निमित्तक होता है इसलिये, अथवा, वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिक नयमें असंभव है इसलिये, द्रव्यार्थिकनयका विषय है, ऐसा कहा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय वतलानेके लिए तीन हेतु दिये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है । (१) नामनिक्षेप वचन और वाच्यके नित्य भयवसायके विना नहीं होता है, इसलिए यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर्थात्, 'इस शब्दसे यह पदार्थ जानना चाहिए' इस प्रकारका संकेत किये जानेसे शब्द अपने वाच्यका वाचक होता है । यदि यह संकेत या वाच्य वाचकका सम्बन्ध नित्य न माना जाय, तो भिन्न देश या भिन्न कालमें उस शब्दसे उसके वाच्यरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । किन्तु 'देवदत्त' आदि जो नाम किसी व्यक्तिके बाल्यावस्थामें रखे गये थे, वह आज वृद्धावस्थामें भी समानरूपसे उस व्यक्तिके वाचक देखे जाते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वचन और वाच्यके मध्यमें जो सम्बन्ध है, वह नित्य है । और नित्यताका द्रव्यके अतिरिक्त अन्यत्र पाया

१ म १ प्रती 'सो च' इत्यधिक पाठ ।

२ म त १, ६

३ मतिवु 'पयट्ठो' इति पाठ ।

णयस्सोत्ति वुच्चेदे । कट्ठ-दंत-सिलादीणि सम्भावासम्भावसरूपाणि बुद्धीए इच्छिदवेत्तेणे-यत्तमुवगयाणि ठ्वणा गाम । सम्भावासम्भावसरूवेण सव्वदव्वववि ति वा, पधाणापधाणा-

.....

जाना असंभव है, इससे सिद्ध होता है कि नामनिक्षेप द्रव्यार्थिकनयकों विषय है । नाम-निक्षेपको तद्भवसामान्य और सादृश्यसामान्य-निमित्तक कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि, विवक्षित सुवर्णादि वस्तुके पूर्वोपर-कालभावी कटक, केयूरदि पर्यायोंमें विभिन्नता रहते हुए भी उनमें एक ही सुवर्ण समानरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिए इस प्रकारकी समानताको तद्भवसामान्य कहते हैं । तथा, किसी भी एक विवक्षित कालमें विद्यमान, किन्तु विभिन्न प्रकारके सुवर्णोंसे निर्मित कटक, कुण्डल, केयूरदि पर्यायोंमें 'यह भी सुवर्ण है, यह भी सुवर्ण है,' इत्यादि रूपसे सदृशता-बोधक जो समानता है, उसे सादृश्य-सामान्य कहते हैं । इसी प्रकारसे नामनिक्षेपरूप शब्द भी पूर्वोपर-कालभावी 'क्षेत्र, क्षेत्र' इत्यादि शब्दोंमें समान प्रतीतिका उत्पादक होनेसे तद्भवसामान्यका निमित्तक है । तथा, विवक्षित किसी भी एक कालमें विभिन्न देशवर्तों मथुरा, काशी इत्यादि क्षेत्रोंमें 'यह भी क्षेत्र है, यह भी क्षेत्र है' इत्यादि रूपसे उच्चारण किये जानेवाला शब्द सदृश-प्रत्ययका उत्पादक होनेसे सादृश्यसामान्यका भी निमित्तक होता है । और सामान्यको विषय करना ही द्रव्यार्थिकनयका विषय है; इसलिए नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना युक्ति-संगत ही है । (३) नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतानेके लिए तीसरी युक्ति यह दी है कि वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियों-वाला एक शब्द पर्यायार्थिकनयमें असंभव है, अर्थात् पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता । इसका अभिप्राय यह है कि शब्दमें वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियाँ एक साथ ही पाई जाती हैं, अर्थात् शब्द अपने वाच्यरूप अर्थका प्रतिपादक होता है, इसलिए तो उसमें सदा वाचकशक्ति विद्यमान है । और स्वयं भी अपने स्वरूपका विषय होता है, इसलिए वाच्यशक्ति भी उसमें सर्वदा पाई जाती है । इस प्रकार किसी भी विवक्षित समयमें वह उक्त दोनों अर्थात् वाच्य-वाचकरूप शक्तियोंसे युक्त रहेगा । और इसी कारणसे वह पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता, क्योंकि, यद्यपि आगममें शब्दको पुद्गलद्रव्यकी पर्याय कहा है तथापि जब वही शब्द वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला विवक्षित किया जाता है, तब वह द्रव्य कहलाने लगता है । चूंकि शक्ति, गुण या धर्मको कहते हैं, इसलिए 'गुणसमुदायो द्रव्य' के नियमानुसार शक्तियोंवाले द्रव्य ही कहा जायगा, पर्याय नहीं । इस प्रकार जब शब्द पुद्गलद्रव्य सिद्ध हो जाता है, तब वह द्रव्यार्थिकनयका ही विषय हो सकता है, पर्यायार्थिकनयका नहीं । इसलिए भी नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना सर्वथा युक्ति-युक्त ही है ।

बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रके साथ एकत्वको प्राप्त हुए, अर्थात् जिनमें बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रकी स्थापना की गई है ऐसे सङ्काश और असङ्काश स्वरूप काष्ठ, दन्त और शिला आदि स्थापनाक्षेत्रनिक्षेप हैं । यह स्थापनानिक्षेप, तद्भाकार और अतद्भाकार स्वरूपसे सर्व

द्वानामेगचिचिंघणेत्ति वा इवणाणिक्खेवो दव्वड्डियणयवुल्लीणो' । दव्वखेत्तं दुविहं आगमदो गोआगमदो य । तत्थ आगमदो खेत्तपाहुज्जाणओ अणुवजुचो । कथमेदस्स जीवदवियस्स सुदणणावरणीयक्खओवसमविसिद्धस्स दव्व-भावखेत्तागमवदिरित्तस्स आगमदव्वखेत्तवएसो ? ण एस दोसो, आधारे आधेयवयारेण कारणे कज्जुवयारेण द्रव्योंमें व्याप्त होनेके कारण, अथवा, प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण होनेसे द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत है, ऐसा समझना चाहिये ।

विशेषार्थ — स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिये गये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इसप्रकार है । (१) स्थापनानिक्षेप सम्भाव और असम्भावरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त है, इसका अर्थ यह है कि त्रिलोकत्रतीं सभी द्रव्य यद्यपि स्वतंत्र एवं निश्चित आकारवाले हैं, तथापि व्यवहारके योग्य एवं विशेष अपेक्षासे विशिष्ट आकारसे परिकल्पित द्रव्यको साकार, सम्भाव्य या तदाकार कहा जाता है, और उससे भिन्न आकारवाली वस्तुको अनाकार, असम्भाव्य या अतदाकार कहा जाता है । काष्ठ या दांत वगैरह यद्यपि अपने स्वतंत्र आकारवाले हैं, तथापि उन्हेंको हाथी, घोड़ा आदि किसी एक विवक्षित या निश्चित आकारसे घटित कर दिये जाने पर उन्हें तदाकार कहा जाता है, और निश्चित आकारसे घटित नहीं होने पर भी जो संकेतद्वारा किसी वस्तुस्वरूपकी परिकल्पना की जाती है, उसे अतदाकार कहते हैं । इसप्रकार यह स्थापनाका व्यवहार तदाकार और अतदाकाररूपसे सर्व द्रव्योंमें पाया जाता है, अर्थात् सभी द्रव्योंमें दोनों प्रकारका स्थापनानिक्षेप किया जा सकता है, जो कि क्षेत्रभेद या कालभेद होने पर भी तदवस्थ रहता है । इस कारणसे स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहा है । (२) प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है, वह प्रधान द्रव्य, तथा जिस वस्तुमें स्थापना की जाती है, वह अप्रधान द्रव्य कहलाता है । 'यह सिद्ध है' इस प्रकारसे स्थापनानिक्षेप असली सिद्धरूप प्रधानद्रव्य और मही आदिके खिलौनेमें स्थापित सिद्धरूप आकारवाले अप्रधान द्रव्योंमें एकताका कारण अर्थात् एकत्वप्रतीतिका निमित्त होता है, इसलिये भी स्थापनानिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है ।

आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है । उनमेंसे क्षेत्रविषयक शास्त्रका ज्ञाता, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र निक्षेप है ।

शंका — श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे विशिष्ट, तथा द्रव्य और भावरूप क्षेत्रागमसे रहित इस जीवद्रव्यके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि, आधाररूप आत्मामें आधेयभूत क्षयोपशम-स्वरूप आगमके उपचारसे, अथवा, कारणरूप आत्मामें कार्यरूप क्षयोपशमके उपचारसे,

१ म २ प्रती 'णमवहणो' इति पाठ ।

लद्धागमववएसखओवसमविसिद्धजीवदव्वावल्लणेण वा तस्स तदविरोहा । गोआगमदो दव्वखेत्तं तिविहं, जाणुगमर्गं भवियं तव्वदिरित्तं चेदि । तत्थ जाणुगमरीरं तिविहं, भवदु भवियं वट्टमाणं समुज्झादमिदि । समुज्झादं पि तिविहं चुदं चहदं चचेदहमिदि । भवदु पुव्विल्लस्स दव्वरेत्तागमत्तादो खेत्तववएसो, एदस्स पुण सरीरस्स आगमस्स खेत्तवव-एसो ण घडदि ति ? एत्थ परिहारो वुच्चेदि । तं जथा — क्षियत्थैयीत्थेष्ण्यत्यस्मिन् द्रव्यागमो भावागमो वेति त्रिविधमपि शरीरं क्षेत्रम्, आधारे आधेयोपचाराद्वा । तत्थ भवियं खेत्तपाहुज्जाणगमावी जीवो गिहिसिदे । कथं जीवस्स खेत्तागमखओवसमरहिदत्तादो अणुगमस्स खेत्तववएसो ? न, क्षेष्ण्यत्यस्मिन् भावक्षेत्रागम इति जीवद्रव्यस्य पुरैव क्षेत्रत्व-सिद्धेः । जाणुगमरीर-भवियवदिरित्तदव्वखेत्तं दुविहं, कम्मदव्वखेत्तं गोक्कम्मदव्वखेत्तं चेदि । तत्थ कम्मदव्वखेत्तं णाणावरणादिअहुविहकम्मदव्वं । कथं कम्मस्स खेत्तववएसो ?

अथवा, प्राप्त हुई है आगमसंज्ञा जिसको ऐसे क्षयोपशमसे युक्त जीवद्रव्यके अवलम्बनसे जीवके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञाके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

क्षायकशरीर, भव्य और तदव्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है । उनमेंसे क्षायकशरीर तीन प्रकारका है; भावी क्षायकशरीर, वर्तमान क्षायकशरीर और अतीत क्षायकशरीर । इनमेंसे अतीत क्षायकशरीर भी रुणुत, उपाधित और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है ।

शंका — द्रव्यक्षेत्रागमके निमित्तसे पूर्वके शरीरको क्षेत्रसंज्ञा भले ही रही आवे, किन्तु इस अनागमशरीरके क्षेत्रसंज्ञा घटित नहीं होती है ?

समाधान — उक्त शंकाका यहां परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है — जिसमें द्रव्यरूप आगम अथवा भावरूपआगम वर्तमानकालमें निवास करता है, भूतकालमें निवास करता था, और आगामी कालमें निवास करेगा; इस अपेक्षा तीनों ही प्रकारका शरीर क्षेत्र कहलाता है । अथवा, आधाररूप शरीरमें आधेयरूप क्षेत्रागमका उपचार करनेसे भी क्षेत्र-संज्ञा बन जाती है ।

नोआगम द्रव्यक्षेत्रके तीन भेदोंमेंसे जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा, ऐसे जीवको भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शंका — जो जीव क्षेत्रागमरूप क्षयोपशमसे रहित होनेके कारण अनागम है, उस जीवके क्षेत्रसंज्ञा कैसे बन सकती है ?

समाधान — नहीं; क्योंकि, 'भावक्षेत्ररूप आगम जिसमें निवास करेगा' इस प्रकार-की निरुक्तिके बलसे जीवद्रव्यके क्षेत्रागमरूप क्षयोपशम होनेके पूर्व ही क्षेत्रणों सिद्ध है ।

क्षायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तदव्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, वह कर्म-द्रव्यक्षेत्र और नोक्कर्मद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मद्रव्यको कर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शंका — कर्मद्रव्यको क्षेत्रसंज्ञा कैसे प्राप्त हुई ?

न, क्षियन्ति' निवसन्त्यस्मिन् जीवा इति कर्मणां क्षेत्रत्वसिद्धेः । (जं) नोक्कम्मद्वव्वखेत्तं तं दुविहं, ओवयारियं पारमथियं चेदि । तत्थ ओवयारियं नोक्कम्मद्वव्वखेत्तं लोगपसिद्धं सालिखेत्तं बीहिखेत्तमेवमादि । पारमथियं नोक्कम्मद्वव्वखेत्तं आगासदब्बं । उच्चं च—

खेत्तं खलु आगास तव्वदिरित्तं च होदि गोखेत्त ।

जीवा य पोगला वि य धम्माधम्मयिया कालो ॥ ३ ॥

आगास सपेदस तु उड्डाधो तिरिओ वि य ।

खेत्तलोग वियाणाहि अणत्त जिण-देसिद्धं ॥ ४ ॥

एसो वि णिक्खेवो दव्वट्टियस्स, दव्वेण विणा एदस्स संभवाभावादो । जं तं भावखेत्तं तं दुविहं, आगमदो गोआगमदो भावखेत्तं चेदि । आगमदो भावखेत्तं खेत्त-पाहुडजाणुगो उवजुचो । गोआगमदो भावखेत्तं आगमेण विणा अत्योवजुचो ओदइयादि-

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिसमें जीव 'क्षियन्ति' अर्थात् निवास करते हैं, इस प्रकारकी निष्कर्षके बलसे कर्मोंके क्षेत्रपना सिद्ध है ।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यका दूसरा भेद जो नोक्कर्मद्रव्यक्षेत्र है, वह औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र, व्रीहि- (धान्य-) क्षेत्र इत्यादि औपचारिक नोक्कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है । आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोक्कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है । कहा भी है—

आकाशद्रव्य नियमसे तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, और आकाशद्रव्यके अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं ॥ ३ ॥

आकाश सप्रवेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र फैला हुआ है । उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए । उसे जिन भगवान्ने अनन्त कहा है ॥ ४ ॥

यह आगम और नोआगम भेदरूप द्रव्यक्षेत्रनिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, द्रव्य अर्थात् सामान्यके विना यह निक्षेप संभव नहीं है ।

जो भावरूप क्षेत्रनिक्षेप है, वह आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । क्षेत्रविषयक माश्रुतके शाता और वर्तमानकालमें उपयुक्त जीवको आगमभावक्षेत्रनिक्षेप कहते हैं । जो आगमके अर्थात् क्षेत्रविषयक शास्त्रके उपयोगके विना अन्य पक्षार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको; अथवा, औदयिक आदि पांच प्रकारके भावोंको नोआगमभावक्षेत्रनिक्षेप कहते हैं ।

१ कि निवासगत्यो ।

२ आगासस्स पण्णा उड्डु च अरे य तिरियलोए य । जाणहि सिवलोग अणत्त जिणदेसिअं सम्म ॥ १९७ ॥

पंचविधभावो वा' । एदेसु खेत्तेसु केण रेत्तेण पयदं ? गोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं । गोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं ? आगासं गगणं देवपथं गोल्हपाचरिदं अवगाहणलक्खणं आधेयं वियापगमाधारो भूमि ति एयडो । कस्स खेत्तं ? सुण्णोयं भंगो । केण रेत्तं ? परिणाभिण्ण भानेण । कम्हि खेत्तं ? अप्पणाग्धि चेत्त । क्रथमेगत्य आधाराधेयभावो ? ण, सारे त्थंमं' इदि एगत्य त्रि आधाराधेयभावदसणादो । केवविं रेत्तं ? अणादिय-मपज्जवसिदं । कदिविधं खेत्तं ? दव्वट्टियणयं च पडुच्च एगविधं । अथवा पओजणमभि-

शंका—ऊपर बतलाये गये इन क्षेत्रोंमेंसे यहाँ पर कौनसे क्षेत्रसे प्रयोजन है ?

समाधान—यहाँ पर नोआगमद्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है ।

शंका—नोआगमद्रव्यक्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान—आकाश, गगन, देवपथ, गुल्हपाचरित (यहाँके विचरणका स्थान) अवगाहनलक्षण, आधेय, व्यापक, आधार और भूमि, ये सब नोआगमद्रव्यक्षेत्रके एकार्थक नाम हैं ।

विशेषार्थ—अत्र धवलाकार क्षेत्रका विचार, निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान, इन प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे क्रमशः करते हैं । इनमेंसे ऊपर जो निक्षेप या एकार्थ द्वारा क्षेत्रका विचार किया गया है, वह सब निर्देशके अन्तर्गत समझना चाहिए ।

शंका—क्षेत्र किसका है, अर्थात् इसका स्वामी कौन है ?

समाधान—यह भग शून्य है, अर्थात् क्षेत्रका स्वामी कोई नहीं है ।

शंका—किससे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रका साधन या करण क्या है ?

समाधान—परिणामिक भावसे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रकी उत्पत्तिमें कोई दूसरा भिन्नित्व न होकर वह स्वभावसे है ।

शंका—किसमें क्षेत्र रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—अपने आपमें ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्रका अधिकरण क्षेत्र ही है ।

शंका—एक ही आकाशमें आधार-आधेय भाव कैसे समभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'सारमें स्तम्भ है' इस प्रकार एक वस्तुमें भी आधार आधेयभाप देखा जाता है ।

शंका—कितने कालपर्यन्त क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्रकी स्थिति कितनी है ?

समाधान—क्षेत्र अनादि और अनन्त है ।

१ ओदइए ओवसमिए बइए अ तथा सभोवसमिए अ । परिणाभि सविवाए अ अविहो भावलोगो व ॥ २०० ॥ (अमि रा, लोक)

२ म २ प्रती ' सारथम ' इति पाठः ।

समिच्च दुविहं, लोगागासमलोगागासं चेदि । लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादि-
द्रव्याणि स लोकः । तद्विपरीतोऽलोकः । अथवा देसभेएण तिविहो, मंदरचूलियादो
उवरिमुट्टुलोगो, मंदरमूलादो देहा अधोलोगो, मंदरपरिच्छिण्णो मब्बलोगो' ति । जथा
दब्बाणि द्विदाणि तधावबोधो अणुगमो । खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो, तेण खेत्ताणु-
गमेण सररीरस्सेव दुविहो णिहेसो । णिहेसो पटुप्पायणं कहणमिदि एयद्धो । ओघेण
द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन, आदेसेण पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन चेदि द्विविधो निर्देशः ।
किमट्टुमुभयथा णिहेसो कीरदे ? न, उभयनयावस्थितसत्त्वाग्रहार्थत्वात् । ण तद्विधो णिहेसो
अत्थि, णयइयसंख्खिजीवविदिरित्तसोदाराणं असंभवादो ।

शंका—क्षेत्र कितने प्रकारका है ?

समाधान—द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है । अथवा, प्रयोजनके
आश्रयसे क्षेत्र वो प्रकारका है, लोकाकाश और अलोकाकाश । जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन
किये जाते हैं, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं । इसके विपरीत जहां जीवादि द्रव्य नहीं
देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं । अथवा, देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है । मंदराचल
(सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है । मंदराचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र
अधोलोक है । मंदराचलसे परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है ।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है ।
क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं । उससे अर्थात् क्षेत्रानुगमसे शरीरके (शरीर सामान्य
और मुखादि अंगोपांग विशेष) निर्देशके समान दो प्रकारका निर्देश किया गया है । निर्देश,
प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं । ओघसे अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे, और
आदेशसे अर्थात् पर्यायार्थिकनयके अवलम्बनसे निर्देश वो प्रकारका है ।

शंका—दोनों नयोंकी अपेक्षासे निर्देश किसलिये किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयमें अवस्थित वस्तुओंके अनुग्रहके लिये ओघ-
निर्देश किया गया है । तथा पर्यायार्थिकनयमें अवस्थित वस्तुओंके अनुग्रहके लिये आवेशनिर्देश
किया गया है ।

इन दोनों निर्देशोंके अतिरिक्त और कोई तीसरा निर्देश नहीं पाया जाता है, क्योंकि,
दोनों प्रकारके नयोंमें अवस्थित जीवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके श्रोताओंका अभाव है, अत-
एव दोनों ही प्रकारसे निर्देश किया गया है ।

१ मेरुय त्रयाणां लोकानां मानदद । अस्यावस्तलदधोलोक । चूलिकापूलादूर्ध्वमूर्ध्वलोक । मध्यम-
प्रमाणस्तिर्विस्तीर्णस्तिर्वलोक । त. रा. भा. ३, १० इह च नहुसमभूमिमागे तनप्रमाणे मेरुमध्ये अष्टप्रदेशो
रचको भवति, तस्योपरितनप्रस्तरस्योपरिष्ठाच्च योजनशतानि यावज्ज्योतिष्मत्स्योपरितलस्तावत् तिर्यलोकस्ताः
पत ऊर्ध्वमागस्थितत्वात् ऊर्ध्वलोको देशोनसत्तरज्जुप्रमाणे रचकस्यावस्तनप्रस्तरास्याधो नन योजनशतानि चारत्ताव-
त्तिर्वलोक, तत पतोऽधोमागस्थितत्वादधोलोकः सातिरेकसत्तरज्जुप्रमाण, भवोलोकोर्ध्वलोकयोर्ध्वमे अष्टाव-
योजनप्रमाणस्तिर्वमागस्थितत्वात् तिर्यलोक इति । स्वार्ता. ३, २. टीका.

‘जहा उदेसो तहा णिहेसो’ ति कट्टु ओघणिहेसट्टुसुत्तरसुत्तं भणदि—

ओघेण मिच्छाइही केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुब्बदे । तं जहा—ओघणिहेसो आदेसबुदासट्टो । मिच्छा-
इट्ठिणिहेसो सेसगुणट्टणपडिसेहट्टो । केवडि खेत्ते’ इदि पुच्छा सुत्तस्स पमाणत्तपटुप्पायण-
फला । सव्वलोगे इदि खेत्तपमाणणिहेसो । एत्थ लोगे चि बुत्ते सत्तरज्जुणं वणो वेतव्वो’ ।
कुदो ? एत्थ खेत्तपमाणाधियारे—

पल्लो सायर सई पदरो य वणगुलो य जगसेही ।

लोयपदरो य लोगो अट्ट दु माणा मुणेयव्वा’ ॥ ५ ॥

‘जिस प्रकारसे उद्देश किया जाता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है’ इस न्यायके
अनुसार ओघनिर्देशके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें
रहते हैं ॥ २ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है—सूत्रमें ‘ओघ’ इस पदका निर्देश,
आदेश प्ररूपणके निराकरणके लिए है । ‘मिथ्यादृष्टि’ इस पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके
प्रतिषेधके लिए है । ‘कितने क्षेत्रमें रहते हैं’ इस पृच्छाका फल सूत्रकी प्रमाणता प्रतिपादन
करना है । ‘सर्वलोकमें’ इस पदसे क्षेत्रके प्रमाणका निर्देश किया है । यहां सूत्रमें ‘लोक’
पेसा सामान्य पद कहनेपर सात राजुओंका घनात्मक लोक प्रहण करना चाहिए । क्योंकि,
यहां क्षेत्रप्रमाणाधिकारमें—

पट्योपम, सागरोपम, सूर्यगुल, प्रतरगुल, घनांगुल, जगज्जेणी, लोकप्रतर और लोक,
ये आठ मान जानना चाहिए ॥ ५ ॥

१ विवक्षित...जवैर्विमानकाले विवक्षितपदविशिष्टत्वेनाप्रव्याकाशः क्षेत्र । गो. जी. नी. प्र. टी. ५४३.

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोक । स. वि. १, ८. मिच्छा च सव्वलोए ॥ पञ्चस. २, २६

३ प्रतिपु ‘केवडिया’ इति पाठ ।

४ म प्रत्योः ‘सुचसुपमाणत्त पटुप्पायण’ इति पाठ, ‘अ-आ-क’ प्रतिपु ‘सुत्तस्स पमाणत्त पटुप्पायण’
इति पाठ ।

५ जगसेहीए सत्तममाणो रज्जु पमासहे । वि. प. १, १३२.

६ जगसेदिवणपमाणो लोयायासो सपचदव्वट्ठिदो । वि. प. १, ११. वउदस रज्जु लोओ उदिकवो रोए
वउदरज्जुवणो । कर्म. ५ कर्म. १५.

७ ति. प. १, १३. त्रि. सा १२. पट्योपमस्य सागरोपमस्य च स्वरूप ति.

८. १, १३-१३०; स. वि. ३, ३८. त. रा. वा. ३०, ३८ अट्टापत्तयस्यार्धज्जेन

वज्जका विरलीकत्त प्रत्येकपट्टापत्तप्रदान कृत्वा अन्योन्यगुणिते यावत्तरेवेदास्तानि शिराकाशप्रदेशैस्तान्वा

इदि एत्य वुत्तलोगगहणादो । जदि एसो लोगो धेय्पदि, तो पंचदन्वाहारआगासस्स गहणं ण पावेदे । कुदो ? तस्मिह सत्तरज्जुधणपमाणेमसेत्तस्सामावां । भवे वा —

हेट्ठा मज्जे उवरि वेत्तासण-अट्ठरी-मुइगणिहो ।

मज्झिमवित्थरोण य चोइसगुणमायदो लोगो ॥ ६ ॥

लोगो अक्काटिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिन्वत्तो ।

जीवाजीविहि फुडो गिच्चो तलस्सखसठणो ॥ ७ ॥

लोयस्स य विक्खभो चउप्पयरो य होइ गायव्वो ।

सत्तेक्कणो य पचेक्कणो य रज्जु मुण्येयव्वा ॥ ८ ॥

इस गाथामें जो लोकका ग्रहण किया गया है उससे जाना जाता है कि यहांपर सात राजुके घनप्रमाण लोकका ग्रहण अभीष्ट है ।

विशेषार्थ—एक प्रदेशवाली सात राजु लम्बी आकारा प्रदेशांपत्तिको जगथेणी कहते हैं । तथा जगथेणीके वर्गीको जगप्रतर और घनको घनलोक कहते हैं । गाथामें इसी क्रमसे जगथेणी, जगप्रतर और लोक पदका ग्रहण किया है । इससे यह ज्ञात होता है कि यहांपर लोकसे घनलोकका अभिप्राय है ।

शंका—यदि यहांपर इसी घनलोकका ग्रहण किया जाता है, तो पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं प्राप्त होता है; क्योंकि, उस लोकमें सात राजुके घनप्रमाणवाले क्षेत्रका अभाव है । और, यदि सद्भाव माना जाये तो—

नीचे वेत्तासन (बैठके मूंड) के समान, मध्यमें छलुरीके समान, और ऊपर मुइंगके समान आकारवाला; तथा मध्यमविस्तारसे अर्थात् एक राजुसे चौदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है ॥ ६ ॥

यह लोक निश्चयतः अकृत्रिम है, अनदि-निघन है, स्वभावसे निर्मित है, जीव और अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है, नित्य है, तथा तालधृष्टके आकारवाला है ॥ ७ ॥

लोकका धिक्कम् (विस्तार) चार प्रकारका है, ऐसा जानना चाहिये । जिसमेंसे अधो-लोकके अन्तमें सात राजु, मध्यमलोकके पास एक राजु, ग्रहलोकके पास पांच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु विस्तार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

कृता स्युशुलभिःपुचन्ते । तदबापण स्युशुलेन गुणितं प्रतरीगुल । तदतरीगुलमपरेण स्युशुलेनाप्यस्त वनोगुल । अस्येयानां बर्षाणां यावत् समयास्तावत्तद्वदमापस्य कृतं, ततोऽस्येयान् खडानपनीयास्येयमेक मार्ग उदया विलोहय एकैकस्मिन् वनोगुल दत्त्वा परस्परं गुणितं जगथेणी । सा अपरया जगथेण्याप्यस्ता प्रतरीलोक । स एवापरया जगथेण्या सन्निति घनलोक । त. रा वा ३, ३८.

१ प्रतिगु 'क्षेपस्समावा' इति पाठ ।

२ जंजू प. ११, १०६.

३ वि. सा. ४ तय चतुर्थवले 'मन्नागासाव्वको गिच्चो' इति पाठ । ४ जंजू प. ११, १०७.

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणं पव्वेति चि ?

एत्य परिहरो बुब्बे । एत्य लोगे चि बुत्ते पंचदन्वाहारआगासस्सेव गहणं, ण अण्णस्स । 'लोगपूरणगदो केवली केवळि खेत्ते, सन्वल्लोगे' इदि वयणादो । जदि लोगो सत्तरज्जुधणपमाणो ण' होदि तो 'लोगपूरणगदो केवली लोगस्स संखेज्जदि भगे' इदि भगेज्ज । ण च अण्णाइरियपरुविदमुदिगायारलोगस्स पमाणं पेक्खिज्जण संखेज्जदिभागत्त-मसिद्धं, गणिज्जमाणे तदोवल्लभादो । तं जहा—मुदिगायारलोयस्स खूँ चोइसरज्जुआयदं एगरज्जुविक्खवं वट्टं लोपादो अवणिय पुथु इवेदव्वं । एवं उविय तस्म फलाणयण-विहणं भणिस्सामो । तं जहा—एदस्स मुहतिरियवट्टस्स एगागासपदेमवहल्लस्स परिठओ एत्तिओ होदि ३१३ । इममेद्वज्जण विक्खंभेद्वेण गुणिदे एत्तियं होदि ३१३ । अधोलोग-भागमिच्छामो चि सत्तहि रज्जुहि गुणिदे खायफलेमत्तियं होदि ५३३ । पुणो णिस्सई-खेत्ते चोइसरज्जुआयदं दो खंडाणि करिय तत्थ हेट्ठिमखंडं धेत्तूण उट्ठं पाटिय पसारिदे

ये ऊपर कही गई सूत्रगाथाएं अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं ?

समाधान—अब यहां ऊपरकी शंकाका परिहार कहते हैं । इस प्रकृत सूत्रमें 'लोक' ऐसा पद कइनेपर पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ही ग्रहण किया है, अन्यका नहीं, क्योंकि, 'लोकपूरणसमुदातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं' इसप्रकारका सूत्रवचन है । यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो 'लोकपूरणसमुदातगत केवली लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं' इसप्रकार कहना चाहिये । और अन्य आचार्योंके द्वारा प्ररूपित सूत्रगाकार लोकके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे, लोकपूरण समुदातगत केवलीका घनलोकके संख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, गणना करनेपर सूत्रगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवें भाग पाया जाता है । यह इसप्रकार है—चौदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत और गोल आकारवाली, ऐसी सूत्रगाकार लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापन करना चाहिये । इसप्रकारसे स्थापित करके अब उसके फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधान कहते हैं । वह इसप्रकार है—सूत्रमें त्रिकरूपसे गोल और आकाशके एक प्रदेशप्रमाण ब्राह्मणवाली इस पूर्वोक्त सूचीकी परिधि ३१३ इतनी होती है । (देखो आगे गाथा नं. १४) इस परिधि के प्रमाणको आधा करके, पुनः उसे एक राजुधिक्रममें आधेसे गुणा करनेपर, उसके क्षेत्रफल का प्रमाण ३१३ इतना होता है । अब हमें लोकके अधोभागका घनफल जाना इष्ट है, इसलिये उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और एक राजुप्रमाण चौड़ी उक्त गोलसूचीका घनफल ५३३ इतना होता है । फिर सूत्रीरहित चौदह राजु लम्बे लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खंड करके उनमेंसे नीचे के अर्थात् अधोलोकसम्बन्धी

१ प्रतिगु 'पमाणं' इति पाठ ।

२ म प्रत्योः 'द्वयवन्' इति पाठ ।

सुपखेचं होऊण चेद्विदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि' ३३३ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि २२३३ । एत्थ मुहवित्थारेण सत्तरज्जुआयामेण छिदिदे दो तिकोणखेत्ताणि एयमायदचउरस्सखेचं च होइ । तत्थ ताव मज्झिमखेचफलमाणिखेदे । एदस्स उस्सेहो सत्त रज्जुओ । विक्खमो पुण एत्तिओ होदि ३३३ । मुहम्मि एगागासपदेसबाहलं, तलम्मि तिणिण रज्जुवाहल्लो त्ति सचहि रज्जुहि मुहवित्थारं गुणिय तलवाहल्लेद्वेण गुणिदे मज्झिम-खेत्तफलमेत्तियं होइ ३४३३३ । संपहि सेसदोखेत्ताणि सत्तरज्जुअवलंबयाणि तेरसुत्तरसेदण

खंडको ग्रहण कर उसे (एक ओरसे) ऊपरसे (लगाकर नीचेतक) काटकर पसारने पर सूर्य (सृणा) के आकारवाला क्षेत्र हो जाता है ।

विशेषार्थ—यहांपर शकाकार, अन्य आंचायाँसे प्ररूपित जिस, मृदंगाकार लोकको इष्टिमें रखकर यह कथन कर रहा है, उसका भाव यह है कि कितने ही आचार्य अधोलोका आकार चारों ओरसे गोल ऐसे वेदासनके समान मानते हैं । जो नीचे गोल आकारवाला तथा सात राजु चौड़ा है, और ऊपर क्रमदाः घटता हुआ मध्यलोकमें गोल आकारवाला तथा एक राजु चौड़ा है । इसके ठीक मध्यमें ऊपरसे नीचेतक स्थित सात राजु लम्बी एक राजु चौड़ी गोल आकारवाली त्रिसनाली है । उसको यदि वेदासनकार अधोलोकके बीचमेंसे निकालकर बचे हुए अधोलोकको एक ओरसे ऊपरसे नीचेतक काटकर पसार दिया जाय, तो उसका आकार ठीक सूर्यके समान हो जाता है ।

इस सूर्यकार क्षेत्रके मुखका विस्तार ३३३ इतना है, और तलका विस्तार २२३३ राजुप्रमाण है । इसे मुखविस्तारसे (अर्थात् मुखविस्तारके अन्तसे लगाकर दोनों ओर) सात राजु लम्बा नीचेकी ओर छेदनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्रक्षेत्र, इसप्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं ।

उक्त प्रकारसे बने हुए इन तीन क्षेत्रोंमेंसे पहले आयतचतुरस्र आकारवाले मध्यवर्ती क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । इस आयतचतुरस्र क्षेत्रका उत्सेध (ऊंचाई) सात राजु है । और विष्कम्भ ३३३ इतने राजु है । मुखमें एक प्रदेश-प्रमाण वाहल्य (मोटाई) है और तल-भागमें तीन राजुप्रमाण वाहल्य है, इसलिए उत्सेधका प्रमाण जो सात राजु है उससे मुखके प्रमाणको गुणा करके तलभागका वाहल्य जो तीन राजु है उसके आधेसे अर्थात् डेढ़ राजुसे गुणा करने पर मध्यम क्षेत्रका अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल $३३३ \times ३३३ \times ३ = ३४३३$ इतना होता है ।

अब दोष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं वे सात राजु लम्बे हैं, और एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे अबतलीस खंड अधिक नौ राजु भुजावाले हैं अर्थात् उनका

१ अ-क प्रत्यो ' एत्तिओ होदि ' इति पाठो नास्ति ।

एगरज्जुं खंडिय तत्थ अट्टेतालीसखंडमहिय-णवरज्जुमुजाणि भुजकोडिपाओगरुणाणि कण्णभूमीए आलिहिय दोसु वि दिसासु मज्झम्मि फालिदे तिणिण खेत्ताणि होति । तत्थ दो खेत्ताणि अट्टुरज्जुस्सेहाणि छन्वीसुत्तर-वेसेदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्टि-खंडमहियखंडसेदण सादिरेयचत्तारिरज्जुविकखंभाणि दक्खिण-चामहेट्टिमकोणे तिणिण रज्जुवाहल्लानि, दक्खिण-चामकोणेषु जहाकमेण उवरिम-हेट्टिमेषु दिवदुरज्जुवाहल्लानि, अवसेसदोकोणेषु एगागासवाहल्लानि, अणत्थ क्रम-वट्टिगदवाहल्लानि वेत्तण तत्थ एग-खेत्तस्सुवारे विदियखेत्ते विवज्जासं काळण द्विवेदे सव्वत्थ तिणिण रज्जुवाहल्लेचं होइ । एदस्स वित्थारपुस्सेहेण गुणिय वेहेण गुणिदे खायफलमेत्तियं होइ ४९३३३ । अवसेस-चत्तारि खेत्ताणि अट्टुरज्जुस्सेहाणि छन्वीसुत्तरवेसेदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्टि-अधोविस्तार ९३३ है । इसी विस्तारको यहां त्रिकोण क्षेत्रको अपेक्षासे ' भुजा ' कहा है । तथा उन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंका भुजा और कोटिके यथायोग्य संभवित कर्णका प्रमाण है । इन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंको कर्णभूमिसे लेकर दोनों ही दिशाओंमें दीर्घमंसे काटनेपर तीन तीन क्षेत्र हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—यहांपर त्रिकोण क्षेत्रके भुजा और कोटिका प्रमाण तो दिया है, पर कर्णका प्रमाण नहीं दिया है । उसके निकालनेकी प्रक्रिया यह है कि भुजाके प्रमाणका वर्ग और कोटिके प्रमाणका वर्ग जितना हो, उन्हें जोड़कर उसका वर्गमूल निकालना चाहिये, जो वर्गमूलका प्रमाण आवे, वही कर्णरेखाका प्रमाण समझना चाहिए ।

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुए इन तीन तीन क्षेत्रोंमें एक एक आयतचतुरस्रक्षेत्र और दो दो त्रिकोणक्षेत्र जानना चाहिये । उनमें सात राजु उत्सेधवाले आयतचतुरस्र क्षेत्रके दोषे बायें दोनों ओर जो दो आयतचतुरस्रक्षेत्र हैं, उनमें प्रत्येकका साठे तीन राजु उत्सेध है । तथा दो सौ छन्वीससे एक राजुको खंडित कर उनमें एकसौ एकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात् ४३३ प्रमाण विकम्भ है । तथा दक्षिण और वाम (दायें बायें) अयस्तन कोन पर तीन राजु बाहल्य है । अन्य दक्षिण चामकोणोंपर यथाक्रमत ऊपर और नीचे डेढ़ राजु बाहल्य है । अवाशिष्ट दो कोनोंपर एक आकाशप्रदेश-प्रमाण बाहल्य है । और अन्यत्र अर्थात् दीर्घमें क्रमसे वृद्धिको प्राप्त बाहल्य है । इसप्रकारके इन दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंको लेकर (उठाकर) उनमें एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको विपर्योस अर्थात् उलटा करके स्थापित करनेपर सर्वत्र तीन राजु बाहल्यवाला क्षेत्र हो जाता है । इसके विस्तारको उत्सेधसे गुणाकर पुन वेध (मोटाई) से गुणा करने पर घनफल $४३३ \times ३३३ \times ३ = ४९३३३$ इतना हो जाता है । अब अवशिष्ट जो चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, वे साठे तीन राजु उत्सेधवाले हैं, तथा दोसौ छन्वीससे एक राजुको खंडितकर उनमेंसे एकसौ एकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात्

१ प्रतिधु ' कम्भ- ' इति पाठ ।

२ इष्टो बाहुयं स्यात् तत्स्यर्धियां दिशतिरो बाहुः । य्यसे चतुरस्रे वा सा कोटि कीर्तिता तन्नैः ॥ तत्कयो-योगपद कर्ण । लीलावती क्षेत्रव्य. १.

सदखंडेहि सादियचचारिज्जुजाणि कण्णस्खेत्ते आलिहिय दोसु वि पासेसु मज्झमि छिण्णेसु चचारि आयदचउरंसखेत्ताणि अट्ट तिकोणखेत्ताणि च होति । एत्थ चटुण्ह-मायदचउरंसखेत्ताणं फलं पुब्बिल्लदोखेत्तफलस्स चउम्भागमेत्तं होदि । चटुसु वि खेत्तेसु बाहल्लाविरोहेण एगट्ठं कदेसु तिण्णिणज्जुबाहल्लं, पुब्बिल्लखेत्तविकखंभायमेहिंतो अट्टमेत्त-विकखंभायमपमाणखेत्तुवलंभादो । किमट्ठं चटुण्हं पि मिलिदाणं तिण्णिण रज्जुबाहल्लत्तं ? पुब्बिल्लखेत्तवाहल्लादो संपहियखेत्ताणमट्टमेत्तवाहल्लं होदूण तदुत्तेहं पेक्खिदूण अट्ट-मेत्तुस्सेहदंसणादो । सपहि सेसअट्टखेत्ताणि पुब्बं व खंडिय तत्थ सोलस तिकोणखेत्ताणि अणंतरादीदखेत्ताणमुत्तेहदो विकखंभादो बाहल्लादो च अट्टमेत्ताणि अवणिय अट्टण्ह-मायदचउरंसखेत्ताणं फलमणंतराहंक्रतचटुसेत्तफलस्स चउम्भागमेत्तं होदि । एवं सोलस-वर्त्तासि-चउसट्ठिआदिकमेण आयदचउरंसखेत्ताणि पुब्बिल्लखेत्तफलादो चउम्भागमेत्त-फलाणि होदूण गच्छंति जात्र अविभागपलिच्छेदं पत्तं ति । एवमुपपण्णासेसखेत्तफलेला-

४३३३ राजु प्रमाण मुजायोले हैं । उन्हें कर्णक्षेत्रसे लगाकर दोनों ही पादवर्भागोंमें बीचसे छिन करनेपर चार आयतचतुरस्रक्षेत्र और आठ त्रिकोणक्षेत्र हो जाते हैं ।

यहाँपर चारों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल पहलेके दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थभाग मात्र होता है, क्योंकि, चारों ही क्षेत्रोंको बाह्यल्यके अविवरोधसे एकत्र करनेपर अर्थात् यथाक्रमसे विपर्यास कर उलटा रखने पर तीन राजु बाह्यल्य और पहलेके क्षेत्रके विष्कम्भ और आयामसे अर्धमात्र विष्कम्भ और आयाम प्रमाणवाला क्षेत्र पाया जाता है ।

शंका — इन चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके मिलाने पर तीन राजु बाह्यल्य कैसे होता है ? समाधान — क्योंकि, पहले बताये हुये आयतचतुरस्र क्षेत्रके बाह्यल्यसे इस समयके आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका बाह्यल्य आधा ही है । और पहलेके उनके उत्सेधकी ओगद्या अबके इनका उत्सेध भी आधा ही दिखाई देता है ।

अब शेष रहे आठ त्रिकोण क्षेत्रोंको पूर्वके समान ही खंडित करनेपर उनमें सोलह त्रिकोणक्षेत्र और आठ आयतचतुरस्रक्षेत्र हो जाते हैं ।

पहले बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका उत्सेधसे, विष्कम्भसे और बाह्यल्यसे अर्धप्रमाण निकालकर आठों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल अभी बताये गये चार आयत-चतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थ भागमात्र होता है । इसीप्रकार सोलह, बत्तीस, चौसठ आदिकमेसे आयतचतुरस्रक्षेत्र पहले पहलेके आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलके चतुर्थ भागमात्र घनफलवाले होते हुए तब तक चले जायेंगे जबतक कि अविभागप्रतिच्छेद्य अर्थात् एक परमाणु (प्रदेश) नहीं प्राप्त हो जायगा । इसप्रकारसे उत्पन्न हुए समस्त क्षेत्रोंके घनफलके जोड़नेका

‘ प्रतिगु ’ कम्भ ’ इति पाठ ।

२ अ-आ-क प्रतिगु ‘ वज्जय ’ इति पाठ ।

वणविहाणं वुच्चदे । तं जहा-सन्वखेत्तफलाणि चउगुणक्रमेण अवट्ठिदाणि चि काटूण तत्थ अंतिमखेत्तफलं चउट्ठि गुणिय रूवूणं काळण तिगुणिदळेदेण ओवट्ठिदे एचियं होइ ६५३३३३ । अथेलोगस्स सन्वखेत्तफलसमासो १०६३३३३३ ।

संपहि उट्टलोगखेत्तफलमाणेमो । तत्थ खंडखेत्तफलं पुण्यविहाणेण आणिदे एत्तियं होइ ५३३३३३ । संपहि उवरिममद्वं पंचरज्जुविकखंभुदेसे खंडियं तत्थ एगखंडं पुथ डविय मज्झमिमे सेसखंडं उट्ट फालिय पसरिदे सुव्यखेत्तं होदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि ३३३३ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि १५३३३३ । मुहम्मि एगागासवाहल्लं, तलम्मि मुहम्मि माणमज्झमि वेरज्जुवाहल्लं, पुणो कमहाणीए गंतूग हेट्ठिमदोकोणेषु एगागासवाहल्लं होदि । एदम्मि खेत्ते मुहवित्थारविकखंभेण खंडिदे दोणि तिकोणखेत्ताणि एगमायद-

विधान कहते हैं । वह इसप्रकार है-सभी क्षेत्रोंका घनफल चतुर्गुणितक्रमसे अवस्थित है, इसलिए उनमें अन्तिम क्षेत्रफलको चारसे गुणा करके और चारमेंसे एक कम अर्थात् तीनसे भाग देने पर घनफल ६५३३३३ इतना होता है । और अथेलोकके सभी क्षेत्रोंका घनफल १०६३३३३३ होता है ।

अब चारों ओरसे सुदृग्गकार ऊर्ध्वलोकक रूप क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । उसमें एक राजु चौड़े, सात राजु लम्बे और गोल आकारवाले सूचीरूप क्षेत्रका घनफल पहले अथो-लोकमें कहे गये विधानसे निकालनेपर ५३३३३ राजु इतना होता है । (इस सूचीको उर्ध्व-लोकके मध्यभागसे निकालकर पृथक् स्थापन कर देना चाहिये ।) अब, लोकको मध्यलोकसे काटनेपर जो दो भाग पहले हुए थे उसमेंके ऊपरी अर्ध भागको, पांच राजु है विष्कम्भ अर्थात् परेसे ब्रह्मलोकके अन्तस्थित प्रदेशपर बीचसे खंडितकर उसमेंसे एक खंडको पृथक् स्थापन कर बचे हुए खंडको मध्यमें ऊपरसे नीचेतक फाड़कर पसारनेसे सूर्यके आकारवाला क्षेत्र हो जाता है । उसके मुखका विस्तार ३३३३ इतना होता है । तथा तलविस्तार १५३३३ इतना होता है । इस सूर्यक्षेत्रके मुखमें मोटाई आकाशके एक प्रदेश प्रमाण है, और तलके मुख-प्रमाण मध्यभागमें दो राजु मोटाई है, पुनः कमसे हानिको प्राप्त होती हुई अर्थात् कम होती हुई इसी तलभागके दोनों कोनों पर आकाशके एक प्रदेश प्रमाण मोटाई है । इस सूर्यक्षेत्रको, मुखविस्तार-प्रमाण विष्कम्भसे खंडित करनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्र

१ म प्रती ‘ चउ ’ इत्यपि पाठ ।

२ म प्रत्यो ‘ उवरिममद्वपच- ’, ‘ उवरिमपथ पच- ’, अ-आ-क प्रतिगु ‘ उवरिममद्वपच- ’ इति पाठ ।

३ म २ प्रती, ‘ सडियं ’ इति पाठ; ।

४ म प्रत्यो. ‘ वारिड ’ इति पाठ ।

चउरंसखेचं च होई । आयदचउरंसखेचस अदुइरज्जुदोहस सादियेतिणिरज्जुविकखं-
भस्स तलस्मि वे रज्जु मुहम्मि एगागासवाहलस फलमाणे मो । तं जहा- विकखंभेणुस्सेहं
गुणेज्जा ओवेहेणेगरज्जुणा गुणिदे मज्झल्लखेचफलं होइ । तस्स पमाणमेदं ११३३३ । सेस-
दो तिकोणखेत्ताणि अदुइरज्जुस्सेहाणि एगरज्जुं तेरसुत्तरसेदण खंडिय तत्थ वचीसखंडम्भहिय-
छरज्जुविकखंभाणि पुवं व मज्झम्मि खंडिय तत्थुप्पणाणि चत्तारि तिकोणखेत्ताणि
ओसारिय दोण्हमायदचउरंसखेत्ताणं पाऊणदोरज्जुस्सेहाणं तेरसुत्तरसेदण एगरज्जुं रंडिय
तत्थ सोलसखंडम्भहिय तिणिरज्जुविकखंभाणं दो-एक-सुण्णेकरज्जुवाहल्लाणं फल-
माणे मो । तं जहा- एगखेचस्सुवरि विदियखेचं विवज्जासं काऊण डुविदे वेरज्जुवाहल्लेभं
खेचं होइ । पुणो विकखंभुस्सेहाण संवगं काऊण ओवेहेण गुणिदे खेत्तफलं होदि । तस्स

क्षेत्र हो जाते हैं । उनमेंसे पहले आयतचतुरस्र क्षेत्रका जो साढे तीन राजु लम्बा है, तीन
राजुसे कुछ अधिक अर्थात् ३१११ राजु चौड़ा है, तलमें दो राजु और मुखमें एक आकाश
प्रदेश प्रमाण मोटा है, ऐसे उस आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । वह इसप्रकार
है— विक्रम ३०९ से उत्सेघ ३ को गुणाकर पुनः उसे मोटार्हिके प्रमाण एक राजुसे गुणा
करने पर मध्यम अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल आ जाता है । उसका प्रमाण
 $309 \times 3 \times 3 = 11133$ इतना होता है । शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं, जो कि साढे तीन
राजु ऊंचे तथा एक राजुको एक सौ तेरहसे खंडित कर उनमें बचीस खंडसे अधिक छह राजु
अर्थात् ६३३ राजु चौड़े हैं, उन्हें पहलेके समान ही मध्यमेंसे खंडित कर उनमें उत्पन्न हुए
चार त्रिकोण क्षेत्रोंको दूर रख कर दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका, जो कि पौने दो राजु ऊंचाईवाले,
तथा एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमें सोलह खंडोंसे अधिक तीन राजु अर्थात्
३१११ राजु प्रमाण चौड़े, तथा क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु मोटे हैं, उनके
घनफलको निकालते हैं ।

विशेषार्थ—यहां पर जो आयतचतुरस्रक्षेत्रकी मोटार्हिक्रमशः दो, एक, शून्य और
एक राजु प्रमाण कही है, उसका अभिप्राय यह है कि घनलोकके पासवाले भीतरी भागकी
मोटार्हिको राजु है । उसीके बाहरी भागकी मोटार्हिको एक राजु है । कर्णरेखावाले क्षेत्रकी मोटार्हिको
शून्य या एक प्रदेश है और कोटिरेखाके भागवाले ऊपरी क्षेत्रकी मोटार्हिको एक राजु है ।

वह इसप्रकार है— एक आयतचतुरस्रक्षेत्रके ऊपर दूसरे आयतचतुरस्रक्षेत्रको उलटा
करके रखने पर दो राजुकी मोटार्हियाला एक क्षेत्र हो जाता है । पुनः विक्रम और उत्सेघका
संवर्ग अर्थात् परस्पर गुणन करके येघसे गुणा करने पर उक्त क्षेत्रका घनफल होता है,

१ म प्रत्यो ११११ इति पाठः ।
३२१

२ प्रविष्टु 'तत्थुप्पणा' इति पाठः ।

पमाणमेदं १०३३३ । पुणो सेसचउण्हं खेत्ताणं फलमेदस्स चउवभागमेचं होदि । कारणं
सुगमं, अधोलोपपरूखणाए परूविदत्तादो । जेणवं सव्वखेत्तफलाणि अणंतराङ्कितवेत्तफलादो
चउवभागमेणवाडिदाणि, तेण तेसिं फले एत्थ मेलाविदे एत्तियं होदि १४१६६ । उड्डुलोग-
खेत्तस्स सव्वफलसमासो एत्तिओ होइ ५८११६६ । उड्डुधोलोगखेत्तफलसमासो एत्तिओ
होदि १६४३३६६ । तदो सिद्धं घणलोगस्स संखेज्जदिभागचं । ण च एदव्वदिरित्तमणं
सत्तरज्जुघणपमाणं लोगसण्णिदं खेत्तमत्थि, जेण पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो
अणो होज्ज १ ण च लोगालोगसु दोसु वि द्विदसत्तरज्जुघणमेत्तागासपदेसाणं पमाणयण-
लोपववएसो, लोगसण्णाए जादिच्छियत्तपसंगा । होदु चे ण, सव्वागास-सेटि-पदर-घणाणं

जिसका प्रमाण $\frac{1}{2} \times 355 \times 3 = 10333$ इतना होता है । पुनः जो शेष चार त्रिकोण
क्षेत्र हैं, उनका घनफल इस आयतचतुरस्रक्षेत्रके चतुर्थभागमात्र होता है । इसका कारण
सुगम है, क्योंकि, अधोलोककी प्ररूपणमें कह आये हैं (पृ १६) । चूँकि इसप्रकार सर्व त्रिकोण
क्षेत्रोंके घनफल अनन्तर अतिक्रान्त अर्थात् अभी पहले बताये गये क्षेत्रोंके घनफलसे चतुर्भागिके
क्रमसे अवस्थित हैं, इसलिये उनके घनफलको यहाँ अर्थात् १०३३३ में मिलाने पर १४१६६
इतना प्रमाण हो जाता है । उर्ध्वलोकका समस्त घनफल ५८११६६ इतना होता है ।

विशेषार्थ—ऊर्ध्वलोकका यह घनफल इसप्रकार आता है—ऊपर जो प्रमाण
बतलाया गया है, वह प्रमाण ऊर्ध्वलोकके विभक्त किये गये दो भागोंमेंसे एक भागका है,
इसलिये दोनों खंडोंका घनफल लानेके लिए आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलको दुना किया, तब
 $14166 \times 2 = 28332$ हुआ । तथा त्रिकोणक्षेत्रोंका भी घनफल दुना किया, तब $14166 \times 2 = 28332$ हुआ । इसप्रकार ऊर्ध्वलोककी खूबीका, आयतचतुरस्र और त्रिकोणक्षेत्रोंका
समस्त घनफल जोड़ देने पर $28332 + 28332 = 56664 = 56664$ होता है ।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोकका घनफल जोड़ देनेपर $56664 + 56664 = 113328 = 113328$
इतना प्रमाण होता है । इसलिये अन्य आचार्योंके द्वारा माना हुआ लोक घनलोकके संख्यातवें
भागप्रमाण सिद्ध हुआ । और, इस लोकके अतिरिक्त सात राजुके घनप्रमाण लोकसंज्ञक अन्य
कोई क्षेत्र है नहीं, जिससे कि प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायरूपलोकसे भिन्न माना जावे ।
और न लोकाकाश तथा अलोकाकाश, इन दोनोंमें ही स्थित सात राजुके घनमात्र आकाश-
प्रदेशोंके प्रमाणकी घनलोकसंज्ञा है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकसंज्ञाके यादृच्छिकपनेका
प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका—यदि लोकसंज्ञाको यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है तो हो जाओ ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संपूर्ण आकाश, जगधेणी, जगप्रतर और घनलोक, इन

१ म १ प्रत्यो ५८ ५८ म २ प्रत्यो १३११ इति पाठः ।
१३११

२ 'भागसं' ण च ' इति स्थाने क प्रत्यो 'भागस गणयन्नप', आ प्रत्यो 'भागसं गणिय', म प्रत्यो
'-भागसं न' इति पाठः ।

वि जादिच्छियसण्णापसंगादो । किं च 'पदरगदो केवली केवळि खेते, लोगे असंखेखदि-
भागणे' । उल्लोणेण दुवे उल्लोणा उल्लोणास्स तिभागेण देखणेण सादिरगा 'इच्छेदस्स
सादिरयदुगुणत्तरस्स उल्लोणादो कइण्णहाणववत्तीदो' सिद्धं देण्हं लोगणमेगचमिदि ।
तन्हा पमाणलोगो' छद्वस्समुदयलोगादो आगासपदेसगणणाए समाणो ति घेत्त्वो ।
कथं लोगो पिण्डिअमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होज ! वुच्चदे- लोगो णाम सव्वागास-
मव्वत्थो चोइसरज्जुआयामो दोसु वि दिसासु मूलद्ध-तिणि-चउन्भाग-चरिसेसु सत्तेक्क-
पंचेक्काज्जुरंदो सव्वत्थ सत्तरज्जुवाहल्लो वड्ढि-हाणीहि छिददोपंतो, चोइसरज्जुआयद-

सभी संज्ञाओंको भी यादच्छिक्कपनेका प्रसंग आजायाग ।

दूसरी बात यह है कि 'प्रतरसमुद्धातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
भसंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकमें रहते हैं । लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व
लोकोंका प्रमाण ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण है ।' इसप्रकार
ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा इस साधिका दुगुणताका कथन अन्यथा बन नहीं सकता था, अतएव
प्रमाणलोक और द्रव्यलोक इन दोनों लोकोंका एकत्व सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—यहां पर प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रका प्रमाण जो ऊर्ध्वलोककी
अपेक्षा दो ऊर्ध्वलोक और उसीके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक बताया है, उसका अभिप्राय
यह है कि ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है, इसे दूना करनेपर २९४ घनराजु हुए । इसमें
१४७ का त्रिभाग ४९ घनराजुके जोड़ देनेपर ३४३ घनराजु होते हैं जो कि घनलोकका प्रमाण
है । प्रतरसमुद्धातगत केवली लोकान्तमें स्थित यातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर शेष संपूर्ण
क्षेत्रको व्याप्त कर लेते हैं, इसलिये ३४३ घनराजुमेंसे यातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको कम कर
देना चाहिये । यही यहां पर देशोन क्षेत्रका अभिप्राय है ।

इसलिये, उक्तप्रकारसे प्रमाणलोक और द्रव्यलोकके एक सिद्ध हो जानेपर, प्रमाण-
लोक छह द्रव्योंके समुदायवाले लोकसे आकाशके प्रवेशगणनाकी अपेक्षा समान है, ऐसा
अर्थ सीकार करना चाहिये ।

शंका—पिंडरूपसे एकत्रित करनेपर, अर्थात् घनरूप किया गया, यह लोक सात
राजुके घनप्रमाण कैसे हो जाता है ?

समाधान—उक्त शंकाका उत्तर कहते हैं—जो सर्व आकाशके मध्य भागमें स्थित
है, चौदह राजु आयामवाला है, दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल,
अर्धभाग, त्रि-चतुर्भाग और चरमभागमें यथाक्रमसे सात, एक, पांच और एक राजु विस्तार-
वाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, दृष्टि और हानिके द्वारा जिसके दोनों प्रान्तभाग

१ म प्रत्यो 'लोगो असंखेखदिमाणो' इति पाठः ।

२ उदयवल आयाम बात पुञ्जावलेण भूमिगुदे । सकेकवंक एक य रज्जु मयसादि हाणिषयं ॥ नि. सा. ११३.

रज्जुवग्गमुहलोगणालिगम्भो' । एसो पिण्डिअमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होदि' । जदि लोगो
एरिसो ण घेप्पदि तो 'पदरगदेकवल्लेखेत्तसाहण्हं वुच्च-दे-गाहाओ णिरत्थियाओ होअ,
तत्थ वुत्तफलस्स अण्णहा संभवाभावा । काओ ताओ दो गाहाओ ति वुत्ते वुच्चदे—

मुह-तलसमास-अद्ध वुत्सेधगुणं गुणं च वेधेण ।

घणगणिदं जागेज्जो वेत्तासणसंघिये खेते' ॥ ९ ॥

स्थित हैं, चौदह राजु लम्बी एक राजुके बर्गप्रमाण मुख गाली लोकनाली जिसके गर्भमें है, ऐसा
यह पिंडरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् $७ \times ७ \times ७ = ३४३$ राजु है ।

विशेषार्थ—लोकका उपर्युक्त विस्तार इसप्रकार है—लोक सर्व आकाशके मध्यमें
स्थित है । उसका आयाम चौदह राजु है । पूर्व-पश्चिम तलभाग सात राजु, लोकके आधे
अर्थात् सात राजु ऊपर जाकर मध्यलोकमें एक राजु, लोकके पौनभाग अर्थात् साढ़े दस
राजु ऊपर जाकर ब्रह्मलोकमें पांच राजु, और पूरे चौदह राजु ऊपर जाकर लोकके अन्तिम
भागमें एक राजु विस्तार है । लोकका उत्तर-दक्षिण विस्तार सर्वत्र सात राजु है । इसप्रकारके
लोकके बीच एक राजु चौड़ी-चतुर्भोज और चौदह राजु ऊंची बसनाड़ी है । पूर्व-पश्चिम भागमें
लोक घट-बड़ विस्तारवाला है । इसप्रकार लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है ।

यदि इसप्रकारका लोक ग्रहण नहीं किया जायगा, तो प्रतरसमुद्धातगत केवलीके
क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गथाएं निरर्थक हो जायेंगी, क्योंकि, उन गथाओंमें कहा गया
घनफल लोकको अन्य प्रकारसे माननेपर संभव नहीं है ।

शंका—वे दोनों गथाएं कौनसी हैं ?

समाधान—ऐसी शंका करनेपर कहते हैं—

मुखभाग और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करो, पुनः उसे उत्सेघसे गुणा
करो, पुनः मोटाईसे गुणा करो । ऐसा करनेपर वेत्तासन आकारसे स्थित अधोलोकरूप क्षेत्रका
घनफल जानना चाहिये ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—वेत्तासन आकारवाले अधोलोकके मुखविस्तारका प्रमाण एक राजु है और
तलविस्तारका प्रमाण सात राजु है । इन दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए । उसे आधा कर अधो-
लोककी ऊर्ध्वार्धके प्रमाण सात राजुसे गुणा करनेपर अठारह हुए । इसे संख्याको
अधोलोककी उत्तर-दक्षिण दिशाकी मोटाई सात राजुसे गुणा करनेपर एकसौ छयानवे
राजु हुए । यही अधोलोकका घनफल है । जैसे— $७ + १ = ८$, $८ \times २ = १६$, $१६ \times ७ = ११२$ घनराजु ।

१ लोयबहुमज्जदेते रुत्से सात्थ रज्जुत्तरादश । चोइसरज्जुत्तुंगा तसगली होदि गुणणामो ॥ नि. सा. १४३

२ सन्धमासमणत्त तस्स य बहुमज्जदेपमागदि । कागेडव्वलपदेसो जगगेडेवग्गपमागो हु ॥ नि. सा. ३.

३ ति प १, २६५ अंश प ११, १०८.

मूल मन्त्रेण गुण मुहसहिदमुत्सेधकदिगुणिद ।

धनगणिद जाणेज्जो मुहसठाणलेत्तिहिं ॥ १० ॥

ण च एदस्स लोगस्स पढमगाहाए सह विरोहो, एगदिसाए वेत्तासण-मुदिंगसंठाण-दंसणादो । ण च एत्थ झल्लरीसंठाणं गत्थि, मज्झिम्हि संयथुरमणेदहिपरिक्खित्तदेसेण चंदमंडलमिव समंतदो असंखेज्जजोयणलेद्रेण जोयणलम्बवाहल्लेण झल्लरीसमाणत्तादो । ण च दिट्ठतो दारिड्ढिएण सच्चहा^१ समाणो, दोण्हं पि अभावप्पसंगादो । ण च ताल-रुक्खसंठाणमेत्थ^२ ण संभवह, एगदिसाए तालरुक्खसंठाणदंसणादो । ण च तइयाए गाहाए

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणा करो, पुनः मुखसहित अर्ध भागको उत्सेधकी कृति अर्थात् धर्गसे गुणा करो । ऐसा करनेपर मृदंगके आकारवाले क्षेत्रमें प्राप्त धनफल जानना चाहिये ॥ १० ॥

विशेषार्थ—ऊर्ध्वलोक, धीचमें मोटा और ऊपर नीचे सकड़ा होनेसे मृदगाकारक्षेत्र कहलाता है । इस मृदगाकार ऊर्ध्वलोकका मूलभागसम्बन्धी विस्तार एक राजुसे मध्यभागके विस्तार पाच राजुको गुणा करनेपर $१ \times ५ = ५$ हुए । उसमें मुखविस्तार एक राजुको जोड़कर $५ + १ = ६$ आधा करनेपर $६ - २ = ३$ रहे । इसे ऊंचाई सातके वर्गने $७ \times ७ = ४९$ गुणा करनेपर $४९ \times ३ = १४७$ हुए । यही एकसौ सेंतालीस राजु ऊर्ध्वलोकका धनफल है । इसप्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके धनफलोंको जोड़ देनेपर $१९६ + १४७ = ३४३$ तीनसौ सेंतालीस राजु सर्व लोकका धनफल होता है ।

और, उक्त प्रकारके इस लोकका 'हेट्टा मल्ले उवार् वित्तासण-झल्लरी-मुहगणिभो' इत्यादि इस प्रथम गाथाके साथ भी विरोध नहीं है, क्योंकि, एक दिशामें वेत्तासन और मृदंगका आकार दिखाई देता है । यदि कहा जाय कि अभी बताये गए लोकमें (मध्य भागपर) झल्लरीका आकार नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, मध्यलोकमें स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परिक्षिप्त, तथा चारों ओरसे असंख्यात योजन विस्तारवाला और एक लाख योजन मोटाईवाला यह मध्यवर्ती प्रदेश चन्द्रमंडलकी तरह झल्लरीके समान दिखाई देता है । और छग्रान्त सर्वथा दार्शनिके समान नहीं होता है, अन्यथा दोनोंके ही अभावका प्रसंग आ जायगा । यदि कहा जाय कि ऊपर बताये गए इस लोकके आकारमें तालवृक्षके समान आकार संभव नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, एक दिशासे देखने पर तालवृक्षके समान संस्थान दिखाई देता है । और 'लौयस्स य विक्खम्मो चउपपारो य होइ गायब्बो' इत्यादि इस

१ जवू प ११, ११०.

२ पुब्बावरेण लोमो मूले मन्त्रे तदेव उवरिप्पि । नवेत्तासण झल्लरी मुदिंगसठाणपरिणमो ॥ उतर दक्खिण-पासे सठाणो दंक्खिण्णितीससिं । जहंवा कुल्लणीतीससिं आयंरचउसररणमिभो ॥ जवू प ४, ४-५.

३ म प्रत्यो 'सस्सहा' इति पाठ । ४ श्रुतिषु 'मेत' इति पाठ ।

सह विरोहो, एत्थ वि दोसु दिसासु चउत्तिवहविक्खवंमंदंमादो । ण च सत्तरुब्बवाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो । तम्हा एरिसो चैव लाग्गा सि धेत्तब्बो ।

एत्थ चौदगो भणदि—कथमणंता जीवा असंखेज्जपंदसिए लोए अच्छंति । जदि एक्कमिह आगासपदेसे एकको चैव जीवो अच्छदि तो असंखेज्जजीवाणं यत्ती^१ होदूण अवरंति जीवाणमलोगे अच्छणं पवेदि, तेसिमभावो वा । ण च तेसिमभावो अत्थि, 'अणंता जीवा' ति अणेण सुत्तेण मह विरोधा । ण च अलोगागासे वि सेसाणमच्छण-मत्थि, लोगालोगविहायस्स अभावावचीदो । ण च एगागासपदेसे एगो जीवो अच्छदि, 'एगजीवस्स जहणोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता' ति वेदणाखेत्तविधाने परूविदत्तादो । तम्हा लोगमज्झमिह जदि हंति, तो लोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि चैव जीविहि होदव्वमिदि ?

एत्थ परिहारो बुच्चदे—णेदं घडदे, पेगगलणं पि असंखेज्जत्तप्पसंगादो । कथं ?

तीसरी गाथाके साथ भी विरोध नहीं आता है, क्योंकि, यद्वापर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों ही दिशाओंमें गायोक्त चारों ही प्रकारके विग्रह देखे जाते हैं । तथा लोकके उत्तर-दक्षिणभागमें सर्वत्र सात राजुका बाहुल्य भी करणानुयोगसूत्रके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि, करणानुयोगसूत्रमें सात राजुके बाहुल्यके विधान व प्रतिषेधका अभाव है । इसलिए अभी कथे गए आकारवाला ही लाफ है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

शंका—यद्वापर शंकाकार कहता है कि असंख्यात प्रदेशगले लोकमें अनन्त संख्या-वाले जीव कैसे रह सकते हैं ? यदि एक आकाशके प्रदेशमें एक ही जीव रहे, तो भी सर्व लोकमें असंख्यात जीवोंकी स्थिति होकर अवशिष्ट अन्य जीवोंका अलोकाकाशमें रहना प्राप्त होता है, अथवा उन शप जीवोंका अभाव प्राप्त होता है । किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, उक्त कथनका जीव अनन्त है^२ इस सूत्रके साथ विरोध आता है । और न अलोकाकाशमें भी शेष जीवोंका रहना वनता है, क्योंकि ऐसा माननेपर, लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है । दूसरी बात यह भी है कि आकाशके एक प्रदेशमें एक जीव रहता भी नहीं है, क्योंकि, 'एक जीवकी जघन्य अवगाहना भी अंगुलेके असंख्यातवै भागमात्र होती है' ऐसा वेदनाखंडक वेदनाश्रेत्रविधान नामक अनुयोगद्वारमें प्रतिपादन किया गया है । इसलिये यदि लोकक मध्यमें जीव रहते हैं, तो वे लोकके असंख्यातवै भागमात्र ही शोना चाहिए ?

समाधान—अब यद्वापर इस शंकाका परिहार कहते हैं—शंकाकारका उक्त कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त कथनके मान लेनेपर पुद्गलोंके भी असंख्यातपतेका प्रसंग आ जाता है ।

शंका—पुद्गलोंके असंख्यात होनेका प्रसंग कैसे आ जावेगा ?

१ म प्रती 'वृजो', अ प्रती 'वृती', क प्रती 'वृती' इति पाठः ।

इच्छिद्वो खीरकुम्भस्स मधुकुंभो न्व ।

तम्हा ओगाहणलक्खणेण सिद्धलोगागासस्स ओगाहणमाहप्पमाइरियपरंपरागदेवेद-
सेण भाणिस्सामो । तं जहा-उस्सेहधणं गुलस्स असंखेसिदिभागमेत्ते खेत्ते सुहुमणिगोदजीवस्स
जहणोगाहणा भवदि । तम्हि द्विदधणलोगमेत्तजीवपदेसेसु पडिपदेसमभवसिद्विह
अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्ता होदूण द्विदओरालियसरीरपरमाणूणं त चेव खेत्त-
भोगासं जादि । पुणो ओरालियसरीरपरमाणूहितो अणंतगुणाणं तेजइयसरीरपरमाणूणं पि
तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि । पुव्वभागिदतेजइयपरमाणूहितो अणंतगुणा कम्मइय-
परमाणू तेणेव जीवेण भिच्छत्तादिकारणेहि सच्चिदा पडिपदेसमभवसिद्विह अणंतगुणा
सिद्धाणमणंतभागमेत्ता तत्थ भवंति, तेसिं पि तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि । पुणो

द्रव्योंकी सत्ता अन्यथा न बन सकनेसे क्षीरकुंभका मधुकुंभके समान अवगाहन धर्मवाला
लोकाकाश है, ऐसा मान लेना चाहिये ।

विशेषार्थः--जैसे क्षीरकुम्भका मधुकुम्भमें अवगाहन हो जाता है, अर्थात् मधुसे भरे
हुए कलशमें तत्प्रमाणवाले दूधसे भरे हुए कलशका यदि दूध डाल दिया जाय, तो समस्त दूध
उसीमें समा जाता है, ऐसी अवगाहन शक्ति देखी जाती है । उसीके समान आकाशकी भी
ऐसी अवगाहना शक्ति है कि असंख्य प्रवेशी होते हुए भी उसमें अनन्त जीव और अनन्तानन्त
पुद्गलोंका अवगाहन हो जाता है ।

इसलिए अब हम अवगाहन लक्षणसे प्रसिद्ध लोकाकाशके अवगाहन माहात्म्यको
आचार्यपरम्परागत उपदेशके अनुसार कहते हैं । वह इस प्रकार है--उत्सेधघनांगुलके
असंख्यातवें माग मात्र क्षेत्रमें सूक्ष्म निगोविया जीवकी जगज्य अवगाहना है । उस क्षेत्रमें स्थित
घनलोक मात्र जीवके प्रवेशोंसे प्रत्येक प्रवेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके
अनन्तवें भागमात्र होकरके स्थित औदारिकशरीरके परमाणुओंका घटी क्षेत्र अवकाशपनेको
प्राप्त होता है । पुनः औदारिकशरीरके परमाणुओंसे अनन्तगुणे तैजस्कशरीरके
परमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है । तथा पूर्वमें कहे
गए तैजस परमाणुओंसे अनन्तगुणे, उसी ही जीवके द्वारा मिथ्यात्व, अविरति
आदि कारणोंसे सचित और प्रत्येक प्रवेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे तथा सिद्धोंके अनन्तवें
भाग मात्र कर्मपरमाणु उस क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिये उन कर्मपरमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें

१ सुहुमणिगोदयणज्जत्तयस्स जावस्स तदियवसयमिदं । अणुलअसलमाग जइणयं । गो जी. ९५

२ प्रतिपु 'जवि' इति पाठ ।

३ प्रदेशतोऽसत्येयपुणं प्राप्तेजसात् । अनन्तगुणे परे । त सू. २, ३८-३९ । परमाणूहि अणतहिं वगण-
सण्णा ह होदि सका हु । ताहि अणतहिं णियमा समयपमदो इवे एको ॥ ताण समयपमदा सेदिअसखेजमाग-
गुणिदकमा । णत्तेण य तेजदुगा पर पर होदि सुहुम खु ॥ गो. जी. २४५, २४६

एगेगलोगागासपदेमे एक्केक्कको जदि परमाणू अच्छदि, तो लोगमेत्ता परमाणू भवंति,
सेसपोगलणमभावो चेव, अणवगासाणमत्थिचविरोधा । ण च तेहि लोगमेत्तपरमाणूहि
कम्म-सरीर-घट-पड-त्थंभादिसु एगो वि णिप्पज्जेदं, अणंताणंतपरमाणुसमुदयसमागमेण
विणा एक्किस्से ओसण्णासणियाए' वि संभवाभावा । होदु चे ण, सयलपोगलदव्वस्स
अणुवलद्विप्पसंगादो, सव्वजीवाणमक्कमेण केवलणानुप्पत्तिप्पसंगादो च । एवमहप्पसंगो मा
होदि ति अवगेज्झमाणजीवाजीवसत्तण्णहाणुवचचीदो अवगाहणधम्मिओ लोगागासो चि

समाधान--इस शंकाका परिहार इसप्रकार है--लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें
यदि एक एक ही परमाणु रहे, तो लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण ही परमाणु होंगे, और शेष
पुद्गलोंका अभाव हो जायगा, क्योंकि, जिन पुद्गलोंको अवकाश नहीं मिला, उनका अस्तित्व
माननेमें विरोध आता है । तथा उन लोकमात्र परमाणुओंके द्वारा कर्म, शरीर, घट, पट और
स्तम्भ आदिकोंमेंसे एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि, अनन्तानन्त परमाणुओंके
समुदायका समागम हुए बिना एक अवसन्नासन्न संज्ञक भी संकथका होना संभव नहीं है ।

शंका--एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं होये, तो भी क्या हानि है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर समस्त पुद्गल द्रव्यकी अनुपलब्धिका प्रसंग
आता है, तथा सर्व जीवोंके एक साथ ही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका भी प्रसंग प्राप्त होता है ।

विशेषार्थः--यहांपर समस्त पुद्गलद्रव्यकी अनुपलब्धिका जो दूषण दिया है, उसका
अभिप्राय यह है कि घट, पटादि कार्यों के देखनेसे ही कारणरूप पुद्गलपरमाणुओंके अस्तित्वका
अनुमान होता है । शंकाकारके कथनानुसार जब किसी भी वस्तुकी निष्पत्ति न होगी,
तो उन कार्योंके निष्पादक कारणधर्मवाले परमाणु हैं, यह कैसे जाना जा सकेगा ? अतएव
घट, पटादि कार्योंकी निष्पत्तिके अभावमें पुद्गलद्रव्यके अभावका प्रसंग आता है ।
तथा, सर्व जीवोंके एक साथ केवलज्ञानकी उत्पत्तिके प्रसंग प्राप्त होनेका जो
दूषण दिया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि जब लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण असं-
ख्यात ही परमाणु होंगे, तो उनसे प्रथम तो एक कर्मणशरीरकी उत्पत्ति ही नहीं होगी । यदि
थोड़ी देरके लिए यह कल्पना कर भी ली जाय कि असंख्यात परमाणुओंसे एक कर्मणशरीर
या कर्मपिंड बन भी जाता हो, जो कि जीवके ज्ञानादिक गुणोंके आवरण करनेमें समर्थ है,
तो भी वह किसी एक ही जीवके गुणोंका आवरण कर सकेगा, अनन्त जीवोंका नहीं । इस
प्रकारसे भी सभी जीवोंके आवरण कर्मका अभाव होनेसे केवलज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त
होता है । अथवा, किसी एक जीवके द्वारा उस कर्मणशरीरका शुल्लक्ष्यानाभिसे विनाश किये
जायेपर समस्त ही जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पत्ति का प्रसंग आता है ।

इस प्रकार का अतिप्रसंग दोष न होवे, इस लिए अवगाहमान जीव और अजीव

१ परमाणूहि अणंताणंतंति बहुविदेहि दव्वेहि । ओसण्णासणो चि ॥ ति प. १, १०२. अनन्तानन्तपरमाणु-
समातपरिमाणवाकिर्भूता उत्सक्कात्तैका । त रा. वा. ३, ३८

ओरालिय-तेजा-कम्मइयविससोवचयाणं पादेकं सन्वजीवेहि अणंतगुणाणं पडिपरमाणुमिह तत्तियमेत्ताणं तमिह चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि'। एवमेगजीवेणच्छिद्धअंगुलस्स असंखेज्झदि-भागमेत्ते जहणखेत्तमिह समाणेगाहणो होदण विदिओ जीवो तथेव अच्छदि । एवमणताणंताणं समाणेगाहणाणं जीवाणं तमिह चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि । तदो अवरो जीवो तमिह चेव मज्झिमपदेसमत्तिमं काउण उववण्णो । एदस्स वि ओगाहणाए अणंता-णंतजीवा समाणेगाहणा अच्छंति ति पुवं व परूवेदव्वं । एवमेगेगपदेसा सन्वदिसासु चडुवेदव्वा जाव लोगो आवुण्णो ति । एत्थ एक्केगाहणाए ठिदजीवाणमप्पावहुंग मणिस्सामो । तं जहा--तेउक्काइया जीवा असंखेज्जा लोगो । ततो पुढाविकाइया विसेसाहिया । आउक्काइया जीवा विसेसाहिया । वाउक्काइया जीवा विसेसाहिया । ततो वणप्फदिकाइया अणंतगुणा ति । अणेण पयाणेण सन्वजीवरासिणा लोगो आवुण्णो ति सिद्धेदव्वं, अण्णाहा पुब्बुत्तदोसप्पसंगादो ।

अवगाहना होती है। पुनः औदारिकशरीर, तेजस्कशरीर और कर्मणशरीरके विस्त्रसोपचर्योका, जो कि प्रत्येक सर्व जीवोंसे अनन्तगुणे हैं, और प्रत्येक परमाणुपर उतने ही प्रमाण हैं, उनकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। इसप्रकार एक जीवसे व्याप्त अंगुलेक असंख्यातवें भागमात्र उसी जगन् क्षेत्रमें समान अवगाहनावाला होकरके दूसरा जीव भी रहता है। इसीप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तान्त जीवोंकी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। तत्पश्चात् दूसरा कोई जीव, उसी ही क्षेत्रमें उसके मध्यवर्ती प्रदेशको अपनी अवगाहनाका अन्तिम प्रदेश करके उत्पन्न हुआ। इस जीवकी भी अवगाहनामें, समान अवगाहनावाले अनन्तान्त जीव रहते हैं, इसप्रकार यहाँ भी पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिये। अर्थात्, उस क्षेत्रमें स्थित घनलोककामत्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकशरीरके परमाणु, औदारिकशरीरसे अनन्तगुणे तेजस्कशरीरके और इससे अनन्तगुणे कर्मणशरीरके परमाणु भी हैं। पुनः इन तीनों शरीरोंके सर्व जीवोंसे अनन्त गुणित विस्त्रसोपचय भी उसी प्रदेशपर विद्यमान हैं। इसप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तान्त जीव उसी क्षेत्रमें रहते हैं। इसप्रकारसे लोकके परिपूर्ण होनेतक सभी विशावीमें लोकका एक एक प्रदेश बढ़ते जाना चाहिये। अब यहाँपर उत्तरेघ घनांगुलेक असंख्यातवें भागप्रमाण एक एक अवगाहनामें स्थित जीवोंका अल्पसङ्ख्यत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है--तैजस्कायिक जीव असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तैजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं। पृथिवीकायिक जीवोंसे जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं। जलकायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं। वायुकायिक जीवोंसे घनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं। इसप्रकारसे सर्व जीवराशिके द्वारा यह लोकाकाशा परिपूर्ण है, ऐसा अद्धान करना चाहिये, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग प्राप्त होता है।

१ जीवादो णतगुणा पडिपरमाणुमिह विस्त्रसोवचया । जंवेण य सपवंदा एकेकं पडि समाणा इ ॥ गो. जी २४९

सन्वजीवाणमवत्था तिविहा भवदि, सत्थाण-समुग्घादुवावामेदेण । तत्थ सत्थाणं दुविहं, सत्थाणसत्थाणं विहारवदिसत्थाणं चेदि । तत्थ सत्थाणसत्थाणं णाम अप्पणो उपपण्णामे णयरे रणणे वा सयण-णिसीयण-चंक्रमणादिवावारुत्तेणच्छणं । विहारवदि-सत्थाणं णाम अप्पणो उपपण्णाम-णय-र-णणादीणि छड्डिय अणत्थ सयण-णिसीयण-चंक्रमणादिवावोरेणच्छणं । समुग्घादो सत्तविधो, वेदणसमुग्घादो कसायसमुग्घादो वेउब्बिय-समुग्घादो मारणत्तियसमुग्घादो तेजासरीरसमुग्घादो आहारसमुग्घादो केवलिसमुग्घादो चेदि । तत्थ वेदणसमुग्घादो णाम अविस्व-सिरो-वेदणादीहि जीवाणसुक्कसेण सरीरतिगुण-विप्फुज्जणं । कसायसमुग्घादो णाम कोध-भयादीहि सरीरतिगुणविप्फुज्जणं । वेउब्बिय-समुग्घादो णाम देव-गेरइयाणं वेउब्बियसरीरदेहल्लणं साभावियमागारं छड्डिय अण्णागोरेण-च्छणं । मारणत्तियसमुग्घादो णाम अप्पणो वड्डमाणसरीरमछड्डिय रिजुगईए विगगहगईए

स्वस्थान, समुद्धात और उपपादेके भेदसे सर्व जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी है। उनमें स्वस्थान दो प्रकारका है--स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान। उनमेंसे अपने उत्पन्न होनेके ग्राममें, नगरमें अथवा अरण्यमें सोना, चैटना, चलना आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम स्वस्थानस्वस्थान है। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम, नगर अथवा अरण्य आदिको छोड़कर अन्यत्र शयन, निर्पीदन और परिभ्रमण आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है। समुद्धात सात प्रकारका है--१ वेदनासमुद्धात, २ कपायसमुद्धात, ३ धैक्रियकसमुद्धात, ४ मारणान्तिकसमुद्धात, ५ तैजस्कशरीरसमुद्धात, ६ आहारकशरीर-समुद्धात, और ७ केवलिसमुद्धात। उनमेंसे नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका उत्कृष्टतः शरीरसे तिगुणे प्रमाण विस्पर्णका नाम वेदनासमुद्धात है। क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुणे प्रमाण प्रस्पर्णका नाम कपायसमुद्धात है। धैक्रियकशरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिकसमुद्धात है। अपने वर्तमानशरीरको नहीं छोड़कर

१ तत्र तावत् उत्पन्नपुराणमादिसिद्धं तत् स्वस्थानस्वस्थानम् । गो. जी. प्र. ५४३.

२ विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमिषुसुचितक्षेत्रं तद्विहारवत्स्वस्थानमिति । गो. जी. प्र. ५४३.

३ हतैर्गमिषुक्रियात्वासुभूयात्प्रदेशानां नहिभ्रमनं समुद्धात । स सत्तविध । त. रा. वा. १, २०. मूल-सरीरमछड्डिय सत्तदेहस्स जीवविदस्स । णिगमण देहादो होदि समुग्घादणाम तु ॥ गो. जी. ६६८ वेदनादिवसेन निजस्वर्गापान्नीवप्रदेशानां नहि प्रदेशे तत्तायोग्यविस्पर्णं समुद्धातः । गो. जी. प्र. ५४३.

४ तत्र वातिकारिदोषविपादितव्यसन्धः सत्तापापादितवेदनाहृतो वेदनासमुद्धात । त. रा. वा. १, २०.

५ दितयप्रत्ययप्रकर्षोत्पादितकोषादिकृतः कषायसमुद्धात । त. रा. वा. १, २०.

६ एकवपुष्वत्तनानाविधविक्रियशरीराकारप्रहरणादिक्रियाप्रयोजनो वैक्रियिकसमुद्धातः । त. रा. वा. १, २०.

वा जातुपञ्जमाणखेत्तं ताव गंतूण सरीरतिगुणवाहलेण अण्णाहा वा अंतोमुदुत्तमच्छणं । वेदण-कसायसमुग्धादा मारणंतियसमुग्धोदे किण्ण पंदंति ति वुत्ते ण पंदंति । मारणंतिय-समुग्धादो णाम वद्धपरमवियाउआणं चेव हेदि । वेदण-कसायसमुग्धादा पुण वद्धाउआणम-वद्धाउआणं च हंति । मारणंतियसमुग्धादो पिच्छएण उप्पज्जमाणदिसाहिमुहो हेदि, ण चेअराणमेगदिसाए गमणणियमो, दससु वि दिसासु गमणे पडिवद्धादो । मारणंतिय-समुग्धादस्स आयामो उक्कस्सेण अप्पणो उप्पज्जमाणखेत्तपज्जवसाणो, ण चेअराणमेस णियमो ति । तेजासरीरसमुग्धादो णाम तेजइयसरीरविउव्वणं । तं दुविहं णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि । तत्थ जं तं णिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरविउव्वणं तं पि दुविहं,

क्रजुगतिद्वारा अथवा विग्रहगतिद्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रक जाकर, शरीरसे तिगुने विस्तारसे अथवा अन्यप्रकारसे अन्तर्मुहूर्त तक रहनेका नाम मारणान्तिक समुदात है ।

शंका—वेदनासमुदात और कपायसमुदात ये दोनों मारणान्तिकसमुदातमें अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—वेदनासमुदात और कपायसमुदातका मारणान्तिकसमुदातमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, जिन्होंने परभवकी आयु बांध ली है, ऐसे जीवोंके ही मारणान्तिकसमुदात होता है । किन्तु वेदनासमुदात और कपायसमुदात, वद्धायुक्त जीवोंके भी होते हैं और अयुक्त जीवोंके भी होते हैं । मारणान्तिकसमुदात निश्चयसे आगे जहां उत्पन्न होता है ऐसे क्षेत्रकी विशाके अभिसृज्य होता है । किन्तु अन्य समुदातोंके इसप्रकार एक विशामें गमनका नियम नहीं है, क्योंकि, उनका दशों विशाओंमें भी गमन पाया जाता है । मारणान्तिकसमुदातकी लम्बाई उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, किन्तु इतर समुदातोंका यह नियम नहीं है ।

तैजस्कशरीरके विसर्पणका नाम तैजस्कशरीरसमुदात है । यह दो प्रकारका होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक । उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीरविसर्पण है यह

१ औपक्रामिकानुक्रमणु क्षयाभिप्लुतमर्णातप्रयोजनो भाणान्तिकसमुदात । त रा. वा. १, २०.

२ आह्लाकमारणान्तिकसमुदातावेकादिकी ४ × ४ शेपाः पञ्च समुदाता पट्टिकाः । त रा. वा. १, २०

आहारमारणतियदुग पि नियमेण पुगदिसिग दु । दस दिसिगदा द्दु सेसा पञ्च समुत्पादया हंति ॥ गो जी. ६६९

३ जीवानुग्रहोपचातयवणतेज शरीरनिर्देतानावस्तेज समुदात । त रा. वा. १, २०.

४ तद द्विविधं नि सण्णामकमित्तख । औदात्तिकवैक्रियाकाहारादेहाव्यतरस्य वेदस्य दीप्तिरेतुवति सण्णालम् । सतेरुमभारिप्रत्यातिक्रुदस्य जीवप्रदेकगणुत्तं बहिर्निष्क्रम्य दास्य परिश्रुत्यावतिष्ठमान निष्पावकहस्तिपरिपूर्णस्थाधीगिरिष पचति पक्ता च निरतैते । अथ विरामवतिष्ठते अभिवासाद्योर्ध्वो भवति तदेतन्नि सण्णालम् । त रा. वा. २, ४९

पसत्थमपसत्थं चेदि । तत्थ अपसत्थं चारहजोयणायामं णवजोयणवित्थारं सूविअंगुलस्म संखेज्जादिभागवाहलं जासवणकुसुममंकासं भूमिपव्वट्ठादिदहणक्खमं, पडिवक्खरहियं रोभिधणं त्रामसप्पमन्नं इच्छियेत्तेमत्तविसर्पणं । जं तं पसत्थं तं पि एरिसं चेव, णवरि हंसघवलं दक्खिणंससभन्नं अणुरंपाणिमत्तं मारि-रोगादिपममणक्खमं । जं तमणिस्सरणप्पयं तेजइयसरीर तेणेत्य अणधियारो । आहारसमुग्धादो णामपत्तिट्ठणं महारिसीणं हेदि । तं च द्दुत्थुस्सेधं हंसघवलं सवंगसुदरं सणमेत्तेण अणयजोयणलम्खगमणक्खमं अप्पडिहयगमणं उत्तमंगमंभवं, आपाकणिट्ठदाए अमंजमन्नहुलदाए च लद्धप्पसरुवं । केवलिसमुग्धादो' णाम दंड-कवाड-पदर-लोणपूरणभेएण चउव्विहो । तत्थ दंड-समुग्धादो णाम पुव्वसरीरवाहलेण तत्तिगुणवाहलेण वा सविक्खंभादो सादिरैयतिगुण-परिट्ठएण केवलिजीवपटेमाणं दंडागारेण देव्वणचोहसरन्नुविसर्पणं । कवाडसमुग्धादो णाम

भी दो प्रकारका है, प्रशस्ततैजस और अप्रशस्ततैजस । उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्क-शरीरसमुदात, गरुह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला, सूर्यगुलके संख्यातवै माग मोट्टाईवाला, जपाकुलमेके सदृश लालचर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके जलोनेमें समर्थ, प्रति-पञ्चरहित, रोगरूप इन्धनवाला, यार्ये फधेसे उत्पन्न होनेवाला और श्रृङ्खित क्षेत्रप्रमाण विस-र्पण करनेवाला होता है । तथा जो प्रशस्ततैजसत्वेकात्मक तैजस्कशरीरसमुदात है, वह भी विस्तार आदिमें तो अप्रशस्ततैजसके ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंसके समान घवलचर्णवाला है, वहिने कंधेमें उत्पन्न होता है प्राणियोंकी अनुक्रमणिके निमित्तसे उत्पन्न होता है और मारी, रोग आदिके प्रशमन करनेमें समर्थ होता है । इनमेंसे जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीरसमुदात है, उसका यद्वापर अधिकार नहीं है ।

जिनको आदि प्राप्ति नहीं हुई है, ऐसे महर्षियोंके आहारकसमुदात होता है । यह एक हाथ ऊंचा, हंसके समान घवल चर्णवाला, सर्वांगसुन्दर, सणमात्रमें कई लाख योजन गमन करनेमें समर्थ, अपरिहृत गमनवाला, उत्तमांग अर्थात् मस्तकसे उत्पन्न होनेवाला तथा जो आह्लाकी अर्थात् धृतज्ञानकी कनिष्ठता अर्थात् क्षीनताके होनेपर और असंयमकी बहुलताके होनेपर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा है ।

दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे केवलिसमुदात चार प्रकारका है । उनमें जिसकी अपने विष्कंभसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्वशरीरके बाह्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाह्यरूप दंडाकारसे केवलिके जीवप्रदेशोंका कुछ कम चौदह राजु

१ स प एव ५९ (अ माग पु २९७; तु माग प्रस्तावना खण १८, पु. २७)

२ अथोत्तमिपिनाड्यसायपदमार्गप्रयोजनानाड्याकशोभिर्देस्यर्धे आहारकसमुदात । त रा. वा. १, २० गा. जी २३९, २३७.

३ वेदनीगस्य बहुलाहल्यवाहानुबानामोर्गवैकमायुसमकालार्थं वृष्यस्वभावत्वात् स्राद्व्यस्य फेनवग उदरद्वारिभिरिषसमवेदस्यमाप्रदेशानां बहि समुदातन केवलिसमुदात । त रा. वा. १, २०

पुनर्विल्लाहल्लायामेण वादवलयवदिरित्तिसव्वखेत्तावूरुणं । पदरसमुग्घादो णाम केवल-
जीवपदेसाणं वादवलयरुद्धलोवाखेत्तं मोत्तूण सव्वलोगावूरुणं । लोगूरुणसमुग्घादो णाम
केवलजीवपदेसाणं धणलोपमेत्ताणं सव्वलोगावूरुणं । वुत्तं च—

वेदण-कसाय-वेउव्वियओ य मरणत्तिओ समुग्घादो ।

तेजाहारो छडो सत्तमओ केवलीण तुं ॥ ११ ॥

उववादो एयविहो । सो वि उपपणपढमसमए चेव हेदिं । तत्थ उज्जुवगदीए
उपपणणं खेत्तं बहुवं ण लब्भदि, संकोचिदासेसजीवपदेसादो । विग्गहो ति विहो, पाणि-
मुद्दा लांगलिओ गोसुत्तिओ चेदि । तत्थ पाणिमुद्दा एगविग्गहो । विग्गहो वक्को कुटिलो

कैलनेका नाम वंडसमुद्धात है । वंडसमुद्धातमें वताये गये बाह्य और आयामके द्वारा
वातवलयसे रहित संपूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्धात है । केवली भगवान्‌के
जीवप्रदेशोंका वातवलयसे रुके हुए लोकक्षेत्रको छोड़कर संपूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम
प्रतरसमुद्धात है । घनलोकप्रमाण केवली भगवान्‌के जीवप्रदेशोंका सर्व लोकके व्याप्त करनेको
केवलिसमुद्धात कहते हैं । कहा भी है—

विशेषार्थ— पूर्वशरीरके बाह्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाह्यरूप वंडाकारसे,
पेसा कहनेका अभिप्राय यह है कि जब सद्भासनसे विराजमान केवली भगवान्‌ समुद्धात
करते हैं उस अवस्थामें पूर्वशरीरके बाह्यरूपसे कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले वंडाकार आत्म-
प्रदेश होते हैं । तथा जब पद्भासनस्थ केवली भगवान्‌ समुद्धात करते हैं, तब पूर्वशरीरसे
तिगुने बाह्यरूपकी कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले वंडाकार आत्मप्रदेश नियते हैं, इसलिए
धवलकारने 'पुन्यसरीरबाह्यलेण तत्तिगुणबाह्यलेण वा' पेसा विशेषण दिया है ।

वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, धैक्रियकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, तैजस-
समुद्धात, छा आहारकसमुद्धात और सातवां केवलिसमुद्धात इसप्रकार समुद्धात सात
प्रकारका है ॥ ११ ॥

उपपाद एकप्रकारका है और वह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है । उपपादमें
ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, इसमें जीवके समस्त
प्रदेशोंका संकोच हो जाता है । विग्रह तीन प्रकारका है, पाणिमुक्ता, लांगलिक और गोसूत्रिक ।
इनमेंसे पाणिमुक्ता गति एक विग्रहवाली होती है । विग्रह, वक्क और कुटिल, ये सब एकार्थ-

१ गो जी, ६६७

२ परित्यक्तपूर्वमवस्य उच्चमवप्रयमसमये प्रवर्तनमुपपाद । गो जी जी प्र ५४३

३ एकविग्रहा गति पाणिमुक्ता । त रा वा २, २८.

त्ति एगद्धो । लांगलिओ दुविग्गहो । गोसुत्तिओ तिविग्गहो । तत्थ मारणंतिएण विणा
विग्रहगदीए उपपणणं उज्जुगदीए उपपणपढमसमयओगाहणाए समाणा चेव ओगाहणा
भवदि । गवरि दोण्हेमोगाहणं संठाणे समाणत्तणियमो णत्थि । कुदो ? आणुपुब्बि-
संठाणामकम्महेहि जणिदसंठाणणमेगत्तविरोधा । विग्रहगदीए मारणंतिं कादणुपपणणं
पढमसमए असंखेज्जजोयणमेत्ता ओगाहणा होदि, पुवं पसरिदएग-दो-तिदंडाणं पढम-
समए उवसंधाराभावादो ।

वाची नाम है । लांगलिका गति दो विग्रहवाली होती है । और गोसूत्रिका गति तीन विग्रह-
वाली होती है । इनमेंसे मारणांतिक समुद्धातके विना विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके
ऋजुगतिसे उत्पन्न जीवोंके प्रथम समयमें होनेवाली अवगाहनाके समान ही अवगाहना होती
है । विशेषता केवल इतनी है कि दोनों अवगाहनाओंके आकारमें समानता का नियम नहीं है,
क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले और संस्थान नामकर्मके उदयसे उत्पन्न
होनेवाले संस्थानोंके एकत्वका विरोध है ।

विशेषार्थ— यद्वापर जो आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मसे जनित आकारोंमें
एकत्वका विरोध वताया है उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें जीवका आकार आनुपूर्वी
नामकर्मके उदयसे होता है, क्योंकि, वहापर संस्थाननामकर्मका उदय नहीं होता है । किन्तु
ऋजुगतिमें आनुपूर्वी नामकर्मका उदय नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मका उदय कर्मणकाय-
योगवाली विग्रहगतिमें ही होता है । ऋजुगतिमें तो कर्मणकाययोग न होकर औदारिकमिश्र
या वैक्रियिकमिश्रकाययोग ही होता है और गो कर्मकांड आदिमें इन दोनों मिश्रयोगोंमें संस्थान
नामकर्मका उदय वताया गया है, आनुपूर्वीका नहीं । इससे सिद्ध है कि ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले
जीवके प्रथम समयमें ही विवक्षित क्षेत्रमें उत्पत्ति हो जानेसे संस्थान नामकर्मका उदय हो जाता
है । इसलिए आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले आकार भिन्न ही होंगे, एकसे
नहीं । विग्रहगतिमें आनुपूर्वीके उदयसे जीवके पूर्व शरीरका आकार रहता है, किन्तु संस्थान-
नामकर्मके उदयसे वर्तमान पर्यायका आकार हो जाता है ।

मारणांतिक समुद्धात करके विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके पहले समयमें असंख्यात
योजनप्रमाण अवगाहना होती है, क्योंकि, पहले फैलाये गये एक, दो और तीन वंडोंका प्रथम
समयमें संकोच नहीं होता है ।

१ विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स. सि २, २७ विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यन्यान्ताए
त रा वा २, २७

२ म प्रत्यो 'लंगुलिओ' इति पाठ ।

३ द्विविग्रहा गतिलांगलिका । त रा वा २, २८

४ त्रिविग्रहा गतिगोसूत्रिका । त. रा वा २, २८.

५ ओष कम्मे सरगदिपत्तेयाहारालदुग मिसस । उववादपणविगुज्जुदुग्गति संठाणसहदी णत्थि ॥
गो क ३१८.

एदेहि दसहि विसैसणेहि जहासंभवं विसैसिदमिच्छाहिट्ठिआदि-चोदसजीविसमासाणं खेत्तपरुवणं^१ कस्सामो । सत्थाणसत्थाण वेदण-कसय-मारणंतिथ-उववेदेहि मिच्छाहिट्ठि केवडि खेत्ते, सन्वलोणे । कुदो ? जेण सन्वजीवरासिस्स सखेज्जदिभारेणो सन्वो जीवपुंजो सत्थाणसत्थाणरासी वट्ठे । वेदण-कसयसमुग्घादगदजीवा वि सन्वजीवरासिस्स सखेज्जदि-भागमेत्ता । मारणंतिथसमुग्घादगदजीवा वि सन्वजीवरासिस्स सखेज्जदिभागमेत्ता । कुदो ? एदेसिं तिण्हं रासीणं अप्पणो जीविदस्स सखेज्जदिभागमेत्तसमुग्घादकालादो । उववादरासी पुण सन्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागो^२, एगसमयसचयादो । तेणेदे पंच वि रासिणो अणंता, तदो सन्वलोगे भवंति । विहारवदिसत्थाणमिच्छाहिट्ठि केवडि खेत्ते, लोगस्स

इसप्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुदातके सात भेद और एक उपपाद, इन दश विशेषणोंसे यथासंभव विशेषताको प्राप्त मिथ्यादृष्टि आदि चौवह गुणस्थानोंके क्षेत्रका निरूपण करते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात, मारणान्तिकसमुदात, और उपपादकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ।

शंका — किस कारणसे ?

समाधान — चूँकि, सर्व जीवराशिके सत्थातवे भागने न्यून शेष सर्व जीवसमूह स्वस्थानस्वस्थान राशिरूप रहता है । तथा वेदनासमुदात और कषायसमुदातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके सत्थातवे भागप्रमाण हैं । मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके सत्थातवे भागप्रमाण हैं, क्योंकि, उक्त तीन राशियोंके समुदातका काल अपने जीवनकालके सत्थातवे भागप्रमाण है । उपपादराशि तो सर्व जीवराशिके असत्थातवे भाग है, क्योंकि, उपपादराशिवा सत्थय एक समयमें होता है । अतः स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त पाँचों जीवराशियां अनन्त हैं, और इसीलिये वे सर्व लोकमें पाई जाती हैं ।

विशेषार्थ — आगे मिथ्यादृष्ट्यादि चौवह गुणस्थानोंसे तथा मार्गणस्थानोंसे जीवोंका क्षेत्र सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँच प्रकारके लोकोंकी अपेक्षा बतलाया गया है । तीनसौ तेतालस घनराजुप्रमाण सर्वलोकको सामान्यलोक कहते हैं । एकसौ छयानवे घनराजुप्रमाण या चार राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके अधो-भागको अधोलोक कहते हैं । एकसौ सैतालस घनराजु या तीन राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके ऊर्ध्वभागको ऊर्ध्वलोक कहते हैं । ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके मध्यमें स्थित, पूर्व-पश्चिम दिशामें एक राजु चौड़े, उत्तर-दक्षिण दिशामें सात राजु लम्बे और एक लाख योजन ऊँचे क्षेत्रको तिर्यक्लोक या मध्यलोक कहते हैं । इदि द्वीपप्रमाण विस्वृत अर्थात् पैतालीस

^१ सामान्याशुक्कज्जतिथमनुष्यलकान् पच सत्थाप्यालाप क्रियते । गो जी. प्र. टा ५४३

^२ मरदि असखेज्जदिम तरसासका य विगहे रीति । तस्सासक दूर उववादे तस्स खु असह ॥

असंखेज्जदिभागो । कुदो ? ण ताव तसअपज्जरासी विहरदि, तत्थ विहायगदिणामकम्मस्स उदयाभावा । तसपज्जत्तरासिस्स वि सखेज्जदिभागो चेव विहरमाणरासी होदि । कुदो ? ममेदं बुद्धीए पडिगहिदखेचं सत्थाणं णाम । ततो वाहिं गंतूणच्छणं विहारवदिसत्थाणं । तत्थच्छणकालो सगावासे अवट्ठणकालस्स सखेज्जदिभागो ति । दोण्हं लोगणमसखेज्जदि-भागो । कुदो ? चत्तारि रज्जुवाहल्लं जगपदरं अधोलोगपमाणं होदि । तिणिण रज्जुवाहल्लं जगपदरमुल्लुल्लुगपमाणं होदि । एदे दोणिण वि लोगे तसपज्जत्तरासिस्स सखेज्जदिभागेण सखेज्जघणंगुल्लगुणिदेण ओवट्ठिदे सेटीए असंखेज्जदिभागो आगच्छदि ति । सखेज्ज-लाख योजन चौड़े और एकलाख योजन ऊँचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं । एक लोक-सामान्यके पाच भेद करनेका अभिप्राय यह है कि विवक्षित जीवके वताये गए क्षेत्रका ठीक परिमाण समझमें आजावे । जहा जिन जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक बताया जावे, वहा सामान्य-लोकका ग्रहण करना चाहिए । जहाँ 'दो' लोकोंका निर्देश क्रिया जावे वहाँ अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन दो लोकोंका ग्रहण करना, जहा तीन लोकोंका निर्देश किया जाय, वहा अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोकका ग्रहण करना, तथा, जहा चार लोकका निर्देश किया जाय, वहा मनुष्यलोकको छोड़कर शेष चारों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए ।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असत्थातवे भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । चूँकि त्रसकायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं है, क्योंकि, त्रसकायिक अपर्याप्तोंमें विहायोगति नामकमका उदय नहीं होता है । त्रसकायिक पर्याप्तकोंके भी सत्थातवे भागप्रमाण राशि ही विहार करनेवाली होती है, क्योंकि, 'यह मेरा है' इसप्रकारकी बुद्धिसे स्वीकार किया गया क्षेत्र स्वस्थान है । और उससे बाहर जाकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है । उस विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रमें रहनेका काल अपने आवासमें (स्वस्थानमें) रहनेके कालके सत्थातवे भागप्रमाण है, इसलिये विहारवत्स्वस्थान मिथ्या-दृष्टि जीव दोनों लोकोंके अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके असत्थातवे भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसका कारण यह है कि अधोलोकका प्रमाण चार राजु मोटा जगप्रतर है और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण तीन राजु मोटा जगप्रतर है । सत्थात घनांगुलगुणित त्रसकायिक पर्याप्तराशिके सत्था-तवे भागसे इन दोनों ही लोकोंके भाजित करने पर जगणेर्णिका असत्थातवा भाग लब्ध आता है ।

विशेषार्थ — त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा सूत्र्यगुलके सत्था-तवे भागके घनरूप भागहारसे भाजित जगप्रतर प्रमाण बताया गया है । इस प्रमाणवाली त्रसपर्याप्तराशिके भी सत्थातवे भाग प्रमाण ही विहारकरनेवाली राशि होती है । अब यदि एक त्रसपर्याप्तक जीवकी मध्यम अवगाहना सत्थात घनांगुल प्रमाण मानकर उससे विहारकरने-वाली राशिके प्रमाणको गुणित भी किया जाय, तो भी उसका जगणेर्णिके असत्थातवे भागप्रमाण क्षेत्रमें रहना सिद्ध होता है, इसलिए यह सिद्ध होता है कि विहारकरनेवाली त्रसराशि ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असत्थातवे भागमें रहती है, क्योंकि, इन दोनों लोकोंका प्रमाण जगच्छेर्णिके वर्गसे भी बहुत अधिक है ।

घणगुलगुणगारो कथमवगममदे ? बुद्धदे- संयंपहणगिंदपव्वयपरभागगिंदियतसपञ्जत्तरासी पहाणो इयरकम्मभूमिजीविहंतो दीहाउवो महल्लेगाहणो य । भोगभूमिसु पुण विगल्लिदिया गत्थि । पंचिदिया वि तत्थ सुहु शोच, सुहकम्ममिहियजीवाणं बहुवाणमसंभवादो । संयंपहपव्वयपरभागगिंदियजीवाणमोगाहणा महल्लेत्ति जाणावणसुत्तमेदं—

संखो पुण वारह जोयणाणि गोम्ही भवे तिकोस वु ।

भमरो जोयणमेग मच्छो पुण जोयणसहस्तो ॥ १२ ॥

एदाओ ओगाहणाओ घणगुलपमाणेण कीरमाणे संखेज्जाणि घणगुलाणि हवंति, तेण संखेज्जघणगुलगुणगारो विहारवदिसत्थणारसिस्स ठविदो । संयंपहणगिंदपव्वदस्स परदो जहण्णेगाहणा वि जीवा अत्थि ति चे ण, मूलगसमांसं काऊण अद्धं कदे वि संखेज्जघणगुलदंसणादो । तं कथं ? तत्थ ताव भमरखेत्ताणयणविधानं भणिस्सामो ।

शंका—त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातवें भागप्रमाण विहारवरस्वस्थान राशिका गुणकार संख्यात घनांगुल है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रकृतमें स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके परभागमें स्थित त्रसकायिक पर्याप्त जीवराशि प्रधान है, क्योंकि, यह राशि इतर कर्मभूमिज जीवोंकी अपेक्षा दीर्घायु और यही अवगाहनावाली है । भोगभूमिमें तो विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं और वहापर पचेन्द्रिय जीव भी स्वरूप होते हैं, क्योंकि, शुभ कर्मके उदयकी अधिकतावाले बहुत जीवोंका होना असंभव है ।

स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें स्थित जीवोंकी अवगाहना सबसे बड़ी होती है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र है—

शंख नामक द्वीन्द्रिय जीव वारह योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । गोम्ही नामक त्रीन्द्रिय जीव तीन कोसकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । भमर नामक चतुरिन्द्रिय जीव एक योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है, और महामत्स्य नामक पंचेन्द्रिय जीव एक हजार योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । १२ ॥

योजनों और कोसोंमें कहीं गई इन अवगाहनाओंको घनांगुलप्रमाणसे करनेपर संख्यात घनांगुल होते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल स्थापित किया है ।

शंका—स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके उस ओर जघन्य अवगाहनावाले भी जीव पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जघन्य अवगाहनारूप मूल अर्थात् आवि और उत्कृष्ट अवगाहनारूप अन्त, इन दोनोंको जोड़कर आधा करनेपर भी संख्यात घनांगुल देखे जाते हैं । उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहनाओंको जोड़कर आधा करने पर संख्यात घनांगुल कैसे आते हैं, आगे इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये उन द्वीन्द्रियविकोंकी अवगाहनाओंसे पहले भमर-क्षेत्रके घनफलके निकालनेका विधान कहते हैं—

भमरखेत्तं पुण जोयणायामं अद्दजोयणुसेहं जोयणद्वपरिहिविक्खंमं ठविय विक्खंमद्व-सुत्सेहगुणमायामेण गुणिदे उत्सेहजोयणस्स तिणि-अद्दभाग्गा भवति । ते घणगुलाणि कीरमाणे पण्णरहसद-छचीसरूवेहि घणीकेदेहि तिणिसय-वासट्ठिकोडीहि अट्टहत्तरि-सहस्साहिय-अट्टचीसलखेहि छस्मद-छप्पणेहि य उत्सेधघणजोयणाणि गुणिदे पमाण-घणगुलाणि हवंति । गोम्हि-आयामो उत्सेधजोयणतिणि चउवभागो, तदद्दभागो विक्खंमो,

एक योजन लम्बे, आधे योजन ऊंचे और आधे योजनकी परिधिप्रमाण विक्कंमवाले भमरक्षेत्रको स्थापित करके, विक्कंमके आधेको उत्सेधसे गुणा करके, जो लब्ध आवे उसे आयामसे गुणित करनेपर एक योजनके तीन भागोंमेंसे आठ भाग लब्ध आते हैं । और यही भमरक्षेत्रका घनफल है ।

उदाहरण—भमरका आयाम १ योजन, उत्सेध ३ योजन, विक्कंम ३ योजनकी परिधि-प्रमाण । ३ योजनकी स्थूल परिधि १३ योजन । ३ - २ = ३, ३ × ३ = ३ ; ३ × १ = ३ भमरक्षेत्रका योजनोंमें घनफल ।

भमरक्षेत्रके योजनमें आये हुए घनफलके घनांगुल करनेपर इस उत्सेध घनयोजनमें आये हुए घनफलको पन्द्रहसौ छत्तीसके घन तीनसौ बासठ करोड़, अर्द्धतीस लाख, अठवत्तर हजार, छहसौ छप्पनसे गुणित करनेपर प्रमाणघनांगुल होते हैं ।

उदाहरण—भमरक्षेत्रका उत्सेध घनयोजनमें घनफल है, एक उत्सेध घनयोजनके प्रमाण घनांगुल १५३६ = ३६२३८७८६५६, ३ × ३६२३८७८६५६ = १३५८९५४४९६ प्रमाण घनांगुलोंमें भमरक्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ—एक उत्सेध योजनमें सात लाख अडसठ हजार उत्सेधसूत्र्यंगुल होते हैं । इस नियमसे एक उत्सेधघनयोजनके घनांगुल करनेपर उसमें सात लाख अडसठ हजार को तीनवार रखकर परस्पर गुणा करनेसे जितना लब्ध आयगा उतने उत्सेधघनांगुल होंगे । उत्सेधयोजनसे प्रमाणयोजन पांचसौ गुणा बढ़ा होता है, अतएव इन उत्सेधघनांगुलोंके प्रमाणघनांगुल करनेके लिये उक्त अंगुलोंके प्रमाणमें पांचसौके घनका भाग देनेपर ३६२३८७८६५६ घनांगुल आ जाते हैं, और वह राशि १५३६ के घनप्रमाण पड़ती है ।

गोम्हीका आयाम उत्सेधयोजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण है । विक्कंम उत्सेधके आठवें भागप्रमाण है, और बाह्य विक्कंमसे आधा है । गोम्ही क्षेत्रका घनफल

१ सयपहाचलपरमागद्वियखेत्ते उपपणमसस्स उक्कस्सोगाहण × × × जोयणायाम अद्दजोयणुसेहं जोयणद्वपरिहिविक्खंम ठविय विक्खंमद्वसुत्सेहगुणमायामेण गुणिदे उत्सेहजोयणस्स तिणिअद्दभाग्गा भवति । त चेद ३ । ते पमाणघणगुला कीरमाणे एकसयपचत्तीसकोडीए उणणवदिलक्खन्वउवणसहस्स चउसय उणणवदि-स्वेहि गुणिद्वघणगुलाणि हवति । त चेद ३३५८९५४४९६ । ति. प. प. १९५,

२ म प्रत्यो- 'अद्द' इति पाठ ।

विक्खंमदं बाहल्लं' । एदे तिणि वि परोप्परं गुणिदे उत्सेधजोयणस्स संखेज्जजिभागो आगच्छदि । तं पण्णरहसदच्छचीसरूवेहि घणीकेदेहि गुणिदे पमाणघणंगुलाणि होति । बारहजोयणायाम-चदुजोयणमुहसंखेत्तफलं—

व्यास तावच्छत्ता वदनदलो न मुखार्धवयुतम् ।

द्विगुण चतुर्विभक्त सनाभिकेडस्मिन् गणितमाहुः ॥ १३ ॥

एदेण सुत्तेण आणिय मुहदीणुस्सेहसहिदुस्सेहचदुम्भोगेण गुणिय उत्सेधजोयण-
णाणि आणिय पुवुत्तगुणगारेण गुणिदे पमाणघणंगुलाणि होति' । जोयणसहससायाम-

लनेके लिये इन तीनोंके परस्पर गुणित करनेपर उत्सेधयोजनके घनका संख्यातवां भाग लब्ध आता है । इसे पन्द्रहसौ छत्तीसके घनसे गुणित करनेपर गोम्हीके घनरूप क्षेत्रके प्रमाण-
घनांगुल आ जाते हैं ।

उदाहरण—गोम्हीका आयाम ३ योजन; विक्कंम ३३ योजन; बाहल्य ३ योजन;
 $३ \times ३ = ९$; $९ \times ३ = २७$; $२७ \times ३ = ८१$ उत्सेध घनयोजनमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल ।
 $८१ \times ३६२३८७८६५६ = १९९४३९३६$ प्रमाण घनांगुलोंमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल ।

बारह योजन आयामवाले और चार योजन मुखवाले शंखक्षेत्रका क्षेत्रफल—

व्यासकी उतनी ही बार करके अर्थात् व्यासका निताना प्रमाण है उतनीवार व्यासको रज्जकर जोड़नेपर जो लब्ध आवे उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको घटाकर, मुखके आधे प्रमाणके वर्गको जोड़ दे । इसप्रकार जो संख्या आवे उसे द्विगुणित करके पद्माच चारका भाग दे । इसप्रकार जो लब्ध आवे, उसे शंखका क्षेत्रफल कहते हैं ॥ १३ ॥

इस सूत्रसे लाकर उस क्षेत्रफलको मुखसे हीन उत्सेधसहित उत्सेधके चौथे भागसे गुणित करके उत्सेध घनयोजन लाकर और पूर्वोक्त गुणकारसे गुणित करनेपर घनरूप शंखक्षेत्रके प्रमाणघनांगुल हो जाते हैं ।

१ सयपहाचलपरमाणुगुणितसे उपपण्णोहीए उक्कस्सोगाहणा $\times \times$ उत्सेधजोयणस्स तिणिचउमगो आयामो, तदङ्गमागो विक्कमो, विक्कमद्व बाहल्लं । एदे तिणि वि परोप्पर गुणिय पमाणघणगुले कदे एक्के कोहीए उणवीस लक्खा तेदालपदसणवयल्लत्तामरूवेहि गुणिदघणगुला होति । १९४३९३६ । ति प प १९५

२ आयामकदी मुहदल्लीणा मुहसाअद्धमज्जदा । निगुणा वहेण हदा सखावत्तस्स खेत्तफल ॥
त्रि सा. ३२७

३ सयपहाचलपरमाणुगुणितसे उपपण्णोहीए उक्कस्सोगाहणा $\times \times$ वासजोयणायाम-चउजोयणमुह-
सखेत्तफल व्यासं तावच्छत्ता वदनदलो न मुखार्धवयुतम् । द्विगुण चतुर्विभक्त सनाभिकेडस्मिन् गणितमाहुः ॥ एदेण
सुत्तेण खेत्तफलमागिदे तेरघरी उत्सेधजोयणाण मवति ७३ । आयामे मुह सोहिय पुणरवि आयामसहिदधुहमाजिय
नारह णायव सखायाट्टिये खेत्ते ॥ एदेण सुत्तेण नारह आगिदे पच जोयणपमाण होदि ५ । पुक्कमाणिद-

पंचसदुस्सेह-तदद्वित्थार-महामच्छखेत्तं पि संखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि होति' । एत्थ
घणंगुलस्स संखेज्जजिभागं पक्खिविय अद्वेण छिण्णे वि संखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि
होति चि सिद्धं । किं च विहारवदिसत्थणे ण तिरिक्खखेत्तस्स पमाणत्तं, किंतु देवखेत्तस्सेव,
पदंगुलस्स संखेज्जजिभागमेत्तमुहेण संखेज्जजोयणसहस्सं विहरमाणदेवोभाहणाए संखेज्ज-
घणंगुलजुवलंभादो । तेण संखेज्जघणंगुलोभाहणाए गुणेयव्वभिदि । असंखेज्जजोयणाणि

उदाहरण—शंखक्षेत्रका आयाम १२ योजन; मुख ४ योजन ।

$१२ \times १२ = १४४$, $१४४ - \frac{१}{३} = १४२$, $१४२ + (\frac{१}{३})^2 = १४२ + ४ = १४६$,
 $१४६ \times २ = २९२$, $२९२ - ४ = ७३$;

$१२ - ४ = ८$; $१२ + ८ = २०$; $२० - ४ = ५$; $७३ \times ५ = ३६५$
उत्सेध घनयोजनोंमें शंखक्षेत्रका घनफल । $३६५ \times ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५७०९४४०$
प्रमाण घनांगुलोंमें शंखक्षेत्रका घनफल ।

एक हजार योजन आयाम, पांचसौ योजन उत्सेध और उत्सेधके आधे अर्थात्
ढाईसौ योजन विस्तारवाले मद्दामत्स्यका क्षेत्र भी घनफलरूप करनेपर संख्यात प्रमाणघनां-
गुल होता है ।

उदाहरण—महामत्स्यका आयाम १००० योजन; उत्सेध ५०० योजन; विक्कंम २५० ।
 $१००० \times ५०० = ५०००००$, $५००००० \times २५० = १२५००००००$ योजनोंमें घनफल । १२५००००००
 $\times ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२०००००००$ प्रमाण घनांगुलोंमें महामत्स्यका घनफल ।

इसप्रकार उक्त अवगाहनाल्पसे आये हुए इन प्रमाणघनांगुलोंमें घनांगुलके
संख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अवगाहनाको प्रक्षिप्त करके जो जोड़ हो उसे आधेसे छिन्न
करनेपर भी संख्यात प्रमाण घनांगुल ही रहते हैं, यह सिद्ध हुआ ।

दूसरी बात यह है कि विहारवत्स्यस्थानमें तिर्यचोके क्षेत्रकी प्रमाणता (प्रधानता)
नहीं है, किन्तु देवक्षेत्रकी ही प्रधानता है, क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण
मुखरूपसे अर्थात् विक्कम और उत्सेधरूपसे विहार करनेवाले देवोंकी संख्यात हजार योजन
प्रमाण अवगाहनामें घनफलरूपसे संख्यात घनांगुल पाये जाते हैं, इसलिये विहारवत्स्यस्थान
राशिको संख्यात घनांगुलरूप अवगाहनासे गुणित करना चाहिये ।

तेरघरीभूदखेत्तक पचजोयणवहल्लेण गुणिदे घणजोयणाणि तिणिमयपण्णो होति ३६५ । एद घणपमाणगुलाणि
कदे एक्कलक्ख-वर्त्तासमहस्स-दोणिसय-पुक्ककचरि कोमोओ सत्तावण्णलक्खणवत्तसहस्सचउमयचालोभरूवेहि गुणिद-
घणगुलमेत्त होदि । त चेद १३२७१५७०९४४० । ति प. प १९५

१ सयपहाचलपरमाणुगुणितसे उपपण्णसमुच्छित्तमहामहामच्छस्स सव्युक्कस्सोगाहणा $\times \times$ उत्सेधजोयण
एक्कसहससायाम पचसदविकसम तदद्वउत्सेहं तं पमाणगुले कोरमाणे चउसहस्स-पचसय-पुजणतीसकोहीओ जुलसोदि-
लक्ख-तेसोदिसहस्स-दुमयकोडिल्लेहि गुणिदमाणघणंगुलाणि मवति । त चेद ४५२९८४८३२०००००००००० ।
ति प. प १९४

विहरता वि देवा अस्थि चि चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तेण पहाणत्ताभावादो । तं कुदो णव्वेदे ? 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभाए' चि वक्खाणादो । तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं कथं ? तिरियलोगो गाम जोयणलक्खसत्तभागमेत्तच्चिअंगुलत्राहलज्जगणदरमेत्तो । तं पुण्विल्लविहारवदिसत्थाणखेत्तेणोवद्धिदे संखेज्जस्सुवाणि लब्धंति । तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चि वुत्तं । अट्ठहज्जखेत्तादो विहारवदिसत्थाणजीवसत्तमसंखेज्जगुणं । कुदो ?

शंका—असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले भी देव होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले देव सर्व देवराशिके असंख्यातवें भागमात्र हैं, अतः उनकी यहाँपर प्रधानता नहीं है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशि 'तिर्यलोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त बात जानी जाती है ।

शंका—मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशिके रहनेका क्षेत्र तिर्यलोकके सख्यातवें भागमात्र कैसे है ?

समाधान—एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितने सूच्यंगुल लब्ध आवें तत्प्रमाण बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यलोक है । इसे पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानरूप क्षेत्रसे भाजित करनेपर सख्यात रूप लब्ध आते हैं, इसीलिये तिर्यलोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थानराशि रहती है, ऐसा कहा है ।

विशेषार्थ—तिर्यलोक पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-दक्षिण सात राजु लम्बा, और एक लाख योजन ऊंचा है । इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये एक लाख योजनमें सातका भाग देना चाहिये, क्योंकि, तिर्यलोक भी उत्तर दक्षिण सात राजु तो है ही, किन्तु पूर्व-पश्चिम जो एक राजुमात्र है उसे सात राजुप्रमाण प्रकल्पित करनेके लिये उरसेधमें सातका भाग देनेसे उत्सेध एक लाख योजनका सातवा भाग रह जाता है, और पूर्व पश्चिममें सात राजु-प्रमाण क्षेत्र हो जाता है । इसप्रकार एक लाख योजनके सातवें भागमें जितने सूच्यंगुल होंगे तत्प्रमाण बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यलोक आ जाता है । एक योजनमें ७६८०० सूच्यंगुल होते हैं, इसलिये एक लाख योजनके सातवें भागमें १०९७१४२८५७१६ सूच्यंगुल होंगे । अतएव १०९७१४२८५७१६ सूच्यंगुलप्रमाण जगप्रतर तिर्यलोक जानना चाहिये । प्रतरागुलके सख्यातवें भागका जगप्रतरमें भाग देनेसे त्रसपर्याप्तराशिका प्रमाण आना है, और इसके सख्यात एक भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थानराशि है । विहारवत्स्वस्थानराशिमें एक जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल है तो उपर्युक्त राशिका कितना क्षेत्र होगा, इसप्रकार वैराशिक करनेपर विहारवत्स्वस्थानराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगप्रतरप्रमाण आ जाता है जो तिर्यलोकके सख्यातवें भागप्रमाण है ।

विहारवत्स्वस्थान जीवोंका क्षेत्र द्वार द्वारसे असंख्यातगुण है, क्योंकि, अर्द्धा

अट्ठहज्जम्मि संखेजपमाणघणंगुलदंसणादो ।

वेउव्वियसमुधादगमिच्छाह्दी केवडि सेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि भागे, दोण्ह लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्ठहज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ पुब्बं व ओवट्ठणा कायन्वा । णवरि वेउव्वियसमुधादस्स जोदिसियरासी सत्तदंडुस्सेहो पहाणे, तेण जोहसियदेवाणं संखेज्जदिभागस्स संखेजघणंगुलाणि गुणगारो ठवेयव्वो । कुदो ? संखेज्जजोयणसहस्सं विउज्जमाणदेवाणमुलंभादो । असंखेज्जजोयणाणि णिरं-भिय विउज्जंता देवा अस्थि चि चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो । सगोहिखेत्तमेत्तं सव्वे देवा विउज्जंति चि के वि भणंति, तं ण वडदे, 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो' चि वक्खाणादो । शिच्छाह्दस्स सेस-तिणिण विसेसणाणि ण संभवंति, तत्कारणसंजमादिगुणणमभावादो । मिच्छाह्दस्स सत्थाणादी सत्त विसेसा सुत्तेण अणुदिडा

द्वीपमें सख्यात प्रमाण घनांगुल ही देखे जाते हैं ।

चैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्य-ग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा अर्द्धा द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँ पर अपवर्तना पहलेके समान कर लेना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्धातमें सात घटुप उरसेधरूप अवगाहनासे शुक्त ज्योतिष्कदेवराशि प्रधान है, इसलिये ज्योतिष्क देवोंके सख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्धातगुक्त राशिका क्षेत्र लोकेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, संख्यात हजार योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव पाये जाते हैं ।

शंका—असंख्यात योजन क्षेत्रको रोक-रूक विक्रिया करनेवाले भी देव पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव सामान्य देवोंके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं । कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि सभी देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं । परन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए राशि 'तिर्यलोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' ऐसा व्याख्यान देखा जाता है ।

मिथ्यादृष्टि जीवराशिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्धात, तैजससमुद्धात और केवलिसमुद्धात संभव नहीं हैं, क्योंकि, इनके कारणभूत संयमादि गुणोंका मिथ्यादृष्टिके अभाव है ।

शंका—स्वस्थानादि सात विशेषण सूत्रमें नहीं कहे गये हैं, फिर भी वे मिथ्यादृष्टि

१ नियणियजोहिक्खेव णाणरूपाणि तर विक्खन्ता । पूरति अट्ठगण्ढो माणदेवा दस विपया ॥

ति. प ३, १८२

अथि ति कथं गण्वदे ? आहरियपरंपरागदुवेदादो । किं च 'मिच्छादिद्वी' इदि सामणवणेण एदं सत्त वि मिच्छाद्विनिसेसा सुचिदा चेव, एदव्वदिरित्तिमिच्छाद्वीणमभावो । सेस चचारि वि लोगा सुत्तेण सुचिदा चेव, सेसचदुण्हं लोगाणं लोगपुधुदणमणुवलभादो । तम्हा सुत्तंसवद्धमेदं वक्खणमिदि ।

सासनसम्माइट्टिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभाए ॥ ३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अथ भणित्तामो । जदि वि सव्वगुणद्वानाणं पडुडिसइस्स ववत्थावाइस्स संगहणसंभवो अत्थि, तो वि सजोगिगुणद्वानं गो गण्वदि । कुदो ? पुरदो भणमाणवाधगसुत्तदंसणादो । सासनसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियममुघादपरिणदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे

जीवके पाये जाते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—मिथ्यादृष्टि जीवके स्वस्थान आदि सात विशेषण पाये जाते हैं, यह बात आचार्यपरंपरासे आये हुए उपदेशसे जानी जाती है ।

दूसरी यह बात है कि सूत्रमें आये हुए 'मिथ्यादृष्टि' इस सामान्य वचनसे स्वस्थान आदि सात विशेषण भी मिथ्यादृष्टिके विशेष हैं, यह सूचित हो ही जाता है, क्योंकि, इनको छोड़कर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं । इसीप्रकार घनलोकके अतिरिक्त ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यलोक और अर्द्धाई द्वीपसम्बन्धी लोक, ये चार लोक भी सूत्रसे सूचित हो ही जाते हैं, क्योंकि, घनलोकसे पृथग्भूत उपर्युक्त देश चार लोक नहीं पाये जाते हैं । इसलिये स्वस्थानस्वस्थानराशि आवर्तिका व्याख्यान सूत्रसे सत्य हो है ।

सासादनसम्पदृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यद्यपि व्यवस्थावाची प्रभृति शब्दके बलसे सभी गुणस्थानोंका समग्र समग्र है, तो भी यहांपर सयोगिकेवली गुणस्थानका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, आगे कहा जानेवाला इसका वाचक सूत्र देला जाता है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारयत्स्वस्थान, वेदानासमुदात, कपायसमुदात और धैक्रियिकसमुदातरूपसे परिणत हुए सासादनसम्पदृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्पदृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण

१ सामादनसम्पदृष्टपादनामयोगिकेवत्ताना । लोकस्यासंख्येयमागः । स ति १, ८ सासायणाह सव्वे लोपस्स असंखयमि मागामि । पञ्चसं. २, २६.

अच्छंति । तं कथं ? एदेसिं तिण्हं गुणद्वानाणं सोधम्मीमाणरामी पहणो । तेसिमेगाहणा सत्तहत्थुस्समेहा, अंगुलगणाए अट्टमट्ठिपदुस्समेधंगुलपमाणां, एदस्स दसभागविक्खंभा । कुदो ? जदो देव-मणुस्सम-णेरद्वयाणमुस्सेधो दम-गण-अट्टतालपमाणेण भणिदो । पुणो वासद्वं वागय विगुणिय अट्टमट्ठिमदुस्समेधंगुलेहि गुणिय घणीकदंपंचसदंगुलेहि ओवट्ठिदे पमाणघंगुलस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । एदेण तिण्हं गुणद्वानाणं सत्थाणादिरासि ओघरासिस्स संखेज्जभागं संखेज्जदिभागं च गुणिदे तिण्हं गुणद्वानाण सत्थाणादियेत्ताणि हंति ।

क्षेत्रमें और अर्द्धाईद्वीणमे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—इन तीन गुणस्थानोंमें सौधर्म और पेदानकल्पसंघन्धी देवराशि प्रधान है । उनकी अवगाहना सात हाथ उत्तरेयरूप है, और अंगुलकी अपेक्षा गणना करनेपर एकसौ अट्टसठ अंगुलप्रमाण है । इसमें दशवें भागप्रमाण उस अवगाहनाका विक्कंभ है ।

शंका—यहांपर उत्तरेघके दशवें भागप्रमाण विक्कंभ क्यों लिया है ?

समाधान—चुकि देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्तरेघ दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इसलिये यहांपर उत्तरेघके दशवें भागप्रमाण विक्कंभ लिया है ।

पुनः व्यासके आधेका वर्ग करके और उसे दुना करके अनन्तर एकसौ अट्टमठ उत्तरेघके अंगुलोंसे गुणित करके पाचसौ अंगुलोंके घनसे अपवर्तित करनेपर प्रमाण घनागुलका संख्यातवा भाग लब्ध आता है । इससे सासादनसम्पदृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियां जो कि सासादनसम्पदृष्टि आदि ओघराशिके उत्तरोत्तर संख्यातवें संख्यातवें भागप्रमाण हैं, उन्हें गुणित करनेपर तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंके क्षेत्र हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—यहां स्वस्थानादि पक्षपरिणत सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अर्द्धाई द्वीणमे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी उपपत्ति बतलाई गई है । प्रकृतमें सौधर्म-पेदान देवराशि प्रमाण है । इन स्वर्गोंके एक क्षेत्रकी अवगाहना ७ हाथ = १६८ उत्तरेघअंगुल ऊंची तथा इसके दशमांश विक्कंभरूप होती है । तदनुसार एक देवकी अवगाहनाका घनफल इसप्रकार आता है—

उत्तरेघ १६८ अंगुल, विक्कंभ $\frac{१६८}{१०}$ अंगुल ।

$(\frac{१६८}{१०} - \frac{१}{२}) \times २ \times १६८$ एक देवकी अवगाहनाके उत्तरेघ घनांगुल ।

१ प्रतिगु पमाण' इति पाठ । २ प्रतिगु 'वासव' इति पाठ ।

३ वा प्रती 'संखेज्जभागमणुवेज्जदिभागं च' इति पाठ ।

गवरि वेदण-कसायखेत्ताणि णवहि गुण्येव्वाणि, सररित्तिगुणविक्रवंभादो । विहार-वेदव्वियपदणं संखेज्जाणि घणंगुलाणि । अथवा वेदणादिणा सररित्तिगुणसमुग्धादं कंता सुट्ठु थोवा चि मज्झिमगुणगारो णवद्वरूपमाणो होदि चि । एदेहि लोमे भागे हिदे लद्धं विरलेदूण एक्केक्कस्स रुवस्स लोगं समखंडं कादूण दिण्णे एगभागो एदेहि रुद्धखेचं होदि । उट्ठुलोगपमाणं तिणिण रज्जुवाहल्लं जगपदरं । एत्थ वि ओवट्ठणा पुवं व कादव्वा । अधो-लोगपमाणं चत्तारि रज्जुवाहल्लं जगपदरं । तथा' चेव ओवट्ठणा । तिरियलोगपमाणं जोयणलक्ख-सत्तभागवाहल्लं जगपदरं । एत्थ वि ओवट्ठणा पुवं व कायव्वा । एत्थ तिरियलोगपमाणे आणिज्जमाणे विक्रवंभायामेहि एगरज्जुपमाणमेव तिण्हं लोगणम-

$$\text{इसके प्रमाणंगुल हूप } \frac{१६८' \times २ \times १६८}{२०} = \frac{९४८३२६४}{५००} = \frac{९२६१}{१९५३१२५}$$

यह राशि प्रमाणघनागुलके संख्यातवें भाग हुई । इसे सौधर्म ईशान स्वर्गोकी सासा-दनादि तीन गुणस्थानवर्ती राशियोंसे गुणा करनेपर तीनों गुणस्थानोंके स्वस्थानादि पर्वोंके क्षेत्रोंका प्रमाण आता है, जो तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अठारह द्वीपसे असंख्यात-गुणा होता है ।

इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्रात और कपायसमुद्रातका क्षेत्र लानेके लिये मूल अव-गाहनाको नौसे गुणित करना चाहिये, क्योंकि, वेदना और कपाय समुद्रातमें उत्कृष्टरूपसे शरीरसे तिगुना विस्तार पाया जाता है । विहारवरस्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्रातका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार होते हैं । अथवा, वेदनासमुद्रात आविके द्वारा शरीरसे तिगुने समुद्रातको करनेवाले जीव स्वल्प हैं, इसलिये मध्यम गुणकार नौके आधेरूप अर्थात् साढ़े चार होता है । इन उपर्युक्त गुणकारोंसे लोकके माजित करनेपर जो लब्ध आवे उसे विरलित करके और उस विरलित राशिके प्रत्येक एकके प्रति लोकको समान खंड करके देयरूपसे वे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति जो एक भाग प्राप्त होता है उतना इन गुणकारोंसे रुद्ध क्षेत्र होता है । तीन राजुवाहल्यसे युक्त जगप्रतरप्रमाण ऊर्ध्वलोक है । यद्वापर भी अप वर्तना पहलेके समान करना चाहिये । चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधो-लोक है । यद्वापर भी पूर्वके समान अपवर्तना करना चाहिये । एक लाख योजनमें सातका भाग देवेसे जितना लब्ध आवे उतना मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा तिर्यग्लोक है । यद्वापर भी अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये । यद्वा तिर्यग्लोका प्रमाण लानेपर विक्रम और आयामसे एक राजुप्रमाण होते हुए भी घनलोक, ऊर्ध्वलोक और

१ अ-क प्रलो 'तथा' आ प्रती 'तय' इति पाठ ।

संखेज्जदिभागो तिरियलोगो होदि चि के वि आहरिया भणति, तं ण घडदे, पुव्वब्भुव-गमेण सह विरोधा । को सो पुव्वब्भुवगमो ? चत्तारि-तिणिण-रज्जुवाहल्लजगपदरपमाणा अध-उट्ठुलोगा, सत्तरज्जुवाहल्लजगपदरपमाणो सव्वलोगो चि । माणुसलोगपमाणं णदालीसजोयणसदसहस्सविक्रवंमं जोयणसदसहस्सुस्सेधं । पुणो विक्रवंभुस्सेधे अंगु-लाणि करिय —

व्यास योडशगुणित योडशसहितं त्रिरूपरूपैर्भक्तम् ।

व्यासं त्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम् ॥ १४ ॥

अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोक है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, परंतु उनका इसप्रकारका कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस कथनका पूर्वमें स्वीकार किये गये कथनके साथ विरोध आता है ।

शंका—वह पहले स्वीकार किया गया कथन कौनसा है ?

समाधान—चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधोलोक है । तीन राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा ऊर्ध्वलोक है । सात राजु मोटा और जगप्रतर-प्रमाण लम्बा चौड़ा सव्यलोक है, यही वह पूर्व स्वीकार किया गया कथन है ।

पेंतालीस लाख योजन विक्रमरूप और एक लाख योजन ऊंचा मातुग्लोक है । पुनः पूर्वोक्त गुणकाररूप क्षेत्रसंघन्यी विष्कम्भ और उरसेधके अंगुल करके—

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुन तीन एक और एक अर्थात् एकसौ तेरहका भाग देवे और व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण आ जाता है ॥ १४ ॥

विशेषार्थ—यद्वापर मंडलाकार क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण लानेकी प्रक्रिया बतलाई गई है । स्थूल मानसे तो परिधिका विस्तार व्याससे तिगुणा ले लिया जाता है, यथा-व्यासो तिगुणो परिधी (त्रि सा. १७) इससे भी सूक्ष्मप्रमाण दशका वर्गमूल बतलाया गया है । यथा-विक्रवंभुवगवद्वगुणकरणी वट्टस्स परिओ होदि (त्रि. सा. ९६) । किन्तु प्रस्तुत गायामें इस सूक्ष्मप्रमाणसे भी सूक्ष्मतर प्रमाण निकालनेकी प्रक्रिया बतलाई गई है, जो इसप्रकार है—

उदाहरण—१ राजु व्यासके वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण निम्न प्रकारसे होगा—

$$\begin{aligned} & \frac{१ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१ \times ३२}{११३} = \frac{३७१}{११३} \text{ राजु ।} \\ & \text{उसीप्रकार ७ राजु वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण इसप्रकार होगा—} \\ & \frac{७ \times १६ + १६}{११३} + \frac{७ \times २५०१}{११३} = \frac{२२१५}{११३} \text{ राजु ।} \end{aligned}$$

१ तलणालीबहुमको विषाय खिदीय उवरिमे मागे । अहवटो मणुवजो जोयणणदालउव्विस्समो ।
ति. प. ४, ६.

एदण सुत्तेण परिट्ठयं कादूण विस्वभचउन्नागेण गुणिदे जादाणि पदरंगुलाणि । पुणरवि उस्सेधेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि । पुण्वं व ओवट्ठणा एत्थ कायन्वा । मारणंतिय-उववादगद-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणमेवं चेव वत्तन्वं । णवरि ओववासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडेदूपाभागो उववादं करेदि । तस्स वि असंखेज्जा भागा विगहगदीए उववादं करंति चि ओववासिस्स दो आवलियाए असंखेज्जदि-भागा भागहारं ठवेदन्वा । पुणो रूवूणावलियाए असंखेज्जदिभागो उवरि गुणगारो ठवेदन्वो । सेट्ठीए संखेज्जदिमागायामविदियदंडट्ठियजीवे इच्छिय अवरो आवलियाए असंखेज्जदिभागो संखेज्जपदंगुलाणि च गुणगारं ठविय किंचूणदिवड्डुरज्जह्दि गुणिय ओवट्ठे-यन्वं । मारणंतियस्स एवं चेव वत्तन्वं । णवरि अप्पणो रासिस्स असंखेज्जदिभागो मार-णंतियं करेदि । मारणंतियकालादो गुणकालस्स संखेज्जगुणत्तादो मारणंतियजीवा सगसव्व-जीवेहिंतो सखेज्जगुणहीणा किण्ण होति ? ण, मरंतदेवजीवेहिंतो तस्मिं चेव भवे मिच्छन्ते

इस सूत्रके नियमानुसार परिधि करके व्यासके चौथे भागसे गुणित करनेपर प्रतरा-गुल हो जाते हैं । पुनः इन प्रतरांगुलोंको उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं । यद्वापर भी पहलेके समान अपवर्तना करना चाहिये । अर्थात् इन घनांगुलोंके प्रमाण-घनांगुल करनेके लिये पांचसौके घनका भाग देना चाहिये ।

मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत सासादनसम्यग्दष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि-योका इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि भोग सासादनसम्यग्दष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे उतनी राशि उपपाद करती है । तथा इस उपपादराशिके असंख्यात बहुभाग प्रमाण जीव विग्रहगतसे उपपाद करते हैं, इसलिये दो बार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ओध-राशिका भागहार स्थापित करना चाहिये । तथा एक कम आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ऊपर गुणकार स्थापित करना चाहिये । जगध्रेणीके सख्यातवें भाग लब्ध दूसरे वंडमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा फिर भी आवलीका असंख्यातवा भाग भागहार स्थापित करे और ऊपर घनांगुलके सख्यातवें भागको निकालकर उसके स्थानमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण और सख्यात प्रतरांगुलप्रमाण गुणकारको स्थापित करके, कुछ कम डेढ़ राजुसे गुणित करके अपवर्तित करना चाहिये, क्योंकि, मध्यलोऊसे सौधर्मकल्प डेढ़ राजु ऊंचा है । मारणान्तिक-समुदातका भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपने अपने गुण-स्थानसंबन्धी राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण राशि मारणान्तिकसमुदात करती है ।

शुंका — मारणान्तिकसमुदातके कालसे गुणस्थानका काल सख्यातगुणा है, इसलिये मारणान्तिकजीव अपने अपने गुणस्थानके सर्व जीवोंसे सख्यातगुणे बोन क्यों नहीं होते हैं ?

पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो, उवसमसम्मत्तद्धावसेसे आउए उवसमसम्मत्तगुणं पडिवज्जंताण बहुवाणमभावदो, ततो तस्स संखेज्जगुणणियमाभावदो च । एत्थ उव-रिसरासिस्स गुणगारो पुण्वुत्तो चेव होदि, देवरासिस्स पहाणत्तादो । उववादं पुण तिरिक्ख-रासी पहाणो । णवरि असंजदसम्माइट्ठि-उववादं देवा पहाण, मारणंतिये तिरिक्खा पहाणा । सम्माभिच्छाइट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि, तगुणस्स तदुहयविरोहिच्चादो ।

एवं संजदामंजदाणं । णवरि उववादो णत्थि, अपज्जत्तकाले संजमसंजमगुणस्स अभावदो । संजदासजदाणमोगाहणगुणगारो घणंगुलं । मारणंतिये पदरंगुलं दादन्वं । वेगुवियपदेण सगरासिस्स असंखेज्जदिभागो आवलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण । संजदासंजदाणं कधं वेउव्वियसमुवादास्स संभवो ? ण, ओरालियसरीरस्स विउव्वणप्पयस्स विण्णुक्कुमारादिसु दंसणादो । संजदासंजदेसु वि मारणंतियरासी ओवरासिस्स असंखेज्जदि-

समाधान—नहीं, क्योंकि, मरण करनेवाले देवगतिसंबन्धी जीवोंसे उसी भवमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं । अथवा, उपशमसम्यक्चके काल-प्रमाण आयुके अवशिष्ट रहनेपर उपशमसम्यक्च गुणको प्राप्त होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते हैं । और मारणान्तिकसमुदातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

यद्वापर उपरिम राशिका गुणकार पूर्वोक्त ही है, क्योंकि, यद्वा देवराशिकी प्रधानता है । उपपादमें तो तिर्यचराशि प्रधान है । इतनी विशेषता है कि असंयतसम्य-ग्दष्टि गुणस्थानसंबन्धी उपपादमें देव प्रधान हैं । तथा असंयतगुणस्थानसंबन्धी मारणान्तिक समुदातमें तिर्यच प्रधान हैं । सम्यग्मिथ्यादष्टि गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुदात और उपपाद नहीं होते हैं, क्योंकि, इस गुणस्थानका इन दोनों प्रकारकी अवस्थाओंके साथ विरोध है ।

इसीप्रकार संयतासंयतोंका क्षेत्र जानना चाहिये । इतना विशेष है कि संयतासंयतोंके उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, अपर्याप्त कालमें संयमासंयम गुणस्थान नहीं पाया जाता है । संयतासंयतोंकी अवगाहनाका गुणकार घनांगुल है । मारणान्तिकसमुदातमें प्रतरांगुलरूप गुणकार देना चाहिये । चौकियिकपक्षसे आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके द्वारा अपनी राशिका असंख्यातवा भाग लेना चाहिये ।

शुंका—संयतासंयतोंके चौकियिकसमुदात कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विण्णुकुमार आदिमें विक्रियात्मक औदारिग्रशरीर देखा

१ आह चंदक जीवस्थाने योगमगे सत्ताविधकायोगस्तामिरूपणयाभौदादिककाययोग औदारिकभि-मकाययोगम तिर्यदुपपुण्या, वैकियिककाययोगो वैकियिकमिश्रकाययोग देवनाकायापुत , १६ तिर्यदुपपुण्या-मपीयुष्यते, तदिदमपविक्रद, इत्यत्रोच्यते—न, अन्यत्रोपदेशात् । व्याख्याप्रस्तावित्वेदेकेषु क्षीमगे वायोरीदारिकै-क्रियिकैजसकामाणि चत्वारि शरीराण्युत्तानि, मनुष्याणां च । पूर्वमप्यार्थयोस्तयोर्विरोध ? न विरोध, आभिप्रायकत्वात् । जीवस्थाने सर्वदेवनाकाणां सर्वकालवैकियिककदशनात् तद्योगविधिरिजमिमाय । न च तिर्यदुपपुण्या लब्धिप्रत्यय वैकियिकं सर्वेषां सर्वकालमस्ति कादाचित्कनाह व्याख्याप्रस्तपिदृक्केभित्तमानमभित्योक्त । त रा वा. २, ४९

भागो । कारणं पुनं परुविदं ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोविकेवलि चि जहणिया ओगाहणा आहुट्टरयणीओ, उक्कसिसया पंचसद-पणवीसुत्तरधणूणि' । एदाओ दो वि ओगाहणाओ भरह-इरावएसु चैव होति, ण विदेहेसु, तत्थ पंचधणुस्सदुस्सेधणियमा' । ततो थोवृणुस्सेधो वा विदेहसंजदरासी जदो' सव्वुक्कस्सो होदि, सो पधानो, पचधणुस्स-दुस्सेहाविणाभाविचादो । एत्थ अंगुलाणि कदे' उस्सेहणवमभागो विक्खंभो चि कट्टु परिट्टयमदं करिय विक्खंभद्वेण गुणिय उस्सेहेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि । एदेहि संखेज्जघणंगुलेहि अप्पण्णो रासिं गुणिदे इच्छिदखेचं होदि । णवरि आहारसररिस्स उस्सेधो एया रयणी, उस्सेहदसमभागो तस्स विक्खंभो, दिव्वचादो । विहारे सत्थाण-समाणोगाहणमुहमच्छिण्णपउमणालुसुचसंताणं व मूलाहारसररीरणमंतरे जीवपदेसाणमवट्ठा-णादो । ण च सररीरादो-गदजीवपदेसाणं पुणो तत्थ पवेसाभावो, समुधादगदकेवलजीवि-जाता है ।

संयतासंयतामं भी मारणान्तिकसमुद्धतको प्राप्त जीवराशि ओधसंयतासंयत राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है । इसके कारणका प्ररूपण पहले कर आये हैं । प्रमत्त संयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवोंकी जयन्य अवगाहना साढ़े तीन रत्तिप्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना पांचसौ पच्चीस धनुष है । ये दोनों ही अवगाहनाएं भरत और पेरारवत क्षेत्रमें ही होती हैं, विदेहमें नहीं, क्योंकि, विदेहमें पांचसौ धनुषके उत्सेधका नियम है । अतः पांचसौ पच्चीस धनुषसे कुछ कम उत्सेधवाली विदेहक्षेत्रस्य संयतराशि चूंकि सबसे अधिक होती है, इसलिये यहाँपर वह राशि प्रधान है, क्योंकि, विदेहस्थ संयतराशिका पांचसौ धनुषकी ऊंचाईके साथ अविनाभावसंबन्ध पाया जाता है । यहाँपर अंगुलोंमें घनफल लानेके लिये मनुष्योंके उत्सेधका नौवां भाग विष्कंभ होता है, ऐसा समझकर विष्कंभकी परिधिको आधा करके और विष्कंभके आवेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं । इन संख्यात घनांगुलोंसे अपनी राशिके गुणित करनेपर श्रुच्छित गुणस्थानसंबन्धी क्षेत्र होता है । इतनी विशेषता है कि आहारकशरीरका उत्सेध एक रत्तिप्रमाण है । तथा उत्सेधके दशवें भागप्रमाण उसका विष्कंभ है, क्योंकि, यह शरीर दिव्यस्वरूप है । विहारमें इस शरीरका मुख अर्थात् विष्कंभ और उत्सेध स्वस्थानस्वस्थानके समान अवगाहनाप्रमाण है, क्योंकि, मूल और आहारक शरीरके अन्तरालमें पश्चानालके अच्छिन्न सूत्रसंतानके समान जीवप्रवेशोंका अवस्थान पाया जाता है । शरीरसे निकले हुए जीवप्रवेशोंका फिरसे शरीरमें प्रवेश नहीं होता है, सो भी

१ मण्यगुलीकूपयोर्मध्ये प्रामाणिक कर । नद्धमुष्टिकरो रत्तिरत्ति सकनित्तिका ॥ इलायु. कोष

२ आहुट्टरयणहुदी पणुवीसन्धियणसयधणूणि ॥ ति. प. १, २२

३ पचसयचावटुगा X ति. प. ४, ५८

५ प्रतिघु 'अयुलकर' इति पाठ ।

पदेसेहि वियहियारादो । एदाणि खेत्ताणि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो चि पमत्तादओ चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो अच्छंति, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । मारणंतियस्स सत्तरज्जुहि सखेज्जपदरंगुलगुणिदइच्छिदसंजदरासी गुणेदव्वो । तेण मारणंतियसमुधादगद-संजदा माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति । एदं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-

बत नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर समुद्धतगत केवलीके जीवप्रवेशोंके साथ व्यवहार आ जाता है । ये सब क्षेत्र सामान्य आवि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये प्रमत्तसंयत आवि राशियां चार लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहती हैं, तथा मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं । मारणान्तिकसमुद्धतका क्षेत्र लानेके लिये जिस अभीष्ट संयतराशिका क्षेत्र लाना हो उसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सात राजुओंसे गुणित करना चाहिये । इस कारण मारणान्तिकसमुद्धतको प्राप्त हुए संयतजीव मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ — यहां प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिकसमुद्धतसम्बन्धी क्षेत्र लानेके लिए अभीष्ट राशिको संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके पुनः सात राजुओंसे गुणित करनेका विधान कहा है । इसका अभिप्राय यह है कि संयत जीव सौधर्मकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, और इसीलिए वे वद्धतक मारणान्तिकसमुद्धत भी कर सकते हैं । सर्वार्थसिद्धि मण्यलोकसे लगाकर कुछ कम ७ राजु ऊंची है । तथा एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण ही होती है । अतः उत्कृष्ट मारणान्तिकसमुद्धतक्षेत्रकी अपेक्षा सात राजुओंसे संख्यात प्रतरांगुलोंके गुणित करनेका विधान किया गया है । एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रतरांगुल निम्न प्रकार आते हैं—

उत्सेध ५०० धनुष, विष्कंभ $\frac{५००}{९}$ धनुष;

$$\begin{aligned} \text{परिधि} &= \frac{५००}{९} \times १६ + १६ + \frac{५००}{९} \times \frac{३}{१} = \frac{१७७६४४}{११३} \\ \text{क्षेत्रफल} &= \frac{१७७६४४}{१०१७} \times \left(\frac{५००}{९} \times \frac{१}{४} \right) = \frac{८८१२०००}{३६६१२} \text{ धनुष} \\ &= \frac{८८१२०००}{३६६१२} \times \frac{९६}{१} = \frac{८५२५९५२०००}{३६६१२} \text{ प्रतरांगुल} \end{aligned}$$

सर्व संयतराशिका प्रमाण ८९९९९९९९ इतना है । इसमेंसे प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी यथायोग्य राशिके संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही मारणान्तिकसमुद्धत करती है । मतपव उससे ऊपर निकाले गये एक अवगाहनाके प्रतरांगुलोंसे गुणित करनेपर भी संख्यात प्रतरांगुल ही होते हैं । इस प्रकार मारणान्तिकसमुद्धतको प्राप्त समस्त संयतोंका क्षेत्र संख्यात

वेदण-कसाय-वेडिवियाहार-मारणतियसमुदादाणं उच्चं । णवरि तेजासमुदादस्स विक्खंभा-
यामे णव-वारहजोयणपमाणे कदंगुले अणोणं गुणिय बहल्लेण गुणिदे तेजासमुदादसेत्तं
हेदि । एवं तप्पाओगमंखेजस्सेहि गुणिदे सव्वसेत्तसमासो हेदि । ओवट्ठणा पुब्बं व ।

अप्पमत्तसंजदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणत्था केवडि खेत्ते, चट्ठणं लोगाणम-
संखेजदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेजदिभागे । मारणतिय-अप्पमत्ताणं पमत्तसंजदंभो ।
अप्पमत्ते सेसपदा यत्थि । चट्ठणमुववसमा सत्थाणसत्थाण-मारणतियपदेसु पमत्तसमा ।
चट्ठणं खत्राणं अजोगिकेवलीणं च सत्थाणसत्थाणं पमत्तसं । खत्रुवसामाणं णत्थि
बुत्तसेसपदाणि । खत्रुवसामाणं ममेदंभावविरहिदाणं कथं सत्थाणसत्थाणपदस्स संभो ?
ण एस दोसो, ममेदंभावसमणिदगुणेषु तदा गहणादो । एत्थ पुण अवट्ठणमेत्तगहणादो ।

प्रतरागुल गुणित सात राजु होता है, जब कि तिर्यक्लोक एक लाख योजनके सान्तर्ध
भागप्रमाण मोटे जगप्रतरप्रमाण है । अतः उक्त मारणान्तिक समुदातका क्षेत्र चारों लोकोंके
असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । तथा मनुष्यलोक ४५ लाख चौगु और १ लाख योजन
दी ऊंचा है । अतः संयतोंका मारणान्तिकक्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यात गुणा सिद्ध होता है ।

इसप्रकार उक्त क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कयाय, वैक्रियिक,
आहारक और मारणान्तिकसमुदातवाले जीवोंका कदा । इतनी विज्ञेयता है कि तैजससमु-
दातके नौ योजनप्रमाण विष्कम्भ और बारह योजनप्रमाण आयाम क्षेत्रके किये हुए अगुलोंका
परस्पर गुणा करके स्वर्गगुलके संख्यातवें भागप्रमाण बाह्यलये गुणित करनेपर तैजस-
समुदातका क्षेत्र होता है । इसे इसके योग्य संख्यातसे गुणित करनेपर तैजससमुदातके
सर्वक्षेत्रका जोड़ होता है । यहाँपर अपवर्तना पहलेके समान जानना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूपसे परिणत अप्रमत्तसंयत जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते
हैं, और मातुपक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुदातको
प्राप्त हुए अप्रमत्तसंयतोंका क्षेत्र मारणान्तिक समुदातको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतोंके
क्षेत्रके समान होता है । अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उक्त तीन स्थानोंको छोड़-
कर दोष स्थान नहीं होते हैं । उपशमश्रेणीके चारों गुणस्थानवर्ती उपशमक जीव
स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुदात, इन दोनों पूर्वोंमें स्वस्थानस्वस्थान और मारणा-
न्तिकसमुदातगत प्रमत्तसंयतोंके समान होते हैं । क्षपकश्रेणीके चार गुणस्थानवर्ती क्षपक
और अयोगिकेवली जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान प्रमत्तसंयतोंके स्वस्थानस्वस्थानके समान
होता है । क्षपक और उपशमक जीवोंके उक्त स्थानोंके अतिरिक्त दोष स्थान नहीं होते हैं ।

शंका—यह मेरा है, इसप्रकारके भावसे रहित क्षपक और उपशमक जीवोंके
स्वस्थानस्वस्थान नामका पद कैसे समझ है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जिन गुणस्थानोंमें 'यह मेरा है'

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेजदिभागे, असंखे-
जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ॥ ४ ॥

एत्थ सजोगिकेवलिसस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणं पमत्तंभो । दंडगदो
केवली केवडि सेत्ते, चउण्हं लोगाणमसंखेजदिभागे, अट्ठइजादो असंखेज्जुणे ॥ तं कथं ?
अट्ठउत्तरसदपमाणगुलाणि उत्सेधो उक्कस्सेगाहणक्रेवलीणं हेदि । तस्मिं णवममागो
विक्खंभो १२ एत्तिओ हेदि । तस्म परिट्ठओ सत्ततीस अंगुलाणि पंचाणउदि-तेरससदमागा
३७१११ । इमं विक्खंभचउभमाणेण गुणिदे मुहपदंगुलाणि हेति । एदाणि देखण-
चोदसरज्जुहि गुणिदे दंडखेत्तं हेदि । एदं संखेज्जुगुगं तेरासियकमेण चट्ठहि लोमेहि

इसप्रकारका भाव पाया जाता है वहाँ वैसा ग्रहण किया है । परन्तु यहाँपर अर्थात् क्षपक
और उपशमक गुणस्थानोंमें अवस्थानमात्रका ग्रहण किया गया है ।

सयोगिकेवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रमें, अथवा लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा सर्वलोकमें रहते हैं ॥४॥

यहाँपर सयोगिकेवलीका स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र प्रमत्त-
संयतोंके स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रके समान होता है । दंडसमुदातको
प्राप्त हुए केवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठइजादोपसंग्रही लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—दंडसमुदातको प्राप्त हुए केवलियोंका उक्त क्षेत्र कैसे संभव है ?

समाधान—उत्कृष्ट अवगाहनासे युक्त केवलियोंका उत्सेध एकसौ आठ प्रमाणगुल
होता है, और उसका नौवा भाग अर्थात् बारह १२ प्रमाणगुल विष्कम्भ होता है । इसकी
परिधि सैंतीस अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे पंचानवे भाग प्रमाण ३७१११
होती है । इसे विष्कम्भ बारह अंगुलके चौधे भाग तीन अंगुलोंसे गुणित करनेपर मुखरूप बारह
अंगुल लंबे और बारह अंगुल चौड़े गोले क्षेत्रके प्रतरांगुल होते हैं । इन्हें कुछ कम चौदह
राजुओंसे गुणित करनेपर दंडक्षेत्रका प्रमाण आता है । यह एक केवलीके दंडक्षेत्रका
प्रमाण हुआ ।

उदाहरण—उपास १२ अंगुल; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार उसकी परिधिका
प्रमाण—

$$\frac{१२ \times १६ + १६}{११३} + \frac{३६}{१} = \frac{४२७६}{११३} = ३७\frac{९५}{११३} \text{ अंगुल ।}$$

क्षेत्रफल = $\frac{४२७६}{११३} \times \frac{१२}{४}$ (व्यासका चतुर्थीश) = $\frac{१२८२८}{११३}$ प्रतरांगुल ।

अतएव दंडसमुदातगत केवलीका क्षेत्रप्रमाण = $\frac{१२८२८}{११३} \times$ देशोन १४ राजु ।

केवली पुन्वाहिमुहो वा उत्तराहिमुहो वा समुग्धादं करंतो जदि पलियंकेण समुग्धादं करोदि, तो कवाडवाहल्लं छचीसंगुलाणि होति। अह जद काउससगेण कवाडं करोदि, तो वारहंगुल-वाहल्लं कवाडं होदि। तत्थ ताव पुन्वाहिमुहोकेवल्लिस्स कवाडखेत्ताणयणं भण्णमाणे चोहस-रज्जुआयामं सत्तरज्जुविकखंभं छचीसंगुलवाहल्लं खेत्तं ठविय मज्जे छेन्नण एकखेत्तस्सुवारी विदियखेत्तं ठविदे वाहचरिअंगुलवाहल्लं जगपदरं होदि। काउससगेण द्विदकेवल्लिकाडखेत्तं चउन्वीसंगुलवाहल्लं होदि। उत्तराहिमुहो होदूण पलियंकेण समुग्धादगदकेवल्लिकाडखेत्तं छचीसंगुलवाहल्लं जगपदरं होदि। इयरस्स १२ वारहंगुलवाहल्लं, वेयणाए विणा तिगुणत्तामावा। एवं खेत्तं तेरासियकमेण तिण्हं लोगाणं पमाणेण कीरमाणे तेसिं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स पुण संखेज्जदिभागो, अड्डाहज्जादो असंखेज्जगुणं होदि।

पदरगदो केवली कवाडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु। लोगस्स असं-खेज्जदिभागं वादवल्लयरुद्धखेत्तं मोत्तूण सेसवहुभागोसु अच्छदि चि जं बुत्तं होदि। घणलोग-पमाणं तेदालीसुत्तरतिसद ३४३ घनरज्जुओ। अधोलोगपमाणं छणवुदिसदवणरज्जुओ

केवली जिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर समुद्रतको करते हुए यदि पल्यकासनसे समुद्रतको करते हैं तो कपाटक्षेत्रका बाह्य अंगुली छत्तीस अंगुल होता है। और यदि कायोरसर्गसे कपाटसमुद्रत करते हैं तो वारह अंगुलप्रमाण बाह्यवाला कपाटसमुद्रत होता है। इनमेंसे पहले पूर्वाभिमुख केवलीके कपाटक्षेत्रके लानेकी विधिका कथन करनेपर चौदह राजु लक्ष, सात राजु चौड़े और छत्तीस अंगुल मोटे क्षेत्रको स्थापित करके उसे चौदह राजु लबाईमेंसे बीचमें सात राजुके ऊपर छिन्न करके एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको स्थापित कर देनेपर वह चार अंगुल मोटा जगप्रतर हो जाता है। और कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित हुए केवलीका कपाटक्षेत्र चौवीस अंगुल मोटा जगप्रतर होता है। उत्तराभिमुख होकर पल्यकासनसे समुद्रतको प्राप्त हुए केवलीका कपाटक्षेत्र छत्तीस अंगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण होता है। तथा इतरका अर्थात् उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्गसे समुद्रतको करनेवाले केवलीका कपाटक्षेत्र बारह अंगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा होता है, क्योंकि, वेदना-समुद्रतको छोड़कर जीवके प्रवेश तिगुने नहीं होते हैं। यह उपर्युक्त कपाटसमुद्रतगत केवलीका क्षेत्र त्रैराशिकमसे सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके प्रमाणरूपसे करनेपर उन तीन लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यलोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है और अर्द्धाद्वीपसे असंख्यातगुणा है।

प्रतरसमुद्रतको प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण घातवलयसे रके हुए क्षेत्रको छोड़कर लोकके शेष बहुभागोंमें रहते हैं, यह इस कथनका अभिप्राय है। घनलोकका प्रमाण तनिसौ तेतालीस ३४३ घनराजु है। अधोलोकका प्रमाण एकसौ छपानवे १९६ घनराजु है।

भागे हिदे तेसिं लोगाणमसंखेज्जदिभागो आगच्छदि। माणुसलोगेण भागे हिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि आगच्छंति। णवरि पलियंकेण दंडसमुग्धादगदकेवल्लिस्स विकखंभो पुन्व-विकखमादो तिगुणो होदि। तस्स पमाणमेदं ३६। एदस्स परिद्विओ तेरहुत्तरसदंगुलाणि सत्तावीस-तेरहुत्तरसदभाग ११३३३३। सेसं पुवं व।

कवाडगदो केवली केवळि खेत्ते, तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, (तिरियलोगस्स संखे-ज्जदिभागो,) अड्डाहज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ कवाडगदकेवल्लिस्स खेत्ताणयणविहाण बुच्चदे-

विशेषार्थ—यहांपर दंडसमुद्रत क्षेत्रका प्रमाण केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना १०८ प्रमाणांगुल लेकर बतलाया है। किन्तु इससे पूर्व ही केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ घनप प्रमाण कही गई है। चूंकि उत्सेधागुलसे प्रमाणांगुल ५०० गुणा होता है, इसलिए ५२५ प्रमाण के घनपके प्रमाणांगुल $\frac{५२५ \times ९६}{५००} = १०० \frac{४}{५}$ होते हैं। वर्तमान प्रकरणमें विवेकक्षेत्रकी सत्यतराशी प्रधान है। अतएव यदि विवेकक्षेत्रकी अवगाहना ली जाय, तो वह $\frac{५०० \times ९६}{५००} = ९६$ प्रमाणांगुल ही होती है। १०८ प्रमाणांगुलके घनप $\frac{१०८ + ५००}{९६} = ५६२ \frac{१}{२}$ होते हैं जो उक्त ५२५ घनपके प्रमाणसे बड़ जाते हैं। इस वैपम्यका कारण विचारणीय है।

एक साथ समुद्रत करतेवाले संख्यात केवलियोंके वृद्धक्षेत्रका प्रमाण लानेके लिये इसे संख्यातसे गुणित करे। इसप्रकार जो क्षेत्र उत्पन्न हो उसे त्रैराशिकके क्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंसे भाजित करनेपर उन चार लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वृद्धक्षेत्र आता है। तथा उक्त वृद्धक्षेत्रको मातुवलोक्तसे भाजित करने पर असंख्यात मातुवक्षेत्र लब्ध आते हैं। इतनी विवेकता है कि पल्यकासनसे दंडसमुद्रतको प्राप्त हुए केवलीका विष्कम्भ पहले कहे हुए वारह अंगुलप्रमाण विष्कम्भसे तिगुना होता है। उसका प्रमाण ३६ अंगुल है। इसकी परिधि एकसौ तेरह अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे सत्ताईस भागप्रमाण ११३३३ है।

उदाहरण—व्यास ३६, अतएव गथा न. १४ के अनुसार परिधि का प्रमाण—

$$\frac{३६ \times १६ + १६ + १}{११३} = \frac{१०८ + १७}{११३} = ११३ \frac{२७}{११३}$$

शेष कथन पूर्वके समान है।

कपाटसमुद्रतको प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यलोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अर्द्धाद्वीपसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अब यहांपर कपाटसमुद्रतको प्राप्त हुए केवलीका क्षेत्र लानेका विधान कहते हैं—

१९६। उड्डोलोपप्रमाणं सत्तेचालीससदधणरज्जूओ १४७। उड्डोलोपप्रमाणयणे सुत्तगाहा-
मूल मज्जेण गुण सुहसिद्विदमुत्सेधकदिगुणिदं ।

धणगणिदं जाणेज्जो मुदिगसठाणखेत्तिहि ॥ १५ ॥

एदिस्से गाहाए अत्थो बुच्चदे- मूलं मुदिगखेत्तस्स बुंघवित्थारं, मज्जेण मुदिग-
मज्झपंचरज्जूहि सह, गुणं बुदं कादब्बं । मुंघं मुदिगसुहरुंघपमाणं, सहिदं मुदिगमज्जेण
बुदं कारूण, अद्वं अद्वं करिय समीकदं, उत्सेधकदिगुणिदं उत्सेधवगेण गुणिदे कदे, मुदिग-
खेत्तफलं होदि ।

मुह-तलसमासअद्व उत्सेधगुणं गुण च वेहेण ।

धणगणिदं जाणेज्जा वेत्तासणसंठिए खेत्ते ॥ १६ ॥

एदीए गाहाए अधोलोपधणगणिदप्रमाणेज्जो ।

'संपदि लोपेपंतद्विदवादवलयरुद्धखेत्ताणयणविधाणं बुच्चदे- लोपस्स तले तिण्हं
चादाण बाहल्लं पादेककं वीससहस्रजोयणमेत्तं । तं सवमेगहं कदे सड्विजोयणसहस्रबाहल्लं

ऊर्ध्वलोकका प्रमाण एकसौ सैतालीस १४७ घनराजु है । अब ऊर्ध्वलोकके प्रमाणको लानेके
लिये नीचे सूत्रगाथा दी जाती है—

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें मुखका प्रमाण
जोड़कर आधा करो । पुनः इसे उत्सेधके वर्गसे गुणित करो । यह सूत्रगाकार क्षेत्रमें घनफल
लानेका गणित जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं—मूल अर्थात् मृदगक्षेत्रके बुधविस्तारको मृदगक्षेत्रके
मध्यविस्तार पांच राजुओंके साथ गुणित करके जोड़ दे । इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुखको
अर्थात् सूत्रगाकार क्षेत्रके मुखविस्तारके प्रमाणको मृदगके मध्यविस्तार पांच राजुओंसे सहित
अर्थात् युक्त करके, आधा आधा करके समीकरण कर ले । अनन्तर उसे उत्सेधके वर्गसे
गुणित करतेपर मृदगक्षेत्रका घनफल होता है । (देखो विशेषार्थ पृष्ठ २१)

मुखके प्रमाण और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करो । पुनः इसे उत्सेधसे
गुणित करके घेधसे गुणित करो । यह वेत्तासनके आकारवाले क्षेत्रमें घनफल लानेकी
प्रक्रिया जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इस गाथासे अधोलोकका घनगणित ले आना चाहिये ।

अब लोकके पर्यन्त भागमें स्थित वातवलयसे रके हुए क्षेत्रके लानेकी विधिको
बतलाते हैं—लोकके तलभागमें तीनों वायुओंमेंसे प्रत्येक वायुका बाहल्य बीस हजार योजन

१ प्रतिगु 'गुणिद' इति पाठ ।

२. इत आरग्यामितनो वातवलयप्रत्येक प्रत्येकश्लोकाप्रमाणे प्रत्येकश्लोकागतनेन अनेन प्रकरणेन शक्यं
बमान ।

जगपदरं होह' । नवरि दोसु वि अंतिसु सड्विसहस्रजोयणुत्सेधपरिहाणिखेत्तेण ऊणं एदमजोए-
दूण सड्विपहस्रबाहल्लं जगपदरमिदि मंक्रपिय तच्छेदूण पुघ द्वेदब्बं ६०००० । पुणो
एगरज्जुत्सेधेण सत्तरज्जुआयामेण सड्विजोयणसहस्रबाहल्लेण दोसु वि पामेसु द्विदवाद-
सेत्तं बुद्धीए पुघ करिय जगपदरपमाणेणावद्धे वीससहस्रमाहियजोयणलक्सस्स सत्तभाग-
बाहल्लं जगपदरं होदि १३०००० । तं पुव्विल्लसेत्तस्सुवरि द्विविदे चालीमजोयणसहस्र-
प्रमाण है । उस सब बाहल्यको एकत्रित करनेपर साठ हजार योजन बाहल्यप्रमाण जगप्रनर
होता है । इतनी विशेषता है कि पूर्व और पश्चिमके दोनों ही पार्श्वभागोंमें साठ हजार योजन
ऊर्ध्वार्धतक क्षान्तिरूप क्षेत्रका अपेक्षा उपर्युक्त क्षेत्र क्षान्तिरूप है । फिर भी इस ऊन क्षेत्रकी
गणना न करके और उसे साठ हजार योजन मोटा जगप्रतस्प्रमाण मंकर कर उसे छिन्न
करके पृथक् स्थापित कर देना चाहिये ।

उदाहरण—अधोलोकका तलभाग ७ राजु लम्बा और ७ राजु चौड़ा है, अतएव
उसका क्षेत्रफल जगप्रतस्प्रमाण होगा । तलभागमें प्रत्येक वातवलय २०००० हजार योजन
मोटा है, इसलिये तीनों वातवल्योंकी मोटाई ६०००० योजन होती है । इसे जगप्रतस्से गुणित
कर देनेपर साठ हजार योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगप्रतस् लब्ध आते हैं । यही
तलभागके वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल है ।

पुन एक राजु उत्सेधरूप, सात राजु आयामरूप ओर साठ हजार योजन बाहल्य-
रूपसे उत्तर और दक्षिणसम्बन्धी दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको बुद्धिसे पृथक्
करके उसे जगप्रतस्प्रमाणसे करनेपर एक लाख बीस हजार योजनोंके सातवें भाग बाहल्य-
प्रमाण जगप्रतस् होता है ।

उदाहरण—अधोलोकके तलभागसे ऊपर एक राजुप्रमाण वातवलयसे रके हुए क्षेत्रका
घनफल—उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक प्रत्येक दिशामें जगश्रेणीप्रमाण लंबा; १ राजु
ऊचा; तीनों वातवल्योंका बाहल्य ६०००० योजन; दोनों दिशाओंके वायुरुद्ध क्षेत्र १२००००
योजनोंके प्रमाणमें सातका भाग देनेपर १७१४२१ योजन लब्ध आते हैं, और ऊर्ध्वार्धमें
राजुके स्थानमें जगश्रेणीका प्रमाण हो जाता है । अतएव १७१४२१ योजनोंके जितने
प्रदेश हों उतने जगप्रतस्प्रमाण उत्तर और दक्षिणमें अधोलोकके तलभागसे एक राजु ऊंचे
क्षेत्रक वातवलयरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।

१ लोगतले बाहल्ये बाहल्लं सड्विजोयणसहस्रं । सड्विपुजकारिगुणिदि किण्णं बाहल्लेत्तकल ॥ नि. ता. १२७.
२ किण्णरज्जुवाओ जगवेदीदीर इवे वेहो । जोगणतट्टिसहस्रं सपमविदिपुज अवरे य ॥ जगपदसप्तभाग
सड्विपहस्रसेदि जोगणेदि गुणं । विगगुणिदमुपयपासे बादकळं पुव्व अवरे य ॥ नि. मा. १२८, १२९.

हिय पंचहं लक्खणं सत्तभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५४००००}{७}$ । पुणो अवरासु दोसु दिसासु एगरज्जुस्सेधेण तले सत्तरज्जुआयामेण सुहे सत्तभागहियछरज्जुलंदेणेण सट्ठि-जोयणसहस्रबाहल्लेण द्विदवादवलयेत्ते जगपदरमाणेण कदे वीसजोयणसहस्रसाहिय-पंचवंचासजोयणलक्खणं तेदालीस-तिसदभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५५२००००}{३४३}$ । एदं पुंविज्जलखेचसुवारी पक्खित्ते एगूणवीसलक्ख-असीदिसहस्रजोयणाहिय-तिण्हं कोडीणं तेदालीस-तिसदभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{३१९८००००}{३४३}$ । पुणो सत्तरज्जुविकखंभ-नेरह-

इस घनफलको पहले तलभागके घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर पांच लाख बालीस हजार योजनोंके सातवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{१२००००}{७} + \frac{१२००००}{७} = \frac{५४००००}{७} \text{ योजन मोटा जगप्रतर ।}$$

पुनः दूसरी दो अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें तलभागसे एक राजु ऊंचे, तल-भागमें सात राजु लंबे, एक राजु ऊपर आकर मुखमें एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजु लंबे, और साठ हजार योजन बाह्यरूपसे स्थित वातवलयक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर पचवन लाख बीस हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{४९}{७} + \frac{४३}{७} = \frac{९२}{७} ; \frac{९२}{७} - \frac{२}{७} = \frac{९०}{७} ; \frac{९०}{७} \times \frac{२}{१} = \frac{१८०}{७} ;$$

$$\frac{१८०}{७} \times ६०००० = \frac{५५२००००}{७} \text{ । इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेके लिए } ४९ \text{ का भाग देनेपर}$$

$$\frac{५५२००००}{३४३} \text{ योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें तलभागसे एक राजुतक वातरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।}$$

इसे पूर्वोक्त घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर तीन करोड़ उन्नीस लाख अस्सी हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{५४००००}{७} + \frac{५५२००००}{७} = \frac{३१९८००००}{७} \text{ योजन मोटा जगप्रतर ।}$$

१ उदयमुखमिहो रज्जुसत्तमच्छल्लसेदी य । जोयणसट्ठिसहस्रं सत्तमखिदिदन्निखणुत्तरो ॥ तस्स फलं जगपदरो सट्ठिसहस्रेहि जोयणेहि हदो । वाणउदिगो सगवणसमजिदे उमयपासहि ॥ वि. सा १३०, १३१

२ सेदी अरज्जु चोहसजोयणमायामवासुसेद । पुब्बवपासकुण्ठे सत्तमदो तिरियलोपो वि ॥ तन्नादरुद्ध-चेपं जोयणचववीसगुणिदगपदर । समयदिसासन्नभिद नादल्वं गणिदकुसलेहि ॥ वि. सा. १३२, १३३

रज्जुआयाम-सोलहवारह-सोलहवारहजोयणवाहल्लेण दोसु वि पासेसु द्विदवादलेत्ते जग-पदरमाणेण कदे चउसट्ठिसजोयण-अट्ठारहसहस्रजोयणं तेदालीस-तिसदभागवाहल्ल जगपदरं उप्पज्जदि $\frac{१०८३६}{३४३}$ । पुणो सत्तभागहिय-छरज्जुमूलविकखंमेण छरज्जुउस्सेधेण एगरज्जुमुहेण सोलह-वारहजोयणवाहल्लेण दोसु वि पासेसु द्विदवादरेत्तं जगपदरमाणेण कदे वादालीसजोयणसदस्स तेदालीस-तिसदभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५३०००}{३४३}$ । पुणो एग-पंच एगरज्जुविकखंमेण सत्तरज्जुउस्सेधेण वारह-सोलह-वारहजोयणवाहल्लेण उवरिमदोसु

पुनः उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक सात राजु विष्कभरूपसे, सातवों पृथि-वीके तलभागसे लोकान्ततक तेरह राजु आयामरूपसे और अयोलीककी अपेक्षा सोलह, वारह और ऊर्ध्वलीककी अपेक्षा सोलह वारह योजन बाह्यरूपसे दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर एकसौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} १३ \times ७ = ९१, ९१ \times १४ = १२७४ ; १२७४ \times २ = २५४८ \text{ । इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये सातसे गुणा करे और तीनसौ तेतालीस का भाग दे, तब } \frac{१७८३६}{३४३} \text{ योजन मोटा जगप्रतर आता है । यह उत्तर और दक्षिणमें सातवों पृथिवीसे लेकर लोकान्ततक वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।}$$

पुनः पूर्व और पश्चिम दिशामें सातवों पृथिवीके पास एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजुप्रमाण मूलमें विष्कभरूपसे छह राजु उत्सेधरूपसे, मध्यलीकके पास एक राजु मुखरूप से और सोलह, वारह योजनप्रमाण बाह्यरूपसे दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वात-क्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर न्यालीससौ योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाह्यरूप जगप्रतर होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७} ; \frac{५०}{७} - \frac{२}{७} = \frac{४८}{७} ; \frac{४८}{७} \times \frac{२}{१} = \frac{९६}{७} ;$$

$$\frac{९६}{७} \times १४ = \frac{७००}{७} ; \frac{७००}{७} \times ६ = \frac{४२००}{७} ; \text{ इसे जगप्रतररूपसे करनेपर } ४९ \text{ का}$$

भाग देनेसे $\frac{४२००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें सातवों पृथिवीसे मध्यलोकतक वायुरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

पुनः मध्यलीकके पास एक राजु ; मध्यलीकके पास पांच राजु और लोकान्तमें एक राजु विष्कभरूपसे, सात राजु उत्सेधरूपसे तथा, वारह, सोलह और बारह योजनप्रमाण बाह्य-

१ उदय मुख वेहो छल्लु सत्तमअरज्जु रज्जु य । जोयण चोहस सत्तमतिरियो वि हु वक्खिणुत्तरो ॥ तन्नाणिलेखेत्तल उमये पासमि होर जगपदरं । अस्सपबोयणगुणिद पविमत्त सत्तवणेन वि. सा. १३४, १३५.

वि पासेसु द्विदवादखेतं जगपदरपमाणेण कदे अट्टासीदिसमहिय-पंचजोयणसदानं एरण्ण-
वंचासमागवाहल्लं जगपदरं होदि ५६८ ।' उतरि रज्जुत्रिकउभेण सत्तरज्जुआयामेण
किंचूणजोयणवाहल्लेण द्विदवादखेतं जगपदरपमाणेण कदे ति-उत्तर-तिसदानं वेसहस्स-
विसद-चालीसमागवाहल्लं जगपदरं होदि ३०३ ।' एदं सव्यमेगत्य मेलात्रिदे चउतीस-
कोडिसमहियसहस्सकोडीओ एरण्णवीसलक्ख-तेमीदिसहस्स-चउमुद-सत्तासीदिजोयणणंण-
सहस्स-मत्तसय-साट्ठिरुवाहियलक्खाए अवहिदेगमागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{१०२४१९८३४८०}{१०००००}$ ।

रूप से ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दोनों ही पाद्योंमें स्थित यातदेवको जगप्रतरप्रमाणसे
करने पर पांचसौ अठासी योजनोंके उतचासवें भाग याहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $५ + १ = ६$; $६ - २ = ४$; $३ \times ७ = २१$; $२१ \times २ = ४२$;
 $४२ \times १४ = ५८८$ इसे जगप्रतरप्रमाणसे करने पर ४९ का भाग देनेसे $\frac{५८८}{४९}$ योजनोंके
जितने प्रवेश हों उतने जगप्रतर लब्ध होते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दो
दिशाओंके यातकद क्षेत्रका घनफल है ।

लोकके उपरिम भागमें एक राजु धिक्करूपसे, सात राजु आयामरूपसे, कुछ कम
एक योजन याहल्यरूपसे स्थित यातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करने पर तीनसौ तीन योज-
नोंके दो हजार दोसौ बालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $१ \times ७ \times ३६३ - ९ = ३०३$ यही लोकके मप्रमाणके वातकक्षेत्रका
घनफल है ।

इस सर्व घनफलको एकत्रित करनेपर एक हजार बीबीस करोड़, उअसि लाख
तेरासी हजार बारसौ सत्तासी योजनोंमें एक लाख नौ हजार सातसौ साठका भाग देनेपर
ओ एक भाग लब्ध आवे उतने योजनप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{३१९८००००}{३४४} + \frac{१७८३६}{३४४} + \frac{४२००}{४९} = \frac{१०२४१९८३४८०}{१०९७६०}$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतर लोकके चारों ओर वातकक्षेत्रका घनफल होता है ।

१ आधुन्युदेदी जोयण चोदस य वासमुजवही । बग्गो ति पुन-अवरे कलमेदं चदुणं सव्व ॥ पंचा-
दुद्धिगिरज्जुं पृथंगुधरं तिसणजोयणय । वेहो तं चउण्णिदं सेउल्लं दाम्मणुखारो ॥ वि. सा १३६, १३७

२ बाण्डयमुजं रज्जुं इगिजोयणवीनितिसरंवेणु । सत्तिविसदं वेदीं फलमीत्तिपमावारीं ईववाउणं ॥
वि. सा. १३८

३ सत्तासीदिचउरुसदसरसतेनीदिलक्खउणवीण । चउवीसारेयं कोदिसहस्सगुणियं तु जगपदरं ॥ बट्टी-
सवसपहिं नवपधइस्सेगलक्खमजियं तु । सव्वं वादाकदं गणियं भणियं समासिणं ॥ वि. सा १३९-१४०

एदं वादकद्वसुत्तं घणलोगाहिं अणिदे पदरगदेकवल्लिउत्तं देखणलोगो होदि । एदं
पदरगदेकवल्लिउत्तमबोलोगमाणेण कदे वे जघोलोगा अधोलोगसम चउम्भमाणेण सादिरणेण
ऊगया । उट्टुलोगपमाणेण कदे दुवे उट्टुलोगा उट्टुलोगसम तिभागेण देखणेण सादिरया ।
लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ।

आदेसेण गदियाणुवादेण निरयगदीए णेरइणसु मिच्छाइट्ठि-
पहुडि जाव असंजदसम्भाइट्ठि ति केवडि खेत्ते, लोगसस असंखे-
जदिभागे' ॥ ५ ॥

इस यातकदक्षेत्रको घनलोकमेंवे घटा देनेपर प्रतरसमुदातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र
कुछ कम लोक प्रमाण होता है । प्रतरसमुदातको प्राप्त केवलीका यह क्षेत्र अधोलोकके
प्रमाणरूपसे करनेपर कुछ अधिक अधोलोकके बीये भागसे कम दो अधोलोकप्रमाण होता
है । तथा इसे ही ऊर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे करनेपर ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे
अधिक दो उर्ध्वलोकप्रमाण होता है ।

त्रिशोपर्य्य — जगध्रेणीके जितने प्रवेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण सर्व लोक है । इसमेंसे
 $\frac{१०२४१९८३४८०}{१०९३१०}$ योजनप्रमाण जगप्रतरोंके घटा देनेपर प्रतरसमुदातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र
होता है । अधोलोकका प्रमाण १९६ घनराजु है, इसलिये यदि इसे अधोलोकके प्रमाणरूपसे किया
जाय तो दो अधोलोकोंके प्रमाण $\frac{१०२४१९८३४८०}{१०९३१०}$ योजनप्रमाण जगप्रतर
अधिक अधोलोकके बीये भागप्रमाण ४९ घनराजु घटा देनेपर प्रतरसमुदातको प्राप्त केवलीका
क्षेत्र आ जाता है । उर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है, इसलिये यदि इस क्षेत्रको ऊर्ध्वलोकके
प्रमाणरूपसे किया जाय तो ऊर्ध्वलोकके एक तिहाई घनराजु ४९ मेंसे $\frac{१०२४१९८३४८०}{१०९३१०}$
योजनप्रमाण जगप्रतरोंको घटाकर जितना शेष रहे उसे दो ऊर्ध्वलोकके प्रमाण २९४ घनराजु-
ओंमें जोड़ देनेपर प्रतरसमुदातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है ।

लोकपूरणसमुदातको प्राप्त केवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें
रहते हैं ।

आदेशकी अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकजातिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे
लेकर असंयतसम्पदृष्टि गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५ ॥

एत्थ 'आदेसेण' गहणं ओघपडिसेधफलं । गदिगहणमिदियादिपडिसेधफलं । अणुवादगहणं सुनस्स अकट्टिवुत्तपरुवणफलं । गिरयगदिणिहेसो देवगदियादिपडिसेधफलो । गेरहएसु ति वयणं तत्थणपुठविकाहयादिपडिसेधफलं । लोगस्स असंखेज्जदिभागो इदि बुने सेसलोगाणं कघ गहणं हेदि १ ण, खेत्त-फोसणसुत्ताणं देसामासिगत्तादो ।

संपदि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादग्द-मिच्छा-इद्दी केवडि खेत्ते, चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणे । एदस्स अत्थपरुवणद्धमेत्थोपाहणा बुच्चदे । तं जहा-पठमाए पुठवीए पठमपत्थडग्दि गेरहयाण-मुस्सेधो तिणिण हत्था । तेरहमपत्थडे सत्त घणू तिणिण हत्था छ अंगुलाणि गेरहयाण-मुस्सेधो हेदि ।

मुह-भूमिविसेसग्दि दु उच्छेहंभजिदग्दि सा हवे वड्डी ।

वड्डी इच्छागुणिदा मुहसहिदा सा फल होदि ॥ १७ ॥

इस सूत्रमें आदेश पदके ग्रहण करनेका फल ओघका प्रतिषेध करना है । गति पदके ग्रहण करनेका फल इन्द्रियादिका प्रतिषेध करना है । अनुवाच पदके ग्रहण करनेका फल सूत्रके अकर्तृकत्वका प्ररूपण करना है । नरकगति पदके निर्वेश करनेका फल देवगति आदिमा प्रतिषेध करना है । नारकियोंमें इसप्रकारके वचनके देनेका फल वहाँके क्षेत्रमें रहनेवाले पृथिवीकाविक आदिका प्रतिषेध करना है ।

शंका — लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, केवल इतना कहनेपर शेष लोकोंका ग्रहण कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके सूत्र देशमार्शक हैं, इसलिये 'लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' इतने पदके कहनेसे शेष लोकोंका भी ग्रहण हो जाता है ।

अब विशेष पदोंकी अपेक्षा मिथ्याहापि नारकियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्स्थान, विहारवत्स्स्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात और वैक्रियिकसमुदातको प्राप्त हुए मिथ्या-हापि नारकी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं और अर्द्धाद्वीपप्रमाण मानुपलोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । अग इसके अर्थके प्ररूपण करनेके लिये यहाँपर नारकियोंकी अवगाहना कहते हैं । वह इसप्रकार है— पहली पृथिवीके पहले पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध तीन हाथ है । तेरहवें पाथड़ेमें सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल नारकियोंका उत्सेध है । भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेधका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह बुद्धिका प्रमाण होता है । अब जिस पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण लाना हो उसे इच्छा मानकर उससे

१ सत्त सि-उदद हयगुलाणि कमसो इमति वस्माए । चरिदिदयमि उदजो । ति. प. २, २१७. रयणपमाए पुठवीए नेरहयाणं ४४ सरोगाहणा ४४४ वक्कोसेणं सत्त घणू तिणिण रयणीओ छक्क अंगुलां । जीमासि. ३, २, १२.

एदीए गाहाए सेसएक्कारसपत्थडग्दिनेरहयाणमुस्सेधा आणेयज्जा । तेसिं पमाणमेदं—

प्रस्ता	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
धनुष	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
हस्त	३	१	२	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अंगुल	०	८३	१७	१३	१०	१८३	३	११३	२०	४३	१३	२१३	६

बुद्धिको गुणित कर दो, और मुखका प्रमाण जोड़ दो । इसका जो फल होगा वही इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध समझना चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषार्थ — यद्यपि द्वितीयादि नरकोंमें प्रथमादि नरकोंके अन्तिम पटलके नारकियोंका उत्सेध मुख हो जाता है, परन्तु प्रथम नरकमें पहले पाथड़ेके ही नारकियोंका उत्सेध मुख रहेगा । अतएव उक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध नहीं निकाला जा सकता है । पहले नरकमें पदका प्रमाण १२ और शेष नरकोंमें जहाँ जितने पाथड़े होंगे वहाँ उतना पदका प्रमाण रहेगा । पहले नरकमें दूसरा पाथड़ा पहला और अन्तिम पाथड़ा बारहवाँ गिना जायगा ।

उदाहरण—प्रथम नरकमें मुखका प्रमाण ३ हाथ और भूमिका प्रमाण ७ धनुष ३ हाथ, ६ अंगुल होता है । एक धनुषमें ४ हाथ, और १ हाथमें २४ अंगुल होते हैं । इस प्रमाणके अनुसार मुखके अंगुल ३ × २४ = ७२ तथा भूमिके अंगुल ७ × ४ + ३ × २४ + ६ = ७५० हुए । उक्त गाथानुसार इसकी प्रक्रिया करनेपर ७५० - ७२ = ६७८ = ५६३ अं = $\frac{१३}{३}$ = २ हाथ ८३ अंगुल होते हैं, यह प्रथम पृथिवीके प्रति-पटलमें बुद्धिका प्रमाण है ।

अब यदि हमें प्रथम नरकके पांचवें पटलका उत्सेधप्रमाण निकालना है तो पूर्वोक्त नियमानुसार ५६३ अंगुलको ४ से गुणितकर प्रथम पटलके उत्सेधका प्रमाण उसमें जोड़ देना चाहिये । $\frac{१३}{३} \times ४ + ७२ = २२६ + ७२ = २९८$ अं. = १२ हा १० अं = ३ घ १० अ यही प्रथम पृथिवीके पांचवें पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण है ।

इस उपर्युक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले और तेरहवें पाथड़ेके अतिरिक्त शेष ग्यारह पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है (देखो मूलका नकशा) ।

१ प्रतिगु केवलमक्का एव निरिता न प्रस्तारादिपदानि । तानि तु सुवोषार्थमस्मासि सर्वत्र योजितानि ।

२ रयणपपुहयुपाए उदओ सीमतणामपवळमि । जीवाण इत्यतियं सेसेह हाणिबड्डीओ ॥ आदी अते सोहिय रुऊणद्धाहिदमि हाणिचया । मुहसहिदे खिदिसुद्धे गियणियपदेस उच्छेहो ॥ हाणिचयाण पमाणं वस्माए र्गतिं दोणिण हत्थाए । अट्टगुलाणि अंगुलमागो दोहिं विहत्तो य ॥ एकपणुकेकहत्यो सत्तसगुलदल व गिरयमि । गिरिदो तिथहत्थां सत्तस अणुलाणि रोरुणए ॥ दो वडा दो हत्था भतामि दिवड्ढगुल होदि । वस्मते दहत्तिं वरंशलाणि व उच्छेहो ॥ तिय दंढा दो हत्था अट्टार अंगुलाणि पवळ । समतणामइवउच्छेहो पदपुठवीए ॥

विदियपुढविणवमपत्यडम्हि गेरइयाणमुस्सेधो पण्णरह धणूणि वे हत्या वारह अंगुलाणि । सेसदसपत्यडणेइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदन्वो । तेसि पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धनुष	८	९	९	१०	११	१२	१२	१३	१४	१४	१५
हस्त	२	०	३	२	१	०	३	१	०	३	२
अंगुल	२३	२२	२१	१८	१६	१०	१६	१३	१०	१५	१२

दूसरी पृथिवीके ग्यारहवें पायदेमें नारकियोंका उत्सेघ पन्द्रह धनुष, दो हाथ, बारह अंगुल है । प्रथमादि दोष दश पायदोंके नारकियोंका उत्सेघ पूर्वांक गायोंके नियमानुसार ले आना चाहिये । उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ—इस दूसरी पृथिवीमें सुखका प्रमाण ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल और भूमिका प्रमाण १५ धनुष, २ हाथ, १२ अंगुल है । तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण २ हाथ, २० १/२ अंगुल है ।

चचारो बागानि सचावीस च अगुलानि वि । होदि असमतिदियवदओ पटमाइ पुदवाए ॥ चचारो कोदका सिय इथा अगुलानि तेवीस । दलिदाणि होदि वदओ विमत्तयणमि पटलमि ॥ पत्र गिय कोदका एको इथो य बीस पव्याणि । तसिदियमि वदओ पणचो पटमवोणीए ॥ छ सिय कोदकाणि चचारो अगुलानि पनन्द । उअउहे गादवो पवळमि य तसिदियममि ॥ बाणासणानि छ सिय दो इथा तेरवगुलानि वि । वक्तवणामपळे उअउहे पटमपुदवीए ॥ सच य सरासणानि अगुलया एकवीस पवद । पवळमि य उअउहे होदि अवक्तवणाममि ॥ सण विविखासणानि इथाइ तिणि छ अगुलय । वारिदियमि वदओ विक्कते पटमपुदवीए ॥ ति. प २, २१८-२३०.

१ दोषाए × ४ उअउहेन पणरस धणूई अगुलजातो रणणीओ । जीवामि ३, २, १२.

२ दो इथा बीसगुल एकासमजिदि दो वि पव्याइ । एगाइ गुरुओ पुदसहिदे होति उअउहे ॥ अट्ट वि-सिदासणानि दो इथा अगुलानि चरवीस । एकासमजिदाइ वदवो पुण विदियवसुहाए ॥ पत्र दश बावींगुलानि एकासमि चउपव । मजिदाओ सो मागो विदिए वसुहाय उअउहे ॥ पत्र दश तिथ हथ चउपवदोगयानि पव्याणि । एकासमजिदाइ उदओ सणइदियमि जीवण ॥ दस दश दो इथा चोदम पव्याणि अट्ट माग य । एकासोई मजिदा वदओ तणगीदियमि विदियाए ॥ एकास चावणानि एगो इथो दमगुलानि वि । एकासहिदरसमा वदओ चारिदियमि मिदियाए ॥ नारस सरासणानि पव्याणि अट्टइसरी होति । पुणरस मजिदाणि सवादे नारायण उअउहे ॥ नारस सरामणानि तिथ इथा तिणिण अगुलानि च । एकासदिमनिमाया उदओ जिजिदअग्मि विदियाए ॥ तेवणण य इथा तेवीसा अगुलानि पणमागा । एकासोई मजिदा विमगपवळमि उअउहे । चोदस दश सोलसखुत्तानि दोसयानि पव्याणि । एकासमजिदाहि लोलयणाममि उअउहे ॥ एकोणमट्टि इथा पणस अगुलानि पत्र मागा । एकासोई मजिदा लोलयणाममि उअउहे ॥ पणणम कोदका दो इथा नारसगुलानि च । अतिमपळे यणलोलयमि विदियाय उअउहे ॥ ति. प २, २३१-२५२.

तदियपुढविणवमपत्यडम्हि गेरइयाणमुस्सेधो एकवीस धणूणि एगो हत्यो य' । सेसदसपत्यडणेइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदन्वो । पत्ररि एत्य एकवीस धणूणि सहत्याणि भूमी होदि । पणरस धणूणि वे हत्या वारह अंगुलानि ग्रहं होदि । भूमीदो ग्रहं सोहिय उस्सेधेण पत्रहि मागे हिदे वट्टी होदि । तं वट्टि पवसु ठाणसु ठमिय एगादि-एगुत्तेहि गुणगोहि गुणिय मुहम्मि पक्खित्ते इच्छिदउस्सेधो होदि । तस्म पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९
धनुष	१७	१९	२०	२२	२४	२६	२७	२९	३१
हस्त	१	०	३	२	१	०	३	२	१
अंगुल	१०३	९३	८	६३	५३	४	२३	१३	०

चउत्यपुढविमत्तपत्यडणेइयाणमुस्सेधो चासट्टी धणूणि वे हत्या य' । एदं भूमि

तीसरी पृथिवीके नौवें पायदेमें नारकियोंका उत्सेघ एकवीस धनुष और एक हाथ है । दोष आठ पायदोंके नारकियोंका उत्सेघ पूर्ण गायोंके नियमानुसार ले आना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहांपर एकवीस धनुष और एक हाथ भूमि है । पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अंगुल सुख है । भूमिमेंसे सुपको यत्राकर उत्सेघ (पत्र) नौ का माग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है । (तीसरी पृथिवीमें प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १ धनुष, २ हाथ और २३ १/२ अंगुल है ।) इस वृद्धिको नौ स्यानोंमें स्थापित करके एक आदि एकोत्तर गुणकारोंसे गुणित करके मुरमें मिला देनेपर इच्छित पायदेके नारकियोंका उत्सेघ आता है । उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा) ।

चौथी पृथिवीके सातवें पायदेमें नारकियोंका उत्सेघ वासठ धनुष और दो हाथ है ।

१ तथाए × ४ उअउहेन एगवोइ पणूइ एका रयचो । जीवामि. ३, २, १२.

२ एवच पणू दो इथा बावीन अगुलानि दो मागा । विमजिदि वायन्ना मेचाइ शविगुरुओ ॥ सरास चावणि चोलीन अगुलानि दो मागा । विमजिदा मेपाए उदओ तसिदियमि जीवण ॥ एकोनवीस दज अट्टावी-संगुलानि तसिदियमि । तमिदिदियमि तसियमोवाए वायण उअउहे ॥ भोसस दमरियं सोदाए अगुलानि होदि तदा । तसिय पिय पुदवाए तमिदियमियमि उअउहे ॥ पउरियमाणा इथा नियदियमि दोम परमाणि । मेकए तमनिदियमिदण जीवण उअउहे ॥ सचाउउदी इथा सोरस पव्याणि तियविहणानि । उदओ विदायणामए पळे नाराया जीग ॥ उग्गीम पामाणि चचारि अगुलानि मेपाए । पज्जलिदयामपवडे डिदण जीवण उअउहे ॥ गणार्जन दश तिथ इथा अट्ट अगुलानि च । तियमाजिदाइ उअउहा उअउहिदे नारायण वादन्वो ॥ एकोनवीस दश दो इथा अगुलानि चचारि । तियमाजिदाइ उदओ सज्जहिदे तसियपुदवीए ॥ इक्काविं दशए एगो इथो अ तदिय-पुदवीए । सपज्जहिदे नारिदिननारायण होदि उअउहे ॥ ति. प २, २४१-२५२

३ चउत्यपु × ४ मट्टी धणूई दोण्ण रणणीओ । जीवामि. ३, २, १२

करिय सेस-छ-पत्थडणेइयाणमुसेधो आणेदवो । तस्स पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७
धनुष	३५	४०	४४	४९	५३	५८	६२
हस्त	२	०	२	०	२	०	२
अंगुल	२० $\frac{४}{६}$	१७ $\frac{१}{३}$	१३ $\frac{४}{६}$	१० $\frac{४}{६}$	६ $\frac{४}{६}$	३ $\frac{४}{६}$	०

पंचमपुढविपंचमपत्थडणेइयाणमुसेधो पणुवीसुत्तरसदधणी । एदं भूमि करिय सेसचदुणं पत्थडाणमुसेधो आणेदवो । तेसि पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५
धनुष	७५	८७	१००	११२	१२५
हस्त	०	२	०	२	०

इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष छह पायडोंमें नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ—इस पृथिवीमें मुख का प्रमाण ३१ धनुष, १ हाथ और भूमिका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ है । तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४ धनुष, १ हाथ और २० $\frac{४}{६}$ अंगुल है ।

पांचवीं पृथिवीके पांचवें पायडोंमें नारकियोंका उत्सेध एकसौ पच्चीस धनुष है । इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष चार पायडोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ—पांचवीं पृथिवीमें मुखका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ और भूमिका प्रमाण १२५ धनुष है । तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १२ धनुष और २ हाथ है ।

१ चउ दडा इगि हत्यो पज्जाणि वीस सउ पडिहत्ता । चउ मागा तुमिमाए पुढवीए हाणिवड्डीआं ॥ पणतीसं दवाए हत्ताइं दोण्णि वीस पज्जाणि । सचहिदा चउमागा उदओ आरुद्धिदाण जीवाण ॥ चालोस कोदवा वीसम्महिअ सय च पज्जाणि । सचहिद उच्छेहो तुमिमाए मारपडलीवाण । चउदाल चावाणि दो हत्ता अगुलाणि छणउदी । सचहिदो उच्छेहो तारिदयसठिदाण जीवाण ॥ एक्कोवणण दडा बाहउत्तरि अगुला य सचहिदा । वडिदयम्मि तुमिक्खोणीए नारायाण उच्छेहो ॥ तेवण्णा चावाणि दो हत्ता अट्टाल पज्जाणि । सचहिदाणि उदओ दमगिदय-सठिदाण जीवाण ॥ अट्टावण्णा दडा सचहिदा अगुला य चउवीसं । चादिदयम्मि तुमिक्खोणीए नारायाण उच्छेहो ॥ नासट्ठी फादडा हत्ताइं दोण्णि तुमिपुढवीए । वरिमिदयम्मि खलखलणमाए नारायाण उच्छेहो ॥ वि. प. २, २५३-२६०

२ पचमीए × पणवीस धनुसय । जीवामि. ३, २, १२

३ भास सरासणाणि दो हत्ता पचमीय पुढवीए । खयवड्डीए पमाणं णिहिठ वीयाएहिं ॥ पणहत्तापाराणा कोदवा पचमीए पुढवीए । पडमिदयम्मि उदओ तमणामे सठिदाण जीवाण ॥ सचासीदी दडा दो हत्ता पचमीए बोणीए । पडलम्मि य ससणामे नारायजीवाण उच्छेहो ॥ एक्क कोदंसय ससणामे नारायाण उच्छेहो । चावाणि

छट्ठीए पुढवीए तदियपत्थडणेइयाणमुसेधो अट्टाहज्जसदधणी । एदं भूमि करिय सेसदोणं पत्थडाणमुसेधो आणेदवो । तस्स पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३
धनुष	१६६	२०८	२५०
हस्त	२	१	०
अंगुल	१६	८	०

सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणमुसेधो पंचसदधणी ।

तेसि पमाणमेदं—

एत्थ णेरइएसु उत्सेधअट्टमभागो विक्खंभो ति कहु परिट्ठमदं करिय विक्खंभद्वेण गुणियुस्सेहेण गुणिदे णेरइयाणमोगाहणा हेदि । ओगाहणं पडि सत्तमपुढवी

छठवीं पृथिवीके तीसरे पायडोंमें नारकियोंका उत्सेध ढाईसौ धनुष है । इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष दो पायडोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ—छठी पृथिवीमें मुखका प्रमाण १२५ धनुष और भूमिका प्रमाण २५० धनुष है । तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४१ धनुष, २ हाथ और १६ अंगुल है ।

सातवीं पृथिवीके नारकियोंका उत्सेध पांचसौ धनुष है । उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा) ।

यहां नारकियोंमें उत्सेधके आठवें भागप्रमाण विष्कम्भ होता है ऐसा समझकर, विष्कम्भकी परिधिओ आधा करके, और विष्कम्भके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर नारकियोंकी अवगाहना होती है । अवगाहनाकी अपेक्षा सातवीं पृथिवी प्रधान है,

बासुत्तरसयमेक्क अघयम्मि दो हत्ता ॥ एक्क कोदंसयं अम्महिंय पचवीमरूवेहिं । धूमप्पहाए चरिमियम्मि तिमिसयम्मि उच्छेहो ॥ ति प २, २६१-२६५.

१ छट्ठीए × अट्टाहज्जाइ धनुसयाइ । जीवामि. ३, २, १२.

२ एक्कचाल दडा हत्ताइं दोण्णि सोलसगुलया । छट्ठीए वसुहाए परिमाण हाणिवड्डीए ॥ छसट्ठी अधियसय कोदवा दोण्णि होति हत्ता य । सोलस पज्जा य पुट रिमपलगादण उच्छेहो ॥ दोण्णि सयाणि अट्टाउत्तरादहाणि अगुलाण च । बत्तीस छट्ठीए वंदलठिदजीवउच्छेहो ॥ पण्णासम्महिंयाणि दोण्णि सयाणि सरासणाणि च । उल्लक्खणामइदयठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥ ति प. २, २६६-२६९.

३ सत्तमाए × पचधनुसयाइ । जीवामि. ३, २, १२.

४ पचसयाइ धण्णि सत्तमअवणीइ अनधिठाणम्मि । सव्वेसिं गिरयाण काउच्छेहो जिणदेसो H ति. प २, २७०.

पधाणा, पढमपुढविओगाहणादो सचमपुढविओगाहणाए संखेज्जगुणनुवलंभादो। दन्वं पडि पढमपुढवी पहाणा, सेसपुढविदन्वादो पढमपुढविदन्वस्स असंखेज्जगुणनुवलंभादो । ओगाहणगुणगारादो दन्वगुणगारो बहुगो त्ति पढमपुढवी पहाणा कायन्वा ।

सामणेण एत्थ अत्थपदं बुच्चदे । सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा होदि । विहारदिसत्थाणन्वेदण-कसाय-वेउन्वियसपुग्धादासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदि-भागे । एदमत्थपदं सन्वत्थ जोजेदन्वं । पुणे अप्पण्णो रासीओ ठविय अंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तोगाहणाए गुणिय चहुहि लोरोहि ओविट्ठिदे चहुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो आगच्छदि । माणुसखेत्तेणोवट्ठिदे असंखेज्जाणि माणुमरेत्ताणि होति । णवरि वेयण-कसायसु णवगुणा, वेउन्वियसपुग्धादे संखेज्जगुणा ओगाहणा सन्वत्थ कायन्वा । एवं मारणंतियपदस्स । णवरि ओवट्ठणं ठविज्जमाणे पढमपुढविदन्वं पहाणं कायन्वं । कुदो ? मारणंतियहि परिणदजीवस्स तत्थ विग्गहर्गए रज्जुअसरेज्जदिभागमेचदिहत्तस्स वि

क्योकि, पहली पृथिवीकी अवगाहनासे सातवीं पृथिवीकी अवगाहना संख्यातगुणी पाई जाती है। तथा, द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा पहली पृथिवी प्रधान है, क्योंकि, द्वितीयादि शेष छह पृथिवियोंके द्रव्यप्रमाणसे पहली पृथिवीका द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है। इसप्रकार सातवीं पृथिवीके अवगाहनाके गुणकारसे पहली पृथिवीके द्रव्यप्रमाणका गुणकार बहुत बड़ा है, इसलिये यहांपर पहली पृथिवीको प्रधान करना चाहिये।

अब सामान्यरूपसे यहांपर अर्थपदका निरूपण करते हैं—स्वस्थानस्वस्थानराशि मूल नारकराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है। विद्यारथस्वस्थान, वेदनासमुदात, कपाय-समुदात, और वैक्रीयकसमुदातको प्राप्त राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। यह अर्थपद सर्वत्र जोड़ लेना चाहिये। पुनः अपनी राशियोंको स्थापित करके, उन्हें अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनासे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सामान्य आदि चार लोकोंसे पृथक् पृथक् भाजित करनेपर, अर्थात् सामान्य आदि चार लोकोंके, तत्प्रमाण खंड करनेपर, चार लोकोंका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है। तथा उक्त प्रमाणको मातुलोकसे अपवर्तित करनेपर अर्थात् उक्त प्रमाणके मानुपक्षेत्रप्रमाण खंड करनेपर असंख्यात मानुपक्षेत्र आते हैं। इतनी विशेषता है कि वेदनासमुदात और कपायसमुदातमें सर्वत्र अवगाहनाको नौगुणी और वैक्रीयकसमुदातमें अवगाहनाका सर्वत्र संख्यात-गुणी कर लेना चाहिये। मारणान्तिकसमुदातका कथन इसीप्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पहली पृथिवीके द्रव्यको प्रधान करना चाहिये, क्योंकि, मारणान्तिक समुदातसे परिणत द्रुग जाँवके यहा विग्रहगतिमें राजुके

१ वेदनासमुदाण समोहते X X सरीप्पमाणमेत्त विक्खणवाहलेण नियमा छहेत्ति X X ग्रन्था. ३६, १७.
एव कसायसमुधातादि माणित्तवो । प्रमा ३६, २८

२ वेदवियसमुधाणं समोहते X X सरीप्पमाणमेत्त विक्खमनाहलेण, आयाणेण अदुण्णेण अंगुलस्स संखेज्जतिभाग उक्कोसेण साखिदजाति ओयणादि एगदिहि विदिहि वा एवदुग्ग खिसे X X ग्रन्था ३६, १९

उवलंभादो । तेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपढमपुढविउक्कमणकालेण ओवट्ठिय लद्धस्स असंखेज्जा भागा विग्गहं करंति । तेसिं पि असंखेज्जा भागा मारणंतियं करंति त्ति । पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तमारणंतियउक्कमणकालेण गुणिदे मारणं-तियरासी आगच्छदि । पुणो णेरइयमुहवित्तारेण णवगुणरज्जुअसंखेज्जदिभागेण मारणंतिय-रासिं गुणिदे तत्तखेत्तं होदि । उववादस्सोवट्ठणं ठविज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण विदियपुढविदन्वे भागे हिदे तिरिक्खेहिंतो विदियपुढवीए उप्पज्जमाणमिच्छा-इट्ठिणो होति । पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं मागहारं ठविय रूवणेण गुणिदे विग्गहर्गए मारणंतिएण उप्पज्जमाणतिरिक्खिमिच्छइट्ठिणो होति । पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं मागहारं ठविदे तिरिक्खेहिंतो विग्गहर्गए रज्जुपडि-भागेण मारणंतियं करिय उप्पज्जमाणतिरिक्खिमिच्छइट्ठिणो होति त्ति वत्तव्वं । सन्वत्थ रज्जुमेत्तायामविदियदंडुवलंभादो । पुणो एदं दन्व तिरिक्खेओगाहणमुहवित्तारेण णवरज्जु-गुणिदेण गुणेदन्वं । ओवट्ठणा पुवं व कादन्वा । एवं सासणस्स । णवरि उववादो णत्थि ।

मसंख्यातवें भागप्रमाण दीर्घता भी पाई जाती है। इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पहली पृथिवीके उपक्रमणकालसे प्रतिसमयमें मरनेवाली राशिको भाजित करके जो लब्ध आवे उसके असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव विग्रहको करते हैं। तथा इनके भी असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव प्रति समयमें मारणान्तिकसमुदातको करते हैं। पुनः इसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र मारणान्तिकसमुदातके उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिक समुदातराशि होती है। पुनः नारकियोंके मुखविस्तारसे नौ गुणे राजुके असंख्यातवें भागसे मारणान्तिकराशिको गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुदातसेत्र होता है। उपपादकी अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे दूसरी पृथिवीसंबन्धी द्रव्यके भाजित करनेपर तिर्यचोमसे दूसरी पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्याद्यष्टि जीव होते हैं। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप एक दूसरा भागद्वार स्थापित करके एक क्रमसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुदातसे उत्पन्न होनेवाले तिर्यच मिथ्याद्यष्टि जीव होते हैं। पुन एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागको भागद्वाररूपसे स्थापित करनेपर तिर्यचोमसे विग्रहगतिमें राजुके प्रतिभागरूपसे मारणान्तिक समुदात करके उत्पन्न होनेवाले तिर्यच मिथ्याद्यष्टि जीव होते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि, सर्वत्र राजु-मात्र आयामसे युक्त दूसरा दंड पाया जाता है। पुनः इस द्रव्यको नौ गुणी राजुसे गुणित तिर्यचोमकी अवगाहनाके मुखविस्तारसे करना चाहिये। यहां पर अपवर्तना पढ़नेके समान करना चाहिये।

इसीप्रकार सासादनसम्यग्द्यष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि समझना

मारणंतियरासिमिच्छिय दो आवलियाए असंखेज्जदिभागे अण्णोगुणे करिय पुब्बरासिस्स भागहारं ठविय तप्पाओगेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि । सेसविधी पुब्बं व । एवं सम्माभिच्छाहडिस्स । गवरि मारणंतियं पि णत्थि । असंजदसम्माहडिस्स सासणमंगो । गवरि उववादो अत्थि । मारणंतिय-उववादेसु गेरइया सम्माहडिणो संखेज्जा चेव हंति । सेसं जाणिय वचन्वं ।

एवं सत्तसु पुढवीसु गेरइया ॥ ६ ॥

दब्बाडियणयमवलंबिय सुचं जदो डिदं' तदो सत्तहं पुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, सन्वगुणानं सन्वपदेहि सरिससुवलंभादो । ण विदियादिपंचपुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए पदं पाडे तुल्ला, तस्य असंजदसम्माहडिणं उववादाभावादो । ण सत्तमपुढविपरूवणा वि गिरओघपरूवणाए तुल्ला, सासणसम्माहडिमारणंतियपदस्स असं-

चाहिये । इतनी विशेषता है कि उनके उपपाद नहीं पाया जाता है । जर मारणान्तिक समुदातको प्राप्त राशिके लानेकी इच्छा हो तब दो बार आवलीके असंख्यातवें भागको परस्पर गुणित करके और उसे पूर्वराशिका भागद्वार स्थापित करके उसके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त राशि होती है । शेष विधि पहलेके समान है । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके मारणान्तिकसमुदात भी नहीं होता है । असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदिके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके उपपाद पाया जाता है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादमें सम्यग्दृष्टि नारकी सख्यात दो पाये जाते हैं । शेष कथन जानकर करना चाहिये ।

इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ६ ॥

चूंकि यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अवलंबन लेकर स्थित है, इसलिये सातों पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, यह कथन घटित हो जाता है । पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करनेपर तो पहली पृथिवीकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, पहली पृथिवीमें सामान्यप्ररूपणासे सर्व गुणस्थानोंकी सर्वपदोंकी अपेक्षा समानता पाई जाती है । किंतु स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंकी अपेक्षा द्वितीयादि पांच पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके समान नहीं है, क्योंकि, उन पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है । इसीप्रकार सातवर्षी पृथिवीकी प्ररूपणा भी नारक सामान्यप्ररूपणाके तुल्य नहीं है, क्योंकि, सातवर्षी पृथिवीमें सासादनसम्यग्दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिकपदका और असंयतसम्य-

१ भविष्य 'जदो डिद तदो डिद' इति पाठ ।

जदसम्माहडिमारणंतिय-उववादपदानं च तत्थ अभावादो । सत्तहं पुढवीणं ओगाहणाभेदो मारणंतिय-उववादानं ठविज्जमाणरज्जुभेदो दब्बविसेसो च वचन्वो । पढमपुढविमिच्छाहडिमारणंतियखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं । कुदो ? पदंगुलस्स संखेज्जदिभागगुणिदत्तहंवे सेटीए संखेज्जदिभागेण गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो त्ति' एगपदेसमादि कादूण जा उक्कस्सेण समुत्पत्तिपदेसो त्ति मारणंतियखेत्तायामसुवलंभादो । ण चेदमसिद्धं, महामच्छेत्तद्वृणपरूवणणहाणुववचीदो । तस्य जेण सेटीए असंखेज्जदिभागायामेण मारणंतियं करिय मरंता बहुवा, तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्त वडदे ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सन्वलोए ॥ ७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा ओघमिच्छादिट्ठिपरूवणाए तुल्ला । गवरि वेउन्वियसमुग्धादगदजीवा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे, तिरिक्खेसु विउन्वमाणरासी पलि-

ग्धाष्टिसंबन्धी मारणान्तिक और उपपाद पदका अभाव है । यहांपर सातों पृथिवियोंकी सब गाहनाका भेद, और मारणान्तिक तथा उपपादका स्थापित होनेवाला राजुभेद और द्रव्यविशेषका कथन करना चाहिये । पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त राशिको प्रतरगुलके सख्यातवें भागसे गुणित करके पुनः जगधेर्णिके सख्यातवें भागसे गुणित करतेपर तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र पाया जाता है । तथा एकप्रदेशसे लेकर उत्कृष्टरूपसे अपनी उत्पत्तिके प्रदेशतक मारणान्तिकक्षेत्रका आयाम पाया जाता है, इसलिये भी पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है । और यह कथन असिद्ध भी नहीं है; क्योंकि, महामत्स्यके क्षेत्रस्थानकी प्ररूपणा अन्यथा वन नहीं सकती है । वहांपर चूंकि जगधेर्णीके असख्यातवें भाग आयामरूपसे मारणान्तिकसमुदातको करके मरनेवाले जीव बहुत हैं, इसलिये तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग वन जाता है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा ओघमिथ्यादृष्टि प्ररूपणाके समान है । इतनी विशेषता है कि वैकृतिकसमुदातको प्राप्त तिर्यच जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, तिर्यचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पत्त्योपमके असंख्यातवें भागमात्र धनंगुलौसे

१ भविष्य 'त्ति ण' इति पाठः ।

२ मारणंतियसमुग्धातेण $X \times$ सरीएमाणमेसे विक्खम्भनाहणेण, आयामेण जहणेण अगुलस्स असंखेज्जाति-भार्ग उक्कसिण असंखेज्जातिं जोएणाति एगदिहि एवदिते खेत्ते $X \times$ प्रमा. ३६, १८.

॥ ३ / ।
बसुन्धरामे जीवद्वाण
[६७]

दोषमस्म असंख्यज्जदिभागमेतर्धंगुलेहि गुणिदमेदिमेचो चि गुरुवदेमादो ।

सासणसम्माइट्टिण्हुडि जाव संजदासंजदा चि केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सुच्चिद-अत्थो वुज्जदे-- सत्थाणसत्थाण-विहारवदि सत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउन्विण्हि परिणदसासणसम्मादिद्धी केवडि खेत्ते ? चट्ठणं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । रासिपमाणं मणमाणे सत्थाण-
सत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा । सेसरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ ।
णवरि वेउन्विण्यसमुदादरासी मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? तिरिक्खेसु
विउज्जमाणजीवाणं पउरं संवभावादो । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणगुलमेचो,
एगघणंगुलं वो ।

गुणित जगत्त्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

मित्रने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यतावें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ८ ॥

अथ इस वैशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं—स्वस्थानस्यस्थान, मिहार-वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कणायसमुद्घात और वैकल्पिकसमुद्घातसे परिणत सासादन-सम्पन्नचित्तं तिर्यच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यगतों भागप्रमाण क्षेत्रमें और अर्द्धाद्विपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्यस्थान आदि उक्त राशिओंके प्रमाणका कथन करने पर स्वस्थानस्वस्थान जीवराशि मूलराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है। तथा दोष राशियां मूलराशिके संख्यातयें भाग मात्र हैं। इतनी विशेषता है कि वैकल्पिकसमुद्घातको प्राप्त राशि मूलराशिके असंख्यातयें भागप्रमाण है, क्योंकि, तिर्यचोंमें विक्रिया करनेवाले जीव प्रचुर समय नहीं हैं। यहाँ पर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण अथवा एक घनांगुल है।

विशेषार्थ—यहाँ पर अवगाहनाका गुणकार जो संख्यात घनांगुल अथवा एक घनांगुल कहा है उसका यह भाग प्रतीत होता है कि पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्थचौकी उत्कृष्ट अ-गाहना सख्यात घनांगुल प्रमाण होती है, अतः उसका घनफल लानेके लिए अयगाहनाका गुणकार भी संख्यात घनांगुल ही होगा। किन्तु असपर्याप्त तिर्थचौकी जयन्त्य अयगाहना घनांगुलके सख्यातर्धे भागप्रमाण ही है। यद्यपि इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईका पृथक् पृथक् उपदेश आज नहीं पाया जाता है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख गोम्पटसारणी जी. प्र. टीकाकारने

१. बादपुष्पा तेषु सगर्भाणि असहमाणाभिदा । विदिक्रियतास्त्रिज्ज्ञा पञ्चाभेष्टमया मातु ॥ पञ्चा-
सहस्रमाहर्षिदशगुण्णद्वयोदमेता इ । गगनैवपवन्वा भोगप्रमा पदं त्रिगुञ्जति गो जो २५८-२५९

२ गो जो १६

[25]

खेवाजगने तिरिक्छुखेचपरुयणं

[2, 3, 4]

एवं सम्मामिच्छाद्वि-असंजदमम्माद्वि-संजदासंजदणं । मारणंतियसमुग्यादगद-
सासणमम्मादिद्वी केवाडि खेत्ते ? चट्ठणं लोपाणममंखेज्जदिभागे, अट्ठहज्जादो असंखेज्ज-
गुणे अच्छंति । ओघरासिमात्रलियाए अमंखेज्जदिभागेण भागे हिदे मंतसासणमम्मा-
इट्ठिरामी होदि । पुणो वि आपलियाए असंखेज्जदिभागेण' हरिय रुज्जेण गुणिदे मारणं-
तियसमुग्यादगरामी होदि । पुणो वि आपलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जु-
मेत्तायामेण मारणंतियसमुग्यादगद-एगसमयमंचिदरासी होदि । तमात्रलियाए अमंतै-
ज्जदिभागेण गुणिदे तत्कालमंचिदरासी होदि । एदं मंखेज्जपदंगुलगुणिदरज्जए गुणिदे
मारणंतियखेत्त होदि । एवमसंजद-संजदामंजदणं । सम्मामिच्छाद्वीणिं मारणंतियं णत्थि ।

उपनादगदसासणमम्मादुही केवडि सेत्ते, चटुण्हं लोगाणममंवेज्जदिमागे, अट्ठाइ-
उज्जादो असंवेज्जगणे । एतय राभिपमाणणिज्जमाणे मूलराभिभावलिपाए अमंवेज्जदि-

क्रिया है, तो भी उनके घनांगुलका प्रमाण उधरोत्तर संन्यासगुणा कहा है। यदापर पचेन्द्रिय पर्याप्तजोषोशी जगन्म अक्वगाहना एकवार संख्यातमे माञ्जित घनांगुल प्रमाण करी है। संभवतः घबलाकारने उभी जगन्म अक्वगाहनाके घनफलको घट्टिमें रगकर ' एक यनांगुल ' गुणाकारका प्रमाण कषा है।

इसी प्रकार सत्यगिरिप्रयागछि, असंयतमभ्यगछि और संयतानंयत तिर्यञोहे भी स्वरगतस्यस्यान आर्क्षके विषयमें समग्रता चाहिये । मारणान्तिकसमुदायको प्राप्ता हुए सामान्यमभ्यगछि तिर्यञ कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातें भागप्रमाण क्षेत्रों और आर्क्षोपसे असंख्यातगुणों क्षेत्रमें रहते हैं । ओघराशिओ मायलीके असंख्यातें भागमें भाजित करने पर मरनेवाली सामान्यमभ्यगछि तिर्यञराशि होती है । फिर भी आयलीके असंख्यातें भागसे भाजित करके एक कम उससे गुणित करने पर मारणान्तिकसमुदायको प्राप्ता राशि होती है । फिर भी आयलीके असंख्यातें भागसे भाजित करने पर रज्जुमात्र आयामकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुदायको प्राप्त एक समयमें सचित ओघराशि होती है । इसे आयलीके असंख्यातें भागमें गुणित करने पर मारणान्तिक समुदायके बालमें संज्ञित हुई राशि होती है । इसे संख्यात प्रतरंगुलोंसे गुणित राजुसे गुणा करने पर मारणान्तिकक्षेत्र होता है । इसी प्रकार असंयतमभ्यगछि और संयतासयत तिर्यञोके मारणान्तिकसमुदायके विषयमें कहना चाहिये । सत्यगिरिप्रयागछिओंके मारणान्तिकसमुदाय नहीं होता है ।

उपपादको प्राप्त सासादनसम्पत्तिरिति च हितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अर्थादीपले असंख्यातगुने क्षेत्रमें रहते हैं। यदा पर सामादनसम्पत्तिरिति चोकी उपपादशिक्षा प्रमाण होने पर मल्लाशिक्षा

१ प्रतिपत्ति ' भागं ' इति पाठः ।

भाएण भागे हिदे उपपज्जमाणसासणसम्माइडिरासी होदि । पुणो अवरेण आवलियाए असंखेज्जदिभागणे भागे हिदे रूक्खणेण गुणिदे विग्गहर्गइए मारणंतिएण उपपज्जमाणरासी होदि । संखेज्जा भागा मारणंतियं कादूणुपपज्जंति चि के वि भणंति, एदं जाणिय वत्तवं । गत्थि एत्थ मज्झणियमो । तमावलियाए असंखेज्जदिभागणे भागे हिदे उज्जुदो' आगच्छमाणरासी होदि । एदस्स पदंगुलस्स संखेज्जदिभाएण गुणिदरज्जुं गुणगारं ठविदे उववादेखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्टणा पुवं व । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स । गवरी उववादे संखेज्जा होति, पुवं वट्ठायुगमणुस्ससम्मादिट्ठिहि विणा अण्णेसिं तत्थ उववादा-भावादो । ओगाहणगुणगारो वि संखेज्जपदंगुलमेत्तो, एगपदंगुलमेत्तो वा । सम्मा-मिच्छाइडि-संजदासंजदणं उववादं गत्थि ।

पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणि-णीसु मिच्छाइडिपुहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर उत्पन्न होनेवाली मासावनसम्यग्दृष्टि राशि होती है । पुन. एक दूसरे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर और एक कम एक भागहारसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुदात्तसे उत्पन्न होनेवाली जीवराशि है । उत्पन्न होनेवाली राशिके सख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मारणान्तिकसमुदात्त करके उत्पन्न होते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, इसलिये इसको जानकर कथन करना चाहिये । किन्तु इस विषयमें कोई मध्यम नियम नहीं है । इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर ऋजुगतिसे आनेवाली राशिका प्रमाण होता है । प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे राजुको गुणित करके जो लब्ध आवे उसे इस राशिका गुणकार स्थापित करने पर उपपादक्षेत्र होता है । यहा पर अपवर्तना पहलेके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार असयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोका उपपाद जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपपादमें असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच सख्यात ही होते हैं, क्योंकि, जिन मनुष्योंने सम्यग्दर्शनके पहले तिर्यचायुजा बंध कर लिया है ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके विना दूसरे सम्यग्दृष्टियोंका तिर्यचोमें उपपाद नहीं होता है । इनकी अवगाहनाका गुणकार भी संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण अथवा एक प्रतरांगुलमात्र है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोके उपपाद नहीं होता है ।

पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके तिर्यच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ९ ॥

एदं पि देसामासियं सुत्तमेव, संगहिदाणेगसुत्तथादो । तं जहा-सत्थान-सत्थान-विहारविसत्थान-वेदण-कसायसमुधादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइडो केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एत्थ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तराभिं मोत्तूण पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्तरासी चैव धेत्तवो, अपज्जत्तोगाहणादो पज्जत्तोगाहणाए असंखेज्जगुणत्तवलं भादो । एत्थ सत्थानसत्थानरासी मूलरासिस्स संखेज्जभागमेत्ता होदि । सेसरासीओ तस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जधणंगुलमेत्तो । ओवट्टणं जाणिदूण कादवं । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिमिच्छाइडिणं । वेउज्जिय-समुधादगदमिच्छाइडो केवडि खेत्ते ? चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिमिच्छाइडिणं । मारणंतिय-समुधादगदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाइडो केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो । कुदो ? पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तरासिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारस्स

यह भी सूत्र देशामर्शक ही है, क्योंकि, इसमें अनेक सूत्रोंका अर्थ संग्रहीत है । उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात्त और कषायसमुदात्तको प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य-लोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाइडिपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहापर पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवराशिको छोड़कर पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त राशिका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्तोंकी अवगाहनासे पर्याप्तोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी पाई जाती है । यहापर स्वस्थानस्वस्थानराशि मूलराशिके संख्यात बहुभाग-प्रमाण होती है । श्रेय राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागमात्र होती हैं । यहापर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनंगुलप्रमाण है । अपवर्तनाका कथन जानकर करना चाहिये । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंकी स्वस्थानस्वस्थानराशि आवि समझना चाहिये । वैकृतिकसमुदात्तको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आवि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाइडिपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका वैकृतिकसमुदात्तगत क्षेत्र जानना चाहिये । मारणांतिकसमुदात्तको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्तराशिका भागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र पाया जाता है ।

सत्तादो । तं कथं ? संखेज्जवस्साउअतिरिक्खोवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदि-
भाएण तेरासियक्केण भागे हिंदे मरंतपंचिदियतिरिक्खमिच्छाह्दिपमाणं होदि । एत्थ
उवक्कमणकालागमणविधीं वुच्चदे- संखेज्जावलियासु जदि आवलियाए असंखेज्जदि-
भागो गिरंतरुवक्कमणकालो लब्भदि, तो उवक्कमणानुवक्कमणप्पयम्मि आयुद्धिदिहि
केचियवुवक्कमणकालं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदमिच्छमोचद्धिदे आवलियाए असंखे-
ज्जदिभागमेनुवक्कमणकालो लब्भदि । एवं संखेज्जवस्साउअरासीण सांतराणमुवक्कमण-
कालो अणेसिं पि ओणेद्वो' । पुणो मारणंतियरासिमिच्छिय अवरं पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिय रज्जुआयामेण द्विदरासिमिच्छिय अणेण
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागहारो ठवेयव्वो । पुणो एत्थतणसंचयमिच्छिय
मारणंतियउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिय पुणो एदं रज्जुगुणिद-
संखेज्जपदंगुलेहि गुणिदे मारणंतियखंतं होदि । एदेण तिणिं वि लोभे भागे हिंदे

शंका — यह कैसे ?

समाधान — संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्थचोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके
असंख्यातवर्षे भागसे त्रैराशिक क्रमसे भाजित करने पर प्रत्येक समयमें मरनेवाले पंचेन्द्रिय
तिर्थच मिथ्याहृष्टियोंका प्रमाण होता है ।

अन यद्वा पर उपक्रमणकालके लानेकी विधि को कहते हैं—संख्यात आवलियोंके
भीतर यदि आवलीका असंख्यातवा भागप्रमाण निरन्तर उपक्रमणकाल प्राप्त होता है, तो
उपक्रमण और अनुपक्रमणरूप आयुकी स्थितिके भीतर कितने उपक्रमणकाल प्राप्त होंगे,
इसप्रकार आवलीके असंख्यातवर्षे भाग प्रमाण फलराशिले उपक्रमण और अनुपक्रमणात्मक
आयुकी स्थितिरूप इच्छाराशिको गुणित करके और संख्यात आवलीप्रमाण प्रमाणराशिका
भाग देने पर आवलीके असंख्यातवर्षे भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है । इसीप्रकार
संख्यात वर्षकी आयुवाली अन्य सान्तर राशियोंका भी उपक्रमणकाल ले आना चाहिये । पुनः
यहां मारणान्तिक राशिका प्रमाण लाना है, इसलिये एक दूसरा पदयोगमके असंख्यातवर्षे
भागप्रमाण भागहार स्थापित करके और एक कम उसीसे गुणित करके राजुप्रमाण आयामकी
अपेक्षा स्थित राशि लाना इच्छित है, इसलिये एक दूसरे पदयोगमके असंख्यातवर्षे भागरूपसे
भागहार स्थापित करना चाहिये । पुनः यद्वापर मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त जीवराशिका
संचय इच्छित है, इसलिये मारणान्तिकसंवन्धी उपक्रमणकाल आवलीके असंख्यातवर्षे भागसे
गुणित करके पुनः क्षेत्र लानेके लिये इस राशिको राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित
करने पर मारणान्तिकक्षेत्रका प्रमाण होता है । इस क्षेत्रके प्रमाणसे सामान्यलोक यदि

१ सौवकमाधुप्रक्रमकालो संखेज्जवासद्धिदिवाने । आवलिअसखमाणो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥
नो वी २६५

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति तण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो अच्छंति त्ति
सिद्धं । तिरिय-णरलोणेहिंतो असंखेज्जगुणे । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तव्वं ।
उववाद्गदपंचिदियतिरिक्खमिच्छाह्दी केवडि खेत्ते ? तण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो ।
एत्थ उववाद्गदसेत्तमागिज्जमाणे मारणंतियमंगो । णवरि पढमं उवसंहरिय विदियदंड्हिय-
जीवे इच्छिय अणेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेद्वो, असंखेज्ज-
जोयणविदियदंडायामजीवाणं बहूणमणुत्तंभादो । एसो एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए
असंखेज्जदिभाएण गुणगारं अवाणदे रज्जुगुणिदसंखेज्जपदंगुलाणि गुणगारो होदि ।
एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तव्वं । सेसगुणद्वानाणं तिरिक्खोवमंगो । णवरि
जोणिणीसु असंजदसम्माह्दीणं उववादो णत्थिय ।

तीनों ही लोकोंके भाजित करने पर पदयोगमका असंख्यातवर्षा भाग आता है, इसलिये सामान्य
लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्रातगत पंचेन्द्रिय
तिर्थच पर्याप्त जीव रहते हैं, यह बात सिद्ध हुई । तथा मारणान्तिकसमुद्रातगत पंचेन्द्रिय
तिर्थच पर्याप्त जीव तिर्यलोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार
मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये ।

उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यच मिथ्याहृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । यद्वा पर उपपाद-
क्षेत्रके लोते समय मारणान्तिकक्षेत्रके समान कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि
प्रथम वंडका उपसहार करके दूसरे वंडमें स्थित जीवोंका प्रमाण लाना इच्छित है, इसलिये
पदयोगमके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, असं-
ख्यात योजन आयामवाले दूसरे वंडमें स्थित जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं । यह एक समयमें
साचित जीवरशि हुई, इसलिये आवलीके असंख्यातवर्षे भागसे गुणकारके अपनीत करने पर
राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुल गुणकार होता है । इसीप्रकार उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय
तिर्थच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये । उपपादकी अपेक्षा दोष गुणस्थानोंका
कथन तिर्यच बोधके कथनके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि योनिमती
तिर्थचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है ।

विशेषार्थ—यद्वापर जो प्रथम वंड आदिका कथन किया गया है, उसका अभिप्राय
यह है कि विग्रहगतिमें मरणक्षेत्रसे लगाकर प्रथम मोड़े तक जीवता जो सीधा गमन होता
है यह प्रथम वंड है । तथा प्रथम मोड़ेसे लगाकर द्वितीय मोड़े तक जीवता जो सीधा गमन
होता है वह छितीय वंड है । इसीप्रकारसे तीसरा वंड भी समझना चाहिये ।

पंचिन्द्रियतिरिक्त्वअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ १० ॥

एदस्स देसामासियसुत्तस्स अत्थो बुच्चदे- सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्धादगदा केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? उस्सेघघणुलं पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदमेत्तोगाहणत्तादो । अट्टुइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । विहार-वदिसत्थाणं वेउव्वियसमुग्धादो य णत्थि । मारणत्तिय-उववादगदा केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? रासिस्स भागहारभूदा होदूण जहाकमेण दोणिण तिणिण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागा लब्भंति ति । तिरिय-माणसलोगादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । सुगममेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइटिपहुडि
जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १० ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात और कषायसमुदातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उरसेघ घनागुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे ऋडित करके जो एक भाग लब्ध आवे तत्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवकी अवगाहना है । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुदात नहीं पाया जाता है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, राशिके भागहार-रूप होकर यथाक्रमसे अर्थात् मारणान्तिकसमुदातकी अपेक्षा दो वार पल्योपमके असंख्यातवें भाग और उपपादकी अपेक्षा तीन वार पल्योपमका असंख्यातवां भाग पाया जाता है । तथा तिर्यंचलोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुदात और उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव रहते हैं । इसप्रकार इसका व्याख्यान सुगम है ।

मनुष्यगतितमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोगमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ११ ॥

१ मनुष्यगती मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्यापयोगिकेत्यन्तानां लोकस्थासंख्येयमाग । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कमाय-वेउव्वियसमुग्धादगदमिच्छाइट्टी केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । कुदो ? मणुसपज्जत्तमिच्छाइट्टिसेत्तगहणादो । सेट्ठीए असंखे-ज्जदिभागेमेत्तमणुसअपज्जत्ताणं सेत्तस्स गहणं किण्ण कीरदे ? ण, तस्स अंगुलस्स संखेज्जदिभागे संखेज्जगुलेसु वा अवट्टाणादो । मारणत्तिय-उववादगदमिच्छाइट्टी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-णरलेगेहिंतो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणी-कदमणुसअपज्जत्तरासीदो । एवमुववादस्स वि । णवरि एगो अवलियाए असंखेज्जदिभागे दोणिण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागा च मणुसअपज्जत्तरासिस्स भागहारा हुवेदन्वा ।

सासणसम्माइट्टी असंजदसम्माइट्टी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घदेहि परिणदा केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, माणुम-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणत्तिय-उववादगदा चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, अट्टुइजादो

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात और वैक्रियिकसमुदातको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका ग्रहण किया है ।

शंका — अपर्याप्त मनुष्य जगत्त्रेणोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, अतएव यहां उनके क्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पर्याप्त मनुष्यका अवस्थान अंगुलके संख्यातवें भागमें अथवा संख्यात अंगुलोंमें पाया जाता है, इसलिये यहांपर अपर्याप्त मनुष्योंके क्षेत्रका ग्रहण नहीं किया है ।

मारणान्तिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनि-मती मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यंचलोक तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य अपर्याप्तराशिकी प्रधानता है । इसीप्रकार उपपादका भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तराशिकीके एकवार आवर्तके असंख्यातवें भागप्रमाण और दो वार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागद्वार स्थापित करना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात और वैक्रियिक-समुदातसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए

असंखेजगुणे । सम्मामिच्छाद्द्वी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-समुग्धादपरिणदा केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेजदि-भागो । संजदसज्जदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्धाद-परिणदा केवडि खेत्ते ? चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेजदिभागो । भारणंतियसमुग्धादगदा चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुसखेत्तदो असंखेजगुणे अञ्छति । पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति मूलोघमंगो । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि मिच्छाद्द्वीणं सासणस्समाह्विद्विमंगो । मणुसिणीसु असंजदस्समादिद्वीणं उववादो णत्थि । पमत्ते तेजाहारसमुग्धादा णत्थि ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओघं ॥ १२ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो मूलोघमवधारिय लोगस्स असंखेजदिभागो, असंखेजसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ति वत्तव्वो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और अद्वितीयसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और वैकृतिकसमुदातरूपसे परिणत हुए सम्यग्भिष्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और वैकृतिकसमुदात इन पूर्वोंसे परिणत हुए संयतासंयत मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुदातको प्राप्त हुए संयतासंयत मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक मनुष्योंके यथासंभव स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोंका क्षेत्र मूलोघप्ररूपणोंके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मिथ्यादृष्टियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान कथन है । मनुष्यनिर्योमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार उन्हींके प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजसममुदात और आहारकसमुदात नहीं पाया जाता है ।

सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ओघप्ररूपणोंमें सयोगिजिनोंका जो क्षेत्र कह आये हैं, तत्प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ, मूलोघ सूत्रका निश्चय करके सयोगिकेवली जीव लोकके असंख्यातवै भाग क्षेत्रमें, लोकके असंख्यात वहुभागप्रमाण क्षेत्रमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, इसप्रकार कहना-चाहिये ।

मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्धादेहि परिणदा चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुस-खेत्तस्स संखेजदिभागो णिचिदकमेण । विण्णासकमेण पुण असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि । भारणंतियसमुग्धादो माणुसोघतुल्लो । भारणंतियखेत्तं ठविजमाणे स्रच्चिअंगुलपढम-तदिय-वगमूले गुणेदूण सेडिहिद्द भागे हिदे दव्वं होदि । तमिद्द आवलियाए असंखेज्जदिभाग-मेत्त-उवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयमिद्द मरंतरासी होदि । तं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोण ओवट्ठिय रूवूणेण गुणिदे एगममयसंचिदमारणंतियरासी होदि । पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभाएण भारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे भारणंतियकालअन्तरे संचिदरासी होदि । पुणो अत्रेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोण भागे हिदे रज्जुआया-मेण मुक्कमारणंतियरासी होदि । रज्जुआयदस्स विक्खंभो पदरंगुले पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागोण ओवट्ठिदे होदि । एवमुववादस्स वि । णवरि एगसमयसंचिदो ति आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणगारो अवणेदव्वो । विदियदंडे सेटीए संखेज्जदिभागायमेण मुक्क-

लब्धपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात और कपायसमुदातसे परिणत हुए लब्धपर्याप्त मनुष्य निश्चितरूपसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । विन्यासक्रमसे तो असंख्यात मनुष्यक्षेत्र लब्धपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र है । मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त हुए लब्धपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र ओघमनुष्यप्ररूपणोंके समान है । मारणान्तिकक्षेत्रके स्थापित करनेपर सूत्रगुलेके प्रथम और तृतीय वर्गमूलको परस्पर गुणित करके जो राशि आवे उसका जगत्रेणीमें भाग देनेपर लब्धपर्याप्त मनुष्योंका द्रव्यप्रमाण होता है । इसमें आवलीके असंख्यातवै भागमात्र उपक्रमणकालका भाग देनेपर एक समयमें मरनेवाले लब्धपर्याप्त मनुष्योंकी राशि का प्रमाण होता है । इसे पत्योपमके असंख्यातवै भागसे माजित करके और एक कम पत्योपमके असंख्यातवै भागसे गुणित करनेपर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिकसमुदातको प्राप्त लब्धपर्याप्त मनुष्यराशि होती है । पुनः इस राशि को आवलीके असंख्यातवै भागप्रमाण मारणान्तिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिककालके भीतर संचित जीवराशि का प्रमाण होता है । पुनः इसे एक दूसरे पत्योपमके असंख्यातवै भागसे माजित करनेपर राजुप्रमाण आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुदात जिन्होंने, ऐसे लब्धपर्याप्त मनुष्योंकी राशि होती है । प्रतरागुलको पत्योपमके असंख्यातवै भागसे माजित करनेपर राजुप्रमाण आयतक्षेत्र का विस्तार होता है इसीप्रकार उपपाद का भी क्षेत्र सम-झना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपपादराशि एक समयमें संचित होती है, इसलिये ऊपर जो आवलीके असंख्यातवै भागप्रमाण गुणकार कह आये हैं वद निकाल देना चाहिये । अब दूसरे दंडम जगत्रेणीके संख्यातवै भाग आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुदात जिन्होंने, ऐसे

मारणतियजीवे इच्छामो त्ति अण्णो गो पलिदेवमस्स असंखेज्जादिभागो भागहारो उवेदव्वो ।

देवगदीए देवसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जादिभागें ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्धाददेवमिच्छादिद्वी तिहं लोगणमसंखेज्जादिभागें, तिरियलोगस्स संखेज्जादिभागें, माणुमखेत्तादो असंखेज्जगुणें । कुदो ? पथाणीकदजोहिसियरासित्तादो । मारणतिय-उववादपरिणदमिच्छादिद्वी तिहं लोगणमसंखेज्जादिभागें णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणें । एत्थ सेत्तपमाणं जाणिय इवेदव्वं । सेसगुणद्वानाणमोवभंगो ।

एवं भवणवासियपहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासिय-देवा त्ति ॥ १५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण ख्वचिद-अत्थो वुच्चदे । तं जहा—सत्थाणसत्थाण-विहार-वदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-उववादपरिणदभवणवासियमिच्छादिद्वी चदुण्हं लोगा-जीवोंको लाना इए है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवा भाग भागद्वार स्थापित करना चाहिये ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और वैक्रियिक-समुद्धातको प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणें क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहाँपर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादरूपसे परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणें क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर क्षेत्रके प्रमाणको जानकर स्थापित करना चाहिये । देवोंके शेष गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघ-प्ररूपणाके समान है ।

भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयके विमानवासी देवों तकका क्षेत्र इसीप्रकार होता है ॥ १५ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित हुए अर्थको कहते हैं । वह इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात और उपपादरूपसे परिणत हुए भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके

णमसंखेज्जादिभागें, अद्वाइज्जादो असंखेज्जगुणें । तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिद्विणो कण्णागारेण हिंदभवणवासियखेत्तेसु उपपज्जमाणा वे विग्गहे कादूण सेटीए संखेज्जादिभागायामेण उपपज्जंता संभंति, तदो तिरियलोगादो असंखेज्जगुणें उववादखेत्तेण होदव्वमिदि ? सच्चमेदं जइ सेटीए संखेज्जादिभागमेत्तायामो उववादसेत्तस्स लब्भइ । किंतु संखेज्ज-ख्वचिअंगुलमेत्तो चेव । एत्तो संखेज्जजोयणाणि हेड्डा गंतूण भवणवासियविमाणणाभव-ड्डाणानुवल्भादो । ण च तिरियलोगे सन्नत्थ तदवासा, तिरियलोगस्स मल्लिसासंखेज्जदि-भागें चेव तेसिमत्थित्तदंसणादो । ण च उवरिमदेवेसुपपज्जमाणान्तिरिक्खमाणं व भवणवासि-सुपपज्जमाणान्तिरिक्ख-मणुस्साणं सगुप्पत्तिदिसं मुच्चा तिरिच्छेण गमणमत्थि, कंडुज्जुवाए गइए भवणवासियजगपणिधिमार्गतूण हेड्डावलिए भवणवासिएसुपपत्तिदंसणादो । एवं कुदो णव्वदे ? भवणवासियाणमुववादखेत्तस्स तिरियलोगासंखेज्जदिभागत्तणहाणुववत्तीदो । सगच्छिददड्डाणादो हेड्डा ओयरिय भवणवासिएसुपपज्जमाणामुववादखेत्तायामो सेटीए संखेज्जादिभागो लब्भमिदि त्ति तग्गहण जुत्तं, तहा तत्थुप्पज्जमाणणं सुहु ल्योवत्तादो । एवं

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, और अद्वाइद्विपसे असंख्यातगुणें क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—कणेरिखके आकारसे स्थित भवनवासियोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव दो विग्रह करके जगत्रेणिके सख्यातवें भागप्रमाण आयामरूपसे उत्पन्न होते हुए पाये जाना समभव है, इसलिये भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होना चाहिये ?

समाधान—यदि उपपादक्षेत्रका आयाम जगत्रेणिके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता, तो यह उक्त कथन सत्य होता । किन्तु, उपपादक्षेत्रका आयाम सख्यात सूत्र्यंगुलमात्र ही है, क्योंकि, इससे सख्यात योजन नीचे जाकर भवनवासियोंके विमानोंका अवस्थान नहीं पाया जाता है, तथा तिर्यग्लोकमें भी सर्वत्र भवनवासियोंके आवास नहीं है, क्योंकि, तिर्यग्लोकके मध्यवर्ती असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही भवनवासी देवोंका अस्तित्व देखा जाता है । दूसरे, उपरिम देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यचोंके समान भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच और मनुष्योंका अपनी उत्पात्तिकी दिशाओं छोड़कर तिरछा गमन होता हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि, मनुष्य और तिर्यचोंकी वाणके समान सीधी गतिसे भवनवासी लोकके समीप आकर अधस्तत्रेणीमें स्थित भवनवासी देवोंमें उत्पात्ति देखी जाती है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्यथा घन नहीं सकता है, इससे उक्त कथन जाना जाता है ।

अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर भवनवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तिर्यचोंके उपपादक्षेत्रका आयाम जगत्रेणिके सख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है, इसलिये उसका ग्रहण उपयुक्त है, किन्तु, उक्त प्रकारसे उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव स्वल्प होते हैं ।

कुदो णव्वदे ? तिरियलोगस्सासंखेज्जदिभागो चि वक्खणादो । मारणंतियसमुग्घादग्गद-
मिच्छाइद्दी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अद्वाइज्जादो वि
असंखेज्जगुणे । सेसमोघं । णवरि असंजदसम्माइद्दीणं उववादो गत्थि । वाणवेंतर-जोइसियाणं
देवोघमंगो । णवरि असंजदसम्माइद्दीणं उववादो गत्थि ।

पणुवीस असुराण सेसकुमारण दस धणू चैय ।

वेंतर-जोदिसियाण दस सत्त धणू मुणेयव्वां ॥ १८ ॥

एदद्वादो उस्सेह्वादो एत्थ ओगाहणखेचमाणेदव्वं । सोधम्मीसाणे सत्थाणसत्थाण-
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादग्गदमिच्छादिद्दी चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदि-
भागो माणुसखेचादो असंखेज्जगुणे । एत्थ सगलखेत्तपरिक्खा भवणवासियमंगो । अप्पणो
ओहिखेत्तमेत्तं देवा विउव्वंति चि जं आहरियवयणं तण्णा घडदे, लोगस्स असं-

शुंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—उपपादपरिणत भवनवासी देव तिर्यलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रमें रहते हैं, इस प्रकारके व्याख्यानसे उक्त कथन जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें और अर्द्धा-
द्वीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । शेष कथन ओघप्ररूपणके समान है । इतनी
विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भवनवासियोंमें उपपाद नहीं होता है । वानव्यन्तर और
ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र देवसामान्यके क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि-
योंका वानव्यन्तर और ज्योतिषियोंमें उपपाद नहीं होता है ।

भवनवासियोंके दश भेदोंमेंसे प्रथम भेद असुरकुमारोंके शरीरकी उंचाई पचीस धनुष
और शेष नौ कुमारोंके शरीरकी उंचाई दश धनुष है । तथा व्यन्तर देवोंके शरीरकी उंचाई दश
धनुष और ज्योतिषी देवोंके शरीरकी उंचाई सात धनुष जानना चाहिये ॥ १८ ॥

इस उपर्युक्त उत्सेधसे यहां अवगाहनाक्षेत्र ले आना चाहिये । सौधर्म और ईशान
कल्पमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात और वैक्रियक-
समुद्रातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यद्वापर सर्व पवगत क्षेत्रोंकी
परीक्षा भवनवासियोंके क्षेत्रके समान करना चाहिये । देव अपने अपने अवधिमानके क्षेत्र-
प्रमाण विक्रिया करते हैं, इन्प्रकार जो अन्य आचार्योंका वचन है वह घटित नहीं होता है,

१ त्रि सा २४९ उत्र चतुर्थवर्णे 'दश सत्त सतीउदओ इ' इति पाठ ।

२ सेमा वेंतरदेवा निय-निय-ओद्दीण जेतिय खेच । एति तेतिय पि इ पत्तेक्क विरुणवलेण । ति प. ५, १६-

खेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियखेत्तसप्पसंगदो । मारणंतिय-उववादाणं देवोघमंगो । उव-
वादखेत्तं ठविज्जमाणे विक्खंभुच्चीगुणिदसेट्ठि ठविय पलिदोमपस्स असंखेज्जदिभागए
सोहम्मीसाणउवक्कमणकालेण ओवट्ठिदे उपपज्जमाणजीवा हाति । असंखेज्जजोयणविदिय-
दंडेण उपपज्जमाणजीवे इच्छिय अवरो पलिदोमपस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो ।
एक्कपदंरगुलविक्खंभेण सेठीए संखेज्जदिभागायामेण खेत्तं पुंसंति चि पदंरगुलगुणिद-
सेठीए संखेज्जदिभागो गुणगारो ठवेदव्वो । सव्वत्थ उजुगदीए उपपज्जमाणजीविहिंतो
विग्गहगदीए उपपज्जमाणजीवा असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेट्ठिदो उस्सेटीए बहुजुवलंभादो ।
भवणवासियउववादखेत्तं च तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो किं ण होदि चि बुत्ते ण
होदि, पभापत्थडे उपपज्जमाणणं तिरिक्खाणं सव्वेसिं पि सेठीए संखेज्जदिभागायामो
विदियदंडस्स लंभदे, तेणेदमुववादखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं चि । सेसगुणद्वानाणं
देवमंगो । सणक्कुमारप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जो चि मिच्छादिद्दी ओघमंगो ।

क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्रातगत क्षेत्रके माननेका
प्रसंग आ जाता है । सौधर्म और ईशानकल्पमें देवमिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्रात और
उपपादसम्बन्धी क्षेत्र देवसामान्यके मारणान्तिकसमुद्रात और उपपादगतके समान जानना
चाहिये । उपपादक्षेत्रके स्थापित करते समय सौधर्म-ऐशान देवमिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भसूचिसे
गुणित जगध्रेणीकी स्थापित करके पर्योपमके असंख्यातवें भागरूप सौधर्म और ऐशानसम्बन्धी
उपकर्मणकालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः असंख्यात
योजनरूप दूसरे वृंद्धसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंको जाना इष्ट है, ऐसा समझकर पर्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये । तथा एक प्रतरंगुल-
प्रमाण विष्कम्भसे और जगध्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे क्षेत्रके स्पर्श करते हैं,
इसलिये प्रतरंगुलगुणित जगध्रेणीका संख्यातवां भागप्रमाण गुणकार स्थापित करना
चाहिये । सर्वत्र ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाले
जीव असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि, ध्रेणीकी अपेक्षा उच्छ्रेणियां बहुत पारि जाती हैं ।

शुंका—सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र भवनवासी देवोंके उपपाद-
क्षेत्रके समान तिर्यलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म ईशान कल्पके इकतीसवें प्रभापटलमें उत्पन्न
होनेवाले सभी तिर्यचोंके दूसरे वृंद्धका आयाम जगध्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता
है । इसलिये सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यलोकसे असंख्यातगुणा
होता है, यह सिद्ध हुआ । सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंके शेष गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान
क्षेत्रका कथन देवसामान्यके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके समान जानना चाहिये । सनत्कुमार-
कल्पसे लेकर उपरिम-उपरिमप्रैवयक तक मिथ्यादृष्टि देवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र
ओघ मिथ्यादृष्टिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रके समान है । तथा उन्हींके सासादन-

सासणसम्मादिद्वि सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विणं ओघभगो ।

अणुदिसादि जाव सव्वहसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मा-
दिद्वी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-मारणंति-उववादगद-
असंजदसम्मादिद्विणो चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अणुदिसादो असंखेज्जगुणे अच्छंति
त्ति वत्तन्वं । णवरि सव्वहं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्वियपदेसु
माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । कथं ? सव्वहं वेदण-कसायसमुधादाणं तेहिंतो समुप्पज्ज
माणयोवविफुज्जणं पडुच्च तथोवदेसादो, कारणे कज्जोवयारादो वा ।
एव गदिसगणा समत्ता ।

इंदियाणुवादेण इंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ १७ ॥

सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ-
सासावनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रोंके समान होते हैं ।

नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात, वैक्रियकसमु-
दात मारणान्तिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्यलोक
आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं, ऐसा यहां कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और वैक्रियकसमुदात इन
स्थानोंमें देव मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिमें
वेदनासमुदात और कपायसमुदातगत देवोंके उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाला स्तोक
विस्फूर्जन होता है, अर्थात् उक्त दोनों समुदातोंमें आत्मप्रवेशोंका बाह्य विस्तार बहुत कम
होता है, इस अपेक्षा उक्त प्रकारका उपदेश दिया है । अथवा, कारणमें कार्यके उपचारसे
उक्त प्रकारका उपदेश दिया है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणके अनुवादसे एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रियजीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय-
जीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय
पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें
रहते हैं ॥ १७ ॥

१ इन्द्रियद्वयदेन एकेन्द्रियार्ण क्षेत्र वर्तलोक । अ. वि. १, ८.

एत्थ लोगणिद्वेसेण पंचण्हं लोगाणं गहणं, देशामशेकत्वाल्लोकस्य । बादर-सुहु-
मादिवयेणेण सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउन्विय-मारणंति-उववापरिणदजीवाणं गहणं,
छविहवावत्थावदिरित्तवादरादीणमभावादो । तदो सव्वसुत्ताणि देसामासिगणि चेव ? ण
एस णियमो वि, उभयगुणोवलंभा । सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंति-उववादगदा एइंदिया
केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । वेउन्वियसमुधादगदा चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो ।
माणुसखेत्तं ण विण्णायदे, संपीहियकाले विसिद्धुवएसाभावा । तं जहा-वेउन्वियसुद्धावित्त-
रासी पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अहवा तस्स ओगाहणा उस्सेहवणंगुलस्स असंखे-
ज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । विउन्वमाण-एइं-

इस सूत्रमें लोक पक्षके निर्देशसे पांचों लोकोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, यहां लोक
पदका निर्देश देशामशंक है । सूत्रमें बादर और सूक्ष्म आदि वचनसे स्वस्थानस्वस्थान,
वेदनासमुदात, कपायसमुदात, वैक्रियकसमुदात, मारणान्तिकसमुदात और उपपादपदसे
परिणत हुए जीवोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, उक्त छह प्रकारकी अवस्थाओंके अतिरिक्त
बादर आदि जीव नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सर्व सूत्र देशामशंक ही है ?

समाधान—सर्व सूत्र देशामशंक ही है, यह नियम भी नहीं है, क्योंकि, सूत्रोंमें
दोनों प्रकारके धर्म पाये जाते हैं । अर्थात् कुछ सूत्र देशामशंक हैं और कुछ नहीं, इसलिये
सभी सूत्र देशामशंक ही हैं, यह नियम नहीं किया जा सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात, मारणान्तिकसमुदात, और
उपपादको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । वैक्रि-
यिकसमुदातको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें नहीं जाना जाता है कि उसके
कितने भागमें रहते हैं, क्योंकि, वर्तमानकालमें इसप्रकारका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया
जाता है । आगे इसी विषयका स्पष्टीकरण करते हैं—विक्रियाको उत्पन्न करनेवाली एकेन्द्रिय
जीवराशि पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अथवा, विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवोंके
शरीरकी अवगाहना उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है ।

शंका—उत्सेधघनांगुलमें जिसका भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग
लब्ध आता है, उस असंख्यातवें भागका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अर्थात् पल्योपमके असं-
ख्यातवें भागका उत्सेधघनांगुलमें भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध
आता है जो विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवके शरीरकी अवगाहना है ।

उपर विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि भी पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

दियरासीदो घणंगुलस्स भागहारो किमप्यो बहुगो समो वा इदि ण' णव्वदे ? जदि वेउव्वियरासीदो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो होदि, तो माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । अह असखेज्जगुणो, तो असंखेज्जदिभागो । अह सरिसो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । ण च एत्थ एदं चेव होदि चि णिच्छओ अत्थि, तदो माणुसखेत्तं ण णव्वदि चि सिद्धं ।

बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ता सत्थान-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोएहिंतो असंखेज्जगुणो । तं जहा- मंदरमूलादो उवारि जाव सदर-सहस्साकप्पो चि पंचरज्जु-उत्सेधेण लोगणाली समचउरंसा वादेण आउण्णा, तं जगपदरं कस्सामो । एककुणवांचासरज्जुपदराणं जदि एगं जगपदरं लब्धदि, तो पंचरज्जु-पदराणं किं लभामो चि फलगुणिदमिच्छं पमाणोवड्ठिदे' वे-पंचभागूण-एगूणसत्तरिखेहि

प्रमाण वतलाई है और उत्सेधघनांगुलका भागहार भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलाया है, इसलिये विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार क्या छोटा है, या बड़ा है, या समान है, यह कुछ नहीं जाना जाता है । अब यदि एकेन्द्रिय वैक्रियिकराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, ऐसा लेते हैं तो विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, ऐसा अभिप्राय निकलता है । अथवा, विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार असंख्यातगुणा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, यह अभिप्राय होता है । और यदि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार समान है, ऐसा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है यह अभिप्राय होता है । परंतु यहाँपर मानुषक्षेत्रका इतना ही भाग लिया गया है, ऐसा कुछ भी निश्चय नहीं है, इसलिये मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जाना जाता है कि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि उसके कितने भागमें रहती है, यह सिद्ध हुआ ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात और कषायसमुदातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मानुषलोक और तिर्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—मन्दराचलके मूल भागसे लेकर ऊपर शतार और सहस्रारकल्प तक पाँच राजु उत्सेधरूपसे समबहुल लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है । अब उसे जगप्रतरके प्रमाणस्वरूप करते हैं—यदि उनकास प्रतरराजुओंके एक पटलका एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पाँच प्रतरराजुओंका क्या प्राप्त होगा, इसप्रकार त्रैराशिक करके एक जगप्रतरप्रमाण फल-राशिसे पाँच प्रतरराजुप्रमाण इच्छाराशिको गुणित करके उनकास प्रतरराजुप्रमाण प्रमाण-

१ प्रतिगु 'न' इति पाठो नास्ति ।

२ प्रतिगु '—दो ने' इति पाठ ।

घणलोगो भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । लोगपरंतवादखेत्तं संखेज्जजोयणवाहल्लं जगपदरं पुण्वरूपविदमाणेदूण एत्थेव पक्खिविय अट्ठपुढविखेत्तं तेसिं हेड्डा डिदवादजग-पदरं संखेज्जजोयणवाहल्लमाणेदूण पक्खिखेत्ते जेण लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जचाणं खेत्तं जादं, तेण बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ता' लोगस्स संखेज्जदि-भागो होति चि सिद्धं । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं एइदिओघमंगो । मारणांतिय-उववादगदा सव्वलोगे । बादरेइंदियअपज्जचाणं बादरेइंदियमंगो । णवरि वेउव्वियपदं णत्थि । सुहुमे-इंदिया तेसिं चेव पज्जचापज्जत्ता य सत्थान-वेदण-कसाय-मारणांतिय-उववादगदा सव्व-लोगे, सुहुमाणं सव्वत्थ अच्छणं पडि विरोहाभावादो ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागं ॥ १८ ॥

राशिसे भाजित करनेपर, दो बड़े पांच कम उनहत्तरसे घनलोकके भाजित करनेपर जो एक भाग होता है उसना लब्ध आता है, जो कि ५ घनराजु प्रमाण है ।

उदाहरण— $1 \times 5 = 5$, $5 - 49 = \frac{44}{5}$ जगप्रतर । चूंकि यह वातपरिपूर्ण क्षेत्र १ राजु मोटा है, अतएव ५ घनराजु हुआ, जो कि $\frac{44}{5} - 64 = \frac{44}{5} - 128 = -84$ घनलोक प्रमाण होता है ।

तथा पहले प्रकृति किये गये लोकके चारों ओर प्रान्तभागमें संख्यात योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर इसी पूर्वोक्त वातक्षेत्रमें मिलाकर तथा आठों पृथिवियोंके क्षेत्र और उनके नीचे स्थित वायुक्षेत्र, जो कि संख्यात योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण हैं, उनको उसी पूर्वोक्त क्षेत्रमें मिला देनेपर चूंकि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण इसलिये बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ । वैक्रियिकसमुदातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र वेक्रियिकसमुदातगत सामान्य एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान होता है । मारणांतिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका क्षेत्र बादर एकेन्द्रियोंके समान होता है । इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके वैक्रियिकसमुदातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात, मारणांतिकसमुदात और उपपादको प्राप्त हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म जीवोंके सर्व लोकमें पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है ।

द्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव

१ प्रतिगु 'बादरेइंदिय' खेत जाद । तेण बादरेइंदियपज्जचाण' इति पाठ ।

२ विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासस्येयमागः । स सि १, ८

कालगुणगारमवणिदे एगसमयसंचिदो मारणंतियरासी होदि । तस्म असंखेज्जा भागा विगहगदीए उपज्जंति ति तस्स असंखेज्जे भागे धेत्तुण पलिदेवमस्स असंखेज्जदि-
भागेण ओवहिदे सेढीए संखेज्जदिभागामेण त्रिदियदंडट्टिरासी होदि ।

**पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्टिपहुडि जाव अजोगि-
केवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥**

एदस्स अत्थो-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्वित्रयसमुधादगद-
पंचिदियमिच्छाइट्टी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अट्टाह-
ज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्टी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो,
णर-तिरियलोभोहिदो असंखेज्जगुणे । एदाणं खेत्ताणमाणयणं पुब्बं व कादव्वं । सासणादिण-
भोवभंगो । एवं पज्जत्ताणं पि वत्तव्वं ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ २० ॥

नितक उपक्रमणकालके गुणकारको निकाल लेने पर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिक
जीवराशि होती है । एक समयमें संचित हुई इस मारणान्तिक जीवराशिके असंख्यात
बहुभाग जीव विग्रहगतिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये उसके असंख्यात भागको ग्रहण करके
पल्योपमके असंख्यातवै भागसे भाजित करने पर जगध्रेणीके संख्यातवै भाग आयामरूपसे
दूसरे दंडमें स्थित जीवराशि होती है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असं-
ख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १९ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-
समुदात, कयायसमुदात और चैक्रियिकसमुदातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोकके संख्यातवै
भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुदात
और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं । इन क्षेत्रोंको पहलेके समान ले आना चाहिये । सासादनसस्यगृष्टि आदिका
स्वस्थानस्वस्थान आदि पद्गत क्षेत्र ओघसासादनसस्यगृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान
आदि पद्गत क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार पर्याप्तोंके क्षेत्रका भी कथन
करना चाहिये ।

सयोगिकेवलियोंका क्षेत्र सामान्यप्ररुपणाके समान है ॥ २० ॥

१ पंचेन्द्रियाणि मनुष्यवत् । म. वि. १, ८.

एदस्स अत्थो वुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुधाद-
परिणदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो
असंखेज्जगुणे । णवरि तिण्हमपज्जत्ता चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो । मारणंतिय-
उववादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगदो असंखेज्जगुणे, अट्टाहज्जादो वि
असंखेज्जगुणे । एत्थ मारणंतियखेत्ताणिज्जमाणे वीहंदिय-तीहंदिय-चटुरिंदिया तेषि
पज्जत्त-अपज्जत्तदव्वं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण खंडिय
तस्म असंखेज्जदिभागो वा संखेज्जदिभागो वा मारणंतिएण विणा मरदि ति एदस्स
असंखेज्जजा भागा संखेज्जा भागा वा धेत्तुण मारणंतिय-उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखे-
ज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि । रज्जुमेत्तायामेण ट्टिरासिमिच्छामो ति पलि-
देवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय अप्पण्णो विक्खंभवग्गुणिदरज्जए गुणिदे
मारणंतियखेत्तं होदि । उववादखेत्तं ठविज्जमाणे एदं चेव ठविय मारणंतिय-उवक्कमण-

कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात
और कयायसमुदात, इन पदोंसे परिणत हुए उक्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असं-
ख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवै भागमें और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं । इतनी विशेषता है कि तीनों ही विकलेन्द्रियोंके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि
चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुदात और उपपादको
प्राप्त हुए तीनों विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें तथा अट्टाईद्वीपसे
भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर मारणान्तिकक्षेत्रके लोते समय द्वीन्द्रिय,
त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा उनकी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवराशिको स्थापित कर उसे
आवलीके असंख्यातवै भागमात्र उपक्रमणकालसे खंडित करके उसका जो असंख्यातवां
भाग अथवा संख्यातवां भाग लब्ध आवे, उतनी राशि मारणान्तिकसमुदातके विना
मरण करती है । इसलिये इस राशिके असंख्यात बहुभाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण
राशिको ग्रहण करके उसे मारणान्तिकसमुदातके उपक्रमण कालरूप आवलीके असं-
ख्यातवै भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक जीवराशि होती है । यहाँ एक राजुमात्र
आयामसे स्थित मारणान्तिक जीवराशि इच्छित है, इसलिये उक्त राशिके नीचे भागहारके
स्थानमें पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र भागहारको स्थापित करके और अपने अपने
विष्कंभके वर्गसे गुणित राजुसे उक्त राशिके गुणित करने पर मारणान्तिकसमुदातगत
विकलत्रय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र होता है । उपपाद-
क्षेत्रके लोते समय इसी मारणान्तिक जीवराशिको स्थापित करके और उसमेंसे मारणा-

१ मतिपु 'असंखेज्जा माग संखेज्जा मार्ग' इति पाठः ।

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुब्बं परूविदो स्ति ण वुच्चदे ।

पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥२१॥

सत्याण-वेदण कसायसमुद्घादगदपंचिंदियअपज्जत्ता चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे अट्टहज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो? अंगुलस्स असंखेज्जदिभागेत-ओगाहणादो । मारणतिय-उववादादा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे ।

एवमिंदियमगणा गदा ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, वादरपुढविकाइया वादरआउकाइया वादरतेउकाइया वादरवाउकाइया वादरवणफदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सब्वलोगे ॥ २२ ॥

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा पहले कर आये हैं, इसलिये यहां पर पुनः उसका कथन नहीं करते हैं ।

लब्धयपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातका प्राप्त हुए लब्धयपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अक्षर-दीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, लब्धयपर्याप्त पंचेन्द्रियोंकी अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र है । मारणांतिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए लब्धयपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्य-लोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समागत हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, अष्कायिक, तैजस्कायिक वायुकायिक जीव तथा वादर पृथिवीकायिक, वादर अष्कायिक, वादर तैजस्कायिक, वादर वायुकायिक और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांच वादर काय-सम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अष्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २२ ॥

१ कायावृद्धादन पृथिवीकायादिसंस्पर्शिकायिकागता सर्वलोकः । म णि १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा- पुढविकाइया सुहुमपुढविकाइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता, आउकाइया सुहुमआउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, तेउकाइया सुहुमतेउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, वाउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्याण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववादादा सब्वलोग, असंखेज्जलोगमेच-परिमाणादो । णवरि तेउकाइया वेउब्बिययसमुद्घादगदा पंचण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, वाउकाइया वेउब्बिययसमुद्घादगदा चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे । माणुमसेत्तं ण णव्वेदे । वादरपुढविकाइया तेसिं चेत्त अपज्जत्ता सत्याण-वेदण-कषायसमुद्घादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, अट्टहज्जादो असंखेज्जगुणे । तं जहा-जेण वादरपुढविकाइया मापज्जत्ता पुढवीओ चेत्त अस्सिदूण अञ्छंति, तेण पुढवीओ जगपदरपमोण कस्सामो । तत्थ पढमपुढवी एगरज्जुविमसंभा सत्तरज्जुदीहा वीस-सहस्रण-वे-जोयणलयरसनाहछा, एया अप्पणो वाहछस्स सत्तममागवाहछं जगपदरं होदि ।

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यह इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पृथिवी-कायिक और सूक्ष्म पृथिवीकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, अष्कायिक और सूक्ष्म अष्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, तैजस्कायिक और सूक्ष्म तैजस्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, वायुकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उक्त राशियोंका परिमाण असंख्यात लोकप्रमाण है । इतनी विवेचना है कि वैकृतिकसमुद्घातको प्राप्त हुई तैजस्कायिकराशि पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैकृतिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैकृतिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहती है, यह नहीं जाना जाता है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए वादर पृथिवीकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे नसंख्यातगुणे क्षेत्रमें और अट्टहज्जोगमे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—चूंकि वादर पृथिवीकायिक जीव और उन्हींके अपर्याप्त जीव पृथिवीका आश्रय लेकर ही रहते हैं, इसलिये पृथिवियोंको जगप्रसरके प्रमाणसे करते हैं । उनमेंमे एक राजु चौकी, सात राजु लक्ष्मी और बीस हजार योजन कम दौं नाम योजना मोटी पतली पृथिवी है । यह घनफलकी अपेक्षा आग्ने घातलोक अर्थात् एक लान्न अस्सी हजार योजनके सातवें भाग बाह्यरूप जगप्रसरप्रमाण है ।

१ प्रलिंग 'आग्नेयगुणे' इति पाठः ।

२ इत्तं आरण्यापृथिवीकस्यकण्डधस्तनो गणमापश्रितलोकव्यक्तोः प्रथमाधिकारस्यातिममानेन सद्व्यवहारः ।

विदियपुढवी सत्तमभागूण-वे-रज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा वत्तीसजोयणसहस्सवाहल्ला सोलहसहस्साहियचण्डुहं लक्खणं एगुणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । तदियपुढवी वे-सत्तभागहीण-तिण्णिरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठवीसजोयणसहस्सवाहल्ला वत्तीससहस्साहियं पचलक्खजोयणाणं एगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । चउत्थपुढवी तिण्णि-सत्तभागूण-वत्तीरिरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा चउवीसजोयण-सहस्सवाहल्ला छजोयणलक्खणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । पचमपुढवी

उदाहरण—पहली पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक एक राजु और एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, अतएव 160000 योजनोंके प्रमाणमें ७ का भाग देनेसे 249186 योजन लब्ध आते हैं और एक राजुके स्थानमें जगधेणीका प्रमाण हो जाता है । इसप्रकार 249186 योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण पहली पृथिवीका घनफल होता है ।

दूसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे एक भाग कम दो राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बत्तीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा चार लाख सोलह हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—दूसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक $1\frac{1}{2}$ राजु और 32000 योजन मोटी;

$$\frac{13}{9} \times \frac{7}{1} = \frac{13}{1} ; \frac{13}{1} \times \frac{32000}{1} = \frac{416000}{1} ; \frac{416000}{1} - \frac{48}{1} = \frac{415952}{1}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण

तीसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे दो भाग कम तीन राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और अट्ठाईस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बत्तीस हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—तीसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक ७ राजु लम्बी, पूर्वसे पश्चिमतक $1\frac{1}{2}$ राजु चौड़ी, और 26000 योजन मोटी है ।

$$\frac{13}{9} \times \frac{7}{1} = \frac{13}{1} ; \frac{13}{1} \times \frac{26000}{1} = \frac{338000}{1} ; \frac{338000}{1} - \frac{48}{1} = \frac{337952}{1}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतर

चौथी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे तीन भाग कम चार राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और चौबीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख योजनोंके अनंचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—चौथी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक $1\frac{1}{2}$ राजु

चत्तारि सत्तभागूणपंचरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा वीसजोयणसहस्सवाहल्ला वीस-सहस्साहियछण्डं लक्खणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । छट्ठपुढवी पंच-सत्त-भागूण-छरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा सोलहजोयणसहस्सवाहल्ला वाणउदिसहस्साहिय-पंचण्डं लक्खणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । सत्तमपुढवी छ-सत्तभागूण-सत्त-रज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठजोयणसहस्सवाहल्ला चउदालसहस्साहियतिण्डं लक्खणमेगूणवंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि । अट्ठमपुढवी सत्तरज्जुआयदा एगरज्जु-

और मोटी 28000 योजन है ।

$$\frac{25}{9} \times \frac{7}{1} = \frac{25}{1} ; \frac{25}{1} \times \frac{28000}{1} = \frac{700000}{1} ; \frac{700000}{1} - \frac{48}{1} = \frac{699952}{1}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

पांचवी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे चार भाग कम पांच राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और वीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख वीस हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—पांचवी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक $1\frac{1}{2}$ राजु और मोटी 20000 योजन है ।

$$\frac{31}{9} \times \frac{7}{1} = \frac{31}{1} ; \frac{31}{1} \times \frac{20000}{1} = \frac{620000}{1} ; \frac{620000}{1} - \frac{48}{1} = \frac{619952}{1}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण

छठी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे पांच भाग कम छह राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और सोलह हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा पाच लाख दानवे हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—छठी पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $1\frac{1}{2}$ राजु और मोटी 16000 योजन है ।

$$\frac{37}{9} \times \frac{7}{1} = \frac{37}{1} ; \frac{37}{1} \times \frac{16000}{1} = \frac{592000}{1} ; \frac{592000}{1} - \frac{48}{1} = \frac{591952}{1}$$

योजन बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

सातवीं पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे छह भाग कम सात राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और आठ हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा तीन लाख चवालीस हजार योजनोंके अनंचासवें भाग बाह्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—सातवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $1\frac{1}{2}$ राजु और मोटी 10000 योजन है ।

रुंदा अङ्गुलीयणवाहल्ला सत्तमभागादिय-एकजोयणवाहल्लं जगपदरं होदि । एदणि सञ्चानि एणहे कदे तिरियलोगवाहल्लादो संखेज्जगुणवाहल्लं जगपदरं होदि । एत्थ असंखेज्जा लोगमेत्ता पुढविकाइया चिद्धंति, तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो चि सिद्धं । एदेहि पदेहि लोगसस असंखेज्जिभागो चिद्धंता बादरपुढविकाइया सुत्तेण सव्वलोगे चिद्धंति चि बुत्ता, तं कथं घडेदे ? ण, मारणंति-उत्तवाद्दे पडुच्च तथोवेदसादो । मारणंति-उत्तवाद्गदा सव्वलोगो । एवं बादरआउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं च । पुढवीसु सव्वत्थ ण जलमुलं-

$$\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{४३}{१}, \frac{४३}{१} \times \frac{८०००}{१} = \frac{३४४०००}{१}, \frac{३४४०००}{१} - \frac{४९}{१} = \frac{३४४०००}{१}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

आठवीं पृथिवी सात राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और आठ योजन मोटी है । यह मनफलकी अपेक्षा एक योजनके सात भाग करनेपर उनमेंसे सातवा भाग अर्थात् एक भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण—आठवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु, पूर्वसे पश्चिम तक एक राजु और आठ योजन मोटी है ।

$$१ \times ७ = ७; ८ - ७ = १ \text{ योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.}$$

इन सबको एकत्रित करनेपर तिर्यंग्लोके बाहल्यसे संख्यातगुणे बाहल्यरूप जगप्रतर होता है । इन पृथिवियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण पृथिवीकायिक जीव रहते हैं, इसलिये वे तिर्यंग्लोके संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—तिर्यंग्लोका प्रमाण मनफलकी अपेक्षा $१४२८\frac{४}{९}$ योजन बाहल्यरूप जगप्रतर है और आठों पृथिवियोंका मनफल $६२३४३६\frac{४}{९}$ योजन बाहल्यरूप जगप्रतर है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिर्यंग्लोके प्रमाणसे आठों पृथिवियोंका क्षेत्र संख्यातगुणा है । बादर पृथिवीकायिक जीव इन आठों पृथिवियोंमें सर्वत्र पाये जाते हैं, इसलिये वे तिर्यंग्लोके संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हो जाता है ।

शंका—उपर्युक्त स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात और कणायसमुदात, इन पदोंकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक जीव जग कि लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, तो वे 'सर्व लोकमें रहते हैं' ऐसा जो सूत्रद्वारा कहा गया है वह कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुदात और उगपादकी अपेक्षा 'बादर पृथिवीकायिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं', इसप्रकारका उपदेश दिया गया है ।

मारणान्तिकसमुदात और उगपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । इसीप्रकार बादर अपकायिक और उनकी अपर्याप्त जीवोंका भी कथन करना चाहिये । अर्थात् पृथिवीकायिक और अपर्याप्त पृथिवी-

भदि चि आउकाइया सव्वत्थ पुढवीसु ण हंति चि णासंक्रिज्जं, बादरकम्मोदएण बादरचमुग्गयाणं अणुवलंममाणं पि सव्वपुढवीसु अत्थित्तविरोधाभासादो । एवं बादर-तेउकाइयाणं तस्सेव अपज्जत्ताणं च । णव्वरि वेउव्वियपदमत्थि, ते च पंचणहं लोगणम-संखेज्जिभागो । तेउकाइया बादरा सव्वपुढवीसु हंति चि कथं णव्वदे ? आगमादो । एवं बादरआउकाइयाणं तेमिमपज्जत्ताणं च । णव्वरि सत्थाण-नेयण-कसाय-समुग्गदागदा तिण्हं लोगणं संखेज्जिभागो, दो-लेणेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्गदागदा चहुण्हं लोगणमसंखेज्जिभागो । माणुससेत्तं ण विण्णायदे । सव्वअपज्जत्तेसु वेउव्वियपदं णत्थि ।

कायिक जीवोंके समान स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात और कणायसमुदातको प्राप्त हुए बादरजलकायिक और बादरजलकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवै भागमें, तिर्यंग्लोके संख्यातगुणे क्षेत्रमें, तथा मारणान्तिकसमुदात और उगपादको प्राप्त हुए बादर जलकायिक और उनकी अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं ।

शंका—पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है, इसलिये जलकायिक जीव पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं रहते हैं ?

समाधान—पैसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, वावरनामक नाम-कर्मके उदयसे वादस्त्वको प्राप्त हुए जलकायिक जीव यद्यपि पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं, तो भी उनका सर्व पृथिवियोंमें अस्तित्व होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

इसीप्रकार अर्थात् बादर जलकायिक और उनकी अपर्याप्त जीवोंके समान बादर तैजस्कायिक और उनकी अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोक्त पदोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर तैजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकसमुदातपद भी होता है और वे पांचों लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—बादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आगमसे यह जाना जाता है कि बादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें रहते हैं ।

इसीप्रकार बादर वायुकायिक और उनकी अपर्याप्त जीवोंके पदोंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्वस्थान, वेदनासमुदात, और कणायसमुदातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यंग्लोके तथा मनुष्यलोक इन दो लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुदातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु यहाँ मनुष्यक्षेत्र नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं । सभी अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकसमुदातपद नहीं होता

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता बादरणिगोदपदिद्विदा तस्सेव अपज्जत्ता च बादरपुढवितुल्ला ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवण-
प्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागे ॥ २३ ॥

एदस्स सुचस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—बादरपुढविपज्जत्ता सत्थान-वेदण-
कसायसमुग्धादगदा चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ
ओवट्ठणं ठविय जोएदव्वं । मारणंतिउववादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, गर-
तिरियलोगोहिदो असंखेज्जगुणे । एवं बादरआउकाइयपज्जत्ता । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-
सरीर-बादरणिमोदपदिद्विपज्जत्ताणमेवं चैव । गवरि बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता
वेदण-कसाय-सत्थानोसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । एदेसिं रासीणं पलिदेवमस्स
असंखेज्जदिभागमेत्ता जगपदराणि पदरंगुलेण खंडियखंडमेत्तपमाणं होदि । ओगाहणा पुण

है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उन्हींके अपर्याप्त जीव तथा बादर निगोद-
प्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीव, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान हैं ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर अष्कायिक पर्याप्त जीव, बादर तैजस्का-
यिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्भूत
और कषायसमुद्भूतको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार
लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।
यद्वापर अपवर्तनाकी स्थापना करके योजना कर लेना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्भूत और
उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके
असंख्यातवै भागप्रमाण क्षेत्रमें, तथा मनुष्य और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते
हैं । बादर अष्कायिक पर्याप्त जीव भी स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंमें इसप्रकार रहते हैं ।
बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके पदोंका
इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्भूत, कषायसमुद्भूत और
स्वस्थान पदगत बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकके सख्यातवै
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । पल्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण जगप्रतरोको प्रतरंगुलसे उद्धृत
करके जो एक भाग लब्ध आवे उतना इन राशियोंका प्रमाण है । तथा अवगाहना घनांगुलके

घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । तस्म को पडिभागो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो ।
बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तओगाहणा त्रि घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता,
अण्णहा तदो वीहिदियपज्जत्तओगाहणा अमंखेज्जगुणा ण होज्ज । तदो पत्तेयसरीरपज्जत्त-
रासी तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागेण होज्ज ? ण एस दोसो, घणंगुलभागहारो पदरंगुल-
भागहारदो संखेज्जगुणो ति । पत्तेयसरीरपज्जत्तजहणोगाहणादो वीहिदियपज्जत्तजहणो-
गाहणा असंखेज्जगुणा त्रि कुदो णव्वेदे ? वेदणाखेत्तविहाणमिह वुत्तवोगाहणदंडयादो ।
तं जहा—संवत्थोवा सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा । सुहुम-
वाउकाइयपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमतउकाइयपज्जत्तयस्स
जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमआउकाइयपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा
असंखेज्जगुणा । सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादर-

असंख्यातवै भागप्रमाण है ।

श्रुंका—उसका क्या प्रतिभाग है, अर्थात् जिसका भाग घनांगुलमें देनेसे उसका
विचक्षित असंख्यातवै भाग आता है, वह प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पल्योपमका असंख्यातवै भाग प्रतिभाग है ।

श्रुंका—बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवकी अवगाहना भी घनां-
गुलके असंख्यातवै भागप्रमाण है, यदि ऐसा न माना जावे तो इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी
अवगाहना असंख्यातगुणी नहीं हो सकती है, इसलिये प्रत्येकशरीर पर्याप्तराशि तिर्यग्लोकके
संख्यातवै भागप्रमाण होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घनांगुलका भागहार प्रतरंगुलके
भागहारसे संख्यातगुणा है ।

श्रुंका—वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी
जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—वेदनाक्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहनादंडकसे यह जाना जाता है कि
प्रत्येकशरीरकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ।

आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं—सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना
सबसे स्तोक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यात-
गुणी है । इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी
है । इससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे
सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर

जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगा-
हणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ।
वादरणिगोदणिब्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्ति-
अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया
ओगाहणा विसेसाहिया । (णिरोदपदिट्ठिपज्जचयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ।
तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्ति-
पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ।) वादरवणफइकाइयपत्तेयसरिणिब्वत्ति-
पज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । वेइंदियणिब्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया
ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियणिब्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ।
चउरिंदियणिब्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिंदियणिब्वत्ति-
पज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तेइंदियणिब्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्क-
स्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिब्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा
संखेज्जगुणा । वेइंदियणिब्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । वादर-
वणफइकाइयपत्तेयसरिणिब्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ।

जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे वादर पृथिवीकायिक निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे वादर पृथिवीकायिक निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे वादर निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे वादर निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे निर्बोद्धप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यात- गुणी है। इससे निर्बोद्धप्रतिष्ठित निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे निर्बोद्धप्रतिष्ठित निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना प्रत्येकशरीर निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे द्वीन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे त्रीन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे ब्रहीन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे श्रोत्रिन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे घ्राणिन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे स्पर्शिन्द्रिय निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे वानस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्बुत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट

१ प्रविष्टु कोष्ठकान्तर्गतिपाठो नास्ति, वेदनाखण्डन योजितः ।

पंचिदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तेहंदियणिव्वत्ति-
पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चडरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्क-
स्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । वेहंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा
संखेज्जगुणा । वादरवणप्फइपत्तेयसरिणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखे-
ज्जगुणा । पंचिदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । सुहुमादो
सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सुहुमादो वादरस्स ओगा-
हणागुणगारो पलित्थोवमस्स असंखेज्जदिभागो । वादरादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो
आवलियाए असंखेज्जदिभागो । वादरादो वादरस्स ओगाहणागुणगारो पलित्थोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । वादरादो वादरस्स ओगाहणागुणगारो संखेज्जा समया । एत्थ
वादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरिणपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा घणगुलस्स असंखेज्जदि-
भागो इदि बुत्ते होटु णामेदं, पदरंगुलभागहारादो घणंगुलभागहारा संखेज्जगुणो त्ति खुदो
णव्वदे ? तिरियिलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति गुरूएसादो । एदक्कादो चेव एदिस्से ओगा-

अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे त्रिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे द्वान्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे कायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे पञ्चेन्द्रिय निर्वांत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

एक सूक्ष्मजीवसे दूसरे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवर्तीका असंख्यतवां भाग है। सूक्ष्मजीवसे बाहर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यतवां भाग है। बाहरजीवसे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवर्तीका असंख्यतवां भाग है। बाहरजीवसे अन्य बाहरजीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यतवां भाग है। बाहरसे बाहरकी अवगाहनाका गुणकार सख्यात समय है, अर्थात् बाहर पर्याप्त झीन्द्रिय जीवकी जघन्य अवगाहनासे बाहर पर्याप्त जीन्द्रिय आदि जीवोंकी अवगाहनाका गुणकार सख्यात समय है।

शंका — यहाँ पर वादर वनस्पतिकारिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यतवें भाग कहो है, सो वह भले ही रही आवे, किन्तु प्रतरांगुलके भाग-भागसे घनांगुलका भागद्वार संख्यतगणा होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—चादरचनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव वेदनासमुद्धात, कपाय-समुद्धात और स्वस्थानपदोंकी अपेक्षा 'तिर्यक्लोकके संस्थितवें भागमें रहते हैं' इस प्रकारके गरुडवेशसे जाना जाता है कि प्रतरांगलके भागहारसे घनांगलका भागहार संस्थितागुणा है ।

हणाए जीवबहुतं च णायन्वं । बादरणिगोदपदिद्विपज्जत्ता किमिदि सुचन्दि ण बुद्धा ? ण, तेसिं पचेयसीरसु अंतम्भावादो । बादरतेउकाइयपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-समुधादगदा पंचणं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणतिय-उववादगदा चहुणं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे ।

बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदि-भागे ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे- सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववादगदा बादरवाउपज्जत्ता तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, देलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । बादरवाउ-पज्जचरासी लोगस्स संखेज्जदिभागेमेत्तो मारणतिय-उववादगदो सव्वलोगे किण्ण होदि चि बुत्ते ण होदि, रज्जुपदरमुहेण पंचरज्जुआयामेणं द्विदखेत्ते चेव पाएण तेसिसुप्पत्तीदो ।

तथा, उक्त इसी गुरुपदेशसे बादरचनस्पत्तिकार्यिक प्रत्येकशरीरकी अवगाहनामें जीवोंकी अधिकता भी जानना चाहिये ।

शंका—सूत्रमें बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव क्यों नहीं कहे ? समाधान—नहीं, क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रत्येकशरीर पर्याप्त चनस्पत्तिकार्यिक जीवोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात और वैक्रियिकसमुदातगत बादर-तैजस्कार्यिक पर्याप्त जीव पाँचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुदात और उपपादगत वे ही बादर तैजस्कार्यिक जीव चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

बादर वायुकार्यिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात, मारणान्तिक-समुदात और उपपाद पदगत बादरवायुकार्यिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—बादर वायुकार्यिक पर्याप्तजीवोंको लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, जब वह मारणान्तिकसमुदात और उपपाद पदोंको प्राप्त हो तब वह सर्व लोकमें क्यों नहीं रहती है ? समाधान—नहीं रहती है, क्योंकि, राजुप्रतरप्रमाण मुखसे और पाँच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रमें ही प्रायः करके उन बादर वायुकार्यिक पर्याप्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है ।

.....
१ बादरवातकार्यिकानां विजुर्जगाद रज्जुवाधायाम-मरज्जुदूयक्षेत्रफळ लोकसंख्यातभागमानं भवति । गो. बी. प्र. गा. ५४५.

अण्णखेत्तरं गंतूणपज्जमाणजीवाणमइथोवत्तं कधमवगम्मदे ? बादरवाउकाइयपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे इदि सुत्तादो । अण्णहा सुत्तस्स पुध आरंभो गिरत्थओ होज्ज, बादरवाउपज्जत्तेसु अंतम्भावादो । वेउन्वियसमुधादगदा चहुणं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे । अहुइज्जं ण विण्णायदे ।

वणफादिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववादगदा वणफादिकाइया सुहुमवणफइ-काइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदणसमुधादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । मारणतिय-उववादगदा सव्वलोए । बादरा पुढवीओ चेव अस्सिदण्ण अञ्छति चिं लोगस्स असंखेज्जदिभागे हति ।

शंका—अन्य क्षेत्रान्तरको जाकर उत्पन्न होनेवाले बादर वायुकार्यिक पर्याप्त जीव अत्यन्त थोड़े हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—‘बादर वायुकार्यिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं,’ इस सूत्रसे जाना जाता है कि राजुप्रतरप्रमाण मुखवाले और पाँच राजु आयामवाले क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रमें जाकर उत्पन्न होनेवाले बादर वायुकार्यिक पर्याप्त जीव बहुत कम होते हैं । यदि ऐसा न माना जावे, तो इस सूत्रका पृथक् आरम्भ निरर्थक हो जायगा, क्योंकि, फिर तो उनका बादर वायुकार्यिक अपर्याप्तोंमें अन्तर्भाव हो जायगा ।

वैक्रियिकसमुदातगत बादर वायुकार्यिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । अद्वाइदीपसे अधिक क्षेत्रमें रहते हैं या कममें, यह जाना नहीं जाता ।

चनस्पत्तिकार्यिक जीव, निगोद जीव, चनस्पत्तिकार्यिक बादर जीव, चनस्पत्तिकार्यिक सूक्ष्म जीव, चनस्पत्तिकार्यिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, चनस्पत्तिकार्यिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २५ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुदात, कपायसमुदात, मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत चनस्पत्तिकार्यिक, स्वस्थान और वेदनासमुदातगत सूक्ष्म चनस्पत्तिकार्यिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुदात और उपपादगत उपर्युक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । बादर चनस्पत्तिकार्यिक जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकर रहते हैं, इसलिये वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

.....
१ आधारे गृहा ओ । गो. बी. १८४.

एदं कथं णव्वदे ? गुरुवएसदो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताएसु मिच्छाद्विप्पहुडि जाव अजोगि-
केवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे' ॥ २६ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तामिच्छाद्वि सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउ-
वियससुग्धादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइ-
आदो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरिय-
लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्ठणा जाणिय कायन्वा । सेसगुणट्ठणानं पंचिदियमगो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २७ ॥

सुगममेदं ।

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ २८ ॥

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—गुहके उपदेशसे जाना जाता है कि बादर वनस्पतिकार्यिक जीव
पृथिवियोंके ही आश्रयसे रहते हैं ।

त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेवनासमुद्रात, कपायसमुद्रात और वैक्रि-
यिकसमुद्रातगत त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढाईद्विपसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्रात और उपपादगत त्रसकार्यिक और
त्रसकार्यिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तीनों लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक और
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना जानकरके करना चाहिये ।
सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय
जीवोंके क्षेत्रोंके समान जानना चाहिए ।

सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

त्रसकार्यिक लब्धपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तोंके क्षेत्रके
समान है ॥ २८ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, पुवं परुविदत्तादो ।

एवं कायमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छाद्विप्पहुडि
जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ २९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे—पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिमिच्छाद्विद्वी सत्थाण-
सत्थाण-विहारवदिमत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियससुग्धादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियससुग्धाद-
गदाणं कथं मणजोगि-वचिजोगाणं संभवो ? ण, तेसिं पि णिप्पणुत्तरसरिराणं मणजोगि-
वचिजोगाणं परावत्तिसंभवादो । मारणंतियससुग्धादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो,
णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । मारणंतियससुग्धादगदाणं असंखेज्जजोगियायामेण
ठिदाणं मुच्छिदाणं कथं मण-वचिजोगसंभवो ? ण, वारणाभावादो अवत्ताणं णिम्भरसुत्त-

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, इसका पहले प्रकरण किया जा चुका है ।

इसप्रकार कायमगणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्या-
दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेवनासमुद्रात,
कपायसमुद्रात और वैक्रियिकसमुद्रातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि
जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें
और अट्टाईद्विपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—वैक्रियिकसमुद्रातको प्राप्त जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है ?
समाधान—नहीं, क्योंकि, निष्पन्न हुआ है विक्रियात्मक उत्तरशरीर जिनके, ऐसे
जीवोंके मनोयोग और वचनयोगोंका परिवर्तन संभव है ।

मारणान्तिकसमुद्रातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असं-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त, असंख्यात योजन आयामसे स्थित और
मुच्छिन्न हुए सभी जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बाधक कारणके अभाव होनेसे निर्भर (भरपूर) सोते

जीवां व तेषां तस्य संभवं पठि विरोहाभावादो । मण-वचिजोगेसु उववादो गत्थि । सासणसम्मादिट्ठिपुहुडि जाव असमुग्घादसजोगिकेवली चि मूलोघमंगो । णवरि सासण-असंजदसम्माइहीणं उववादो गत्थि ।

कायजोगीसु मिच्छाइही ओघं ॥ ३० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतियसमुग्घादगदा कायजोगिमिच्छाइही सब्ब-लोए । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवड्डणा जाणिय कायव्वा ।

सासणसम्मादिट्ठिपुहुडि जाव स्वीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३१ ॥

जोगाभावादो एत्थ अजोगीणमगहणं । सेसं सुगमं ।

इए जीवों के समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिकसमुद्धातगत मूर्च्छित-अवस्थामें भी संभव है, इसमें कोई विरोध नहीं है ।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंमें उपादापद नहीं होता है । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर समुद्धातरहित सयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनो-योगी और वचनयोगी जीवोंका क्षेत्र मूलोघ क्षेत्रके समान है । विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंके उपादापद नहीं होता है ।

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ३० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपादागत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्वस्थान और चैक्रियिक-समुद्धातगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यल्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहाँपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछदुमत्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

योगका अभाव होनेसे इस सूत्रमें अयोगिकेवलीयोंका ग्रहण नहीं किया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

१ काययोगीनि मिथ्यादृष्टिआदिअयोगिकेवत्त्वन्तानामवोगिकेवलीनां च सामान्योक्त क्षेत्रम् । स ति १, ८.

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२ ॥

गुणपडिविण्णाणमजोगो किण्ण कदो ? ण, सजोगिमिह्मि लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सब्बलोगे वा इदि विसंखेज्जलंभादो ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइही ओघं ॥ ३३ ॥

एदे सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतियसमुग्घादगदा सब्बलोए, सुहुमपजत्ताणं सब्ब-लोगखेचेसु संभवादो । उववादो गत्थि, गिरुद्धोरालियकायजोगादो । विहारवदिसत्थाणगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, तसपजत्तरासिस्स संखेज्जदि-भागस्स संचारो होदि चि गुरुवएसदो । अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घाद-गदा चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणे, ओरालियकायजोगे गिरुद्धे वेउव्वियकायजोगिसहगदेउव्वियसमुग्घादस्स असंभवादो ।

काययोगवाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघसयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ ३२ ॥

शंका—सासादनादि गुणस्थानप्रतिपन्न सभी जीवोंका एक योग क्यों नहीं किया ? अर्थात् पूर्वोक्त 'सासणसम्मादिट्ठिपुहुडि' इत्यादि सूत्रका और इस 'सजोगिकेवली ओघ' सूत्रका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें, 'सयोगिकेवली लोकके असं-ख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं' इस प्रकारका विशेष कथन पाया जाता है, इसलिए उक्त दोनों सूत्रोंका एक योग नहीं किया ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ३३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और मारणान्तिकसमुद्धातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जाव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म पर्याप्त एकैन्द्रिय जीव सर्व लोकवर्ती क्षेत्रमें संभव हैं । किन्तु उक्त जीवोंके उपादापद नहीं होता है, क्योंकि, यहाँ पर औदारिककाययोगसे निरुद्ध जीवोंका क्षेत्र बताया जा रहा है । विहारवत्स्वस्थान-वाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, और तिर्यल्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, समस्त असंख्यातवर्ती आशिके सख्यातवें भागका ही संचार (विहार) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है । उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । चैक्रियिकसमुद्धातगत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय चैक्रियिककाययोगी जीवोंके होनेवाला चैक्रियिकसमुद्धात असंभव है ।

विशेषार्थ—इस उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि अभी ऊपर चैक्रियिकसमु-

१ सब्बत्य गित्ता सुट्ठमा । गो जी १८४.

सासणसम्मादिट्ठिणहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस असंखे-
ज्जदिभागे ॥ ३४ ॥

कथं सजोगिकेवली लोगस असंखेज्जदिभागे ? ण एस दोसो, ओरालियकाय-
जोगे णिरुद्धे ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगसहगदक्काड-पदर-लोगपूरणणमसंभवादो ।
सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणमुववादो णत्थि । पमत्ते आहारसमुग्घादो णत्थि । ससं
जाणिय वत्तन्वं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ ३५ ॥

द्वातको प्राप्त औदारिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र तिर्यलोकका असंख्यातवां भाग बताया है,
तब शंका की जा सकती है कि वैक्रियिकशरीरवाले जीवोंके वैक्रियिकसमुद्धातका क्षेत्र तो
तिर्यलोकका सख्यातवा भाग बतलाया गया है, फिर यहां उसका क्षेत्र तिर्यलोकका असं-
ख्यातवां भाग क्यों कहा ? इस आशंकाका समाधान करते हुए धवलकार कहते हैं कि यहां
पर औदारिककाययोगका प्रकरण है, अतएव औदारिकशरीरवाले मनुष्य और तिर्यचोंके जो
वैक्रियिकसमुद्धात होता है, उसका क्षेत्र तिर्यलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हो सकता
है, अधिक नहीं । हा, वैक्रियिकशरीरवाले देवादिकोंके जो वैक्रियिकसमुद्धात होता है उसका
क्षेत्र अवश्य तिर्यलोकके सख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु उसका यहा प्रकरण नहीं है,
क्योंकि, औदारिककाययोगका क्षेत्र-कथन करते समय वैक्रियिककाययोगिसहगत वैक्रियिक
समुद्धातका क्षेत्र कहना असंभव है ।

सासादनमभ्यगृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

शंका—सयोगिकेवली भगवान् लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, इतना ही
क्यों कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका
वर्णन करते समय औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगके साथमें होनेवाले फपाट,
प्रतर और लोकपूरण समुद्धातोंका होना संभव नहीं है । इसलिए औदारिककाययोगी सयोगि
केवली लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहा है ।

सासादनसम्यगृष्टि और असंयतसम्यगृष्टि औदारिककाययोगी जीवोंके उपापदपद
नहीं होता है । प्रमचगुणस्थानमें आहारकसमुद्धातपद भी नहीं है, क्योंकि, यहांपर औदारिक-
काययोगियोंका क्षेत्र बतलाया जा रहा है । शेष गुणस्थानोंमें यथासंभव पद जानकर कहना
चाहिए ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओधके समान सर्वलोकमें रहते
हैं ॥ ३५ ॥

बहुसु कथमगवयणणिहेसो ? ण एस दोसो, वहुणं पि जादीए एगत्तुवलंमादो ।
अथवा मिच्छादृष्टी इदि एसो बहुवयणणिहेसो चेव । कथं पुण एत्थ विहत्ती गोवलम्भेदे ?
'आइ-मज्झंतवणणसरलोवो' इदि विहत्तिलोवादो । सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणांतिय-उववा-
मदा ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छादृष्टी सव्वल्लो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादा
णत्थि, तेण तेसि विरोहादो । ओरालियमिस्सस वेउव्वियादिपेदेहि भेदसंभवादो ओध-
णिहेसो ण घडदे ? ण एस दोसो, एत्थ विज्जमाणपदाणं परूवणा ओधपरूवणाए तुल्लेचि
ओधचविरोधाभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते,
लोगस असंखेज्जदिभागे ॥ ३६ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो ओरालियमिस्सकायजोगो अणुवहुदे । तेणेवं संवंधो भवदि-

शंका—मिथ्यादृष्टियोंके बहुत होने पर भी यहां सूत्रमें एक वचनका निर्देश कैसे
किया गया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि संख्याकी अथवा यहुनसे भी जीवोंके
जातिकी विवक्षासे एकत्व पाया जाता है । अथवा, 'मिच्छादृष्टी' यह पद बहुवचनना ही
निर्देश समझना चाहिए ।

शंका—तो फिर यहां बहुवचनकी विभक्ति क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—'आदि, मध्य और अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है, ' इस
प्राकृतव्याकरणके सूत्रानुसार बहुवचनकी विभक्तिका लोप हो गया है ।

स्वस्थानस्वस्थान, घेदनासमुद्धात, कथायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपापद-
पदगत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । यहांपर विहारवत्त्व-
स्थान और वैक्रियिकसमुद्धात ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगके साथ
इन दोनों पदोंका विरोध है ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगका वैक्रियिकसमुद्धात आदि पदोंके साथ भेद पाया
पाया जाता है, अतएव सूत्रमें 'ओध' पदका निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहां औदारिकमिश्रकाययोगमें विद्यमान
स्वस्थान आदि पदोंकी प्ररूपणा ओधप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए ओधपना विरोधको प्राप्त
नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यगृष्टि, असंयतसम्यगृष्टि और सयोगि-
केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३६ ॥

इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे 'औदारिकमिश्रकाययोग' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

ओरालियमिस्त्रकायजोगीसु सातणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि सेवे इदि। सातणसम्मादिट्ठी सत्याण-वेदण-कसायसमुदागदा चट्ठणं लोगणमसंखेज्जदि-माणे अट्ठाइज्जदो असंखेज्जगुणे। कुदो ? ओरालियमिस्त्रादि पल्लोवमस्स असंखेज्जदि-माणेचसातणसम्मादिट्ठिरासिस्स संभवादो। एत्थ सेसपदाणि णत्थि, तेण तेमि तत्थ विरोधादो। असंजदसम्माइट्ठी सत्याण-वेदण-कसायसमुदागदा चट्ठणं लोगणमसंखे-ज्जदिमाणे माणुसखेवस्स संखेज्जदिमाणे, संखेज्जदिमाणे। सातणसम्मादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमुववादो किमट्ठं ण उत्तो ? ण, ओरालियमिस्त्रादि ट्ठिदाणमोरालियमिस्त्रकाय-जोगीसु उववादाभावादो। अथवा उववादो अत्थि, गुणेण मह अक्कमेण उपात्तभवसरि-पढमसमए उवलंभादो, पंचावत्यादिरिचओरालियमिस्त्रजीवाणममानादो च। सजोगि-

इसलिए सूचके अर्थका इसप्रकार सम्यग् होता है— औदारिकमित्रकाययोगियों सासादत्त-सम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात और कयायसमुदातगत सामादत्तसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवर्ग भागमें और अट्ठाइदोपसे अमंग्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिकमित्रकाययोगमें पल्लोपमके असंख्यातवर्ग भागप्रमाण सासादत्तसम्यग्दृष्टियोंकी राशिका पाया जाना संभव है। यहाँपर शेष विहारवत्स्वस्थान आदि पर नहीं होते हैं, क्योंकि, सासादत्त गुणस्थानके साथ उन पदोंका यहाँपर निरोध है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात और कयायसमुदातगत औदारिकमित्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवर्ग भागमें और अनुप्य-क्षेत्रके सख्यातवर्ग भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे सख्यात राशिप्रमाण होते हैं।

शुद्धा—औदारिकमित्रकाययोगी सासादत्तसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, औदारिकमित्रकाययोगमें स्थित जीवोंका पुनः औदा-रिकमित्रकाययोगियोंमें उपपाद नहीं होता है। अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि, सासादत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ अकस्से उपात्त भव-शरीरके प्रथम समयमें उभजा सद्भाव पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुदात, कयाय-समुदात, केवलिसमुदात और उपपाद इन पांच अवस्थाओंके अतिरिक्त औदारिकमित्रकाय-योगी जीवोंका अभाव है।

विशेषार्थ—यहाँपर प्रथम तो औदारिकमित्रकाययोगियोंका औदारिकमित्रकाय-योगियोंमें उपपादका अभाव यतलाया गया। पुनः, अथवा करके औदारिकमित्रकाययोगियोंमें उपपादका सद्भाव भी यतला दिया गया। ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध सी प्रतीत होती हैं। किंतु यथार्थतः उनमें कोई विरोध नहीं है। भैरु केवल कथन शैलीका है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथम जो औदारिकमित्रकाययोगियोंका

केवली कवाडगदो तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिमाणे, तिरियलोगम्स मंखेज्जदिमाणे, अट्ठाइ-ज्जदो अयंसंखेज्जगुणे।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि सेवे, लोगस्स असंखेज्जदिमाणे ॥ ३७ ॥

एदम्सन्धो—नत्याणसत्याण-विहारदिमत्याण-वेदण-कसाय-वेउव्वियममुदागदा मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिमाणे, तिरियलोगम्स मंखेज्जदिमाणे, अट्ठाइज्जदो

औदारिकमित्रकाययोगियोंमें उपपादका अभाव यतलाया, उसका अभिप्राय यह है कि औदारिकमित्रकाययोग नियम और मनुष्योंकी अवयवों की दृष्टात् ही होता है। और, अवयवोंका जो प्रत्यक्ष सामादत्तसम्यग्दृष्टि या धर्मयतसम्यग्दृष्टि जीव मरणको प्राप्त नहीं होता है, तिनमें कि वह पुनः औदारिकमित्रकाययोगी सामादत्तसम्यग्दृष्टि या असंयत-सम्यग्दृष्टि तिरिय या मनुष्योंमें उत्पन्न हो सके। प्रत्यक्ष उसमें सामादत्तसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिकमित्रकाययोगी जीवोंके उपपादका अभाव यतलाया मंग्या युक्तिमंगत ही है। पुनः, अगगा करने जो औदारिकमित्रकाययोगियोंमें उनके उपपादका सद्भाव यतलाया गया, उसका अभिप्राय यह है कि पूर्ववचके शरीरको छोड़ कर उत्तरवचके प्रथम समयमें प्रयत्नको उपपाद कहा गया है। यह उपपाद उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, अतएव यदि कोई औदारिककाययोगी या वैदिकिककाययोगी सामादत्तसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर मनुष्य स्थितियोंमें उत्पन्न होता है, तो उसके उत्पत्तिके प्रथम समयमें औदारिकमित्रकाययोगका सद्भाव पाया जायगा। इसीलिए कहा गया है कि सामादत्तसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ युगम् धारण किये गये आत्माभी भवसम्बन्धी शरीरके प्रथम समयमें औदारिकमित्रकाययोगियोंके उपपादका सद्भाव पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त शैली कथनोंमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है, भैरु केवल कथन शैली य प्रियशक्ता ही है।

कपाटममुदातगत औदारिकमित्रकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवर्ग भागमें, तिरियलोकके संख्यातवर्ग भागमें और अट्ठाइदोपसे असं-ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

वैदिकपिठमित्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें लेकर अमंग्यतमम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्यक्ष गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवर्ग भागमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

इस सूचना अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात और वैदिकिकसमुदातगत वैदिकिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवर्ग भागमें, तिरियलोकके संख्यातवर्ग भागमें और अट्ठाइदोपसे

असंखेज्जगुणे, पहाणीकयजोइसियरासिचादो । मारणंतियसमुग्धादगदा तिण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, गर-तिरियलोगोहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवडिय दट्ठव्वं । सासणादि-
परूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, णवरि सन्वत्थ उववादो णत्थि ।

**वेउन्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी असं-
जदसम्मादिद्वी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥**

एदस्सत्थो- वेउन्वियमिस्सकायजोगी मिच्छादिद्वी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्धाद-
गदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अट्ठाइज्जादो असंखेज्ज-
गुणे । सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्माइद्वी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्धादगदा चट्ठण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे ।

**आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तंसजदा केवडि
खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३९ ॥**

असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां वैकल्पिककाययोगके प्रकरणमें ज्योतिष्क
देवराशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्घातगत वैकल्पिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों
लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना स्वयं जान लेना चाहिए । सासादन-
सम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैकल्पिककाययोगी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंकी
क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है । विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानोंमें
उपपादपद नहीं होता है ।

वैकल्पिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-
ग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते
हैं ॥ ३८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कपायसमुद्घातगत वैक-
ल्पिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें,
तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात और कपायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं ।

आहारकाययोगियों और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती
जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

एदस्स अत्थो- सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदपमत्तमजंदा चट्ठण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । मारणंतियसमुग्धादगदा चट्ठण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसपदाणि णत्थि । आहारमिस्सकाय-
जोगिणो पमत्तंसजदा सत्थाणगदा चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखे-
ज्जदिभागो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइद्वी ओघं ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-उववादगदा कम्मइयकायजोगिमिच्छादिद्विणो जेण सन्वत्थ
सन्वद्धं होति, तेण सन्वलोगे बुत्ता ।

सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्माइद्वी ओघं ॥ ४१ ॥

एदे दो वि रासीओ जेण चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्ज-
गुणे खेत्ते अच्छति, तेण सुत्ते ओघमिदि बुत्तं ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इन दोनों
पदोंसे परिणत आहारकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें
भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत आहारकाय-
योगी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं । आहारकाययोगी प्रमत्तसंयतके उक्त तीन पदोंके सिवाय शेष सात पद
नहीं होते हैं । स्वस्थानगत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चारों
लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टिके समान सर्व लोकमें
रहते हैं ॥ ४० ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त कर्मण-
काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव चूंकि सर्वत्र सर्वकालमें पाये जाते हैं, इसलिए वे सर्वलोकमें रहते
हैं, ऐसा कहा गया है ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान
लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त कर्मणकाययोगी राशियां चूंकि सामान्यलोक आदि
चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहती हैं, इसलिए
सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है ।

सजोगिकेवली केवडि सेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भाणेसु सब्ब-
लोगे वा ॥ ४२ ॥
सुगममेदं सुचं ।

एव जोगमग्गा समत्ता ।

वेदानुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणि-
यद्दी केवडि सेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४३ ॥

एदस्स अत्थो—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घाद-
गदा इत्थिवेमिच्छादिद्वी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,
अद्दुइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकदेदवित्थिवेदरासिचादो । मारणंतिय-उववाद्गदा तिण्हं
लोगणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवड्डणा देवोधत्तुल्ला ।
सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्दी त्ति ओघमंगो । णवरि असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि उववादो
णत्थि । पमचंसंजेदं ण होति तेजाहारा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-

कार्माणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यात बहु भागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

इसप्रकार योगमार्गाणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गाणके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अनिवृत्तिगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैकृतियकसमुद्घातगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अर्द्धाद्वीपसे असं-
ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर देवगतिस्वन्धी स्त्रीवेदराशिही प्रधानता है ।
मारणान्तिकसमुद्घात और उपादागत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना देवोंके ओघक्षेत्रके समान है । सासादनसम्पददृष्टि
गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतकके स्त्रीवेदी जीवोंका क्षेत्र ओघके
समान लोकका असंख्यातवा भाग है । विशेष यात यह है कि असंयतसम्प-
ददृष्टि गुणस्थानमें स्त्रीवेदियोंके उपादादपद नहीं होता है । तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें

१ वेदानुवादेन स्त्रीपुंवदानां मिथ्यादृष्ट्यापानिद्विप्पिमादरान्तानां लोकस्यासंख्येयमाग । क. सि. १, ८.

वेउव्वियसमुग्घादगदा पुरिसवेद-मिच्छादिद्वी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागे, अद्दुइज्जादो असंखेज्जगुणे सेत्ते अच्छंति । मारणंतिय-उववाद्-
गदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । सासणसम्मादिद्वि-
प्पहुडि जाव अणियद्दी उववासमग-स्खवगा त्ति ओघमंगो ।

णंवुंसयवेदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्दी त्ति ओघं ॥ ४४ ॥
सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद्गदणवुंसयवेदमिच्छादिद्वी सब्ब-
लोए । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागे । णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे ।
अद्दुइज्जादो असंखेज्जगुणे सेत्ते जेण अच्छंति तेण ओघमिदि घड्ढे । सासणसम्मा-
दिद्विप्पहुडि जाव अणियद्दी त्ति एदेसिं पि परूवणा ओघतुल्ला त्ति ओघमिदि वुचं ।

तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैकृतियकसमुद्घातको प्राप्त हुए पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और
अर्द्धाद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपादाको प्राप्त
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, नरलोक
और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनसम्पददृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अनिवृत्तिकरण उपादातक और अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंके
स्वस्थानादि पर्वोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ४४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और
उपादा, इन पर्वोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्व-
स्थान और वैकृतियकसमुद्घातगत ये ही जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें
भागमें और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि वैकृतियकसमुद्घात
गत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । तथा उक्त दोनों
पर्वोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव, चूंकि अर्द्धाद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं,
इसलिए सूत्रमें कहा गया 'ओघ' यह पद घटित हो जाता है । सासावनसम्पददृष्टि गुण-
स्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भी इन नपुंसकवेदी जीवोंका क्षेत्रप्ररूपणा
ओघवर्णित क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, इससे भी सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है ।

१ नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्यापानिद्विप्पिमादरान्तानां X-X सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

णवरि पमत्ते तेजाहारपदं गतिथ ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिणहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४५ ॥

एदस्स अत्थो- चटुण्ह लोगणमसंखेज्जदिभागे, माणुमखेत्तस्स संखेज्जदिभागे
सत्थाणत्था अच्छति । मारणत्तियसमुग्घादगदा उभानगा चटुण्ह लोगणमसंखेज्जदि-
भागे, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छति चि बुत्त होदि ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ४६ ॥

पुब्बं परुविदरथमिदं सुत्तमिदि एत्थ एदस्स अत्थो ण बुच्चदे ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइमाणकसाइ-नायकसाइ-लोभकसाइसु
मिच्छादिही ओघं ॥ ४७ ॥

चटुकसाइमिच्छादिहिणो सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणत्तिय-उववादगदा ओघ-
विशेष बात यह है कि प्रमत्तसयत गुणस्थानमें नहुसंखेदियोंके तेजससमुद्घात और
आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागमें लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- स्वस्थानपदगत अपगतवेदी जीव सामान्यलोक आदि
चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-
समुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और
अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ४६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए यहां पर इसका अर्थ पुनः नहीं
कहा जाता है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणके अनुवादेसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-
कषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद

१ x x अपगतवेदीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ६.

मिच्छादिही सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणत्तिय-उववादगदेहि सवलोगिदिह अच्छणेण
अणुहरंति । विहारवदिसत्थाण-वेदविमयसमुग्घादगदा वि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणं पडि अणुहरंति ।
तदो चटुकसायमिच्छादिहिणो दव्वाट्टियणएण ओघचसुवलभंते ।

सासणसम्मादिट्टिणहुडि जाव अणियट्टि चि केवडि खेत्ते, लोगस्स
असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

एत्थ सुत्ते ओघमिदि किण्ण वुत्तं ? ण एम दोमो, दव्वाट्टियणयात्रलंजणाभावादो ।
सो वि किमिदि णावलंबिदो ? पज्जवट्टियसिस्साणुगहह । जदि एधं, तो दव्वाट्टियसिस्सा
अणुगुगहिदा होति ? ण, पुव्वुत्तमुत्तेण मिच्छादिट्टिपडिद्वेण दव्वाट्टियसिस्साणमणु-

पदगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायममुद्घात,
मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके साथ सर्व लोकमें अवस्थानके
द्वारा अनुकरण करते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत चारों कषायवाले
मिथ्यादृष्टि जीव भी सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यगलोकके
संख्यातवें भागमें और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान
और वैक्रियिकसमुद्घातगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका अनुकरण करते हैं, इसलिए चारों
कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा ओघक्षेत्रताको प्राप्त होते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक
गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें
भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

शंका- इस सूत्रमें 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतनेके स्थानपर 'ओघ' इतना
ही पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान-यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहांपर द्रव्यार्थिकनयना अवलम्बन
नहीं किया गया है ।

शंका- उस द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन क्यों नहीं किया गया ?

समाधान- पर्यार्थार्थिकनयकी शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए यहां द्रव्यार्थिकनयका
ग्रहण नहीं किया गया ।

शंका- यदि ऐसा है, तो द्रव्यार्थिकनयी शिष्य इस सूत्रसे अनुगृहीत नहीं किये
गये हैं ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रसे प्रतिबद्ध पूर्वोक्त सूत्रसे द्रव्यार्थिक-

१ कषायानुवादेन क्रोधमानमायाकषायणां लोभकषायणां च मिथ्यादृष्ट्याविबुधिविचारान्तानां x x
सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

माहकरणा । एदेण दब्ब-पज्जवट्टियणपज्जायपरिणद्वलीमाणुगहकारिणो त्रिणा इदि जाणाविदं । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-रूपाय-वेउब्बिय-मारणंतिथि-उपपादगद-सासनसम्मादिट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिणो चट्ठुहं लोगणमसंजेज्जदिमाणे, अट्ठुइआदो असंजेज-गुणे खेत्ते अच्छंति । 'लोगस्स असंजेज्जदिमाणे' इदि मुत्ते तुत्ते, तेण माणुमत्तस्स पि असंजेज्जदिमाणे एदेहि होदव्वं, लोगत्तं पडि विसेसाभावादो ? ण एम दोमो । होदि एस दोसो, जदि पज्जवट्टियमस्सिदण एस लोगसदो द्विदो । किं तु दब्बट्टियणपमलंविज्जण द्विदत्तादो सच्चलोगसमूहस्स असंदस्स वाचगो, तेण 'लोगस्स जमंजेज्जदिमाणे' इदि सुत्तवयणं ण विरुद्धदे । जदि एवं, तो पज्जवट्टियणपमलंविज्जण द्विदसमाणावयणं सुत्तेण असंबदं होदि चि ? ण, विसेमदित्तजादीण अभावादो । विमसालिगिदमावण-लोगो जेण सुत्तम्मि तुत्तो तेण लोगस्स अवयवभूदत्तचारि लोगे अस्मिदण जं रस्सानं तण सुत्तविरुद्धमिदि । एवं सम्मामिच्छाइट्ठिणं । णवरि मारणंतिथि-उपपादपदं जरिय ।

नयी शिष्योंका अनुग्रह कर ही दिया गया है ।

इस विवेचनसे यह बात बतलाई गई कि जित्त भगवान् भ्रूयागिक और पर्या-यार्थिक, इन दोनों नयस्वरूप पर्यायोंसे परिलत जीवोंके अनुग्रह करनेवाले होते हैं ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारयस्स्वस्थान, वेदनाममुदात्त, कपायममुदात्त, कैकिरिपक-समुदात्त, मारणात्तिकसमुदात्त और उपपाद, इन पाँचोंको प्राज्य चारों कपायवाले सामान्य-सत्यगर्ही और असंयतसत्यगर्ही और सामान्यलोक आदि चार लोकोंके अंगंख्यातों भागमें और अर्द्धाद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शुंका — 'लोकके असंख्यातयें भागमें' इतना ही पर पृष्ठमें कहा है, इसप्रिय 'माणुयक्षेत्रके भी असंख्यातयें भागमें रहते हैं' ऐसा अर्थ होना चाहिए, क्योंकि, लोकप्रणी अपेक्षा सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँचों ही लोकोंमें विद्येयताका अभाव है, अर्थात् समानता है ?

समाधान—यह कोई शोक नहीं है । यह शोक होता, यदि केवल पर्यायार्थिकनयका ही आश्रय लेकर यह लोकद्वन्द्व स्थित होता । किन्तु यह लोकशास्त्र व्यापारिकनयका आश्र-लम्बन करके स्थित है, अतएव अजड सर्वलोकके समुदायका शाब्क है, इसप्रकार 'लोकके असंख्यातयें भागमें' इस प्रकारका यह सूत्र-वचन गिरीशको प्राज्य नहीं होता है ।

शुंका—यदि ऐसा है, तो पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके शिगत व्याख्यात यथन सूत्रके साथ असंबन्ध होगा !

समाधान—नहीं, क्योंकि, विरोधसे व्यतिरिक्त जातिका अभाव पाया जाता है । चाकि, विरोधसे मालिगित सामान्यलोक सूत्रमें कहा है, इसलिए लोकके भावकयमूल ऊर्ध्वलोक आदि चार लोकोंका माध्यम करके जो व्याख्यान किया गया है, यह सूत्रसे विरुद्ध नहीं है, अपि तु संयत्त है ।

एवं संबंदासंबंदाणं । णवरि उपपादपदं जणिय । भेदगुणद्वयाणि चट्ठुहं लोगणममन्वे-ज्जदिमाणे, माणुमत्तस्स मन्वेज्जदिमाणे । णवरि मारणंतिथिमनुपादगदा माणुमत्तंचादो अमन्वेज्जगुणे होति ।

लोकरूपायविमपदृष्याणदुत्तरमुत्तं भगदि—

णवरि विमसो, लोभकसाईसु मुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा सवा केवडि सेत्ते, लोगस्स अमंवेज्जदिमाणे ॥ ४३ ॥

पदम्स गुत्तम्प अत्यो गुणमो ।

अकमाईनु चट्ठुणभोयं ॥ ५० ॥

एतत्त द्वाजनेरा गुणद्वानयानगो, 'जयवेणु प्रज्ञाः प्रज्ञाः प्रज्ञाः ममुदायेवपि सन्ने' इति न्यायान् । यथा मत्वमामा मामा, वन्देदो देवः, भीममेनः मेन इति । कयमुत्तं-

इतिभरकरते चारों कपायवाले भन्नागिष्पारादिर्द्योता क्षेत्र जानना चाहिए । विरोध-बल यह है कि यद्यपि मारणात्तिकसमुदात्त और उपपाद, ये दो पर नहीं होते हैं । इसी प्रकार चारों कपायवाले धर्मतामं पर्योका क्षेत्र होता है । विरोधता यह है कि इनके उपपाद पर नहीं है । दोष गुणरूपानयनी चारों कपायवाले जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातयें भागमें और माणुयक्षेत्रके सख्यातयें भागमें रहते हैं । विरोधता यह है कि मारणात्तिकमनुपादगत चारों कपायवाले संयत और माणुयक्षेत्रके असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

यह जोषकपायसी विरोधता बतानेके लिए उत्तर सूत्र कहने हैं—

विशेष बात यह है कि नोभकपायी जीवोंमें दृष्ट्यमात्रप्रायिकद्विधर्मयत्त उपपन्नक और ध्रुवक जीव किन्तु क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अंगंख्यातयें भागमें रहते हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ गुणम है ।

अन्तायी जीवोंमें उपगान्नरूपाय चादि चारों गुणयानोंका क्षेत्र ओष क्षेत्रके ममान है ॥ ५० ॥

यद्यपि 'भयान' नाम्द गुणरूपानयका शाब्क है, क्योंकि, 'अयमत्तमे मनुष्य रूप शाब्क समुदायोंमें भी रहते हैं' ऐसा व्याप है । अंग 'भयान' कहनेसे सयमाना, 'देव' कहनेसे बलदेव और 'मेन' कहनेसे भीमसेनका ज्ञान होता है, इसी प्रकार यहाँ भा 'स्थान' शब्दसे गुणरूपानय बोध होता है ।

शुंका—अभी कपायोंका उपगमन ही है, ऐसे उपगमनरूप गुणरूपानको प्रक-

१ × × गुणरूपानयानकी नामाचोद क्षेत्र । न. वि. १, ८.

२ × × चट्ठुणभोयं य सामान्यार्थ क्षेत्र । न. वि. १, ८.

कसाओ अकसाओ ? न, भावकसायाभाव पेक्खिदूण तस्स वि अकसायत्तसिद्धिदो । बहु-
न्वीहिसमासं कादूण 'अकसाएसु' ति गिहेसो किण्ण कदो ? न, पज्जयपडिसेधे कदे कसाय-
विरहिदथंभादीणं पि अकसायत्तप्पसंगादो । दब्बपडिसेधे कदे सो दोसो न पावदे, एदेण
णावएण ओसारिदप्पसज्जपडिसेहत्तादो । कस्स गयस्स एस ववहरो ? सहट्ठसंवंधस्स
णिच्चचमिच्छंतसहणयस्स । 'अवगदेवदएसु' ति दब्बगिहेसो वि एवं चेव वक्खणे-
दब्बो । सेसं सुगमं ।

एवं कसायमगणा समत्ता ।

णाणानुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिद्वी
ओधं ॥ ५१ ॥

एसा णिद्वारणे सत्तमी, मदि-सुदअण्णाणीणं मिच्छादिद्विविदिरिचणं सासणाणं पि

पाय कैसे कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहांपर भावकपायके अभावकी विवक्षासे उपभान्तकपाय
गुणस्थानके भी अकपायपनेकी सिद्धि हो जाती है ।

शंका—'नहीं हैं कपाय जिनके' ऐसा बहुव्रीहि समास करके 'अकपायोंमें' इस
प्रकारका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्यायके प्रतिषेध कर देनेपर कपायसे विरहित स्तम्भा-
दिकोंके भी अन्यथा अकपायताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । किन्तु, द्रव्यके प्रतिषेध करनेपर
बहु अतिप्रसंग दोष नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इसी ज्ञापक (न्याय) के द्वारा आप हुए
दोषप्रसंगका प्रतिषेध कर दिया गया ।

शंका—यह उक्त व्यवहार किस नयका है ?

समाधान—शब्द और अर्थके वाच्यवाचकसम्बन्धको नित्य माननेवाले शब्दनयका
यह व्यवहार है ।

वेदमार्गणाके अन्तमें दिये हुए (नं. ४५ वें) सूत्रके 'अपगतवेदियोंमें' इस पदके
द्रव्यनिर्देशका भी इसी प्रकारसे व्याख्यान करना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र
ओधके समान सर्वलोक है ॥ ५१ ॥

यहां पर 'मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें' यह सत्तमी विभक्ति निर्द्वारणके अर्थमें
है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे व्यतिरिक्त सासादनगुणस्थानवर्ती भी मत्तज्ञानी और

१ ज्ञानानुवादेन मत्तज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसादनसम्यग्दर्शनां सामान्योक्तिं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

संभवादो । सेसं पुवं पटुप्पादिदमिदि पुव्वुत्तट्ठावधारिदसिस्साणुरोहेण ण वुच्चदे ।

सासणसम्मादिद्वी ओधं ॥ ५२ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो मदि-सुदअण्णाणीसु ति अनुवट्ठदे ? कधं णिच्चयेयणस्स खण-
खह्णो सदस्स अविणट्ठरूवेण अनुवत्ती ? न एस दोसो, एदस्स सुनस्स अवयवभावो
ट्ठिदअण्णसदस्स पुव्वसहेण समाणत्तमवेक्खिय सो चेव एसो इदि पच्चयहिण्णाण-
पच्चयणिमित्तस्स अनुवत्तिविरोहाभावादो । सेसो गदडो ।

विभंगणाणीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागं ॥ ५३ ॥

एदस्सत्थो— विभंगणाणी मिच्छादिद्वी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-
कसाय-वेउव्वियसमुग्धादगदा तिहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागो, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो एदं ? पहाणीकदपज्जत्तेदवरासित्तादो । मारणंतिय-

श्रुताज्ञानी पाये जाते हैं । शेष व्याख्यान पहले कर आए हैं, अतः पूर्वोक्त अर्थके अवधारण
करनेवाले शिष्योंके अनुरोधसे पुनः नहीं कहते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र ओध-
सासादनसम्यग्दृष्टिके समान लोकका असंख्यातवा भाग है ॥ ५२ ॥

यहां पर पूर्वसूत्रसे 'मत्ति-श्रुताज्ञानियोंमें' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शंका—अचेतन और क्षण-क्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है ?
समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके अवयवरूपसे स्थित अन्य
शब्दकी पूर्व शब्दके साथ समानता देखकर 'यह वही है' इस प्रकारके प्रत्याभिज्ञानकी
प्रतीतिके निमित्तभूत शब्दकी अनुवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शेष सूत्रका अर्थ पहले किया जा चुका है ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्भूत,
कपायसमुद्भूत और वैकृतिकसमुद्भूतको प्राप्त विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अर्द्धाद्वीपसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—स्वस्थानादि पक्वत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें
और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें क्यों रहते हैं ?

१ विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसादनसम्यग्दर्शनां लोकस्यासंख्यमागः । स. सि. १, ८

समुग्धादगदा एवं चैव । नवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे सि वत्तन्वं । उववादपदं गत्थि । सासणसम्मादिही सन्वेहि वि पदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइजादो असंखेज्जगुणे । एत्थ वि उववादो गत्थि ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिण्हडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भोगे ॥ ५४ ॥

एदं सुत्तं वुत्तयमिदि पुणे ण एदस्स अत्थो वुच्चदे ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तंसंजदपहडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५५ ॥

समाधान—चूँकि, यद्वापर पर्याप्त देवराशि की प्रधानता है, इसलिए स्वस्थानादि पदों को प्राप्त वे देव तिर्यग्लोक के सख्यातवें भाग में और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं ।

मारणान्तिकसमुद्रातगत विभंगज्ञानियों का क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है । विशेषता केवल इतनी कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं । विभंग-ज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों के उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, पर्याप्तावस्थामें ही विभंग-ज्ञान उत्पन्न होता है) । विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानादि सभी समव-पदों की अपेक्षा सामान्यलोक आदि चारों लोकों के असख्यातवें भाग में और अट्ठाईवापसे असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं । यद्वापर भी उपपाद पद नहीं है । (कारण भी उपर्युक्त ही समझना चाहिए) ।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अधिज्ञानियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकपायवीतरागद्वयस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ? लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ॥ ५४ ॥

इस सूत्र का अर्थ पहल कह दिया गया है, इसलिए पुनः इसका अर्थ नहीं कहते हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकपायवीतरागद्वयस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ॥ ५५ ॥

१ आभिनिबोधिकश्रुतज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्टार्थीनां क्षीणकपायानानां $\times \times \times$ सामान्योक्त क्षेत्रम् । स मि १, ८.

२ $\times \times \times$ मन पर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तदीनानां क्षीणकपायानानां $\times \times$ सामान्योक्त क्षेत्रम् । स मि १, ८.

किमट्ठं एदेसु तीसु सुत्तेसु पज्जयणयदेसणा ? बहणं जीवाणमणुग्गाहं । दब्बट्ठि-एहितो पज्जवट्ठियजीवाणं वहुत्तं कधमवग्गम्मेदे ? ण, सेगहरुज्जीवेहितो बहणं वित्थर-रुहजीवाणमुवलंभादो । सेसमवग्गदट्ठं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ५६ ॥

एत्थ किमट्ठ दब्बट्ठियणओ अवलंबिदो ? ण, पज्जवट्ठियणयवलंबणे कारणभावा । पज्जवट्ठियणओ अवलंबिज्जेदे विसेसपटुप्पायणट्ठ, ण च एत्थ को वि विसेसो अत्थि । ण च पुव्वसुत्तेहि वियहिचारो, पदेकं गुणट्ठाणेसु तत्थ गाणभेदोवलंभादो । सेसं सुगमं ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ ५७ ॥

एसो णवसु पदेसु कत्थ वट्ठेदे ? सेसपदसंभवाभावादो सत्थाणे पदे ।

शंका—इन अभी कहे गए तीनों सूत्रों में पर्यायार्थिकनयका उपदेश किस लिए किया गया है ?

समाधान—बहुतसे जीवों के अनुग्रह करने के लिए पर्यायार्थिकनयका उपदेश दिया गया है ।

शंका—द्रव्यार्थिकनयी जीवों से पर्यायार्थिकनयवाले जीव बहुत हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सक्षेपराशिवाले जीवों से विस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं ।

शेष सूत्र का अर्थ तो अत्रगत ही है ।

केवलज्ञानियों में सजोगिकेवली का क्षेत्र ओघक्षेत्र के समान है ॥ ५६ ॥

शंका—इस सूत्र में किसलिए द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने का यहाँ कोई कारण नहीं है । पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन विशेष प्रतिपादन के लिए किया जाता है । किन्तु यद्वापर कोई भी विशेषता नहीं है, (जिसके कि बतलाने के लिए पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन किया जाय) । और न यद्वापर पूर्व सूत्र से (जो कि पर्यायार्थिकनयी है) व्यभिचार दोष ही आता है, क्योंकि, इन गुणस्थानों में से प्रत्येक गुणस्थान में धानभेद पाया जाता है । शेष सूत्र का अर्थ सुगम है ।

अजोगिकेवली भगवान् ओघ के समान लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ॥ ५७ ॥

शंका—ये अजोगिकेवली भगवान् स्वस्थानादि नौ पदों में से किस पद में रहते हैं ?

समाधान—अजोगिकेवली के विहाररत्नस्थानादि शेष अशेष पद सभय न होने से वे स्वस्थानस्वस्थान पद में रहते हैं ।

१ $\times \times \times$ केवलज्ञानिनां सयोगानां \times सामान्योक्त क्षेत्रम् । स मि १, ८

२ $\times \times \times$ केवलज्ञानिनां \times अयोगानां च सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. मि. १, ८

१, ३, ५८.]

छक्खुडागमे जीवद्वाणं

[१२१]

उप्पण्णपदेसो धरं रामो देसो वा सत्थाणं, तस्स वि उवयारदंसणादो । ण च ममेदंबुद्धीए पडिगहिदपदेसो सत्थाणं, अजोगिग्घि खीणमोहमिह ममेदंबुद्धीए अभावादो चि ? ण एस दोसो, वीदराणाणं अप्पणो अन्निदपदेसस्सेव सत्थाणववएसोदो । ण सरागाणमेस णाओ, तत्थ ममेदंभावसंभवादो । अथवा एस चव णाओ सन्वत्थ घेप्पउ, विरोहाभावादो । जदि एवं सत्थाणस्स अत्थो बुच्चदि, तो सासणसत्थाणफोत्तणस्स अट्टु चोइसभागा पावति चि चे ण, फोत्तणे ममेदंबुद्धिपडिगहिदस्स सस्सामिसंबंधेण वारिदस्स चव सत्थाणववदे-सदो । सेसं सुगमं ।

एव णाणमगण्णा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमतसंजदपहुडि जाव अजोगिकेवली ओधं ॥ ५८ ॥

शंका—अपने उत्पन्न होनेके प्रदेश, घर, ग्राम अथवा देशको स्वस्थान कहते हैं । इस प्रकारका यह स्वस्थानपद भी अयोगिकेवलीमें केवल उपचारसे ही देखा जाता है, (न कि यथार्थतः) । तथा 'यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिसे प्रतिगृहीत प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं, किन्तु क्षीणमोही अयोगी भगवान्में ममेदंबुद्धिका अभाव है, इसलिए (किसी भी प्रकारसे) अयोगिकेवलीके स्वस्थानपद नहीं बनता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वीतरागियोंके अपने रहनेके प्रदेशको ही स्वस्थान नामसे कहा गया है । किन्तु सरागियोंके लिए यह न्याय नहीं है, क्योंकि, इनमें ममेदंभाव संभव है । अथवा, 'अपने रहनेके प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं' यही न्याय सर्वत्र ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उसके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—यदि इस प्रकार स्वस्थानका अर्थ कहते हैं, तो सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्थानस्वस्थानपदके स्पर्शनका क्षेत्र आठ वटे चौदह १६ राजु प्रमाण प्राप्त होता है, (जो कि आगे स्पर्शनानुयोगद्वारमें बताया नहीं गया है) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुयोगद्वारमें, ममेदंबुद्धिसे प्रतिगृहीत और अपने स्वामित्वके सम्बन्धसे रोकें हुए क्षेत्रको ही स्वस्थान संज्ञा प्राप्त है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओषके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५८ ॥

२. संयमानुवादेन $\times \times \times$ संयतानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. लि. १, ८.

१२२]

खेत्ताणुगमे सजममगणाखेत्तपरूवणं

[१, ३, ६०.

एत्थ किमट्ठं दव्वट्ठियणयदेसणा कीरदे ? ण, संजमसामण्णे पहाणीकदे ओवं पडि विसेसाभावादो । पज्जवट्ठियणयपरूवणा एत्थ जाणिय वत्तन्वा ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ ५९ ॥

एजजेगो किण कदो ? ण, खेचं पडि सेमगुणट्ठणेहिंतो सजोमिस्म विभेसेवलं-भादो । जदि एवं, तो सेसगुणट्ठणाणं पि णणाविहभेयभिण्णाणं पुव पुव सुत्तकरणं पावेदि ति चे ण, तेषिं पहाणीकयखेत्तजणिदविसेसाभावादो । एत्थ सेसा पज्जवट्ठियणय-परूवणा सव्वा वत्तन्वा ।

सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमतसंजदपहुडि जाव अणि-यट्ठि ति ओधं ॥ ६० ॥

शंका—इस सूत्रमें द्रव्यार्थिकतयकी देशना किस लिए जा रही है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संयमसामान्यके प्रधान करनेपर ओषक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा संयममार्गणके अनुवादसे क्षेत्रप्ररूपणमें कोई विशेषता नहीं है ।

यद्वांपर पर्यायार्थिकतयकी प्ररूपणा ज्ञान करके करना चाहिए ।

सजोगिकेवली भगवान् ओषके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका—इन दोनों सूत्रोंका एक समाल क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंसे सजोगिकेवलीके क्षेत्रमें विशेषता पाई जाती है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो नाना प्रकारके भेदोंसे भिन्नताको प्राप्त शेष गुणस्थानोंके भी पृथक् पृथक् सूत्रोंकी रचना प्राप्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शेष गुणस्थानोंकी पृथक् पृथक् प्रधानता करतेपर भी क्षेत्र-जनित विशेषताका अभाव है, इसलिए पृथक् पृथक् सूत्र-रचनाका प्रसंग नहीं प्राप्त होता है ।

यद्वांपर सभी गुणस्थानसम्बन्धी शेष सर्व पर्यायार्थिकतयकी क्षेत्रप्ररूपणा कहना चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनि-वृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत ओषके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

१. सामायिक-च्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतानां चत्तुर्णां $\times \times \times$ सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. लि. १, ८.

ओषधपत्रादिरासीदो सामाहय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदपमत्तादो समाणा चिं पदेसि परुवणा ओषं भवदि । न च सामाहय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदेहिंतो पुषभाभवभूदा परिहार-सुद्धिसंजदा अत्थि, जेण तदो भेदो होज्ज । किमिदि पुषभूदा नत्थि ? दुणयंवदिरिच-छदुमत्थजीवाभावादो । सेसं सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागें ॥ ६१ ॥

एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो पुवं परुविदो चि संपहि ण वुच्चदे । णवरि पमत्त-संजदे तेजाहारं नत्थि ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागें ॥ ६२ ॥

ओषधमें कहीं गई प्रमत्तसंयतादिराशिसे सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमबले प्रमत्तसंयतादिक समान हैं, इसलिये इनके क्षेत्रकी प्ररूपणा ओषधके क्षेत्रके समान बन जाती है । और, सामायिक तथा छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोसे परिहारविशुद्धिसंयत पृथग्भावक रूप हैं नहीं, जिससे कि उनसे उनका भेद हो जाय ।

शंका — परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोसे पृथग्भूत क्यों नहीं है ?

समाधान — क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोसे भिन्न छद्मस्थ जीवोंका अभाव है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिये अब नहीं कहते हैं । विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती परिहारविशुद्धिसंयतके तैजससमुदात और आहारकसमुदात ये दो पद नहीं होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिमंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

१ मतिपु 'दुणय' इति पाठ

२ × × × परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां × × × सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

३ × × × सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतानां × × × सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु चि आधारणिहेसो । तत्थ सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दुविधा होति उवसामगा खवगा चेदि । ते अप्पणो पदेसु वट्टमाणा चट्ठण्हं लोगणम-संखेज्जदिभागो, माणसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो होति । णवरि मारणत्तियपदे माणस-खेत्तादो असंखेज्जगुणे होति ।

जहावखादविहारसुद्धिसंजदेसु चट्ठगणमोघं ॥ ६३ ॥

एत्थ ट्ठगणसदो पुव्वुत्तणाएण गुणट्ठगणाची । चट्ठण्हं ठाणणं समाहारो चट्ठगणी, सा ओघं होदि । उवसंतकसाय-धीणकसाय-सजोगि-अजोगिणिणणं जहावखादविहारसुद्धि-संजदणं अप्पणो ओषपरुवणं होदि चि जं वुत्तं होदि ।

संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागें ॥ ६४ ॥

एदस्स अत्थो पुवं परुविदो ।

असंजदेसु मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ६५ ॥

'सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोमें' इस पदसे आधारका निर्देश किया गया । इस गुणस्थानमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत दो प्रकारके होते हैं, उपशमक और क्षपक । वे दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत अपने यथासंभव पदोंमें रहते हुए सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुदातपदमें उपशमक जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमें उपशान्तकपाय गुणस्थानसे लेकर अयोभिक्रवली गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले संयतोका क्षेत्र ओषधके समान है ॥ ६३ ॥

इस सूत्रमें आया हुआ 'स्थान' शब्द पूर्वोक्त न्यायसे गुणस्थानका वाचक है । चार गुणस्थानोंके समुदायको 'चतु-स्थानी' कहते हैं । उनका क्षेत्र ओषधके समान है । अर्थात्, उपशान्तकपाय, क्षीणकपाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहार-विशुद्धिसंयतोका क्षेत्र अपने ओषधक्षेत्रके समान होता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

असंयतोमें मिथ्यादृष्टि जीव ओषधके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

१ × × × यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चट्ठण्णां × × सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

३ × × असंयतानां च चट्ठण्णां सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

ओघपरूणा गुणद्वाराणमभेदेण भेदेण च जा कदा, सा अत्योघ-आदेसोघेहि दुविधा होदि । आदेसोघो वि गुणद्वाराणभेदेण चोहसविहो होदि । एत्थ ओघमिदि बुत्ते कदमस्स ओघस्स गहणं ? आदेसोघस्स अवयवभूदमिच्छादिद्वीणमोघस्स । कथमेदं लब्धे ? पच्चासत्तीदो । अणोहि वि ओघेहि सह कथां वि पच्चासत्ती अत्थि ति भणिदे ण, अणोहि सह मिच्छादिद्वीहि जेम परिसेण पच्चासत्तीए अभावादो । एदमत्थपदं सन्वत्थ जोजेयव्वं । असंजदचदुगुणद्वाराणमोगजोगो ऋण कदो ? ण, मिच्छादिद्वीणं सेसगुणद्वारेणहि सह खेचेण परिसपच्चासत्तीए अभावादो ।

सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी ओघं ॥ ६६ ॥

एदेसि तिण्हं गुणद्वाराणं चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण पच्चासत्ती अत्थि ति एगजोगो कदो ।

एव सजमगणा समत्ता ।

शुका—ओघप्ररूणा गुणस्थानोंके अमेदसे और भेदसे जो की गई है, वह अर्थ-ओघ और आदेश-ओघके भेदसे दो प्रकारकी होती है । आदेश ओघ भी गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारका होता है । सो यहाँ 'ओघ' ऐसा सामान्यपद कहनेपर किस ओघका ग्रहण किया गया है ?

समाधान—आदेश-ओघके अवयवभूत मिथ्यादृष्टियोंके ओघका ग्रहण किया गया है ।

शंका—यह अर्थ कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—प्रत्यासत्तिले, अर्थात् सामीप्यसे, आदेश-ओघका ग्रहण किया गया है, यह जाना जाता है ।

शंका—प्रत्यासत्ति तो कदाचित् अन्य भी ओघोंके साथ हो सकती है ?

समाधान—ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि नहीं, क्योंकि, अन्य ओघोंके साथ मिथ्यादृष्टियोंके समान प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

यह अर्थपद सर्वत्र लगाना चाहिए ।

शंका—असत्य चारों गुणस्थानोंका एक योग (समास) क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंकी शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतम प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

असंयतोमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

इन सूत्रोक्त तीनों ही गुणस्थानोंका सामान्यलोक आवि चार लोकोंके असंख्यातवें भागके साथ और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रके साथ प्रत्यासत्ति पाई जाती है, इसलिए उक्त तीनों गुणस्थानोंका एक योग इस सूत्रमें किया गया है ।

इस प्रकार संयमसंगणा समाप्त हुई ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव खीण-कसायवीदरागछुदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

सत्याणमत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कमाय-वेउविमयममुग्धादग्दा चक्खु-दंसणी मिच्छादिद्वी तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डुहज्जदो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओमट्ठणा जाणिय कादव्वा । एवं मारणतिपयसमुग्धादग्दा । णवर तिरियलोगदो असंखेज्जगुणे ति वत्तव्व । एवं चैव उववादग्दाणं पि वत्तव्वं । अपज्जत्त-काले चक्खुदंसणाभावादो उववादो गत्थि ति णासंखेज्जज्जं, अपज्जत्तकाले वि खओवसम पडुच्च चक्खुदंसणुवलंभादो । जदि एवं, तो लद्धिअपज्जत्ताणं पि चक्खुदंसणित्तं पसज्जेदं । तं च गत्थि, चक्खुदंसणिअवहारकालस्स पदरगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपमाण-प्यसंगादो ? ण एस दोसो, णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं चक्खुदंसणमत्थि; उत्तरकाले णिच्छएण चक्खुदंसणोजोगसमुपत्तीए अविणाभाविवचक्खुदंसणखओवसमदंसणादो । चउरिदिय-

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-कषायवीतरागछद्मस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानतों जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान वेदनासमुद्भात, कषायसमुद्भात और वैकियि-समुद्भातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तिरियलोकके संख्यातवें भागमें और अड्डुहज्जदिगुणसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यद्वापर अपवर्तना जानकर करना चाहिए । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्भातगत चक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र है । विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्भातगत चक्षुदर्शनी जीव तिरियलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपपादगत चक्षुदर्शनियोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । अपर्याप्तकालमें चक्षुदर्शनका अभाव होनेसे यद्वापर उपपादपद नहीं है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी क्षयोपशमकी अपेक्षा चक्षुदर्शन पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो लब्धपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनीवनेका प्रसंग प्राप्त होता है । किन्तु लब्धपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता नहीं है । यदि लब्धपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनका सद्भाव माना जायगा, तो चक्षुदर्शनी जीवोंके अवधारकालको प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र प्रमाणपनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, निवृत्त्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता है, इसका कारण यह है कि उत्तरकालमें, अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होनेके पश्चात् निश्चयसे चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनका क्षयोपशम देखा जाता

१ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनीना मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्ताना ओकस्यासत्त्येयमाग । स. वि. १, ८.

पंचिदियलद्विअपज्जत्तानं चक्खुदंसणं णत्थि, तय चक्खुदंसणोवओगसमुत्पत्तीए अविणा-
मीविचक्खुदंसणक्खओवसमाभावादो । सेसगुणद्वुणाणं पज्जवट्ठियपरुवणा जाणिय वत्तव्वा ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ६८ ॥

सुगममेदं सुचं ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव् स्वीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति
ओघं ॥ ६९ ॥

एदेसिमणंतदोसुत्ताणमेगतं किण्ण कदं ? ण, मिच्छादिद्वीहि सेसगुणद्वुणाणं
पञ्चासत्तीए अभावादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ७१ ॥

है । हां, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन नहीं होता है, क्योंकि,
उनमें चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनावरणकर्मके क्षयोपरामका
अभाव है ।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी
प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए ।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें
रहते हैं ॥ ६९ ॥

शंका—इन अनन्तलोक दोनों सूत्रोंका एकत्व क्यों नहीं किया, अर्थात् एक सूत्र
क्यों नहीं बनाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवोंके साथ शेष गुणस्थान-
वर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिनानियोंके समान लोकका असंख्यातवां
भाग है ॥ ७० ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग,
लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ७१ ॥

१ अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टादिसौणकषायान्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । स वि १ ८.

२ अवधिदर्शनीनामवधिक्षान्तिवत् । स वि १, ८.

३ केवलदर्शनीनां केवलज्ञानिवत् । स वि. १, ८

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति पज्जवट्ठियपरुवणा ण् कीरेदे ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील्लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा-
दिद्वी ओघं ॥ ७२ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-भारणंति-उववादेहि सक्खलोगच्छणेण, विहारविदि-
सत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,
अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणेण च सरिसत्तमतिय त्ति ओघमिदि मणिदं ।
णवरि वेउव्वियसमुग्धादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी ओघं
॥ ७३ ॥.

चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गेणा समाप्त हुई ।

लेस्यामार्गणके अनुवादसे कृष्णलेस्यावाले, नीललेस्यावाले और कापोतलेस्यावाले
जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्भात, कषायसमुद्भात, मारणान्तिकसमुद्भात और उपपाद,
इन पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहनेसे, विहारचस्वस्थान और वैक्रियिकपदकी अपेक्षा
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यलोकके संख्यातवें भागमें और
अद्वैक्षीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेस्यावाले मिथ्यादृष्टि
जीवोंके क्षेत्रके सदृशता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा । विशेष बात यह है कि
वैक्रियिकसमुद्भातगत तीनों अशुभलेस्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यलोकके असंख्यातवें
भागमें रहते हैं ।

तीनों अशुभलेस्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तीनों अशुभलेस्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके स्वसंभव पदोंकी अपेक्षा
सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहनेसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे

१ लेस्याद्वुवादेन कृष्णनीलकापोतलेस्यानां मिथ्यादृष्टायप्रयुतसम्यग्दृष्टयन्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् ।

सरिसचुवलभादो सिद्धमोघत्तं । विसदो पुण मारणंतिय-उववादादा किह-गल-काउ-लेस्मियअमंजदसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा वि होदूण माणुसखेचादो असंखेज्जगुणे खेचे-अच्छंति, असंखेज्जजोयणायामचादो ।

तेउलेस्मिय-पम्मलेस्मिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७४ ॥

तेउलेस्मियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविय-समुग्धादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । मारणंतियसमुग्धादगदा एवं चेव । गवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे चि वनवं । एव चेव उववादादगदा । एत्थ ओवद्वणं उविज्जमाणे सुधम्मरासिं ठविय अप्पो उन्नक्कमणकालेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो मागे हिदे एगसमएण तसुववज्जमाणजीवा होति । पुणो अवरेसंगं पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहार-सरूवण द्विविदे रज्जुआयमेण उववादादगदासी होदि । पुणो संखेज्जपदंगुलमेचरज्जुहि

क्षेत्रमें रहनेसे सदृशता पाई जाती है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना सिद्ध हुआ । किन्तु विशेष बात यह है कि मारणांनिकसमुदात और उपपाद पदगत कृष्ण, नील और कापोत-लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यात होकरके भी मातुपक्षेत्रसे अभख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उनके मारणांनिकसमुदात और उपपाद पदगत वडका आयाम असंख्यात योजन पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात और वैकिक-यिकसमुदातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागमें और अबर्हीद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणांनिकसमुदातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार है । विशेष बात यह कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार उपपाद पदगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए । यहाँपर अपवर्तनाके स्थापित करते समय सौधर्मकल्पकी जीवराशिको स्थापित कर पल्योपमक असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उपक्रमणकालसे भाग देनेपर एक समयमें उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव होते हैं । पुन. एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवा भाग भागशरस्वरूपसे स्थापित कर एक राजुप्रमाण आयामवाली उपपादपदको प्राप्त जीवराशिका प्रमाण होता

गुणिदे उववादेखेत्तं होदि । ओवद्वणा जाणिय कायव्वा । तेउलेस्मियगुणपडिक्खणाणं ओघमंयो । पम्मलेस्मियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायमसु-ग्धादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीभूदतिरिक्खसामिचादो । वेउविय-मारणतिय-उववादादा चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अहुइजादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकदसणक्कुमार-माहिंद-रासीदो । सासणादिगुणपडिक्खणाणं अप्पमत्तसंजदंताण ओघमंयो ।

सुक्कलेस्मिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छटुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७५ ॥

सुक्कलेस्मियमिच्छादिट्ठिणो जेण पलिदेवमस्स अंतरेज्जदिभागमेचा, तेण सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविय-मारणंतिय-उववादापदेहि चट्ठण्हं लोग-णमसंखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसगुणद्वयाणमोघमंयो । गवरि

है । पुन. संख्यात प्रतरागुलप्रमाण राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है । यहाँपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए । गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात और कयायसमुदातगत पद्म-लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अबर्हीद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहाँपर तिर्यच-राशिकी प्रधानता है । वैकिकिकसमुदात, मारणांनिकसमुदात और उपपादपदको प्राप्त पद्म-लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अबर्हीद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहाँपर सातकुमार-माहेन्द्र देवराशिकी प्रधानता है । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ।

शुक्लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकयायवीतरागद्वय गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

चूँकि, शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिए वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात, वैकिकसमुदात, मारणांनिकसमुदात और उपपादपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अबर्हीद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । विशेष बात यह है

मिच्छादिद्विष्टिपहृदि सन्वगुणद्वारेण मारणतिय-उववादपदेसु जीवा संवेज्ञा चेव ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ७६ ॥

एदं सुचं सुगमं । जधा कसायमगणाए अकसाइया वुत्ता, तथा एत्थ लेस्सा-मगणाए अलेस्सिसया किण्ण वुत्ता त्ति भणिदे वुच्चदे-जत्थ दवं पहाणीभूदं, तत्थ भणिदं होदि । जत्थ पुण पज्जवो पहाणो, तत्थ ण होदि । लेस्सासगणा पुण पज्जपहाणा एत्थ कदा, तेण अलेस्सिसया ण परूविदा ।

एव लेस्सासगणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिणसु मिच्छादिद्विष्टिपहृदि जाव अजोगि-केवली ओघं ॥ ७७ ॥

एदं सुचं सचं पि मूलोवादो अविसिद्धिमिदि मूलोघपज्जवद्वियपरूवणं लभदे ।

कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय गुणस्थान तक शेष सभी गुणस्थानोंमें मारणात्मिकसमुद्भात और उपपाद, इन दोनों पदोंमें शुक्लेदयावाले जीव संख्यात ही होते हैं ।

शुक्लेदयावाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शंका—जिस प्रकार कपायमार्गणमें अरुवायी जीवोंका क्षेत्र वतलाया गया, उसी प्रकार यहाँ लेक्ष्यमार्गणमें अलेक्ष्य जीवोंका क्षेत्र क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसी आशंका करने पर कहते हैं—जिस मार्गणमें द्रव्य प्रधानतासे प्रहण किया गया है, उस मार्गणमें तो प्रतिपक्षी 'अक्रवायी' आदिका क्षेत्र आदि कहा गया है । किन्तु जिस मार्गणमें पर्याय प्रधान है, उस मार्गणमें प्रतिपक्षी 'अलेक्ष्य' आदिका क्षेत्र-निरूपण नहीं किया गया है । यहाँ पर लेक्ष्यमार्गण पर्याय-प्रधान कही गई है, इसलिए अलेक्ष्य जीवोंका क्षेत्र नहीं कहा गया है ।

इस प्रकार लेक्ष्यमार्गण समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ७७ ॥

यह सम्पूर्ण ही सूत्र मूल-ओघसे अधिशिष्ट है, इसलिए मूल-ओघ-पर्यायार्थिकत्वकी प्ररूपणको प्राप्त होता है, अर्थात्, भव्यजीवोंका क्षेत्र ओघमें कहे गये क्षेत्रके समान ही है ।

१ सयोगिकेवलीमार्गणानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. डि. १, ८.

२ मय्यानुवादेन भव्यानां पदुदकानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. डि. १, ८.

अभवसिद्धिणसु मिच्छादिद्वी केवडि खेत्ते, सन्वलोए' ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववादगदा अभवसिद्धिया सन्वलोगे । विहारवदिमत्थाण-वेउन्वियपदद्विदा चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टुइज्जोदो असंखेज्जगुणे । कुदो ? तसरासिमस्सिदूण वुत्तवंधप्पात्रहुगसुत्तादो गज्जदे । तं जधा-सन्वत्थोवा धुववंधगा । सादियवंधगा असंखेज्जगुणा । अणादियवंधगा असंखेज्जगुणा । अट्टुववंधगा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? धुववंधगेणसादियवंधगमेत्तेण । तमेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव अभवसिद्धिया होति त्ति एदं कुदो गव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसादियवंधगेहितो असंखेज्जगुणहीणत्तणहणुववत्तीदो । सादियवंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति कुदो गव्वदे ? जुत्तीदो । का जुत्ती ? वुच्चदे-

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्भात, कपायसमुद्भात, मारणात्मिकसमुद्भात और उपपाद पदको प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्त्वस्थान और वैकियिक पदस्थित अभव्यसिद्धिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना कि विहारवत्त्वस्थान और वैकियिकसमुद्भातगत अभव्यजीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ?

समाधान—त्रसरानिका आशय करके कहे गये धंघसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोग-द्वारके सूत्रोंसे यह जाना जाता है । यह इस प्रकार है—'धुवबंधक सबसे कम हैं । धुवबंधकोंसे सादिवंधक असंख्यातगुणे हैं । सादिवंधकोंसे अनादिबंधक असंख्यातगुणे हैं । अनादिवंधकोंसे अधुवबंधक विशेष अधिक हैं । कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं ? धुवबंधकोंसे हीन सादिवंधकोंकी राशिके प्रमाणसे अधिक हैं ।

शंका—त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही अभव्यसिद्धिक जीव होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिवंधकोंसे धुवबंधकोंके असंख्यातगुणहीनता अन्यथा बन नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि, त्रसरानिकोंमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

शंका—सादिवंध करनेवाले जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, यह कैसे जाना ?

तसेसु पल्लिवमसम असंखेज्जदिभागमेचा सादियबंधगा वासपुधचंतरेण तसद्धिदीए पल्लिवमसम असंखेज्जदिभागमेचुवकक्रमणकालुवलंभादो । एहंदिएसु संचिदअणंतसादिय-बंधगोहिंतो पदरसस असंखेज्जदिभागमेचा सादियबंधगा तसेसु किण्ण उपपज्जंति ? ण, सन्वगुण-भगणद्वेणसु आयाणुसारि-वओवलंभादो । जेण एहंदिएसु आओ संखेज्जो, तेण तेसि वण्ण वि तच्चिएण चैव होदव्वं । तदो सिद्धं सादियबंधगा पल्लिवमसम असंखे-ज्जदिभागमेचा चि ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

समत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि-पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ७९ ॥

दव्वद्वियपरूवणं पडि विसेसो गत्थि चि ओघमिदि बुचं । पज्जवडियपरूवणाए वि गत्थि कोह विसेसो । णवरि खइयसम्मादिट्ठीसु संजदासंजदाणं मणुसपज्जचसंजदा-

समाधान—शुकिसे ।

शंका—वह शुकि कौनसी है ?

समाधान—वह शुकि इस प्रकार है— असंजीवोंमें पत्त्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिवंधक जीव होते हैं, क्योंकि, वर्षपृथक्चके अन्तरसे असंकायकी स्थितिका पत्त्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल पाया जाता है ।

शंका—एकेन्द्रिय जीवोंमें संचयको प्राप्त अनन्त सादिवंधकोंमेंसे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिवंधक जीव असंजीवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सभी गुणस्थान और मार्गेणस्थानोंमें आयके अनुसार ही व्यय पाया जाता है । चूकि, एकेन्द्रियोंमें आयका प्रमाण संख्यात ही है, इसलिये उनका व्यय भी उतना अर्थात् संख्यात ही होना चाहिए । इसलिये सिद्ध हुआ कि असंजातोंमें सादिवंधक जीव पत्त्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

इस प्रकार भव्यमार्गेणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गेणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असं-यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

प्रत्यार्थिकनयके प्ररूपणकी अपेक्षा सूत्र-प्रतिपादित जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिये सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है । पर्यार्थिकनयकी प्ररूपणामें भी कोई विशेषता नहीं है । केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवोंके मनुष्य-

१ समत्ताज्जवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टाण्ययोगिकेत्यन्तानां X X X सामान्योक्तं क्षेत्रम् ।
२. सि. १, ८.

संजदपरूवणा कादव्वं । असंजदसम्मादिट्ठी वि भारणतिय-उववादपदेसु वट्टमाणा संखेजा । सेसं सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

पुविबल्लेहि सह खेचं पडि पयसिण पच्चासचीए अभावादो पुष सुत्तारंमो । सेसं सुगमं ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागं ॥ ८१ ॥

एत्थ ओघपज्जवडियपरूवणा णिरययवा सव्वगुणद्वेणेषु परूवेदव्वं, विसेसा-भावादो ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछट्टुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागं ॥ ८२ ॥

पर्याप्त संयतासंयतोंमें संभव पदोंकी अपेक्षा ही क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिए । भारणास्तिक-समुदात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्य-ग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

सजोगिकेवली भगवान्का क्षेत्र ओघ-कथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

सजोगिकेवली गुणस्थानकी पूर्ववर्ती गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है, इसलिये यह पृथक् सूत्र बनाया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असं-ख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

यहांपर ओघमें कहीं गई पर्यार्थिकनयसम्यग्दृष्टी क्षेत्रप्ररूपणा सम्पूर्ण पदोंकी अपेक्षा सर्व गुणस्थानोंमें प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें लेकर उपशान्तकपाय-वीतरागछट्टस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

१ क्षायेपञ्चमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टाण्यप्रमत्तानां X X X सामान्योक्तं क्षेत्रम् । २. सि. १, ८.

२ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टाण्यउपशान्तकपायानां X X सामान्योक्तं क्षेत्रम् । २. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा अंसजद-सम्माइद्दी चटुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तादो अंसंखेज्जगुणे अच्छंति। मारणं-तिय-उववादपदेसु एसो चैव आलावो। णवरि तेसु पदेसु 'द्विदजीवा संखेज्जा चैव ह्येति, उवसमसेडीदो ओदरिय उवसमसम्मचेण सह अंसजं पडिवण्णजीवाणं संखेज्जसुवलंभादो। सैसउवसमसम्ममादिट्ठिणं किण्ण मरणमत्थि चि वुत्ते समावदो। एवं संजदासंजदाणं पि'। णवरि उववादपदं गत्थि। सैसाणमोघं। णवरि पमत्तसजदस्स उवसमसम्मचेण तेजा-हारं गत्थि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ८३ ॥

सम्माभिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

भिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और वैकियिक-ममुद्धातको प्राप्त असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे मसंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणा-न्तिकसमुद्धात और उपपाद इन दोनों पदोंमें भी यही उक्त क्षेत्र-आलाप जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उन दोनों पदोंमें वर्तमान जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, उपशम-श्रेणिसे उतर कर उपशमसम्यक्त्वके साथ असयमभावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी संख्या संख्यात ही पाई जाती है।

शुंका—उपशमश्रेणीसे उतर कर मरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होता है।

इसी प्रकारसे सयतासंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है। शेष गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघ-वर्णित क्षेत्रके समान है। विशेषता केवल इतनी है कि प्रमत्तसंयतके उपशमसम्यक्त्वके साथ तैजससमुद्धात और आहारकसमुद्धात नहीं होते हैं।

सासादनम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

१ प्रतिपु 'पदेमसु' इति पाठः।

२ प्रतिपु 'दि' इति पाठः।

३ X X X सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्त क्षेत्रम्। स ति १, ८५.

एदाणि तिणि वि सुत्ताणि सुगमाणि चि एदेसि परूवणा ण कीरदे।

एव सम्भत्तमगणा समत्ता।

सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछटुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा सणिम-मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एवं मारणं तिय-उववादपदेसु वि वत्तव्वं। णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे इदि भाणिदव्वं। सैसगुणट्ठण्णामोघमंगो, तदो विसैसाभावादो।

असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ ८७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो।

एवं सणिमगणा समत्ता।

ये उक्त तीनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए उनकी प्रकृषणा नहीं की जाती है।

इस प्रकार सम्यग्त्वमार्गणा समाप्त हुई।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-कपायवीतरागलब्धस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कपायसमुद्धात और वैकियिक-समुद्धात, इन पांच पदोंको प्राप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान संज्ञी मिथ्या-दृष्टि जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए। केवल इतनी बात विशेष कहना चाहिए कि ये तिर्यग्लोकके असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादननादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघ-क्षेत्रके समान है, क्योंकि, ओघके क्षेत्रसे सासादननादि गुणस्थानोंके संज्ञी जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है।

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई।

१ सत्ताणुवादेन मक्किना चटुर्द्वैविषयत्वं। स ति. १, ८

२ अवाक्कितां सर्वलोकाः। स वि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ८८ ॥
सच्चपदेहि ओघपरूवणादो विसेसो गत्थि चि ओघचं जुज्जे ।
सासणसम्मादिट्ठिणहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स
असंखेज्जदिभागें ॥ ८९ ॥

एदस्स सुत्तस्स पज्जवट्ठियपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला । गवरि उववादो
सरीरगहिदपढमसमए वत्तवो । सजोगिकेवल्लिस्स वि पदर-लोगपूरणसमुग्घादा वि गत्थि,
आहारिचाभावादो ।

अणाहारएसु मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ९० ॥

दच्चट्ठियपरूवणाए ओघं होदि । पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण उववादपदमेक्कं चेव
अत्थि । सेसं गत्थि । सेसं सुगमं ।

आहारमार्गणांके अनुमादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके
समान सर्व लोक है ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्वस्थान आदि सभी पदोंके साथ क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणसे
विशेषता नहीं है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना बन जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती सजी जीव कितन क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।
विशेष बात यह है कि आहारक जीवोंके उपादापद शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें कहना
चाहिए, (क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है) । आहारक सयोगिकेवलीके भी प्रतर और
लोकपूरणसमुद्गत नहीं होते हैं, क्योंकि, इन दोनों अवस्थाओंमें केवलीके आहारकपनेका
अभाव है, अर्थात् प्रतर और लोकपूरणसमुद्गतकी अवस्थामें सयोगिकेवली भगवान् अना-
हारक रहते हैं ।

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ९० ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणासे अनाधारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान
होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा तो एक उपादापद ही होता है । शेष
पद नहीं होते हैं, (क्योंकि, अनाधारक मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थानादि शेष सभी पद भ्रमंभ
हैं) । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

१ आहारावृत्तादेन आहारकर्त्ता मिथ्यादृष्टादिक्रीणकृत्त्वान्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । सयोगिकेवल्लिभ
क्षेत्रस्यासंख्येयभाग । स. लि. १, ८.

सासणसम्मादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते,
लोगस्स असंखेज्जदिभागें ॥ ९१ ॥

पज्जवट्ठियणएण उववादगदा सासणसम्मादिद्वी चट्ठणं लोगणमसंखेज्जदिभागें,
अट्ठुहज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छति । असंजदसम्मादिद्विण परूवणा एवं चत्र । अजोगि-
केवली चट्ठणं लोगणमसंखेज्जदिभागें, माणुमखेत्तस्स संखेज्जदिभागें ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु,
सव्वलोगे वा ॥ ९२ ॥

पदरगदो सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु वा होदि, लोगपरंतद्विद-
वादवलयवदिरित्तसयललोगखेत्त समावूरिय द्विदत्तादो । लोगपूरेण पुण सव्वलोगे भवदि,
सव्वलोगमावूरिय द्विदत्तादो ।

(एव आहारमगणा समत्ता)

एवं खेत्ताणिओगद्वारं समत्तं ।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा उपादाको प्राप्त अनाहारक सासादन-
सम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठुहज्जिपले
असंख्यातगुण क्षेत्रमें रहते हैं । अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा भी इसी
प्रकार जानना चाहिए । अनाहारक अयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि चार लोकोंके
असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके सख्यातवें भागमें रहते हैं ।

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यात
वहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुद्गतगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं,
पर्योकि, वे लोकक चारों ओर स्थित वातवलय-न्यतिरिक्त सकल लोकके क्षेत्रको समापूरित
करके स्थित होते हैं । पुनः लोकपूरणसमुद्गतमें वे ही सयोगिकेवली जिन सर्व लोकमें रहते हैं,
पर्योकि, उस समय वे सर्व लोकको आपूरण करके स्थित होते हैं ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

२ अनाहारकर्त्ता मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टसंयतसम्यग्दृष्टययोगिकेवल्लिनां सामान्योक्त क्षेत्रम् । स. लि. १, ८.

३ सजोगिकेवल्लिनां लोकस्यासंख्येयमाणाः सर्वलोको वा । स. लि. १, ८.

४ क्षेत्रनिर्णयः वृत्तः । स. लि. १, ८.

फ्रीसणाणुगमो



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीहिं

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तरस्स

पढमखंडे जीवहाणे

फोसणाणुगमो

णमिज्जेलाहरिए विहुवणभवणेक्कमंगलप्पइवे ।

कलिकलुसफुसणवसणे सुत्तं फोसासियं वोच्छं ॥

पोसणाणुगमेण दुविहो णिहिसो, ओधेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णामफोसणं ठवणफोसणं दव्वफोसणं खेत्तफोसणं कालफोसणं भावफोसणं चेदि छविहं फोसणं । तत्थ णामफोसणं फोसणसहो । एसो दव्वट्टियस्स णिक्खेवो, धुवत्तेण

त्रिभुवनरूपी भवनके प्रकाशित करनेके लिए अद्वितीय मंगलप्रदोप, और कालिकालकी कलुपताके समार्जनके लिए वल्लस्वरूप श्री पलाचार्यको नमस्कार करके स्पर्शनलुगमाशित सूत्रोंके अर्थको कहता हूँ ॥

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश ॥ १ ॥

नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन कालस्पर्शन और भावस्पर्शनके भेदसे स्पर्शन छह प्रकारका है । उनमें 'स्पर्शन' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है । यह निक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, ध्रुवपनेके बिना वाच्य-चावकभावरूप समग्र

१ स्पर्शनमुप्यते-तद द्विविधम् । सामान्येन विक्षेपेण च ॥ स. सि. १, ८.

विणा वाचिय-चाचयभावाणुमवत्तीदो । सोयमिदि बुदीए अण्णदव्वस्स एयत्त-करणं ठवणफोसणं णाम । जहा, घड-पिट्ठरादिसु एसो उसहो अजीवो अहिणंरणो चि । एसो वि दव्वट्टियस्स णिक्खेवो, दोण्हमेयत्त-धुवत्तेदि विणा ठवणापव्वुत्तीए असंभवादो । आगम-णोआगमभेदेण दुविहं दव्वफोसणं । तत्थ फोसणपाहुडजाणगो अणुवजुत्तो खओव-समसहिओ आगमदो दव्वफोसणं णाम । णोआगमदव्वफोसणं जाणुगमरीर-भविय-तव्वदि-रिक्खदव्वफोसणमेएण तिविहं । तत्थ जाणुगमरीरदव्वफोसणं भविय-वट्टमाण-समुज्झाद-भेएण तिविहं । कथमेदस्स विविहसरीरस्स फोसणववदेसो ? फोसणपाहुडसहचारदो । जहा, असिसहचरिदो असी, घणुसहचरिदो घणुहमिदि । भवियदव्वफोसणं भविस्सकाले फोसणपाहुडजाणओ । कथमेदस्स दव्वफोसणववदेसो ? पुव्वुत्तरावत्थाणं दव्वेण एगत्तादो । जहा, इंदट्टमाणिककट्टस्स इंदो चि ववदेसो । तव्वदिरिक्खदव्वफोसणं सचित्त-अचित्त-

नहीं बन सकता है । 'यह वही है' इस प्रकारकी बुद्धिसे अन्य द्रव्यके साथ अन्य द्रव्यका एकत्र स्थापित करना स्थापना निक्षेप है । जैसे, घट, पिटर (पात्रविशेष) आदिकमें ' यह ज्ञायम है, यह अजीव है, यह अभिनन्दन है ' इत्यादि । यह स्थापनानिक्षेप भी द्रव्यार्थिक-नयका विषय है, क्योंकि, दो पदार्थोंकी एकता और ध्रुवताके बिना स्थापनानिक्षेपकी प्रवृत्ति असंभव है । आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्पर्शननिक्षेप दो प्रकारका है । उनमें स्पर्शनविषयक शास्त्रका ज्ञायक, किन्तु वर्तमानमें अनुपयोगी और क्षयोपशमसहित जीव आगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप है । नोआगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप ज्ञायकशरीर, भव्य और तदव्यति-रिक्खद्रव्यस्पर्शनके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमें ज्ञायकशरीर द्रव्यस्पर्शन भावी, वर्तमान और समुच्चित (त्यक्त) के भेदसे तीन प्रकारका है ।

शंका—इस तीन प्रकारके शरीरको 'स्पर्शन' यह व्यपदेश (संज्ञा) कैसे प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—स्पर्शनप्राप्तके साहचर्यसे उक्त तीन प्रकारके शरीरको भी स्पर्शनसंज्ञा प्राप्त हो जाती है । जैसे, असि (तलवार) से सहचरित पुरुषको असि और धनुषसे सहचरित पुरुषको धनुष संज्ञा प्राप्त हो जाती है ।

भविष्यकालमें स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायकको भव्यद्रव्यस्पर्शन कहते हैं ।

शंका—इस भव्यशरीरवालेके 'द्रव्यस्पर्शन' यह संज्ञा कैसे है ?

समाधान—विवक्षित द्रव्यकी पूर्ण अवस्था और उत्तर अवस्थाका उस द्रव्यके साथ एकत्र गया जाता है । जैसे, इन्द्र बनानेके लिये लाए गए काष्ठकी ' इन्द्र ' यह संज्ञा खेती जाती है ।

मिस्सयभेदेण तिविहं । सचित्ताणं दव्वाणं जो संजोओ सो सचित्तदव्वफोसणं । अचित्ताणं दव्वाणं जो अण्णोण्णेण संजोओ सो अचित्तदव्वफोसणं । मिस्सयदव्वफोसणं छण्हं दव्वाणं संजोएण एगूणसट्ठिभेयभिणं । सेसदव्वाणमागासेण सह संजोओ खेत्तफोसणं । अणुत्तेण आगासेण सह सेसदव्वाणं मुत्ताणममुत्ताणं वा कधं पोसो ? ण एस दोसो, अवगेज्जाव-

तद्व्यतिरिक्तद्रव्यस्पर्शनं सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । जो सचित्त द्रव्योंका संयोग होता है, वह सचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है । अचित्त द्रव्योंका जो परस्परमें संयोग होता है, वह अचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है । मिश्रद्रव्यस्पर्शन चेतन-अचेतनस्वरूप छहों द्रव्योंके संयोगसे उनसठ भेदवाला होता है ।

विशेषार्थ—किसी विवक्षित राशिके द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भग निकालनेके लिए विवक्षित राशिप्रमाणसे लेकर एक एक क्रम करते हुए एकके अंक तक अंक स्थापित करना चाहिए । पुनः दूसरी पंक्तिमें उनके नचि एकसे लेकर विवक्षित राशि तक अंक लिखना चाहिए । पहली पंक्तिके अंकोंको अथा या माल्य और दूसरी पंक्तिके अंकोंको द्वार या भागद्वार कहते हैं । यहां पहले भाज्योके साथ अगले भाज्योका और पहले भागद्वारोके साथ अगले भागद्वारोका गुणा करना चाहिए । पुनः भाज्योके गुणनफलमें भागद्वारोके गुणनफलका भाग देना चाहिए । जो इस प्रकार प्रमाण आवे, उतने ही विवक्षित स्थानके भंग समझना चाहिए । इस करणसूत्र (गो. कर्मकांड गाथा नं. ७९९) के नियमानुसार छह द्रव्योंके संयोगी भंग इस प्रकार होंगे—द्विसंयोगी— $\frac{६ \times ५}{१ \times २} = १५$ । त्रिसंयोगी

$$\frac{६ \times ५ \times ४}{१ \times २ \times ३} = २० । चतुःसंयोगी \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३ \times ४} = १५ । पंचसंयोगी \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५} = ६ ।$$

$$\text{षट्संयोगी } \frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २ \times १}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६} = १ । \text{ इन सब संयोगी भंगोंका योग } १५ + २० + १५ + ६ + १ = ५७$$

सत्तावन होता है । इन ५७ भंगोंके अतिरिक्त जीवका जविके साथ, तथा पुतलका पुतलके साथ, इस प्रकार दो भंग और भी संभव हैं, जिन्हें मिलाकर ५९ संयोगी भंग हो जाते हैं । धर्मास्तिकाय आदि शेष चार द्रव्य अखंड एक ही होते हैं, अतः उनके इस प्रकारके एक ही द्रव्यके भीतर संयोगी भंग संभव नहीं हैं । जीव आदि छहों द्रव्योंके पृथक् पृथक् छह भंग और होते हैं, जो असंयोगी (एक संयोगी) होनेसे यहां ग्रहण नहीं किये गये ।

शेष द्रव्योंका आकाशद्रव्यके साथ जो संयोग है, वह क्षेत्रस्पर्शन कहलाता है ।

शुंका—अमूर्त आकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

गाहगभावसेव उवयारेण फामववएसदो, सत्त-पमेयत्तादिणा अप्पोणसमाणत्तणेण वा । कालदव्वस्स अण्णदव्वेहि जो संजोओ सो कालफोसणं णाम । एत्थ अमुत्तेण कालदव्वेण सेसदव्वणं जदि वि पासो णत्थि, परिणामिज्जमाणानि सेसदव्वानि परिणामत्तेण कालेण पुसिदाणि चि उवयारेण कालफोसणं वुच्चदं । सेत्त-कालाणोसणाणि दव्वफोसणमिह किण्ण पदंति चि वुत्ते ण पदंति, दव्वादो दव्वेगदेसस्स कधंचि भेदुवलंभादो । भावफोसणं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । फोसणपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमदो भावफोसणं । पासगुण-परिणदपोणगलदव्वं णोआगमभावफोसणं ।

एदंसु फोसणेसु जीमखेत्तफोसणेण पयदं । अस्परिधिं स्पुइयत इति स्पर्शनम् । फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिदेसो कहणं वक्खणाणिमिदि एयद्धो । सो दुविहो, जहा पयई । ओघेण पिडेण अभेदेणेत्ति एयद्धो । आदेसेण भेदेण

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अवगाह-अवगाहकभावको ही उपचारसे स्पर्शसंज्ञा प्राप्त है, अथवा, सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है ।

कालद्रव्यका अन्य द्रव्योंके साथ जो संयोग है, उसका नाम कालस्पर्शन है । यहां यद्यपि अमूर्त कालद्रव्यके साथ शेष द्रव्योंका स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणामित होने वाले शेष द्रव्य परिणामत्वको अपेक्षा कालसे स्पर्शित हैं, इस प्रकारके उपचारसे कालस्पर्शन कहा जाता है ।

शुंका—क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन ये दोनों स्पर्शन, द्रव्यस्पर्शनमें क्यों नहीं अन्तर्भूत होते हैं ?

समाधान—ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन द्रव्यस्पर्शनमें अन्तर्भूत नहीं होते हैं, क्योंकि, द्रव्यसे द्रव्यके एक देशका कथंचित् भेद पाया जाता है ।

भावस्पर्शन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । स्पर्शनाविषयक शालाके क्षायक और वर्तमानमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभावस्पर्शन कहते हैं । स्पर्शगुणसे परिणत पुतलद्रव्यको नोआगमभावस्पर्शन कहते हैं ।

इन उक्त छह प्रकारके स्पर्शनोंमेंसे यद्वापर जीवद्रव्यसम्यन्धी क्षेत्रस्पर्शनसे प्रयोजन है । जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है । स्पर्शनके अनुगमको स्पर्शानुगम कहते हैं, उससे, अर्थात् स्पर्शानुगमसे । निर्देश, कथन और व्याख्यान, ये तीनों प्रकार्यक नाम हैं । यह निर्देश प्रकृतिके निर्वेशके समान दो प्रकारका होता है । ओघ, पिड और अभेद, ये सब प्रकार्यक नाम हैं । आदेश, भेद

विसेसेणेत्ति समणहो । ओघणिहेसो आदेसणिहेसो त्ति दुविहो चेव णिहेसो होदि, दब्ब-पज्जवड्डियणए अणवलंबिय कहणोवायाभावादो । जदि एवं, तो पमाणवक्कस्स अभावो पसब्बजे इदि वुत्ते, होदु णाम अभावो, गुणप्पहाणभावमंतरेण कहणोवायाभावादो । अथवा, पमाणप्पाइदं वयणं पमाणवक्कध्वयरेण वुच्चदे ।

ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ २ ॥

‘जहा उद्देसो तहा णिहेसो’ त्ति णायदो ताव ओघेणेत्ति वयणं । सेसगुणद्वय-पडिसेहट्ठं मिच्छादिट्ठीहिं त्ति वयणं । केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि पुच्छासुत्तं सत्थस्स पमाणत्तपटुप्पायणफलं । खेत्ताणिओगदारे सव्वमगणद्वयाणि अस्सिदूण सव्वगुणद्वयाणां वट्टमाणकालविसिद्धं खेत्तं पटुप्पादिदं, संपदि पोसणाणिओगदारेण किं परुविज्जदे ? चोइस मगणद्वयाणि अस्सिदूण सव्वगुणद्वयाणां अदीदकालविसिदखेत्तं फोसणं वुच्चदे । एत्थ

और विशेष ये सब समानार्थक नाम हैं । ओघनिर्देश और आवेशनिर्देश इस प्रकारसे निर्देश दो ही प्रकारका होता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयोंके अवलम्बन किये बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका अभाव है ।

शंका—यदि ऐसा है तो प्रमाणवाक्यका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान—उक्त शंकापर धवलाकार कहते हैं कि भले ही प्रमाणवाक्यका अभाव हो जावे, क्योंकि, गौणता और प्रधानताके बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका भी अभाव है । अथवा, प्रमाणसे उत्पादित वचनको उपचारसे प्रमाणवाक्य कहते हैं ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २ ॥

‘जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है’ इस न्यायके अनुसार सूत्रमें पहले ‘ओघसे’ ऐसा वचन कहा । सासादनादि शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए ‘मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा’ यह वचन कहा । ‘कितना क्षेत्र स्पर्श किया है’ यह पृच्छा-सूत्र शास्त्रके प्रमाणता-प्रतिपादन करनेके लिए कहा गया है ।

शंका—क्षेत्रानुयोगद्वारमें सर्व मार्गस्थानोंका आश्रय लेकर सभी गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन कर दिया गया है । अब पुनः इस स्पर्शानुयोगद्वारसे क्या प्ररूपण किया जाता है ?

समाधान—चौदह मार्गस्थानोंका आश्रय लेकर सभी गुणस्थानोंके अतीत (भूत) काल विशिष्ट क्षेत्रको स्पर्शन कहा गया है । (अतएव यहा उसीका प्ररूपण किया जाता है ।)

१ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोक स्पृष्ट । स. ति १, ८.

२ प्रतिष्ठु ‘ताव ओघ च णाभीत्ति ति ओघेणेत्ति’ इति पाठः ।

वट्टमाणखेत्तपरूखणं पि सुत्ताणिबद्धमेव दीसदि । तदो ण पोसणमदीदकालविसिद्धखेत्त-पटुप्पाइयं, किंतु वट्टमाणदीदकालविसिद्धखेत्तपटुप्पाइयमिदि ? एत्थ ण खेत्तपरूखणं, तं तं पुवं खेत्ताणिओगदारपरूखेत्तवट्टमाणखेत्तं संमराविय अदीदकालविसिद्धखेत्तपटु-प्पायणट्ठं तस्सुवादाणा । तदो फोसणमदीदकालविसिद्धखेत्तं पटुप्पाइयमेवेत्ति सिद्धं । सव्वलोगो, सव्वो लोगो मिच्छादिट्ठीहि च्छुत्तो चि जं वुत्तं होदि । एत्थ लोगपमाणं पुवं व आणेदव्वं । अथवा—

मुहसहिदमूलमद्ध छेत्तणद्वेण सत्तवगेण ।

हत्तणेगट्ठन्दे घणरज्जू होत्ति लोगहि ॥ १ ॥

एदीए गाहाए आणेदव्वो । अथवा सत्तजरज्जुविकखंभ-चोइसरज्जुआयदखेत्तं ठविय

शंका—यहां स्पर्शानुयोगद्वारमें वर्तमानकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपण भी सूत्र-निबद्ध ही देखी जाती है, इसलिये स्पर्शन अतीतकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है, किन्तु वर्तमान और अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है ?

समाधान—यहां स्पर्शानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपण नहीं की जा रही है, किन्तु, पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपित उस उस वर्तमानक्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल-विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है । अतएव स्पर्शानुयोगद्वार अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है, यह सिद्ध हुआ ।

‘सर्वलोक’ अर्थात् सम्पूर्ण लोक मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, ऐसा कहा गया है । यहांपर लोकका प्रमाण पहले क्षेत्रप्ररूपणमें बताया गये नियमके अनुसार निकाल लेना चाहिए । अथवा—

लोकको अर्धभागसे छेदकर अर्थात् मध्यलोकसे दो विभाग कर, दोनों विभागोंके पृथक् पृथक् मुखसहित मूलके विस्तारको आधा करके, पुनः सातके वर्गसे गुणा करके, उन दोनों राशियोंको जोड़ देनेपर, लोकसम्बन्धी घनराज्जु उत्पन्न होते हैं ॥ १ H

इस गाथाके अनुसार लोकका प्रमाण निकालना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोकको मध्यसे विभक्त करनेपर दो भाग हो जाते हैं, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक । इनमेंसे अधोलोकका मुख १ राज्जु और मूल ७ राज्जुप्रमाण है । अतएव इन दोनोंका योग ८ राज्जु हुआ । इसके आधे ४ को ७ के वर्ग (७ × ७ = ४९) से गुणा करनेपर (४ × ४९ =) १९६ राज्जु आते हैं । यही अधोलोकके घनराज्जुओंका प्रमाण है । इसी प्रकारसे ऊर्ध्वलोकका मुख १ राज्जु और मूल ५ राज्जुप्रमाण है, दोनोंका योग ६ राज्जु हुआ । इसके आधे ३ को ७ के वर्गसे गुणा करनेपर (३ × ४९ =) १४७ राज्जु आते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके घनराज्जुओंका प्रमाण है । उक्त दोनों प्रमाणोंको एकत्रित करनेपर (१९६ + १४७ =) ३४३ लोकसम्बन्धी घनराज्जुओंका प्रमाण होता है ।

आयामं चौदहखंडाई काटूण विक्संभेण सत्त खंडे करिय लोगपमाणदो अधियखेचं फुसिय फेलिदे सगल-विगलवयवसहिदलोगखेचं परिफुडं होटूण दीसदि । तत्थ हिद-सुत्तवसेणं सन्वाणि खेचखंडाणि आपणिय भेलाविदे वि तं चेव लोगपमाणं होदि ।

अथवा, सात राजुप्रमाण चौदह और चौदह राजुप्रमाण लम्बे क्षेत्रको स्थापन करके मायामकी अपेक्षा चौदह खंड करके और विक्कम्मकी अपेक्षा सात खंड करके, पुनः लोकके प्रमाणमेंसे अधिक क्षेत्रको लेकर राजुके प्रमाणसे खंडित करनेपर, अपने सकल और विकल अवयवोंसे सहित लोकरूप क्षेत्र परिस्फुट होकर दिखाई देता है । पुनः वहांपर बताये गए सूत्रके अनुसार समस्त क्षेत्रखंडोंको निकाल करके मिलानेपर भी वही तीन सौ तेतालीस घनराजु लोकरूपा प्रमाण हो जाता है ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि पुरुषाकार लोकके आकारमें वसनाली तथा उसके भागे पीछे वसनालीके समान ही जो क्षेत्र है वह सब पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-वर्षिण सात राजु मोटा और ऊपर-नीचे चौदह राजु लम्बा है । इस कपाटाकार आयत-चतुरस्र क्षेत्रको लम्बाईकी ओरसे एक एक राजु प्रमाणसे खंडित करके पुनः मोटाईकी ओरसे भी एक राजुप्रमाणसे खंडित करना चाहिए । इस प्रकारसे उक्त कपाटाकार आयत-चतुरस्रक्षेत्रके एक राजुप्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे अर्थात् घनात्मक खंड (१४ × ७ = ९८) अठानवे होते हैं । पुनः लोकप्रमाणमेंसे इस क्षेत्रके (इन खंडोंके) अतिरिक्त जो अवशिष्ट क्षेत्र बचा है, उसे लेकर सम विभागोंको ऊपर-नीचे स्थापनकर पूर्वोक्त प्रमाणसे ही एक एक राजुप्रमाणके खंड करना चाहिए, जिसका क्रम इस प्रकार है—मध्यलोकसे नीचे अधोभागके जो दोष दोनों पार्ववर्ती दो भाग हैं, उन्हें एकके ऊपर दूसरेको विपर्यासक्रमसे रखना चाहिए । ऐसा करने पर वह सात राजुप्रमाण लम्बा, चौड़ा समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र तीन राजुप्रमाण हो जाती है । इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करने पर (७ × ७ × ३ = १४७) एकसौ तेतालीस खंड होते हैं । इसी प्रकारसे ऊर्ध्व-लोकके अवशिष्ट क्षेत्रको मध्यलोकके पाससे छिन्न कर देनेपर समान मापवाले चार भाग हो जाते हैं । इन्हें क्रमशः विपर्यासक्रमसे स्थापित करने पर सात राजु लम्बे, साढ़े तीन राजु चौड़े और दो राजु मोटे, ऐसे दो आयत चतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं । यदि इन दोनों भागोंको भी चौड़ाईकी ओरसे भिजा, दिया जाय, तो सात राजुप्रमाण लम्बा-चौड़ा एक समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र दो राजु होगी । इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करते पर (७ × ७ × ९८) अठानवे खंड होते हैं । इस प्रकारसे उत्पन्न हुए इन समस्त खंडोंको जोड़ देने पर (९८ + १४७ + ९८ = ३४३) तीन सौ तेतालीस खंड हो जाते हैं, जो कि प्रत्येक एक एक घनराजुप्रमाण हैं । अतएव इस प्रकारसे भी लोकरूपा प्रमाण ३४३ घनराजु निकल आता है ।

एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा वुच्चदे । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंति-य-उवादगदमिच्छादिट्ठिहि अदीदेण वट्ठमाणेण च सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेउवियससुग्घादगदेहि वट्ठमाणे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । अट्ठहज्जादो असंखेज्जगुणं खेचं फोसिदं । एत्थ ओवट्ठणाए खेचमंगो । अदीदेण अट्ठ चौदहसभागा देवणा । त जथा-लोगणालिं चौदहस खंडे करिय मेरुमूलादो हेट्ठिम-दो-खंडाणि उवरिम-छ-रंडाणि च एगट्ठे कदे अट्ठ चौदहसभागा हंति । ते च हेट्ठिमजोयणसहस्सणूणा हंति ।

सासणसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ३ ॥

एदं सुचं मंदुद्धिसिस्ससंभालणद्धं खेत्ताणिओगहारे उत्तमेव पुणरवि उत्तं, अदी-दाणागदवट्ठमाणकालविसिद्धिखेत्तेसु चौदहसगुणद्वगणिवट्ठेसु पुच्छिदंसे तस्सिस्ससंदेहविणा-सणद्धं वा दु-कालविसिद्धिखेत्तपरूवणं कीरंदे । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-

अब यहाँपर पर्यायार्थिक नयसम्बन्धी प्ररूपणा कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना-समुदात, कणायसमुदात, मारणान्तिकसमुदात और उपपाद पक्वगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकाल और वर्तमानकालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुदातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आवे तीन लोकोंका असंब्यतवां भाग और तिर्यलोकका संब्यतवां भाग स्पर्श किया है; तथा अट्ठाईपिसे असंब्यतगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँपर अपवर्तना क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुदातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा देशोन (कुछ कम) आठ बटे चौदह (१४) राजु क्षेत्र स्पर्श किया है, बट इस प्रकारसे है—लोकनालीके चौदह खंड करके मेरुपर्वतके मूलभागसे नीचेके दो खंडोंको और ऊपरके छह खंडोंको एकत्रित करने पर आठ बटे चौदह (१४) भाग हो जाते हैं । ये आठ बटे चौदह राजु तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनोंसे हीन प्रमाण होते हैं, इसीलिए इन्हें 'देशोन' कहा है ।

सासादनमम्यगट्ठि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकना असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३ ॥

क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया ही यह सूत्र मंत्रवृत्ति शिष्योंके संभालनेके लिए फिर भी कहा गया है । अथवा, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल विशिष्ट तथा चौदह गुण-स्थानोंसंबन्धी क्षेत्रोंके पूछने पर उस शिष्यके संदेह-विनाशानार्थ भूतकाल और भविष्यकाल, इन दो कालोंसे विशिष्ट वर्तमानक्षेत्रको प्ररूपणा की जा रही है । स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

कसाय-वेउडिय-मारणंति-उ-उवादेदिहि चहुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो । माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं खेत्तं फोसिदं । एत्थं कारणं पुब्बं व वत्तन्नं ।

अट्ट वारह चौदसभागा वा देसूणा ॥ ४ ॥

सासणसम्मादिह्दीहिं ति पुब्बसुत्तादो अनुपट्ठे । अदीदकालखेत्तपटुप्पायणद्वुमिदं सुत्तमागदं । त कथं गव्वेदे ? अट्ट वारह चौदसभागणहाणुवत्तीदो । जेणेदं देसामासिग-सुत्तं, तेणेदस्स पज्जवट्ठियपरूवणा पज्जमट्ठियजणाणुगहट्ठं कीरेदे । तं जहा-सत्थाण-सत्थाणगेदेहिं तिहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणं । अदीदसत्थाणखेत्तसाणायणविधानं वुच्चदे । तं जधा-तत्थं तान तिरिक्ससासणसत्थाणसेत्तं भणिससामो । तसजीवा लोगणालीए अब्भंतरे चेव हंतिति, णो बहिद्धा । तं कुदो गव्वेदे ? 'अट्ट चौदसभागा देख्णा' ति वयणादो । तदो रज्जु-

वत्सस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात, वैकियिक्समुदात, मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यद्यपि कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा कुछ कम वारह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ ४ ॥

इस सूत्रमें 'सासादनसम्यग्दृष्टिजीवोंने' इस पदकी पूर्वे सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रके प्रतिपादन करनेके लिए आया है ।

शंका—यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणके लिए आया है, यह कैसे जाना ?

समाधान—आठ बटे चौदह और वारह बटे चौदह भागोंकी प्ररूपणा अन्यथा बन नहीं सकती है, अतः इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि यहां पर अतीतकाल-सम्बन्धी क्षेत्रका प्रतिपादन करना अभीष्ट है ।

चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए इसकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा पर्यायार्थिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए की जाती है । वह इस प्रकार है—स्वस्थानस्वस्थानपदको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टिजीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है; तथा अट्टाह-शीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान करते हैं । वह इस प्रकार है—उसमेंसे पहले तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि-योंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । असजीव लोकनालीके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं ।

शंका—यह कैसे जाना ?

१ प्रविणु 'बहिष्मा' इति पाठ ।

पदरन्ध्रंतेरे सव्यस्थ सासणा संभवन्ति । तसजीवविरहिदेसु असखेज्जेसु समुदेसु गवरि सासणा णत्थि । वेरियवत्तदेवेहि धित्ताणमत्थि संभवो, गवरि ते सत्थाणत्थां ण हंतिति, विहारेण परिणदत्तादो । तं खेत्तं तिरियलोगपमाणे कीरमाणे एगं जगपदरं पुरदो भण्ण-माणपमाणेहि संखेज्जरूवेहि खंडिय लट्ठं रज्जूपदरमिह अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं होट्ठण संखेज्जंगुलवहल्लं जगपदरं होदि ।

संपहि जेइमियमासणसम्मादिह्दीसत्थाणसेत्तं भणिससामो । तं जहा-जंवूदीवे वे चंदा, वे स्ररा । लवणसमुदे चत्तारि चंदा, चत्तारि स्ररा । घादइखंडे पुथ पुथ वारह चंदाइच्चा । कालोदयसमुदे बादाल चंदाइच्चा । पोक्सरदीवदे वाहत्तारि चंदाइच्चा । माणुसेत्तरसेलादो वाहिरपतीए चौदालसदेत्ता । तदो चत्तारि रूवपक्खं काट्ठण गेदव्वं

समाधान—'सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है' इस सूत्र-वचनसे जाना जाता है कि त्रसजीव लोकनालीके भीतर ही रहते हैं, बाहर नहीं ।

इसलिए राजुप्रतरके भीतर सर्वत्र सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संभव हैं । विशेषतः केवल यह है कि त्रसजीवोंसे विरहित (मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यवर्ता) असंख्यात समुद्रोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं । यद्यपि धैरभाव रखनेवाले अन्यतर देवोंके द्वारा हरण करके ले जाये गये जीवोंकी वहां संभावना है, किन्तु वे वहापर स्वस्थानस्वस्थानस्थ नहीं कहलाते हैं, क्योंकि, उस समय वे विहाररूपसे परिणत हो रहे हैं । इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकके प्रमाणसे फरनेपर, एक जगप्रतरको आगे कहे जानेवाले संख्यातरूप प्रमाणसे खंडित फरके जो लवच आवे, उसे राजुप्रतरमेंसे निकाल करक पुनः संख्यात अंगु-लोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग होकर संख्यात अंगुल बाह्यवाला जगप्रतर होता है ।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । वह इस प्रकार है—जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं । लवणसमुद्रमें चार चन्द्र और चार सूर्य हैं । घातकीखंडमें पृथक् पृथक् वारह चन्द्र और वारह सूर्य हैं । कालोदकसमुद्रमें व्यालीस चन्द्र और व्यालीस सूर्य हैं । पुष्करद्वीपार्धमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं । मानुषोत्तर-

१ लवणदे कालोदि जीवा अतिमस्यपुरमाणमि । कम्ममहीतनदे जलयरया हंतिति ण हु सेते ॥ ति. प.

५, ३१. जलयाजीवा लवणे कालेयतिमस्यपुरमाणे य । कम्ममहिपडिन्दे न रि सेते जलयरा जीवा ॥ त्रि. सा. ३२०.

२ प्रविणु 'सम्भाणद्धा', म प्रती 'सम्भाणत्था' इति पाठः ।

३ मत्तारो लवणजले घादइदीवमि वारस भियका । बादाल कालसल्लि बाइत्तारि पुसल्लरद्धमि । ति. प

५५ २२१-२२२ दो दोलर्गं वारस बादाल बहत्तइरणस्रवा । पुसल्लरदलो ति पटो अवट्ठिया सन्नजोशणा । ति. सा. ३४६.

गच्छो चचीस, चउत्थदीवे गच्छो चउसट्ठी, उवरिमसमुदे गच्छो अट्ठावीसुत्तरसयं । एवं दुगुणकमेण गच्छा गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुदं ति । संपहि एदेहिं गच्छेहिं पुध गुणिज्जमाणरासिपरुवणा कीरदे । तदियसमुदे वेसदमट्ठासीदं, उवरिमदीवे ततो दुगुणं । एवं दुगुण-दुगुणकमेण गुणिज्जमाणरासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुदं पत्ताओ ति । संपहि अट्ठासीदि-विसदेहि सव्वगुणिज्जमाणरासीओ ओवट्ठिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय अट्ठासीदि-वेसदमेव सव्वगच्छाणं गुणिज्जमाणं कायव्वं । एवं कदे सव्वगच्छा अण्णोणं पेक्खिदूण चदुगुणकमेण अवट्ठिदा जादा । संपहि चत्तारिमादिं कादूण चदुरुत्तरकमेण गदसंकलणाए आणयणे कीरमाणे पुब्बिल्लगच्छेहिं तो संपहियगच्छा रूज्जा हंति, दुगुण-जादट्ठाणे चत्तारिरुवट्ठुए अभावादो । एदेहि गच्छेहि गुणिज्जमाणमज्झिमधणाणि चउ-सट्ठिमादिं काऊण दुगुण-दुगुणकमेण गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुदं ति । पुणो गच्छसमी-

इनके विमानोंकी संख्या निकालनेकी प्रक्रिया पहले कहते हैं— तृतीय समुद्रमें गच्छका प्रमाण वचीस, चतुर्थ द्वीपमें गच्छका प्रमाण चौसठ, इससे आगेके समुद्रमें गच्छका प्रमाण एकसौ अट्ठाईस होता है । इस प्रकार देने देने क्रमसे गच्छ स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं । अब इन गच्छोंसे पृथक् पृथक् गुण्यमान (गुणा की जानेवाली) राशि-योंकी प्ररूपणा करते हैं । तृतीय समुद्रमें गुण्यमानराशि दो सौ अठासी है, उससे उपरिम द्वीपमें गुण्यमानराशि इससे दूनी (२८८ × २ = ५७६) है । इस प्रकार देने देने क्रमसे गुण्यमान राशियां स्वयम्भूरमणसमुद्र प्राप्त होने तक दूनी होती हुई चली जाती हैं ।

उदाहरण—२८८, ५७६, ११५२, २३०४, ४६०८, ९२१६, १८४३२ इत्यादि । (गुण्यमानराशियां)

अब दो सौ अठासीसे सभी गुण्यमान राशिओंको अपवर्तितकर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणित करके दो सौ अठासीको ही सर्व गच्छोंकी गुण्यमानराशि करना चाहिए । ऐसा करनेपर सर्व गच्छ परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण-क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं ।

$$\text{उदाहरण—} (१) \frac{२२८}{२२८} = १; \quad १ \times ३२ = ३२; \quad (२) \frac{५७६}{२२८} = २; \quad २ \times ६४ = १२८;$$

इत्यादि । यहांपर प्रथम गच्छ ३२ से द्वितीय गच्छ १२८ चौगुणा हो गया है ।

अब चारको आदि करके चार चारके उत्तरक्रमसे वृद्धिगत संकलनके निकालनेपर पहलेके गच्छोंसे इस समयके गच्छ एक कम होते हैं, क्योंकि, दुगुणे हुए स्थानपर चार रूपकी वृद्धिका अभाव है । इन गच्छोंसे गुणा किये जानेवाले मध्यमधन, चौसठको आदि करके दुगुण दुगुणक्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं ।

करणट्ठं सव्वगच्छेसु एगेगरुवक्खणो' कायव्वो । एवं कादूण चउसट्ठिरुवेहिं मज्झिम-धणाणि ओवट्ठिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय सव्वगच्छाणं चउसट्ठिरुवाणि गुणिज्जमाणत्तणेण ठवेदव्याणि । एवं कदे वट्ठिरासिस्स पमाणं वुच्चदे— एगरुवमादिं कादूण गच्छं पडि दुगुण-दुगुणकमेण सयंभूरमणसमुदो ति गच्छरासी वट्ठिदो होदि । संपहि

विशेषार्थ—गच्छकी मध्यसंख्यापर जो वृद्धिका प्रमाण आता है, उसे मध्यमधन कहते हैं । यह धन उत्तरोत्तर दुगुणरूपसे बढ़नेवाले गच्छोंमें दुगुणा होता जाता है । तृतीय समुद्रका गच्छ ३२ है । प्रथम स्थानपर तो चारकी वृद्धि होती नहीं है, अनप्य उसे छोटकर जो शेष ३१ स्थान वचते हैं, उनमें सोलहवां स्थान मध्यम रहता है और उसकी वृद्धिका प्रमाण ६४ होता है । जैसे—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५,
४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८, ५२, ५६, ६०,
१२४, १२८, १३२, १३६, १४०, १४४, १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२, १७६, १८०, १८४, १८८, १९२, १९६, २००, २०४, २०८, २१२, २१६, २२०, २२४, २२८, २३२, २३६, २४०, २४४, २४८, २५२, २५६, २६०, २६४, २६८, २७२, २७६, २८०, २८४, २८८, २९२, २९६, ३००, ३०४, ३०८, ३१२, ३१६, ३२०, ३२४, ३२८, ३३२, ३३६, ३४०, ३४४, ३४८, ३५२, ३५६, ३६०, ३६४, ३६८, ३७२, ३७६, ३८०, ३८४, ३८८, ३९२, ३९६, ४००, ४०४, ४०८, ४१२, ४१६, ४२०, ४२४, ४२८, ४३२, ४३६, ४४०, ४४४, ४४८, ४५२, ४५६, ४६०, ४६४, ४६८, ४७२, ४७६, ४८०, ४८४, ४८८, ४९२, ४९६, ५००, ५०४, ५०८, ५१२, ५१६, ५२०, ५२४, ५२८, ५३२, ५३६, ५४०, ५४४, ५४८, ५५२, ५५६, ५६०, ५६४, ५६८, ५७२, ५७६, ५८०, ५८४, ५८८, ५९२, ५९६, ६००, ६०४, ६०८, ६१२, ६१६, ६२०, ६२४, ६२८, ६३२, ६३६, ६४०, ६४४, ६४८, ६५२, ६५६, ६६०, ६६४, ६६८, ६७२, ६७६, ६८०, ६८४, ६८८, ६९२, ६९६, ७००, ७०४, ७०८, ७१२, ७१६, ७२०, ७२४, ७२८, ७३२, ७३६, ७४०, ७४४, ७४८, ७५२, ७५६, ७६०, ७६४, ७६८, ७७२, ७७६, ७८०, ७८४, ७८८, ७९२, ७९६, ८००, ८०४, ८०८, ८१२, ८१६, ८२०, ८२४, ८२८, ८३२, ८३६, ८४०, ८४४, ८४८, ८५२, ८५६, ८६०, ८६४, ८६८, ८७२, ८७६, ८८०, ८८४, ८८८, ८९२, ८९६, ९००, ९०४, ९०८, ९१२, ९१६, ९२०, ९२४, ९२८, ९३२, ९३६, ९४०, ९४४, ९४८, ९५२, ९५६, ९६०, ९६४, ९६८, ९७२, ९७६, ९८०, ९८४, ९८८, ९९२, ९९६, १०००, १००४, १००८, १०१२, १०१६, १०२०, १०२४, १०२८, १०३२, १०३६, १०४०, १०४४, १०४८, १०५२, १०५६, १०६०, १०६४, १०६८, १०७२, १०७६, १०८०, १०८४, १०८८, १०९२, १०९६, ११००, ११०४, ११०८, १११२, १११६, ११२०, ११२४, ११२८, ११३२, ११३६, ११४०, ११४४, ११४८, ११५२, ११५६, ११६०, ११६४, ११६८, ११७२, ११७६, ११८०, ११८४, ११८८, ११९२, ११९६, १२००, १२०४, १२०८, १२१२, १२१६, १२२०, १२२४, १२२८, १२३२, १२३६, १२४०, १२४४, १२४८, १२५२, १२५६, १२६०, १२६४, १२६८, १२७२, १२७६, १२८०, १२८४, १२८८, १२९२, १२९६, १३००, १३०४, १३०८, १३१२, १३१६, १३२०, १३२४, १३२८, १३३२, १३३६, १३४०, १३४४, १३४८, १३५२, १३५६, १३६०, १३६४, १३६८, १३७२, १३७६, १३८०, १३८४, १३८८, १३९२, १३९६, १४००, १४०४, १४०८, १४१२, १४१६, १४२०, १४२४, १४२८, १४३२, १४३६, १४४०, १४४४, १४४८, १४५२, १४५६, १४६०, १४६४, १४६८, १४७२, १४७६, १४८०, १४८४, १४८८, १४९२, १४९६, १५००, १५०४, १५०८, १५१२, १५१६, १५२०, १५२४, १५२८, १५३२, १५३६, १५४०, १५४४, १५४८, १५५२, १५५६, १५६०, १५६४, १५६८, १५७२, १५७६, १५८०, १५८४, १५८८, १५९२, १५९६, १६००, १६०४, १६०८, १६१२, १६१६, १६२०, १६२४, १६२८, १६३२, १६३६, १६४०, १६४४, १६४८, १६५२, १६५६, १६६०, १६६४, १६६८, १६७२, १६७६, १६८०, १६८४, १६८८, १६९२, १६९६, १७००, १७०४, १७०८, १७१२, १७१६, १७२०, १७२४, १७२८, १७३२, १७३६, १७४०, १७४४, १७४८, १७५२, १७५६, १७६०, १७६४, १७६८, १७७२, १७७६, १७८०, १७८४, १७८८, १७९२, १७९६, १८००, १८०४, १८०८, १८१२, १८१६, १८२०, १८२४, १८२८, १८३२, १८३६, १८४०, १८४४, १८४८, १८५२, १८५६, १८६०, १८६४, १८६८, १८७२, १८७६, १८८०, १८८४, १८८८, १८९२, १८९६, १९००, १९०४, १९०८, १९१२, १९१६, १९२०, १९२४, १९२८, १९३२, १९३६, १९४०, १९४४, १९४८, १९५२, १९५६, १९६०, १९६४, १९६८, १९७२, १९७६, १९८०, १९८४, १९८८, १९९२, १९९६, २०००, २००४, २००८, २०१२, २०१६, २०२०, २०२४, २०२८, २०३२, २०३६, २०४०, २०४४, २०४८, २०५२, २०५६, २०६०, २०६४, २०६८, २०७२, २०७६, २०८०, २०८४, २०८८, २०९२, २०९६, २१००, २१०४, २१०८, २११२, २११६, २१२०, २१२४, २१२८, २१३२, २१३६, २१४०, २१४४, २१४८, २१५२, २१५६, २१६०, २१६४, २१६८, २१७२, २१७६, २१८०, २१८४, २१८८, २१९२, २१९६, २२००, २२०४, २२०८, २२१२, २२१६, २२२०, २२२४, २२२८, २२३२, २२३६, २२४०, २२४४, २२४८, २२५२, २२५६, २२६०, २२६४, २२६८, २२७२, २२७६, २२८०, २२८४, २२८८, २२९२, २२९६, २३००, २३०४, २३०८, २३१२, २३१६, २३२०, २३२४, २३२८, २३३२, २३३६, २३४०, २३४४, २३४८, २३५२, २३५६, २३६०, २३६४, २३६८, २३७२, २३७६, २३८०, २३८४, २३८८, २३९२, २३९६, २४००, २४०४, २४०८, २४१२, २४१६, २४२०, २४२४, २४२८, २४३२, २४३६, २४४०, २४४४, २४४८, २४५२, २४५६, २४६०, २४६४, २४६८, २४७२, २४७६, २४८०, २४८४, २४८८, २४९२, २४९६, २५००, २५०४, २५०८, २५१२, २५१६, २५२०, २५२४, २५२८, २५३२, २५३६, २५४०, २५४४, २५४८, २५५२, २५५६, २५६०, २५६४, २५६८, २५७२, २५७६, २५८०, २५८४, २५८८, २५९२, २५९६, २६००, २६०४, २६०८, २६१२, २६१६, २६२०, २६२४, २६२८, २६३२, २६३६, २६४०, २६४४, २६४८, २६५२, २६५६, २६६०, २६६४, २६६८, २६७२, २६७६, २६८०, २६८४, २६८८, २६९२, २६९६, २७००, २७०४, २७०८, २७१२, २७१६, २७२०, २७२४, २७२८, २७३२, २७३६, २७४०, २७४४, २७४८, २७५२, २७५६, २७६०, २७६४, २७६८, २७७२, २७७६, २७८०, २७८४, २७८८, २७९२, २७९६, २८००, २८०४, २८०८, २८१२, २८१६, २८२०, २८२४, २८२८, २८३२, २८३६, २८४०, २८४४, २८४८, २८५२, २८५६, २८६०, २८६४, २८६८, २८७२, २८७६, २८८०, २८८४, २८८८, २८९२, २८९६, २९००, २९०४, २९०८, २९१२, २९१६, २९२०, २९२४, २९२८, २९३२, २९३६, २९४०, २९४४, २९४८, २९५२, २९५६, २९६०, २९६४, २९६८, २९७२, २९७६, २९८०, २९८४, २९८८, २९९२, २९९६, ३०००, ३००४, ३००८, ३०१२, ३०१६, ३०२०, ३०२४, ३०२८, ३०३२, ३०३६, ३०४०, ३०४४, ३०४८, ३०५२, ३०५६, ३०६०, ३०६४, ३०६८, ३०७२, ३०७६, ३०८०, ३०८४, ३०८८, ३०९२, ३०९६, ३१००, ३१०४, ३१०८, ३११२, ३११६, ३१२०, ३१२४, ३१२८, ३१३२, ३१३६, ३१४०, ३१४४, ३१४८, ३१५२, ३१५६, ३१६०, ३१६४, ३१६८, ३१७२, ३१७६, ३१८०, ३१८४, ३१८८, ३१९२, ३१९६, ३२००, ३२०४, ३२०८, ३२१२, ३२१६, ३२२०, ३२२४, ३२२८, ३२३२, ३२३६, ३२४०, ३२४४, ३२४८, ३२५२, ३२५६, ३२६०, ३२६४, ३२६८, ३२७२, ३२७६, ३२८०, ३२८४, ३२८८, ३२९२, ३२९६, ३३००, ३३०४, ३३०८, ३३१२, ३३१६, ३३२०, ३३२४, ३३२८, ३३३२, ३३३६, ३३४०, ३३४४, ३३४८, ३३५२, ३३५६, ३३६०, ३३६४, ३३६८, ३३७२, ३३७६, ३३८०, ३३८४, ३३८८, ३३९२, ३३९६, ३४००, ३४०४, ३४०८, ३४१२, ३४१६, ३४२०, ३४२४, ३४२८, ३४३२, ३४३६, ३४४०, ३४४४, ३४४८, ३४५२, ३४५६, ३४६०, ३४६४, ३४६८, ३४७२, ३४७६, ३४८०, ३४८४, ३४८८, ३४९२, ३४९६, ३५००, ३५०४, ३५०८, ३५१२, ३५१६, ३५२०, ३५२४, ३५२८, ३५३२, ३५३६, ३५४०, ३५४४, ३५४८, ३५५२, ३५५६, ३५६०, ३५६४, ३५६८, ३५७२, ३५७६, ३५८०, ३५८४, ३५८८, ३५९२, ३५९६, ३६००, ३६०४, ३६०८, ३६१२, ३६१६, ३६२०, ३६२४, ३६२८, ३६३२, ३६३६, ३६४०, ३६४४, ३६४८, ३६५२, ३६५६, ३६६०, ३६६४, ३६६८, ३६७२, ३६७६, ३६८०, ३६८४, ३६८८, ३६९२, ३६९६, ३७००, ३७०४, ३७०८, ३७१२, ३७१६, ३७२०, ३७२४, ३७२८, ३७३२, ३७३६, ३७४०, ३७४४, ३७४८, ३७५२, ३७५६, ३७६०, ३७६४, ३७६८, ३७७२, ३७७६, ३७८०, ३७८४, ३७८८, ३७९२, ३७९६, ३८००, ३८०४, ३८०८, ३८१२, ३८१६, ३८२०, ३८२४, ३८२८, ३८३२, ३८३६, ३८४०, ३८४४, ३८४८, ३८५२, ३८५६, ३८६०, ३८६४, ३८६८, ३८७२, ३८७६, ३८८०, ३८८४, ३८८८, ३८९२, ३८९६, ३९००, ३९०४, ३९०८, ३९१२, ३९१६, ३९२०, ३९२४, ३९२८, ३९३२, ३९३६, ३९४०, ३९४४, ३९४८, ३९५२, ३९५६, ३९६०, ३९६४, ३९६८, ३९७२, ३९७६, ३९८०, ३९८४, ३९८८, ३९९२, ३९९६, ४०००, ४००४, ४००८, ४०१२, ४०१६, ४०२०, ४०२४, ४०२८, ४०३२, ४०३६, ४०४०, ४०४४, ४०४८, ४०५२, ४०५६, ४०६०, ४०६४, ४०६८, ४०७२, ४०७६, ४०८०, ४०८४, ४०८८, ४०९२, ४०९६, ४१००, ४१०४, ४१०८, ४११२, ४११६, ४१२०, ४१२४, ४१२८, ४१३२, ४१३६, ४१४०, ४१४४, ४१४८, ४१५२, ४१५६, ४१६०, ४१६४, ४१६८, ४१७२, ४१७६, ४१८०, ४१८४, ४१८८, ४१९२, ४१९६, ४२००, ४२०४, ४२०८, ४२१२, ४२१६, ४२२०, ४२२४, ४२२८, ४२३२, ४२३६, ४२४०, ४२४४, ४२४८, ४२५२, ४२५६, ४२६०, ४२६४, ४२६८, ४२७२, ४२७६, ४२८०, ४२८४, ४२८८, ४२९२, ४२९६, ४३००, ४३०४, ४३०८, ४३१२, ४३१६, ४३२०, ४३२४, ४३२८, ४३३

एवं द्विदसंकलणामाणयणं वुच्चदे- छरूवाहियजंबूदीवछेदणाणि परिहीणरज्जुच्छेदणाओ गच्छं कादूण जदि संकलगा आणिज्जदि तो जेदिसियजीवरासी ण उपपज्जदि, जगपरस्स वेछप्पणंगुलसदवगभागहाराणुववचीदो। तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णोसिं वि तप्पाओगमाणं संखेज्जस्वाणं हाणिं कालण गच्छो ठवेदन्वो। एवं कदे तदियसमुदो आदी ण होदि चि णासंकिणज्जं; सो चेव आदी होदि, संयभूरमणसमुदस्स परभागसमुप्पणंरज्जुच्छेदणय-सलागाणमागयणकारणादो।

संयभूरमणसमुदस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि चि कुदो णव्वदे ? वेछप्पणं-

(२) $\frac{१४}{१४} \times ६३ \times ६४ = ८०६४$ उत्तरघन। इस उत्तरघनको $५७६ \times ६४ = ३६८६४$ में मिला देनेसे चतुर्थ द्वीपसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—
($३६८६४ + ८०६४ = ४४९२८$ सर्वघन)

(३) $\frac{२५}{१४} \times १२७ \times ६४ = ३२५१२$ उत्तरघन। इस उत्तरघनको $११५२ \times १२८ = १४७४५६$ में मिला देनेसे चतुर्थ समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—
($१४७४५६ + ३२५१२ = १७९९६८$ सर्वघन)

इसी क्रमसे आगेके प्रत्येक द्वीप और समुद्रका स्वयंभूरमणसमुद्र तक उत्तरघन एवं सर्वघन निकालते जाना चाहिए।

अब इस प्रकारसे अवस्थित सकलनोंके निकालनेके प्रकारको कहते हैं—छह रूप अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजुके अर्धच्छेदोंको गच्छराशि बना करके यदि संकलनराशि निकाली जाती है, तो ज्योतिष्क जीवराशि नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि, ऐसा करनेपर जगप्रतरका दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गप्रमाण भागद्वारा नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए राजुके अर्धच्छेदोंमें तत्प्रायोग्य अन्य भी संख्यात रूपोंकी हानि (कमी) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए। ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, किन्तु वही, अर्थात् तृतीय समुद्र ही, आवि होता है, क्योंकि, इसका कारण स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाले राजुके अर्धच्छेदसम्बन्धी शलाकाओंका आना है।

शंका—स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके-

१ लवणे दु परिदेक्क जयूर देज्जमादिमा पच । दीउत्तो मेरसला पयद्वजोणी ण वुच्चदे ॥ विबरीण वेदिंरुणमेतो रज्जुच्छेदो इव गच्छो । जन्दोविच्छेदोना वल्लुत्तेण परिहीना ॥ त्रि सा ३५८-३५९.

२ म प्रतो 'सलागाणमागयणववकादो' कन्वप्रतिगु 'सलागाणमयवकाणदो' इति पठ्य ॥

गुलसदवगसुत्तादो'। 'जत्थियाणि दीव-सागररूपाणि जंबूदीवछेदणाणि च रूवाहियाणि तत्थियाणि रज्जुच्छेदणाणि' चि परियम्मेण एदं वक्खाणं क्रिण्ण विरुज्ज्जदे ? एदेण सह विरुज्ज्जदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्ज्जदि । तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स; तस्स सुत्तविरुद्धचादो । ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अइप्पसंगादो । तत्थ चर्गप्रमाण जगप्रतरका भागद्वारा बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद होते हैं।

शंका—'जितनी द्वीप और सागरोंकी संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, एक अधिक उतने ही राजुके अर्धच्छेद होते हैं' इस प्रकारके परिकर्म-सूत्रके साथ यह उपर्युक्त व्याख्यान क्यों नहीं विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान—भले ही परिकर्म-सूत्रके साथ उक्त व्याख्यान विरोधको प्राप्त होवे, किन्तु प्रस्तुत सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है। इसलिए इस ग्रन्थके व्याख्यान-को ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके व्याख्यानको नहीं, क्योंकि, वह व्याख्यान सूत्रसे विरुद्ध है। और, जो सूत्र-विरुद्ध हो, उसे व्याख्यान नहीं माना जा सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोग प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें ज्योतिषी देवोंकी संख्या निकालनेके लिए द्वीप-सागरोंकी संख्या ज्ञात करना धवलाकारको आवश्यक प्रतीत हुआ। द्वीप-सागरोंकी संख्या अन्य आचार्योंके उपदेशानुसार राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे ६ तथा जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कम करनेसे प्राप्त होती है, मेर व जम्बूद्वीप आदि प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंमें जो राजुके छह अर्धच्छेद पड़ते हैं वे यहां सम्मिलित नहीं किये गये, क्योंकि, इन द्वीप-समुद्रोंकी चन्द्रगणना पृथक् की गई है। किन्तु धवलाकारका मत है कि यदि इतना ही द्वीप-सागरोंका प्रमाण लिया जावे, तो उसके आधारसे निकाली हुई ज्योतिषी देवोंकी संख्या २५६^१ के भागद्वारासे निकाली हुई संख्यासे विषम पड़ती है। उसके वैयर्थ्यको दूर करनेके लिए धवलाकारको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि द्वीप-सागरोंकी संख्या निकालनेके लिए राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त ६ ही नहीं, किन्तु छहसे अधिक संख्यात अंक और कम करना चाहिए। इसपरसे ज्ञात होता है कि केवल ६ अंक कम करनेसे द्वीप-सागरोंकी संख्याद्वारा ज्योतिषीदेवोंका जो प्रमाण निकलेगा, यह २५६^१ के भागद्वारा प्राप्त संख्यासे बढ़ जाता है।

छहसे अधिक संख्यात अंकोंके कम करनेमें धवलाकारने हेतु यह दिया है कि स्वयंभूरमणसमुद्रसे परे जो पृथिवी है, यहां भी राजुके अर्धच्छेद पड़ते हैं, किन्तु यहां ज्योतिषी देव नहीं हैं। इसलिए वहांके संख्यात अर्धच्छेद भी उक्त गणनामें कम करना

१ लवणे पदस्स वेछप्पणंगुलसववकापडिमाणे । जी द ष ५५, मज्झिम्मे सेट्ठिगो वेसयत्थण-अगुल्लम्भे । ज कइ तो रातो जोदिसियएण सम्भाण ॥ ति. प ७, १०.

जोइसिया गत्यि चि कुदो गव्वेदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । एसा तप्पाओगसंखेज्ज-
रुवाहियजंजूदीवळेदणयसहिद्विसायरूवमेचरज्जुळेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाहिरी-
ओवदेसपरंपराणुसारिणी, 'केवलं तु तिलोयपणत्तिमुत्ताणुसारी जोदिसियदेवमागहारपदु-
प्पाइयुत्तावलंविजुत्तिलेण पयदगच्छसाहणहुमहेहि परूविदा, प्रतिनियतसुत्रावष्टम्भवल-
विजुंभितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयात्रलिक्कावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानो-
पदेशवद्वा । तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेति एयंतपरिगोहेण असग्गाहो कायव्वो, परमगुरु-

आवश्यक है । इस विधानसे परिकर्मके 'अत्तियणि दीवसागररूवाणि' आदि कथनमें जो
विरोध पड़ता है, उसके विषयमें धवलाकारने यहाँ स्पष्ट कहा है कि उक्त कथन सूत्र-विकृत
होनेसे प्राप्त नहीं है । किन्तु द्रव्यप्रमाणानुगममें उस विरोधका भी एक प्रकारसे परिहार
किया है । (देखो च. भाग, सूत्र ४, पृ. ३३-३६)

शंका—वहाँ, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें ज्योतिष्क देव नहीं है, यह
कैसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

यह तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे सहित द्वीप-सागरोंके
रूपप्रमाण राजुसम्बन्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा-विधि अन्य आचार्योंकी उपदेश-
परम्पराकी अनुसरण करनेवाली नहीं है, किन्तु केवल त्रिलोकप्रज्ञासूत्रकी अनुसरण
करनेवाली है, जो कि ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित
शुक्तिके बलसे प्रष्ट गच्छेके साधनार्थ, प्रतिनियत सूत्रके अवष्टम्भ-न्यलेसे विजृम्भित अर्थात्
तत्प्रातिपादक सूत्रके आश्रयसे गुणस्थान-प्रतिपन्न सासादनसम्पदादि आदि जीवोंसे प्रतिबद्ध
असंख्यात आवलियोंके अवहारकालके उपदेशके समान, तथा आयतचतुष्कोण पुरुषाकार
लोक-संस्थानके उपदेशके समान हमने निरूपण की है ।

विशेषार्थ—यहाँ धवलाकारने दृष्टान्तपूर्वक दार्ष्टान्तिको सिद्ध करनेके लिए जिन
विशेषताओंका उल्लेख किया है, उनके कहनेका अभिप्राय क्रमशः निम्न-प्रकार है—

(१) पहला दृष्टान्त प्रतिनियत सूत्राश्रयसे सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके
असंख्यात आवलिकात्मक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण भागहारके उपदेशका दिया है, जिसका अभिप्राय
समझनेके लिए द्रव्यप्रमाणानुगम तृतीय भाग पृ. ६९ के मूल पाठ और विशेषार्थको देखिए ।
यहाँपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि 'संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है'
इस प्रचलित एवं सर्वमान्य मान्यताको भी 'पदेहि पलितोवममवाहिरादि अंतोमुहूर्तेण कालेण'
(द्रव्यम. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए 'अन्तर' शब्दको
साक्षीत्प्राप्यक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका
भी हो सकता है, और इसलिये प्रकृतमें 'अन्तर्मुहूर्त' का अर्थ मुहूर्तसे अधिक कालका भी
करा जायिए ।

परंपरागोवएससस जुत्तिलेण विदधावेदुमसकियत्तादो, आदिदिएसु पदर्थेसु छदुमसत्यविय-
प्पाणमविमवादिणियमाभावादो । तम्हा चिंतणाहरियक्खाणापरिच्चाएण एसा वि दिसा
हेदुवादानुसारिउपपण्णसिस्साणुरोहेण अउपपण्णजणउप्पायणहं च दरिसेदव्वा । तदो ण एत्थ
संपदायविरोहासंका कायव्वा चि ।

(२) दूसरा दृष्टान्त आयतचतुरस्र लोकसंस्थानके उपदेशका दिया है, जिसका
अभिप्राय समझनेके लिए क्षेत्रानुगम (इसी चतुर्थ भाग) के पृष्ठ ११ से २२ तकका अंश
देखिए । यहाँपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि धवलाकारके सामने विद्यमान करणा-
नुयोगसम्बन्धी साहित्यमें आयतचतुरस्र लोकके आकारका विधान या प्रतिषेध कुछ भी
नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुदातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो
भाषाओंके (देखो क्षेत्रप्र. पृष्ठ २०, २१) आधारपर यह सिद्ध किया है कि लोकका आकार
'आयतचतुष्कोण' है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४^३/_३ घनराजुप्रमाण मुदंगके
समान । यदि ऐसा न माना जायगा, तो उक्त दोनों भाषाओंको अप्रमाणता और लोकमें
३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा । इसलिये लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना
चाहिए ।

(३) धवलाकारने जिस प्रकार उक्त दोनों धातोंको तात्कालिक करणानुयोगसम्बन्धी
शास्त्रोंमें उल्लेख अथवा, आचार्योंको उपदेश परम्पराके नहीं मिलनेपर भी उक्त प्रकारकी
सूत्रावलम्बित शुक्तियोंके बलसे उन्हें सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी करणानुयोगके
ग्रन्थोंमें या आचार्य-उपदेशपरम्परामें उपलब्ध नहीं होनेपर भी प्रतिनियत सूत्राश्रित तर्कके
बलसे वे यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके
व्याप्त-रुद्ध योजनोंसे संख्यात हजारगुने योजन आगे जाकर त्रिर्गलोककी समाप्ति होती है,
अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रकी आद्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहाँ भी राजुके
अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहाँपर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं ।

इसलिये यहाँपर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आग्रह
नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परम गुरुओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशको शुक्तिके बलसे
अर्थार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उठाये गए
विकल्पोंके अविस्वादी होनेका नियम नहीं है । अतएव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका
परित्याग न करके यह भी विशा हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके
अनुरोधसे तथा अन्युत्पन्न शिष्य जनोंके व्युत्पादनके लिए दिखाना चाहिए । इसलिये यहाँपर
सम्प्रदायके विरोधकी आशंका नहीं करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'विदधावेदु', म प्रतो 'विदधावेदु' इति पाठः ।

एदेण विहणेण परुविदगच्छं विरलिय रुवं पडि चत्तारि रुवाणि दादूण अणोणभत्तयं करिय 'रूपेणमादिसंगुणमेकेनगुणोन्माथितमिच्छा' एदेण गाहासंडेण संकलणाओ आणिय देण्हं सकलणाणं धणं कादूण तदियसंकलणे अवणिदे चंदबिंससलागाओ उपज्जंति' । ताओ अट्टारससयसमहिंयतारहि गुणिदे जोदिसियाणं सयलविंससलागाओ हंति । ताओ संखेज्जघणं गुलेहि गुणिदाओ सत्याणखेचं होदि । सत्याणखेच

ऊपर बताया गए इस विधानसे प्ररूपित गच्छको विरलन करके प्रत्येक एकके ऊपर चार चारको दैयरूपसे देकर परस्पर गुणा करके 'उनमेंसे एक कम करे, पुन. आदिघनसे संगुणित करे, पुनः एक कम गुणकारका भाग दे, तत्र इच्छित राशि उत्पन्न होती है' इस गाथाबद्धरूप सूत्रसे संकलनराशियोंको निकालकर दोनों संकलनराशियोंका घन (जोड़) करके इस राशिमेंसे तीसरी संकलनराशिको घटा देने पर चन्द्रविम्बकी शालाक्रांप उत्पन्न हो जाती है ।

उदाहरण—गच्छ ३२, आदिघन ११२०० (तृतीय समुद्रका सर्वसंकलन), सर्व द्वापसमुद्रोंकी संख्या असंख्यत = ३ (काल्पनिक) ।

$$\text{प्रथम संकलन} = ४ \times ४ \times ४ = ६४; \quad ६४ - १ = ६३; \quad \frac{६३ \times ११२००}{४ - १} = २३१२००।$$

$$\text{द्वितीय संकलन} = ४ \times ४ \times ४ = ६४; \quad ६४ - १ = ६३; \quad \frac{६३ \times ६४}{४ - १} = १३४४।$$

$$\text{तृतीय संकलन} = २ \times २ \times २ = ८; \quad ८ - १ = ७; \quad \frac{७ \times ६४}{२ - १} = ४४८।$$

$$\text{प्रथम संकलन} \quad \text{द्वितीय संकलन} \quad \text{तृतीय संकलन} \quad \text{समस्त चन्द्र-शालाक्रांप}।$$

$$२३५२०० + १३४४ - ४४८ = २३६०९६$$

इस प्रमाणमें पहले यतार्थ हुई प्रथम पांच-द्वीप समुद्रोंसंगन्धी चंद्रोकी संख्या सम्मिलित नहीं है ।

ठीक यही संख्या प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंको छोड़कर आगेके तीन समुद्र या द्वीपोंके पृथक् पृथक् निकाले हुए चंद्रोकी संख्याके योगसे भाती है—

$$\frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{३}{२} = ११२०० + ४४२८ + १७९९६८ = २३६०९६ (देखो पृ. १५४-१५५.)$$

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुई चन्द्रविम्बकी शालाक्राओंको एक सौ अठारहसे अधिक तारामोंके प्रमाणसे गुणा कर देनेपर उद्योतिष्क देवोंके सकल चिद्रोंको शालाक्रांप उत्पन्न हो जाती है ।

विशेषार्थ—अभी पहले जो एक चन्द्रका परिवार बताया गया है, उसमेंसे एक चन्द्र, एक सूर्य, अठ्यासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र, इनको जोड़ देनेपर (१+१+८+२८=११८)

१ पदसे गुणयो अणोणं गुणिय रूपपरिहं । मज्जगुणं पुरं गुणियम गुणानि ॥
२ ति. प. पत्र २२६

नि सा २३१.

संखेज्जघणं गुणिय संखेज्जघणं गुलेहि ओवद्धिदे जोइसियरासी होदि । एदाणि जोदियिय-देवुसमेघगुणिद्विमाणभंतरपदगुलेहि गुणिदे जोइसियसत्याणखेचं तिरियलोपसम संखेज्जदिभागमेचं होदि । गवरि देवुसमेघगुणिद्विमाणभंतरपदगुलाणि उरुमंहगुलाणि ति कट्टु पमाणगुलाणि कायव्वाणि । उरुमंहगुलाणि ति कथं गव्वदे ? अण्णा अंबूदीवभंतरे जंबूदीवताराणमोगामाभावादो । अथवा एदाणि पमाणगुलाणि चेम । कथं पुण सम्मांति ?

एक सौ अठारह होते हैं । इनमें तारामोंका प्रमाण जोड़कर उत्पन्न हुई राशिका चन्द्र-विम्बकी शालाक्राओंसे गुणा कर देनेपर समस्त उद्योतियो देवोंके विमानोंकी शालाक्रांप निकल आती है ।

उन्हें संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर समं ज्योतिषी देवोंके विमानोंका स्वस्थान-क्षेत्र हो जाता है । स्वस्थानक्षेत्र को संख्यात रूपोंसे गुणा करके मंथान घनांगुलोंसे अपवर्तित करनेपर उद्योतिष्क देवोंकी राशि हो जाती है । इस राशिको ज्योतिष्क देवोंके शरीरोंसेचमे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुलोंसे गुणा करनेपर उद्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिप्लोकेके संख्यातव्य भागमात्र होता है । विशेष गत यह है कि देवोंके शरीरके उत्सेचसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुल, उत्सेचांगुल हैं, ऐसा समझ करके उनके प्रमाणगुल करना चाहिए ।

शुंका—चे प्रतरांगुल उत्सेचांगुल हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि उन प्रतरांगुलोंको उत्सेचांगुल न माना जायगा, तो जम्बूद्वीपके भीतर जम्बूद्वीपस्य ताराणोंके रहनेको अवकाश न मिल सकेगा ।

अथवा, ये प्रतरांगुल प्रमाणगुल ही हैं ।

शुंका—तो फिर ये जम्बूद्वीपमें कैसे समाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लयणसमुद्र, इन दोनोंको ही आश्रय करके वे ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं । अर्थात्, जम्बूद्वीप और लयणसमुद्र, इन दोनों क्षेत्रोंमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी ज्योतिष्क विमान रहते हैं ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपसम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके परिचारमें तारोंकी संख्या एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी है । एक तारेका जघन्य विष्कंभ ६ कोशका और उत्कृष्ट १ कोशका कड़ा गया है, तथा उत्सेच विष्कंभसे आधा तथा आकार उत्तान गोलार्ध सदृश है । (त्रिलोकसार गाथा ३३७, ३३८) । तदनुसार मध्यम विष्कंभ ३ कोश लेकर एक

१ श्रोतु 'सहस्रे हि' इति बाट ।

[१६१] छत्रखंडागसे जीवहाण

वैतरदेवसाणसम्महाद्विस्तथाणखेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । तं कथं ? वैतरदेवरासिं द्रविय एकेकग्निह वैतरावासे संखेज्जा चैव वैतरदेवा होति चि

तोरका स्थूल घनफल— $\frac{2}{3} \times \frac{3}{4} \times \frac{2}{5} \times \frac{2}{5} = \frac{2}{25}$; तथा जम्बूद्वीपके समस्त तारोंका घनफल स्थूल रूपसे $13394 \times 10^4 \times \frac{2}{25} = 9922$ कोटिकोटी घनकोश हुआ ।

तारागण पृथिवीसे ७९० योजन ऊपरसे लगाकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन व्यासवाले जम्बूद्वीपके ऊपर ११० योजन क्षेत्रका घनफल निकालनेसे— $12 \times 10^4 \times 10^4 \times 10^4 = 420 \times 10^{12}$ घनकोश हुए । इस प्रकार तारोंके घनफलमें १८ अंक हैं, किन्तु जम्बूद्वीपसम्बन्धी उक्त क्षेत्रमें केवल १४ अंक आते हैं । इस प्रकार वे सब तारे उक्त क्षेत्रमें नहीं समा सकते । किन्तु यदि तारोंमें उत्सेधागुलोंका प्रमाण स्वीकार किया जाय और उक्त क्षेत्रमें प्रमाणगुलोंका, तो उक्त क्षेत्रके प्रमाणको ५००^१ से गुणा कर देने पर वह क्षेत्र $420 \times 124 \times 10^{12} = 66 \times 10^{12}$ अर्थात् २२ अंक प्रमाण हो जाता है, जिससे उक्त तारोंको उस क्षेत्रके भीतर सावकाश रहनेके लिए स्थान मिल जाता है । इसीलिये घबलाकारने कहा है कि विमानोंके प्रमाणमें उत्सेधागुल ही ग्रहण करना चाहिए, और यही बात त्रिलोकप्रकृति आदि ग्रंथोंसे भी सिद्ध है ।

घबलाकारने जो दूसरे प्रकारसे उक्त वैपम्यका समाधान किया है कि विमानोंके प्रमाणमें प्रमाणगुल ग्रहण करके भी जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, दोनोंके आश्रयसे उन विमानोंके अवस्थानके योग्य क्षेत्र बन जाता है, सो यह बात गणितमें ठीक नहीं उतरती, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र दोनोंके ऊपरका 110 योजन-वाह्य क्षेत्र केवल $6 \times 10^4 \times 4 \times 10^4 \times 10^4 = 132 \times 10^{12}$ घनकोश आता है । यह क्षेत्र केवल १६ अंकप्रमाण होनेसे केवल जम्बूद्वीपके तारोंके लिए भी पर्याप्त अवकाश नहीं प्रदान कर सकता । तिसपर लवणसमुद्रसम्बन्धी चार चन्द्रोंके परिवारके तारोंको भी वहाँ अवकाश प्राप्त होता है । इस प्रकार तारोंके विमानोंको प्रमाणगुलोंके मापमें लेकर घबलाकारने उनको किस प्रकार अवकाश प्राप्त कराया है, यह समझमें नहीं आता ।

सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्थानक्षेत्र भी तिर्यलोकका संख्यातवां भाग-मात्र होता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—व्यन्तर देवोंकी राशिको स्थापित करके एक एक व्यन्तरावासमें संख्यात

१६२]

फोसणणुग्गे सासणसम्महाद्विफोसणपरूवण

[१, ४, ४-

संखेज्जखेहि भागे हिदे वैतरावासा होति । ण एस कम्मो भवणवासिय-सोघम्मदीण, तत्थ संखेज्जेसु भवणविमाणेसु असंखेज्जजोयाणायामेसु असंखेज्जा देवा देवीओ होति । कुदो ? तेसिमसंखेज्जत्तणहाणुववत्तीदो । पुणो वैतरावासे अप्पणो विमाणभंत्तरसंखेज्ज-घणंणुलेहि गुणिदे वैतरदेवसासणसम्महाद्विस्तथाणखेत्तं होदि । एदाणि तिणिण वि खेत्ताणि एगद्ध मेलेदि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-समुग्धादगेहि अहु चोदसभागा देखणा फोसिदा । केत्तियमेत्तेणणा ? तदियपुढवीए हेडिल्लजोयणसहस्सेण । मारणत्तियसमुग्धादगेहि वारह चोदसभागा देखणा फोसिदा । तं जहा-मेरुमूलादो उवरि जावीसिपम्भारपुढवि चि सत्त रज्जू, हेडा जाव छट्ठी पुढवि चि पंच रज्जू । एदाओ मेलेदि सासणमारणत्तियखेत्तायामो होदि । णवरि हेडिमजोयण-सहस्सेण ऊणो चि वत्तव्वो । जदि सासणा एहिंदिएसु उप्पज्जंति, तो तत्थ दो गुणट्ठाणाणि

ही व्यन्तर देव होते हैं, इसलिये संख्यात रूपसे भाग देनेपर व्यन्तर देवोंके आवासोंकी संख्या हो जाती है । किन्तु यह क्रम भवनवासी और सौधमर्दि कल्पवासी देवोंके नहीं हैं, क्योंकि, उनमें असंख्यात योजन आयामवाले संख्यात भवनों और विमानोंमें असंख्यात देव और देवियां रहती हैं । कारण, यदि ऐसा न माना जाय, तो उनकी राशिके असंख्यात-पत्ता नहीं धन सकता है । पुन व्यन्तरोंके आवासक्षेत्रको अपने विमानोंके भीतरी संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । इन तीनों ही क्षेत्रोंको अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यलोकके स्वस्थानक्षेत्रको, सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको इफुट्टे मिलानेपर तिर्यलोकका असंख्यातवां भाग होता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कयायसमुद्रात और वैश्वीयिकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे देशोन आठ भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है ।

शंका—यहाँ देशोनसे तात्पर्य कितने प्रमाण क्षेत्रसे न्यून है ?

समाधान—तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्रसे न्यून क्षेत्र देशोनसे अभीष्ट है ।

मारणान्तिकसमुद्रातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने लोकनालीके चौदह राजुओंमेंसे देशोन बारह भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे जानना चाहिए—सुमेरुपर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर ईष्यत्राग्रमारपृथिवी तक सात राजु होते हैं, और नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं । इन दोनोंको मिला देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रकी लम्बाई दो जाती है । विशेष बात यह है कि छठी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनसे न्यून क्षेत्र यहाँपर भी कहना चाहिए ।

हैं। न च एवं, संताणिओगहारे तत्थ एकमिच्छादिट्ठिगुणपटुप्पायणादो' दब्बाणिओगहारे वि तत्थ एगगुणद्वानद्वस्स पमाणपरूवणादो च'। को एवं भणदि जथा सासणा एहंदिएसु सुप्पज्जंति चि। किंतु ते तत्थ मारणंतियं मेल्लंति चि अम्हांणं णिच्छओ। न पुण ते तत्थ उप्पज्जंति चि, छिण्णाउअकाले तत्थ सासणगुणाणुवलंभादो। जत्थ सामणाणुववादो णत्थि, तत्थ वि जदि सासणा मारणंतियं मेल्लंति, तो सत्तमपुढविणेरइया वि सासणगुणेण सह पंचिदियतिरिक्खेसु मारणंतियं मेल्लंतु, सासणत्वं पडि विसेसाभावो? न एस दोसो, मिण्णजादिचदो। एदे सत्तमपुढविणेरइया पंचिदियतिरिक्खेसु गब्भेवक्कंतिएसु चैव उप्पज्जणसहावा, ते पुण देवा पंचिदिएसु एहंदिएसु य उप्पज्जणसहावा, तदो न समान-जादीया। जं जाए जादीए पडिबणं, तं ताए चैव जादीए होदि चि पडिबज्जेदक्वं, अण्णाहा अणत्थापसंगादो। तम्हा सत्तमपुढविणेरइया सासणगुणेण सह देवा इव मारणंतियं

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं तो उनमें (सहांपर) दो गुणस्थान प्राप्त होते हैं। किंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि, सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वारमें, एकेन्द्रियोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बताया गया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें भी उनमें एक ही गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण-प्ररूपण किया गया है।

समाधान—कौन ऐसा कहता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं? किंतु वे उस गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुदातको करते हैं, ऐसा हमारा निश्चय है। न कि वे उस गुणस्थानमें, अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्पन्न होते हैं। क्योंकि, उनमें आयुष्यके छिन्न होनेके समय सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है।

शंका—जहां पर सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं है, वहां पर भी यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुदातको करते हैं, तो सातवीं पृथिवीके नारिकोंको सासादनगुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें मारणान्तिकसमुदात करना चाहिए, क्योंकि, सासादनगुणस्थानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है, अर्थात् समानता है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, देव और नारकी इन दोनोंकी भिन्न जाति है। ये सातवीं पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पंचेन्द्रियोंमें ही उपजनेके स्वभाववाले हैं, और वे देव पंचेन्द्रियोंमें तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए दोनों समान जातीय नहीं हैं। जो जिस जातिमें प्रतिपन्न है, अर्थात् स्वीकृत है, वह उसी ही जातिका माना जाता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग भा जायगा। इसलिए सातवीं पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोंके समान मार-

१. पुरदिगा नीपरिगा तोरदिगा वउरिदिगा अण्णिणवदिदिगा एककग्गि चैव भिण्णरिद्धले। नी स घ. ३६

२. नी. ६ घ. ७४-७६

३. प्रतिगु 'मेत्तति' इति पाठ।

ण कंति चि सिद्धं। देवसासणा एहंदिएसु मारणंतियं करेमाणा सत्तलोमेहंदिएसु किण्ण-मारणंतियं कंति चि? न, तोसं सासणगुणपहम्मेण लोगणालीए वाहिरमुप्पज्जणसहावा-भावादो। लोगणालीए अबंभते मारणंतियं कंता वि भवणवासियजगमूलोदोवरं चैव देव-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठिणो मारणंतियं कंति, गो हेट्ठा। कुदो? सासणगुणपहम्मादो चैव। रज्जुपदमेत्तपुढी उवरि णत्थि। देवा वि सुहुमेहंदिएसु न उप्पज्जंति। न च चादेहंदिआ वाउक्काइवदिरित्ता पुढवीए विणा अणत्थ अच्छंति। तदो सासणमारणंतिय-खेत्तस्स वारह चोदसभागोवेदोसो न घडदि चि? न एस दोसो, ईसिपम्भारपुढवीदो उवरि सासणाभाउकाइएसु मारणंतियसंभवादो, अट्टमपुढवीए एगरज्जुपदरम्भंभतरं सन्व-मावरिय ट्ठिदाए तोसं मारणंतियकरण पडि विरोहाभावो च। वाउकाइएसु सासणा मारणंतियं किण्ण कंति? न, सयलसासणाणं देवाणं व तेउ-वाउकाइएसु मारणंतियाभावो,

णान्तिकसमुदात नहीं करते हैं, यह बात सिद्ध हुई।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि देव, जबकि एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुदात करते हुए पाए जाते हैं, तो फिर सर्वलोकवर्तों एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं मारणान्तिकसमुदात करते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है। और लोकनालीके भीतर मारणान्तिकसमुदातको करते हुए भी भवतवासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुदातको करते हैं, उससे नीचे नहीं, क्योंकि, उनमें सासादनगुणस्थानकी ही प्रधानता है।

शंका—राजुप्रतरप्रमाण पृथिवी ऊपर नहीं है। देव भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, और वादर एकेन्द्रिय जीव वायुकायिक जीवोंको छोड़कर पृथिवीके विना अन्यत्र रहते नहीं हैं। इसलिए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रका वारह बटे बौद्ध (१३) भागका उपदेश घटित नहीं होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ईयत्तागमार पृथिवीसे ऊपर सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका अप्कायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुदात संभव है, तथा एक राजुप्रतरके भीतर सर्वक्षेत्रको व्याप्त करके स्थित आठवीं पृथिवीमें उन जीवोंके मारणान्तिकसमुदात करनेके प्रति कोई विरोध भी नहीं है।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुदातको क्यों नहीं करते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सकल सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंके समान

पुटविपरिणाम-विमाण-तल-सिला-थंम-थुंमंतल-उन्मसालंहजिया-कुट्ट-तोरणादीणं तदुपपत्ति-जोगाणं दंसाणादो च । उववादगदेहि देसणेक्कारह चोदसभागा फोसिदा । तं जहा-हेडा जाव छट्टी पुटवि त्ति पंच रज्जू, उवरि जाव आरण-अचुदकणो त्ति छ रज्जू, आयामो वित्थारो च एगरज्जू, एवं उववादखेत्तपमाणं । के वि आहरिया 'देवा गियमेण मूल-सरीरं पविसिय मरंति' त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण दस-चोदसभागा देसणा । एवं वक्खणामेत्येव कम्मइयसरीरसासणउववादफोसणस्स एक्कारह-चोदसभागपरुवयसुत्तेण विरुद्धं ति ण वेत्तव्वं । ने पुण देवसासणा एहंदिएसुप्पज्जंति त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण वारह चोदसभागा देसणा उववादफोसणं होदि, एवं पि वक्खणं संत-दन्वसुत्तविरुद्धं ति ण वेत्तव्वं ।

तैजसकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मारणास्तिकसमुदातका अभाव माना गया है । और पृथिवीके विकाररूप विमान, शय्या, शिला, स्तम्भ और स्तूप, इनके तलभाग, तथा खड़ी हुई शालमंजिका (मिट्टी आदिकी पुतली) भित्ति और तोरणादिक उनकी उत्पत्तिके योग्य देखे जाते हैं ।

उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग (११) स्पर्श किए हैं । वह इसप्रकार हैं—मेखलसे नीचे छोटी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं, ऊपर आरण-अच्युतकल्प तक छह राजु होते हैं और आयाम तथा विस्तार एक राजु है । इस प्रकार ग्यारह राजु उपपादक्षेत्रका प्रमाण है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रवेश करके ही मरते हैं । उनके अभिप्रायसे सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका उपपादसम्यग्दृष्टि स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम दस बटे चौदह भाग (१४) प्रमाण होता है । किन्तु यह व्याख्यान यहाँपर विग्रह-गतिकी प्राप्त कर्मणशरीरवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद-स्पर्शनके ग्यारह बटे चौदह (१४) भागके प्ररूपक सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए । और जो ऐसा कहते हैं कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव, एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके अभिप्रायसे कुछ कम बारह बटे चौदह (१४) भाग उपपादपक्षका स्पर्शन होता है, किन्तु यह भी व्याख्यान सत्तरूपणा और द्रव्यानुयोगद्वारेके सूत्रोंके विरुद्ध पड़ता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'मूललज्ज' इति पाठ ।

२ लब्धवा येन मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया दाढय भागा न यथा ।

३ बी. स. सू. ३६. १ जी. ब. सू. ७४-७६.

सम्मामिच्छाद्वि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जादिभागो ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो बुच्चदे । सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्धादगदेहि चहुण्हं लोगाणमसंखेज्जादिभागो फोसिदो । माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । कारणं खेत्तभंगो । असंजदसम्माइट्ठीणं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-भारणंतिय-उववादगदाण खेत्तमिदं बुत्तत्थो संभरियं वत्तव्वो ।

अट्ट चोदसभागा वा देसूणा ॥ ६ ॥

पुव्वसुत्तादो सम्मामिच्छाद्वि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोमिदमिदि अणुवट्ठे । अदीदकालेणेत्ति वयणस्स अज्जाहारो कायव्वो । कुदो ? एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तस्स पुव्वं परुविदत्तादो । सम्मामिच्छाद्विहि सत्था-णेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जादिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात और चैक्रियकसमुदातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आविचार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही जानना चाहिए । स्वस्थानस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात, चैक्रियकसमुदात, मारणान्तिकसमुदात और उपपादपक्षको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणमें कहे गये अर्थको स्मरण करके कहना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ६ ॥

यहाँपर पूर्वसूत्रसे 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है' इतने पक्षकी अनुवृत्ति होती है । तथा 'अतीतकालसे' इस वचन का भी अन्वयार्थ करना चाहिए, क्योंकि, दोनों गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका पहले प्ररूपण किया जा चुका है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आवि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा तथा तिर्यग्लोकका

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिभेदोक्तसासत्येयमाग अथो वा चतुर्दशमाग देवोना । स. वि. १, ८.

२ प्रतिपु 'समविय' इति पाठ ।

संखेज्जदिभागो । एत्थ सत्थाणखेत्तमेलावणविहाणं पुब्बं न कायव्वं । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्वियसमुग्घादगेहि अहु चोइसभागा देवणा फोसिदा । एत्थ देवण-विधाणं पुब्बं न वत्तन्नं ।

असंजदसम्माइहीहि सत्थाणेण तिण्ह लोगणमसंखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागखेत्तुपायाणे सासणभंगो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-मारणंतिथसमुग्घादगेहि अहु चोइसभागा देवणा फोसिदा, उवरि छ रज्जू, हेड्डा दो रज्जू वि । उववादगेहि छ चोइसभागा देवणा फोसिदा, हेड्डा असंजदसम्माइहीणं उववादखेत्तुपाणुवलंभादो ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्विय-मारणंतिथपदाणं पजव-

संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । यहाँपर स्वस्थानक्षेत्रके मिलानेका विधान पूर्ववत् ही करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात और वैक्रियिकसमुदातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । यहाँपर देशोक्तका विधान पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र और तिर्यलोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तिर्यलोकके संख्यातवें भागरूप क्षेत्रके उत्पन्न करनेमें सासादनगुणस्थानके स्पर्शनके समान ही वर्णन जानना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात, वैक्रियिकसमुदात और मारणान्तिकसमुदातगत उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुके मूलसे ऊपर छह राजु और नीचे दो राजुप्रमाण हैं । उपायवद्दको प्राप्त उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, इससे नीचे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपायक्षेत्र नहीं पाया जाता है ।

संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात, वैक्रियिक-समुदात और मारणास्तिकसमुदात पदगत संयतासंयतोंकी पर्यायिकनयसम्बन्धी स्पर्शन-

द्विथपरूवणा खेत्तुल्ला ।

छ चोइसभागा वा देसूणा ॥ ८ ॥

पुब्बं वड्डमाणकालविसिद्धुखेत्तं परूविदमिदि कुट्टु इदं सुत्तमदीदकालसंबंधीदि अवगमदे । अणागदकालसंबंधी ण होदि, तेण ववहाराभावादो । अथवा अदीदाणागद-कालविसिद्धुखेत्तानं परूवयाणि पच्छिमसव्वसुत्ताणि चि णिच्छओ कायव्वो, उभयत्य विसेसामावादो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्वियसमुग्घादगेहि संजदासंजदेहि तिण्ह लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणसत्थाणखेत्तानयणविधाणं वुच्चदे-

संयभूरमणसमुद्दविकखंभो दोहि वि पासेहि सादिरेगेमेगरज्जुअद्वपमाणं होदि । संयपहपवदपरभागखेत्तं पि दोहि वि पासेहि एगरज्जु-अद्वमभागमेत्तविकखंभो होदि । ते दो वि मेलेदे पंचड्डभागा होति । एदे रज्जुविकखंभग्ग्हि अवणिदे तिणिण अद्वभागा होति । एदग्ग्हि खेत्ते सुज्जमंडलगारेण संड्डिदे भोगभूमिपडिभागो णत्थि संजदासंजदा । बाहि-

प्ररूणा क्षेत्रप्ररूणाके तुल्य है ।

संयतासंयत जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८ ॥

पूर्वमें वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्ररूण किया जा चुका है, इसलिये यह क्षेत्र अतीतकालसम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है । किन्तु यह अनागत (भविष्य) काल सम्बन्धी नहीं है, क्योंकि, उसके साथ व्यवहारका अभाव है । अथवा, पीछेके सभी क्षेत्र अतीत और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूणा करनेवाले हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि, भूतकाल और भविष्यकालमें स्पर्शनकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात और वैक्रियिकसमुदात-गत संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहाँपर संयता-संयत जीवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान है--

स्वयम्भूरमणसमुदका दिष्कम्भ दोनों ही पार्श्व भागोंसे साधिक एक राजुके अर्धप्रमाण है । स्वयंप्रमपर्वतका परभागवर्ती क्षेत्र भी दोनों ही पार्श्व भागोंकी अपेक्षा एक राजुके अष्टमभागमात्र दिष्कम्भवाला है । ये दोनों ही दिष्कम्भ मिला देनेपर एक राजुके आठ भागोंसे पांच भाग प्रमाण (५) क्षेत्र हो जाता है । ये पाँचों बटे आठ (५) भाग राजुके दिष्कम्भसे निकाल देनेपर तीन बटे आठ (३) भाग अवशिष्ट रहते हैं । इस तीन बटे आठ (३) भागवाले सूर्यमंडलके आकारसे संस्थित और भोगभूमिसे प्रतिबद्ध क्षेत्रमें संयतासंयत जीव नहीं होते हैं । किन्तु बाहरी पांच बटे आठ (५) भागोंमें अम्बुद्वीप

१, ४, ८.] रिल्लएसु पंचसु अट्टभागसु अट्टाहजदीवेसु दोसु समुहसु च अत्थि, कम्मभूमिचादो । 'व्यासार्थकृत्तिक्रिकं समस्तफलितमिति' एदेण सुत्तेण मज्झिल्लखेत्तफलमणिदे सोलस-सत्तावीसभागवन्महियचटुसट्ठि-चटुसदरूवेहि जगपदरे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । ते रज्जुपदरिम्हि अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे संजदांसजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । सेमपदाणं खेत्तमाणिज्जमाणे एगं जगपदरं ठविय संखेज्ज-सूचिअंगुलेहि संजदांसजदउत्सेधस्स एगूणवंचासभागमेत्तेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखे-ज्जदिभागमेत्तखेत्तं होदि । कथं संजदांसजदाणं सेसदीव-समुदेसु संभवो ? ण, पुब्बवेरिय-देवेहि तत्थ धित्ताणं संभवं पडि विरोधाभावा । कथमेसो अत्थो सुत्तेण अकाहिदो अव-गम्मदे ? ण एस दोसो, सुत्तहिण 'वा' सदेण अनुत्तसमुच्चयट्टेण सूचिदत्तादो ।

धातकीखंड और पुष्करार्घ इन अट्ठाई द्विपोंमें और लवणोदधि वा कालोदधि इन दो समुद्रोंमें संयतासंयत जीव रहते हैं, क्योंकि, वहाँ पर कर्मभूमि है । 'व्यासके आधेका वर्ग करके उसका तिगुना कर देनेसे विवक्षित क्षेत्रका समस्त क्षेत्रफल निकल आता है' इस कारण-सूत्रसे मध्यवर्ती अर्थात् भोगभूमि-प्रतियक्ष क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेपर जो प्रमाण आता है वह सोलह वटे सचाईस भागसे अधिक चारसौ चौसठ (४६४ $\frac{१}{८}$) रूपोंसे जगप्रतमें भाग देनेपर उपलब्ध एक भागके बराबर होता है ।

$$\text{उदाहरण—मध्यम क्षेत्रफलका व्यास है, } ३ \left(\frac{३}{४} \times \frac{१}{१} \right)' = ३\frac{३}{४}$$

$$\text{व } \frac{८६४\frac{१}{८}}{३} = २८८ = \frac{१३२३}{१} = २९६$$

यह स्वयंप्रभाचलके आभ्यन्तर भागवर्ती मध्यमक्षेत्रका क्षेत्रफल है । इसे एक राजुप्रतमेंसे निकालकर संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोके संख्यातवै भागप्रमाण संयतासंयतोका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदोंका क्षेत्र निकालनेपर—एक जगप्रतको स्थापित करके संयतासंयत जीवोंके शरीरकी ऊँचाईके अनंवास भागमात्र संख्यात सूत्र्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंग्लोके संख्यातवै भागमात्र क्षेत्र होता है ।

शंका—मानुषोत्तरपर्वतसे परभागवर्ती और स्वयंप्रभाचलसे पूर्वभागवर्ती शेष द्वीप समुद्रोंमें संयतासंयत जीवोंकी संभावना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके द्वारा वहाँ ले जाये गये तिर्यच संयतासंयत जीवोंकी संभावनाकी अपेक्षा कोई विरोध नहीं है ।

शंका—सूत्रसे नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और अनुक्तका अर्थात् नहीं कहे गये अर्थका समुच्चय करनेवाले 'वा' शब्दसे उक्त अकाथित अर्थ सूचित किया गया है ।

मारणंतिमसमुद्रादगेहिं छ चोदसभागा देवणा पोसिदा । कुदो ? सवत्थ लोणाणीए अन्तरे अन्धिय मारणंतिमकरणं पडि विरोधाभावादो । केण उणा छ चोदसभागा ? हेट्ठिमण जोयणसहस्सेण आरणचुदविमाणानामुवरिमभागेण च ।

पमतसंजदपहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

दव्वट्ठियणयमस्सिदूण भणमाणे अदीद-चट्टमाणकालेसु 'लोगस्स असंखेज्जदिभागो' इदि होदि । पज्जवाट्टियणए पुण अवलंविज्जमाणे अत्थि विसो । वट्टमाणकालमस्सिदूण पज्जवाट्टियणपरूवणाए खेत्तभंगो । संपदि अदीदकालमस्सिदूण पज्जवाट्टियपरूवणा कीरे । तं जघा—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेडवियतेजाहारसमुग्वाद-गेदिहि चट्टण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । विउव्वणादिइड्डिपत्तेहि माणुसखेत्तवन्तरे अप्पडिहियगमेहि रिसीहि अदीदकाले सव्वं पि माणुसखेत्तं पुसिज्जदि चि 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो' इदि वयणं ण वडडे ? ण मारणान्तिकसमुद्रातगत संयतासंयत जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह ($\frac{१६}{४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोकनालोंके भीतर सर्वत्र रहकर मारणान्तिकसमुद्रात करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

शंका—यहाँपर यह छह वटे चौदह ($\frac{१६}{४}$) भाग किस क्षेत्रसे कम करना चाहिए ? समाधान—सुमेरुसे नीचेके एक हजार योजनसे और आरण-अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए ।

प्रमनसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९ ॥

द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्पर्शनक्षेत्रके कहनेपर अतीत और वर्तमानकालमें लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण ही स्पर्शनका क्षेत्र होता है । किन्तु पर्यार्थिकनयके अवलम्बन करनेपर कुछ विशेषता है । उसमेंसे वर्तमानकालका आश्रय करके पर्यार्थिकनय-सम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर क्षेत्रप्ररूपणके समान ही स्पर्शनका क्षेत्र है । अब अतीतकालका आश्रय लेकर पर्यार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा की जाती है । वट्ट इस प्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कपायसमुद्रात, वैक्रियिकसमुद्रात, तैजससमुद्रात और आहारकसमुद्रातगत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और मनुष्य-क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका—विक्रियादि आदिप्रास और मानुषक्षेत्रके भीतर अप्रतिहत गमनशील अक्रियोंने अतीतकालमें सम्पूर्ण मानुषक्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए 'मनुष्यक्षेत्रका संख्या-तवां भाग स्पर्श किया है' यह वचन घटित नहीं होता है ?

१ प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेव्यनानी क्षेत्रवत्स्पर्शनम् । स. वि. १, ८.

एस दोसो, उवरि जोयणलकुप्पायणेण जोयणलकुप्पायणे संभवाभावादो । मेरुसत्यय-चट्ठणसमत्थाणमिणीं किमिदि जोयणलकुप्पायणे ण संभवो ? होदु णाम मेरुपव्वदुहेसे सा सत्ती, ण सव्वत्थ, 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो' इदि आहरियवयणणहाणु-ववचीदो । अधवा अदीदकाले लखिसणणुणिवेहिं सव्वं पि माणुसखेत्तं पुसिज्जदि, तस्स माणुसखेत्तवएसणहाणुवचीदो । सत्थाणे पुण माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो चैव पोसिदो । जदि एवं, तो पंचिदियतिरिक्खाणं पि पुव्ववेरियदेवणं पयोगादो जोयण-लकुप्पायणं पावदि ? होदु, ण को वि' दोसो । मारणंतिपसमुधादगेदि चट्ठणं लोगाणम-संखेज्जदिभागो पोसिदो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । मारणंतिपखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, तदो संखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं वा किण्ण हेदि ति वुत्ते ण हेदि । ण

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक लाख योजन ऊपर उड़नेकी अपेक्षा एक लाख योजन प्रमाण गमन करनेकी उनमें संभावना नहीं है ।

शंका—सुमेरुपर्वतके मस्तक (शिखर) पर चढ़नेमें समर्थ ऋषियोंके क्या एक लाख योजन ऊपर उड़कर गमन करनेकी संभावना नहीं है ?

समाधान—भले ही सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमें ऋषियोंके गमन करनेकी शक्ति रही आवे, किन्तु मानुषक्षेत्रके ऊपर एक लाख योजन उड़कर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति नहीं है, अन्यथा 'मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवै भागमें' पेसा आचार्योंका वचन नहीं बन सकता है ।

अथवा, अतीतकालमें विक्रियादि लब्धिसम्पन्न मुनिवरोंने सर्व ही मनुष्यक्षेत्र स्पर्श किया है, अन्यथा उसका 'मनुष्यक्षेत्र' यह नाम नहीं बन सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा उक्त प्रमत्तादि संयतोंने मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है ।

शंका—यदि पेसा है, तो पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका भी पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है ?

समाधान—यदि तिर्यचोंका ऊपर एक लाख योजन तक जाना प्राप्त होता है, तो होवे, उसमें भी कोई दोष नहीं है ।

मारणान्तिकसमुद्रातगत उन्होंने प्रमत्तसंयतादिकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा अथवा असंख्यात-गुणा क्यों नहीं होता है ?

१ म १ प्रती '—इन्द्रपत्तची', म २ प्रती अन्यप्रतिपु 'क'—दुहेसे सा सत्तो' इति पाठः ।

२ म प्रती 'को छि', अन्यप्रतिपु 'को रिप' इति पाठ ।

ताव उद्धवट्ठणं' पणदालीसजोयणलकुप्पायणं' समपरिमंडलसंदिग्गं' सत्तरज्जु-आयदणं' खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो हेदि, संखेज्जपदंगुलमेत्तेडिपमाणत्तादो । ण च पणदालीसजोयणलकुप्पायणलकुप्पायणसंखेज्जगुलाहल्लं संखेज्जज्जुआयदकप्पासिय-विमाणमेत्ततिरिच्छवट्ठणं खेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो हेदि, एदस्स पुव्व-खेत्तादो संखेज्जगुणहीणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागचत्तिरोधा । विमाणपण्डिट्ठिद-असंखेज्जुवादभवणसमुद्धवखेत्तेसु समुदिदेसु किण्ण तं हेइ ? ण, सेटोए असंखेज्जदि-भागासंखेज्जजोयणरंदयखेत्तेसु गहिदेसु वि तदसंभवादो ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्ठमाणकालमसिदण पज्जवट्ठियपरुवणाए खेत्तमंगो । अदीद-

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि, ऊपरकी ओर प्रवर्तमान, पैतालीस लाख योजन विष्कम्भवाले, समपरिमंडल आकारसे संस्थित, और सात राजु आयत, ऐसे मारणान्तिक-समुद्रात करनेवाले प्रमत्तसंयतादि जीवोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग नहीं होता है, क्योंकि, वह क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुलमात्र जगत्त्रेणीके प्रमाण ही होता है । और न संख्यात राजु आयत, तथा कल्पवासी विमानोंके प्रमाण तिर्यग्लूपसे प्रवर्तमान उक्त जीवोंका पैतालीस लाख योजन विस्तार और संख्यात अंगुल बाह्यवाला मारणान्तिकक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त क्षेत्रसे संख्यातगुणे हीन इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग माननेमें विरोध आता है ।

शंका—विमानोंमें प्रतिष्ठित असंख्यात उपपादशय्यावाले भवनोंके सम्मुख प्रवर्तमान उक्त जीवोंके समस्त मारणान्तिकक्षेत्र संयुक्त करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग क्यों नहीं हो जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रेणीके असंख्यातवै भाग तथा असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्रोंके ग्रहण करने पर भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग प्राप्त होना असंभव है ।

सयोगिकेवली भगवन्तोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १० ॥

इस सूत्रकी घर्तमानकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररू-पणा क्षेत्रके समान है । अतीतकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा भी क्षेत्रके समान ही है । विशेष बात यह है कि कपाटसमुद्रातगत केवलीका स्पर्शनक्षेत्र

१ प्रतिपु 'न' स्थाने 'ए' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'स्वपंभ' इति पाठ ।

कालमस्सिदूण पज्जवाडियपरूवणाए खेत्तभंगो चेव । णवरि कवाडगदस्स पणदालीस-
जोयणसदसहस्सवाहल्लं जगपदमेगं कवाडखेत्तं होदि । अवरं णवदिजोयणसदसहस्स-
वाहल्लं जगपदं होदि । एवं देणिण कवाडखेत्ताणि मेलिदे तिरियलोमादो संखेज्जगुणाणि ।

(एवमेषपरूवणा समत्ता)

**आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि
केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥**

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविय-मारणतिय-उववादगदेहि
मिच्छादिट्ठीहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो वडुमाणकाले पोसिदो, माणुसखेचादो
असंखेज्जगुणो । संसं खेत्तभंगो ।

छ चौहसभागा वा देसूणा ॥ १२ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउवियसमुग्घादगदेहि मिच्छा-
दिट्ठीहि अदीदकाले णेरइएहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेचादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो । एसो अत्थो सुत्ते अबुत्तो कथं परुविज्जेदे ? ण, सुत्तयेण ' वा ' सदेण
पैतालीस लाख योजन बाहल्यवाला एक जगप्रतरप्रमाण कपाटक्षेत्र होता है । (यह कायोत्सर्गस्थ
केवलीकी अपेक्षा जानना) । और दूसरा अर्थात् समुपविष्ट केवलीके कपाटसमुद्भातका क्षेत्र
नव्वे लाख योजन बाहल्यवाले जगप्रतरप्रमाण कपाटसमुद्भातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र होता है ।
इस प्रकार दोनों कपाटक्षेत्रोंको मिला देनेपर तिर्यलोकसं सख्यातगुणा क्षेत्र हो जाता है ।

(इस प्रकार ओघरूपणा समाप्त हुई ।)

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्भात, कषायसमुद्भात, चैतिक-
समुद्भात, मारणान्तिकसमुद्भात और उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें
स्पर्श किया है । शेष कथन क्षेत्ररूपणके समान जानना चाहिए ।

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह
भाग स्पर्श किये हैं ॥ १२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्भात, कषायसमुद्भात और चैतिक-
समुद्भातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका
असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—सूत्रमें नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे कहा जा रहा है ?

१ विवेचन गजनुवादेन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्वाक्षरभागः सृष्टः ।

स. सि. १, ८.

समुच्चयेण सूचिदत्तादो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविय-खेत्ताणि अदीदकाले
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणि किण्ण होंति त्ति बुत्ते ण होंति, इंदर्य-सेटीवद्ध-
पइणएहि रुद्धसव्वखेत्तस्स तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । इंदर्य-सेटीवद्ध-पइणएसु
संचरतेहिं गेरइयमिच्छादिट्ठीहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो किण्ण पुसिज्जदि त्ति बुत्ते ण
पुसिज्जदि, गेरइयाणं परखेत्तगमणाभावादो । परखेत्तगमणाभावे विहारवदिसत्थाणस्स
अभावो पसज्जदि त्ति बुत्ते ण पसिज्जेदे, एक्कमिह इंदए सेटीवद्ध-पइणए च संडिदगमागार-
वडुविधविलगमणसंभवादो । असंखेज्जजोयणमेत्तायामसेटीवद्ध-पइणया अत्थि त्ति तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति णासकणिज्जं, असंखेज्जजोयणायामसेटीवद्ध-पइणयाणं
पि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । मारणतिय-उववादपदेहि गेरइयमिच्छादिट्ठीहि

समाधान—नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और समुच्चयार्थक ' वा ' शब्दसे उक्त
अर्थ सूचित किया गया है ।

शंका—अतीतकालकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंके विहारवत्स्वस्थान, वेदना-
समुद्भात, कषायसमुद्भात और चैतिकसमुद्भातसम्बन्धी क्षेत्र तिर्यलोकके संख्यातवें
भागमात्र क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि, इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक नरकविलोसे
रुद्ध भी सर्वक्षेत्र तिर्यलोकका असंख्यातवां भागमात्र ही होता है ।

शंका—इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक नरकोंमें संचार करनेवाले नारकी मिथ्या-
दृष्टियोंने तिर्यलोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं स्पर्श किया ?

समाधान—नहीं स्पर्श किया है, क्योंकि, नारकियोंका स्वक्षेत्रको छोड़कर परक्षेत्रमें
गमन नहीं होता है ।

शंका—परक्षेत्रमें गमनका अभाव माननेपर विहारवत्स्वस्थानका अभाव प्राप्त
होता है ?

समाधान—विहारवत्स्वस्थानका अभाव नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, एक ही
इन्द्रक, श्रेणीवद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके विलोंमें गमन
सम्भव होनेसे विहारवत्स्वस्थानपद धन जाता है ।

शंका—असंख्यात योजनप्रमाण आयामवाले श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक नरक होते हैं,
इसलिए तिर्यलोकका संख्यातवां भाग विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र बन जाता है ?

समाधान—ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, असंख्यात योजन
आयामवाले श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक नरक भी तिर्यलोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

मारणान्तिकसमुद्भात और उपपादपदवाले नारकी मिथ्यादृष्टियोंने अतीतकालमें

१ प्रतिष्ठ ' इदिव ' इति पाठः ।

अर्दीदकाले छ चौहसभागा देखुणा पोसिदा । ऊणपमाणं देखुणतिणिजोयणसहस्सं । तिरिक्ख-
णेरइयाणं सव्वदिसासु गमणागमणसंभवो अत्थि चि छ चौहसभागा हँति, कथं देखुणत्तं ?
बुच्चदे- विगहो जीवाण किं सहेउओ, आहो अहेउओ त्ति ? ण ताव अहेउओ, णिकारण-
कजाणवलंभादो । विदिये कारणं वत्तव्वमिदि । कम्मं तत्तकारणं, संसारिजीवसव्वत्थ्याणं
कम्मवदिरिक्खकारणणुवलंभादो । तत्थ वि आणुपुब्बिणामं चेत्र कारणं, अण्णासिं सव्व-
पयडीणं पुण पुण कजाणमुवलंभादो, पुण्वत्तरसरीणमंतरालवेत्ते आणुपुब्बीए विवागो
होदि त्ति गुरुवेत्तादो वा । आणुपुब्बिउदयाभावे वि सुक्खमारणंतिजोवाणं वक्कनुवलंभादो
णाणुपुब्बिफलं विगहो त्ति णासंक्कणिजं, तस्स तित्थयरस्सेव पच्चासणविवागाणुपुब्बि-
फलत्तादो । अंगुलस्स असंखेज्जिभागमेत्तवाहल्लतिरियपदरम्हि सेटीए असंखेज्जिभागमेत्त-
ओगाहणवियपेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ णिरयगइयाओगाणुपुब्बीए

कुछ कम छह वटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । यहांपर कुछ कमका प्रमाण दर्शाने
तीन हजार योजन है ।

शंका—तिर्यच और नारकियोंका सर्व दिशाओंमें गमनागमन सम्भव है, इसलिये
पूरे छह वटे चौदह (१६) भाग ही स्पर्शन क्षेत्र होना चाहिए, फिर कुछ कम कैसे कहा ?

समाधान—विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह क्या सहेतुक होते हैं, अथवा अहेतुक ?
अहेतुक तो माने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि, विना कारणके कार्य पाया नहीं जाता । यदि
दूसरा पक्ष ग्रहण किया जाता है, अर्थात् विग्रह सहेतुक होते हैं, तो उसमें कारण कहना
चाहिए ? विग्रहका कारण कर्म है, क्योंकि, संसारी जीवोंकी सर्व अवस्थाओंका कर्मको
छोड़कर और कोई कारण पाया नहीं जाता है । उसमें भी आनुपूर्वीनामक नामकर्म ही
विग्रहका कारण है, क्योंकि, अन्य सभी प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् कार्य पाये जाते हैं, तथा
पूर्वशरीरको छोड़नेके पश्चात् और उत्तरशरीरको ग्रहण करनेके पूर्व अन्तरालवर्ती क्षेत्रमें
आनुपूर्वीनामकर्मका विपाक (उदय) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

शंका—आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके नहीं होनेपर भी मारणान्तिक्कसमुत्थात करने-
वाले जीवोंके विग्रह पाये जाते हैं, इसलिये विग्रह आनुपूर्वीनामकर्मका फल है, ऐसा नहीं
माना जा सकता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह विग्रह तीर्थंकरप्रकृतिके
समान निकट भविष्यमें उदय होनेवाले आनुपूर्वीनामकर्मका फल है ।

शंका—सूर्यगुलके असंख्यातवें भागमात्र वाहल्यवाले तिर्यग्रतरमें अर्थात् राजुके
वर्गमें जाश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके विक्लपोंसे गुणा करनेपर बड़ा जो राशि
अर्थात् आकाश प्रदेशोंकी संख्या आती है उतने प्रमाण नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीकी प्रकृतियों

पयडीओ । लोगे सेटीए असंखेज्जिभागमेत्तओगाहणवियपेहि गुणिदे तिरिक्खगइया-
ओगाणुपुब्बीए पयडिवियणा हँति । पणदालीसजोयणलक्खवाहल्ले तिरियपदरे उट्ठु
कवाडछेदणयणिप्पणो' सेटीए असंखेज्जिभागमेत्तओगाहणवियपेहि गुणिदे मणुसगदि-
पाओगाणुपुब्बीए पयडिवियणा हँति । णवजोयणसदवाहल्लतिरियपदरे सेटीए
असंखेज्जिभागमेत्तओगाहणवियपेहि गुणिदे देवगदिपाओगाणुपुब्बीए पयडिवियणा
हँति चि वर्गणसुत्तादो आणुपुब्बिणामं संद्वणविवाहं चवेत्ति णासंक्कणिजं, तस्से
सेत्त-संद्वणोसु वावादाए एकत्थेव वात्तरविरोहादो । ते च आगासपदेसा एत्थ चव अच्छंति

होती हैं । घनलोकमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके विक्लपोंसे गुणा करने-
पर तिर्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं । पैतालोल लाख योजन वाहल्यवाले
तिर्यग्रतरमें ऊर्ध्वकपाटके छेदनेसे निष्पन्न क्षेत्रको जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र
अवगाहन-विकल्पोंसे गुणा करनेपर मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं ।
नौ सौ योजन वाहल्यवाले तिर्यग्रतरमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहन-विकल्पोंसे
गुणा करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं । इन वर्गणसंदेके सूत्रोंके
अनुसार आनुपूर्वीनामा नामकर्मकी प्रकृति संस्थान अर्थात् पुद्गल विपाकी ही है ।

समाधान—ऐसी भी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, क्षेत्र और संस्थानोंमें
व्यापृत अर्थात् क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी होते हुए भी उस आनुपूर्वीप्रकृतिका एक
ही अर्थमें व्यापार मान लेनेमें विरोध है । दूसरी बात यह भी है कि वे आकाशके प्रदेशके इसी

१ पदानि पणदालीसजोयणसदहस्सवाहल्लानि तिरियपदराणि कवमुप्पणानि चि मणिदे बुच्चदे-उट्ठु
कवाडछेदणयणिप्पणानि चि इदो'मिमाणुपुब्बिक्कम्माण तिरियपदराण घणलोगत्तस य उप्पत्तिमपरूविय पदेहिं वेव
तिरियपदराणुप्पत्ती किमट्ठ परूविव्छेदे ? लोगसठाणपरूवणट्ठ । उट्ठुकवाडभिदि एदेण लोगो णिदिट्ठो । कथमेसा
लोगस सण्णा ? बुच्चदे-ऊर्ध्वं च तत् कपाटं च ऊर्ध्वकपाटमिव लोकं । ऊर्ध्वकपाटं जेण लोगो चोहरल्लुउत्तमेहो
सत्तरल्लुउत्तमेहो मज्जे उवरिमपरतो च प्पगल्लुउत्तमेहो उवरि वल्लोशुद्धेसे पत्तरल्लुउत्तमेहो मूरे सत्तरल्लुउत्तमेहो, अणत्थ
नराणुवुड्ढी नाहल्लो । तेण वल्लुउत्तमेहो वमो । उट्ठुकवाडस्स छेदण उट्ठुकवाडछेदण तेण उट्ठुकवाडछेदणेण णिप्पणानि
एदानि पणदालीसजोयणसदहस्सवाहल्लतिरियपदराणि । सपहि एत्थ उट्ठुकवाडछेदणविहाणं बुच्चदे । त जहा—
सत्तरल्लुउत्तमेहो दासु वि पासेसु तिणिण तिणिणत्तुआयमेण प्पगल्लुउत्तमेहो उट्ठुकवाडं छेत्तव्वं । पुणो पणदालीस-
जोयणसत्तमेहो मोत्तूणं हेट्ठा उवरि च मज्झिमपदेसे उट्ठुकवाडं छिदिदव्वं । पुणो सुह १ भूमि ५ विसेसा ४ उच्छेद
२ मज्झिमे मज्झिमपदेसे होदि ६ । एदीए वड्ढीए पणदालीसजोयणलक्खेसु वड्ढीदेव चोसु वि पासेसु अवणेदव्वं ।
एवमुट्ठुकवाडछेदणेण पणदालीसजोयणसदहस्सवाहल्लानि तिरियपदराणि णिप्पणानि । घवळा अ प्र पत्त
१२०६ (वर्णाखंड)

सि ण णियमो अत्थि, समयविरोहेण तेसिमवट्ठणादो । तदो आणुपुण्विविवागापाओग-
खेत्ते अवट्ठणं उपपणपढम विदिय-तदियवंकुसु णत्थि ति देखणचं घडदे । एसो अत्थो
उवरि सव्वत्थ जहावसरं परूवेदव्वो ।

**सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १३ ॥**

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगहारे जो बुत्तो, सो वत्तव्वो ।

पंच चोहसभागा वा देसूणा ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगेहि सासण-
सम्मादिट्ठीहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो । तं जथा-
णेरइयाणं विलाणि सखेज्जजोयणवित्थडाणि वि अत्थि, असंखेज्जजोयणवित्थडाणि वि ।
तत्थ जदि वि चटुरासीदिलक्खणेरइयावासा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति, तो वि सव्व-
खेत्तसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव जथा होदि, तथा वत्तइस्सामो-

स्थान विरोपपर ही रहते हैं, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, उनका अवस्थान परमाणमके
अविरोधसे माना गया है ।

इसलिए आनुपूर्वनिमकर्मके उदयके अप्रायोग्य क्षेत्रमें अवस्थान उत्पन्न होनेके प्रथम,
द्वितीय और तृतीय विग्रहोंमें नहीं है, अतः देशानता घटित हो जाती है । यह अर्थ ऊपर
भी सर्वत्र यथावसर प्ररूपण करना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्या-
तवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जो क्षेत्राजुयोगद्वारमें कहा है वही यहांपर कहना चाहिए ।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे
चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुदात, कषायसमुदात, और चैत्तिक-
यिकसमुदातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असं-
ख्यातवां भाग और अट्ठईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है—
नारकियोंके बिल संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं ।
उनमें यद्यपि चौरासी लाख नारकियोंके आवास असंख्यात योजन विस्तृत होते हैं, तो भी
उन समस्त नारकावासोंका क्षेत्र-समास अर्थात् क्षेत्रोंका जोड़ तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग
जिस प्रकारसे होता है, उस प्रकारसे कहते हैं—

णिरयावासा के वि परिमंडलायारा, के वि तंसा, के वि चउरंसा, के वि पंचंसा, के वि
छंसा । एदे सव्वे वि समीकरणे कदे चउरंसा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति । सयल-
णेरइयरासिणा घणंगुलस्स संखेज्जदिभागो गुणिदे वट्ठमाणकाले णेरइएहि रुद्धखेत्तं होदि ।
वट्ठमाणे णेरइयरुद्धणिरयविलभागादो अरुद्धभागो संखेज्जगुणो ति संखेज्जस्सेवेहि गुणिदे
णेरइयाणमदीदसत्थाणखेत्तं होदि । तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं ण विरुद्धदे ।
एवं 'वा' सदस्सचिदस्स अत्थस्म परूवणा कदा होदि । सासणस्स णिरयगदीए उववादो
णत्थि, सुत्तपडिसिद्धत्तादो । मारणंतियसमुग्घादगेहि पंच चोहसभागा पोसिदा । कुदो ?
सचमपुटवीदो सासणं मारणंतियकरणसंभवाभावा । तं कुदो णव्वदे ? एदस्सहदो चेव
सुत्तादो णव्वदे ।

**सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥**

नारकियोंके आवास कितने ही तो गोल आकारवाले होते हैं, कितने ही त्रिकोण,
कितने ही चतुष्कोण, कितने ही पंचकोण और कितने ही नारकावास पट्कोण होते हैं । इन
सभी आकारोंवाले नारकावासोंके समीकरण करतेपर वे चतुरस्त्र और असंख्यात योजन
विस्तृत हो जाते हैं । सम्पूर्ण नारकराशिसे घनांगुलके संख्यातवें भागकी गुणा करतेपर
वर्तमानकालमें नारकियोंसे रुद्ध-क्षेत्र होता है । वर्तमानकालमें नारकोंद्वारा रोके हुए नरकोंके
विल-भागसे अरुद्धभाग संख्यातगुणा होता है, इसलिए संख्यात रूपोंसे गुणा करतेपर नार-
कोंका अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानक्षेत्रका प्रमाण हो जाता है । अतः तिर्यग्लोकका असं-
ख्यातवां भाग (जो ऊपर स्पर्शन-क्षेत्र बताया गया है, वह) विरोधको नहीं प्राप्त होता है ।
इस प्रकार 'वा' शब्दसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की गई है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका नरकगतितमें उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, उसका
सूत्रमें प्रतिषेध किया गया है । मारणान्तिकसमुदातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने पांच बटे
चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सातवां पृथिवीसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका
मारणान्तिकसमुदात करना संभव नहीं है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी ही सूत्रसे जाना जाता है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि
नारकी मारणान्तिकसमुदात नहीं करते । (यदि करते होते, तो सूत्रमें छह बटे चौदह (१४)
भागके स्पर्शका उल्लेख होता) ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदित्थाण-वेदण-कसाय-वेडविनयसमुग्धादगेहि सम्मान-मिच्छादिहि-असंजदसम्मादिहीहि वडुमाणकाले चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुसं-खेचादो असंखेजगुणो पोसिदो । कारणं खेतिसिद्धं । अदीदकाले वि एदेहि दोहि वि गुण-द्वानेहि एदेहि पदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो चैव पोसिदो, 'असंखेजजोयणवित्थिडा गेरइयसन्वावासा' इदि मणेण संकप्पिय एगावासखेचफलं चउरासीदिलक्खरूवेहि गुणिदे-तिरियलोगस्स असंखेजदिभागमेत्तखेचफलेवलंभादो । सम्मामिच्छादिहीणं मारणंतिय-उववाद-पदा णत्थि । असंजदसम्मादिहीहि मारणंतिय-उववादगेदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुसखेचादो असंखेजगुणो वडुमाणकाले पोसिदो । कारणं खेतिसिद्धं । अदीदकाले मारणंतियसमुग्धादगेहि असंजदसम्मादिहीहि चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, माणुस-खेचादो असंखेजगुणो पोसिदो । कुदो ? सव्वजीवाणं अवक्कमच्छकणियमदंसाणादो, उडुं गच्छमाणजीवाणं पि अप्पणो उप्पचिखेत्तमपवेदूण अंतरकाले चैव दिस-विदिसाणं गमणाभावादो । ण च उप्पचिखेत्तमणखेत्ततरुद्वियाणं पि जीवाणमणियदगमणमत्थि,

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवदस्वस्थान, वेदनासमुदात, कयायसमुदात और चैक्रि-यिकसमुदातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आवि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण क्षेत्ररूपणासे सिद्ध है । अतीतकालमें भी इन दोनों ही गुणस्थानवर्ती नारकी जीवोंने इन्हीं दोनों पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आवि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग ही स्पर्श किया है, क्योंकि, 'असंख्यात योजन विस्तृत नारकियोंके सर्व रूपोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवा भागमात्र क्षेत्रफल पाया जाता है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंने सामान्यलोक आवि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है । इसका कारण क्षेत्ररूपणासे सिद्ध है ।

अतीतकालमें मारणान्तिकसमुदातगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आवि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, सर्व जीवोंके अपकमपदका नियम देखा जाता है (वेलो प्रथम भा. पृ १००) । तथा ऊपर जानेवाले जीवोंके भी अपने उत्पत्ति क्षेत्रको नहीं प्राप्त करके अंतरालकालमें ही निश्चित दिशाको छोड़कर अन्य दिशा या विदिशामें गमन करनेका अभाव है । और न उत्पत्तिक्षेत्रके समान अर्थात् समतल अन्य क्षेत्र पर स्थित जीवोंके भी अनियत गमन होता है, क्योंकि,

एगदिसाए णियदगमणादो; तिरिच्छं गच्छमाणानं पि जीवाणमप्पणो उप्पज्जमाणदिसं मोत्तूण अण्णदिसाणं गमणाभावादो, उप्पज्जमाणदिसं गच्छताणं पि जीवाणं अप्पणो उप्पज्ज-माणखेत्तमणद्वानमपवेदूण अंतराले सव्वत्थ उडुवलणंभावादो । तदो सव्वणिरयावासे-हिंतो माणुसखेत्तमगच्छताणं सम्मादिहीणं गिरयावासपडिड्डिपडिणिणियदवड्डाणं पोसणं चटुण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो चैव । अधवा गेरइयसम्मादिहीणं तत्थत्तणमिच्छादिहीणं (च) घणरज्जुपदरसव्वगासपदेसेहिंतो (ण) 'णिग्गमणमत्थि, मणुसोववादिवात्तादो, गेरइयपडिड्डाणं मणुसगहपाओगाणुपुव्वीणं तिरिक्खगहपाओगाणुपुव्वीणं व पडिड्डा-गासपदेसाणं रज्जुपदरान्हि सव्वत्थाभावादो । किं तदभावलिगम ? एदं चैव पोसणसुत्तं । समीकरणे कदे यदि एक्केणेरइयावासविवखंभो एगसेहिं सेट्ठिविदियवग्गमूलेण खंडियमेत्तो होदि, तो तस्स खेचफलं जगपदरं सेट्ठिपढमवग्गमूलेण खंडियमेत्तं होदि । पुणो अदीद-काले तत्थ ड्ढाहदूण उडुं मारणंतियं मेल्लताणं एदं खेत्तफलं मुहं होदि, संखेज्जरज्जु-

उनका गमन एक दिशामें ही, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्रकी ओर ही, नियत हो चुका है । तिरिछे गमन करनेवाले भी जीवोंके अपनी उत्पत्ति होनेवाली दिशाको छोड़कर अन्य दिशाको गमन नहीं होता है । उत्पत्ति होनेकी दिशाको जाते हुए भी जीवोंके अपने उत्पत्ति होनेके क्षेत्रके समान अन्य स्थानको नहीं प्राप्त करके अंतरालमें सर्वत्र ऋजुवलन अर्थात् सरलगतिले चक्रगति होनेका अभाव है । इसलिये सभी नारकावासोंसे मनुष्यक्षेत्रको जानेवाले और नारकावासमें प्रतिष्ठित होते हुए नियत क्षेत्रकी ओर प्रवर्तमान सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन सामान्यलोक आवि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग ही है ।

अथवा, मनुष्योंमें उत्पत्ति होनेके कारण नारकी सम्यग्दृष्टियोंका वहाँके मिथ्यादृष्टियोंके समान घनराजुप्रतरके सर्व आकाशप्रदेशोंसे निर्गमन नहीं होता है, क्योंकि, नरकगतिले प्रतिबद्ध मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाल जीवोंके समान प्रतिबद्ध आकाश-प्रदेशोंका राजुप्रतरमें सर्वत्र अभाव है ।

शंका—इस सर्वत्र अभावका लिंग क्या है, अर्थात् यह किस आधारसे जाना ?

समाधान—उक्त बातका बतानेवाला यही स्पर्शन-सूत्र है ।

समीकरण करनेपर यदि एक नारकायासका विक्रम एक जगध्रेणीको जगध्रेणीके द्वितीय वर्गमूलसे खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है, तो उसका क्षेत्रफल जगध्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे जगप्रतरको खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है । पुन अतीतकालमें वहाँ रहकर ऊपरकी ओर मारणान्तिकसमुदात करनेवालोंका यह क्षेत्रफल मुखरूप हो जाता है और सत्थात राजुप्रमाण आयाम होता है ।

१ प्रतिपु 'वडुवलण' म. प्रती 'वडुवलणा' इति पाठ ।

२ प्रतिपु कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति ।

आयामो होदि । एत्थ उस्सेधेण खेत्तकलं गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं मारणंति-
खेत्तं होदि चि वुत्ते ण होदि, गिरयावासो ण एको वि एरिसविकखंभसिओ अत्थि ।
कधमेदं परिच्छिज्जेदे ? 'गेरइया अमंजदसम्मादिट्ठी सन्वपदेहि अदीदकाले तिरियलोगस्स
असंखेज्जदिभागं पुसंति' चि सुत्तवयणादो । केत्तिओ पुण गेरइयावासाणं विकखंभो
होदि चि वुत्ते असंखेज्जजोयणमेत्तो होदि । तं जहा-सग-सगसत्थाणखेत्तं द्रुविय सग-
सगविल-संखाए ओवद्धिदे एगविलेण रुद्धखेत्तमसंखेज्जजोयणविकखंभायामं होदि । तं
संखेज्जज्जह्णि गुणिदे एगविलमस्सिदूण मारणंतिखेत्तं होदि । एदं विलसंखाए गुणिदे
सयलं मारणंतिखेत्तं होदि । एदं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं होदि । सव्वाणिरया-
वासाणं खादफलमसंखेज्जजोयणमेत्तं होदूण एगरज्जुपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चैव
होदि । कुदो ? 'असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतिपोसणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो' ति
वयणादो । जदि कहिं पि एकस्स विलस्स खेत्तफलं रज्जुपदरस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि,

शंका—यहांपर अर्थात् उक्त क्षेत्रमें उत्सेधने क्षेत्रफलको गुणा करने पर तो
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि, इस प्रकारके विष्कम्भसे साहित एक भी नारका-
वास नहीं है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'नारकी असंयतसम्यग्दष्टि सर्वपदेकी अपेक्षा अतीतकालमें तिर्यग्लोकके
असंख्यातवै भागमात्र क्षेत्रको स्पर्श करते हैं' इस प्रकारके सूत्र-वचनसे उक्त बात जानी
जाती है ।

शंका—नारकोंके आवासोंका विष्कम्भ कितना होता है ?

समाधान—असंख्यात योजन प्रमाण होता है । वह इस प्रकारसे है— अपना
अपना स्वस्थानक्षेत्र स्थापित करके अपने अपने त्रिलोकी संख्याओंसे अपवर्तन करनेपर एक
विलसे रुद्धक्षेत्र असंख्यात योजन विष्कम्भ और आवासवाला हो जाता है । उसे संख्यात
राजुओंसे गुणा करनेपर एक विलका आश्रय करके मारणान्तिकसमुद्रातगत क्षेत्र हो जाता
है । इस प्रमाणको त्रिलोकी संख्यासे गुणा करनेपर सकल मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है ।
यह मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भागप्रमाण होता है ।

सर्व नारकावासोंका घनफल असंख्यात योजनप्रमाण होकर भी एक राजुप्रतरका
असंख्यातवै भागमात्र ही होता है, क्योंकि, 'असंयतसम्यग्दष्टि नारकोंका मारणान्तिक-
स्पर्शन तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भाग होता है' ऐसा सूत्र-वचन है । यदि कहीं भी एक
विलका क्षेत्रफल राजुप्रतरके संख्यातवै भागप्रमाण होता, तो असंयतसम्यग्दष्टि नारकोंका

तो असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतिपोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं होह, तिरियपद-
वाहल्लादो मारणंतिखेत्तवाहलस्स असंखेज्जगुणत्तादो । पढमपुट्टविसत्थाणखेत्ते सेट्ठीए
संखेज्जदिभागेण गुणिदे असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतिपोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं
होदि चि के वि पच्चवट्ठणं कुणंति । तण्ण घडदे, सत्थाणखेत्तं विलसलागाहि ओवद्धिय
लद्धस्स वगमूलविकखंभेण अद्धरज्जुआयामपोसणखेत्तुवलमादो । ण उट्ठुं गंतूण तिरिच्छं
गच्छंताणं बहुपोसणं, तिरिच्छं गंतूण उट्ठुं गच्छंताणं व, पुट्ठुत्तेणैव विकखंभेण गमणु-
वलंमादो । एवमुक्त्वादस्म वि वत्तव्यं ।

**पढमाए पुट्ठवीए गेरइएसु मिच्छाइट्ठिपुट्ठुडि जाव असंजदसम्मा-
दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥**

सत्थाणसत्थाण—विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविय-मारणंति-उववादाद-
मिच्छादिट्ठीणं परूवणा बहुमाणकाले खेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेउवियसमुग्धादगेदि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले चट्ठुणं लोगणमसंखेज्जदिभागो,

मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता, क्योंकि, तिर्यक्प्रतरके बाह्यसे
मारणान्तिकक्षेत्रका बाह्य असंख्यातगुणा है ।

प्रथम पृथिवीके स्वस्थानक्षेत्रमें जगत्प्रेणीके संख्यातवै भागसे गुणा करनेपर असंयत-
सम्यग्दष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, ऐसा
कितने ही आचार्य समाधान करते हैं । किन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि, स्वस्थान-
क्षेत्रको विलशलाकाओंसे अपवर्तितकर लब्धराशिने वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे कर्धराजु आयाम-
प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । तथा, ऊपर आकर तिरछे गमन करनेवाले जीवोंका
स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है, जैसा कि तिरछे जाकर ऊपर जानेवालोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है;
क्योंकि, पूर्वोक्त ही विष्कम्भद्वारा गमन पाया जाता है ।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि नारकोंके उपपदक्षेत्रका भी
कथन करना चाहिए ।

प्रथम पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दष्टि
नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवै भाग स्पर्श किया
है ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैकृतिक और मारणान्तिक-
समुद्रात तथा उपपादगत मिथ्यादष्टि नारकोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शन-प्ररूपणां क्षेत्र-प्ररूपणांके
समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय, और वैकृतिकसमुद्रातगत
मिथ्यादष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवै भाग

अङ्गुहजादो असंखेजगुणो फोसिदो । कुदो ? असंखेजजोयणविकखं भणियवासखदफलं ठविय तप्पाओगसंखेजविलसलागहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेजदिभागमेचखेवुवलंभादो । मारणंतिय-उववादगेहि मिच्छादिद्विहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो तिरियलोगस्स संखेजदिभागो, अङ्गुहजादो असंखेजगुणो फोसिदो । कथं तिरियलोगस्स संखेजदिभागं ? वुच्चदे—असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपडमपुडवीवाहल्लमि हेट्ठिमजोयणसहस्सं गेरहइहि सक्कालं ण छुप्पदि त्ति कट्ठु जोयणसहस्समवणिय सेस-बाहल्ल रज्जुपदरं ठविय उस्सेधेण एगूणवंचासमेचखंडाणि कादूण पदरगारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेजदिभागो होदि, ' एगरज्जुखंडो सचरज्जुआपदो जोयणलक्ख-बाहल्लो तिरियलोगो ' त्ति उवदेसादो । जे पुण जोयणलक्खवाहल्लरज्जुवडुं तिरियलोग-पमाणं भणंति तेसिखुवदेसेण तिरियलोगादो सादिरयं मारणंतिय-उववादखेत्तं होदि ।

और अङ्गुहद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि असंख्यात योजन विष्कम्भवाले नारकावासोंके घनफलको स्थापित करके तत्साधोय संख्यात विलशाला-काव्योंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके असंख्यातवर्गे भागप्रमाण क्षेत्र उपलब्ध होता है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और अङ्गुहद्वीपसे असं-ख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

----- शंका—यहांपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान—एक लाख अस्सी हजार योजन प्रथम पृथिवीके बाह्यत्वमेंसे नीचेका एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्र नारकियोंने किसी भी समय नहीं हुआ है, ऐसा करके एक प्रमाणमेंसे एक हजार योजन निकालकर शेष एक लाख अस्सी हजार बाह्यत्ववाले राजु-प्रतरको स्थापित करके उत्सेधके उनवास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है, क्योंकि, ' एक राजु खंडवाला, सात राजु लम्बा और एक लाख योजन बाह्यत्ववाला तिर्यग्लोक है ' ऐसा उपदेश है । किन्तु जो आचार्य एक लाख योजन बाह्यत्ववाला और एक राजु गोलाईवाला तिर्यग्लोकका प्रमाण कहते हैं, उनके उपदेशानुसार तिर्यग्लोकसे साधिक मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र होता है ।

विशेषार्थ—यहां पर प्रथम नरकके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग इस प्रकार सिद्ध किया गया है—यदि हम तिर्यग्लोकके एक राजु लम्बे चौड़े व मोटाईके सप्तमाश प्रमाण मोटे खंड करें तो १४२८५६ योजन मोटाई-वाले ४९ खंड होते हैं । अब यदि एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी और एक राजु लम्बी चौड़ी प्रथम पृथ्वीके प्रमाणमेंसे नारकियोंसे सदैव अस्पृष्ट एक हजार योजन मोटा

ण च एदं घड्ढे, एदम्हि उवदेसे पडिग्गहिदे लोगम्हि तिण्णिसदत्तेदालमेचवणरज्जुणम-शुप्पपीदो, ' रज्जु सत्तगुणिदा जगसेढी, सा वणिगदा जगपदरं, सेढीए गुणिदजगपदरं घणलोगो होदि ' त्ति परियम्मसुत्तेण सन्वाहरियम्मदेण विरोहपसंगादो च । कदजुम्मेहि

अघस्तन भाग पृथक् करके शेष १७९००० योजनके एक राजु लम्बे चौड़े ४९ खंड करें तो प्रत्येक खंडकी मोटाई ३६५३३६ योजन प्रमाण होगी जो पूर्वोक्त तिर्यग्लोकके खंडोंकी मोटाईसे लगभग चतुर्थांश पड़ती है । इस प्रकार यह समस्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग सिद्ध हो जाता है । किन्तु लोककी सृदंगाकार मान्यताके अनुसार उक्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं, किन्तु तिर्यग्लोकसे भी अधिक पड़ जाता है, क्योंकि, यदि एक राजु व्यासवाले गोल तथा एक लाख योजन मोटाईवाले तिर्यग्लोकके पूर्वप्रकार ४९ खंड करें तो प्रत्येक खंड एक राजु व्यासवाला गोल तथा २०४०००० योजन मोटा होगा । इसी प्रकार वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्रके खंड भी एक राजु व्यासवाले गोल तथा ३६५३३६ योजन मोटे होंगे और उनका समस्त घनफल वर्तुलाकार तिर्यग्लोकके घनफलसे हीन न रहकर अधिक हो जायगा ।

उदाहरण—

$$(१) \text{ आयत चतुरस्र तिर्यग्लोक } १ \times ७ \times १००००० \text{ यो. } = १' \times \frac{१०००००}{७} \times \frac{४९}{१}$$

$$(२) \text{ उक्त मारणान्तिकक्षेत्र } १ \times १ \times १७९००० = १' \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

$$(३) \text{ वर्तुलाकार तिर्यग्लोक } १ \times ३ \times \frac{१}{४} \times १००००० = \frac{३}{४} \times \frac{१०००००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

(४) वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्र—

$$\frac{३}{४} \times १७९००० = \frac{३}{४} \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

इस प्रकारके उक्त क्षेत्रोंमें प्रथम दूसरेसे १००% = १११% = कुछ कम चौगुना अर्थात् संख्यातगुणा सिद्ध होता है । तथा, चौथा तीसरेसे कुछ कम दुगुणा अर्थात् सातिरेक सिद्ध होता है ।

किन्तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस उपदेशके स्वीकार करनेपर लोका-काशमें तीनसौ तैतालीस घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं होती है । दूसरे, ' राजुको सातसे गुणा करने पर जगध्रेणी होती है, जगध्रेणीको जगध्रेणीसे गुणा करने पर जगप्रतर होता है, और जगप्रतरको जगध्रेणीसे गुणा करने पर घनलोक होता है ' इस सर्वे आचार्योंसे सम्मत परिकर्मे सबसे विरोध भी प्राप्त होता है । पंचेन्द्रियतिर्य्यच, पंचेन्द्रियतिर्य्यचपर्याप्त,

पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणि-जोदिसिय-वैतरदेव-अवहारकालेहि खुद्दाबंघसुत्तसिद्धिं^१ अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे, एदाओ रासीओ सखेदाओ होज्ज ? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा । किं च दव्याणियोगादवक्खणमिह वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पा अभावमुव-डुक्कंते, अवगसमुद्धिलोकादो । तिणिसदत्तेदालघणरज्जुपमाणो उवमालोओ गाम । एदम्हादो अण्णो पंचदव्वाहारलोओ, तदो सव्वमेदं घडदि चि वुत्ते ण, उवमेयाभावे उव-माए अण्णत्थ अणुवलंभादो । तम्हा उवमेयेसु उत्सेह-पमाणंगुलपलिदोवम-सागरोवमसणि-देसु खेच-कालेसु संतेसु उवमाभूदउत्सेह-पमाणंगुल-पल्ल-सागराणमत्थिचुत्तल्लभदे । तम्हा एत्थ वि उवमेएण लोणेण पमाणदो उवमालोगाणुसारिणा पंचदव्वाहारेण होदब्बं, अण्णहा एदस्स उवमालोगाणुववत्तीदो ।

पंचेन्द्रियतियंचयोनिमती, ज्योतिष्क और व्यन्तरदेवोंके खुदाबंघसूत्र-सिद्ध, कृतयुग्मराशिवाले अवहारकालोंसे अकृतयुग्म जगप्रतरमें भाग देने पर ये उक्त राशियां सछेद हो जायेंगी, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उन जीवोंके छेदका अभाव है । (कृतयुग्म आदि राशियोंके लिये देखो तीसरा भाग, पृ. २४९.)

दूसरी बात यह है कि द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अधस्तन और उपरिम विकल्प अभावको प्राप्त होते हैं, क्योंकि, उक्त प्रकारसे लोक वर्गविहीनराशिसे समुत्पन्न होता है ।

शंका—तीन सौ तैतालीस घनराजुप्रमाण लोकका नाम उपमालोक है । इससे अन्य पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक भिन्न है । यदि ऐसा माना जाय, तो यह सब उपर्युक्त कथन घटित हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाकी अन्यत्र उपलब्धि नहीं होती है । अर्थात् यदि उपमाके योग्य किसी पदार्थका अस्तित्व न माना जायगा, तो फिर उपमाकी सार्थकता कहाँ पर होगी ? इसलिए उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल सक्षिक क्षेत्ररूप उपमेयोंके तथा पल्योपम और सागरोपम संक्षिक कालरूप उपमेयोंके विद्यमान होने पर उपमारूप उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, पल्य और सागरका अस्तित्व पाया जाता है । अतएव यहाँ पर भी उपमेयरूप लोकके साथ प्रमाणकी अपेक्षा उपमालोकका अनुसरण करनेवाला पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक होना चाहिए, अन्यथा इसका नाम उपमालोक हो नहीं सकता ।

^१ सछेण पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणि पंचिदियतिरिक्खवज्जत्तएहि पदमभिरिदि देवअवहारकालोदो असखेज्जणहीणेण कालेण सखेज्जणहीणेण कालेण सखेज्जणहीणेण कालेण असखेज्ज-शुद्धीणेण कालेण ॥ खुदावसुत्त, अ प्र प. ५१९ एदे अवहारकाले न्हाक्रमेण सलागभूदे ठविच पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तपमाणेण जगपदरे जमहिरिक्खमाने बला-गाओ जगपदर ण जुगम समप्पति । अवठा. अ. ३. प. ५१९.

सासणसम्माइट्ठि-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणं-तियसमुग्धादगदखेचपरूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्धादगदेहि सासणसम्माइट्ठिहि अदीदकाले^१ चट्ठणं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, माणुसखेचादो असंखेज्जणुणो फोसिदो । एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा मिन्हा-

विशेषार्थ—यहाँ घवलाकारने लोककी घर्तुलाकार मान्यताके विरुद्ध पांच हेतु, दिये हैं । जो इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यलोकका संख्यातवा भाग कहा गया है । किन्तु यदि लोकको आयतचतुरस्र न मानकर घर्तुलाकार माना जावे तो वह क्षेत्र तिर्यलोकसे हीन नहीं किन्तु साधिक हो जाता है । (देखो पृ. १८४)

(२) परिकर्ममें राजु, जगत्त्रेणी, जगप्रतर और लोकका सम्यन्ध वतलाकर घनलोकको ३४३ राजुप्रमाण सिद्ध किया है । यह प्रमाण व व्यवस्था घर्तुलाकार लोकमें नहीं पाई जाती ।

(३) खुदाबंघमें पंचेन्द्रियतियंच, पंचेन्द्रियतियंचपर्याप्त, पंचेन्द्रियतियंच, योनिमती, ज्योतिषी और व्यन्तर देवोंके अवहारकालोंको कृतयुग्मराशि अर्थात् चारसे पूर्णतः भाजित होनेवाला कहा है, और इनसे जगप्रतर निरवशेष भाजित हो जाता है, जिससे जगप्रतर भी कृतयुग्मराशि सिद्ध हुआ । किन्तु घर्तुलाकार लोककी मान्यतामें जगप्रतर अकृतयुग्मरूप पड़ेगा जिससे उक्त अवहारकालोंद्वारा वह पूर्णतः भाजित नहीं होनेसे वे पंचेन्द्रिय तियंच, पर्याप्त, योनिमती आदि राशियां सछेद हो जाती हैं ।

(४) द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें गुणस्थानों व मार्गणास्थानोंके भीतर जीवोंका प्रमाण उपरिमविकल्प और अधस्तनविकल्पों द्वारा भी समझाया गया है । किन्तु यदि लोकको उक्त प्रकार घर्तुलाकार मान लिया जाय तो उसमें वर्ग व वर्गमूल प्रमाण नहीं प्राप्त होनेसे वे विकल्प घन ही नहीं सर्वेण । (देखो तीसरा भाग, प्रस्तावना पृ. ४८)

(५) यदि यह कहा जाय कि तीन सौ तैतालीस राजुप्रमाणवाले लोकको द्रव्याधार लोक न मानकर केवल कल्पित उपमालोक ही माना जाय, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाका अस्तित्व ही नहीं रहता है । तथा अंगुल, पल्योपम, सागरोपम आदि जो अन्य उपमाप्रमाण माने गये हैं उन सबके आधाररूप उपमेय प्राप्त हैं । अतः प्रमाणलोकको भी काल्पनिक न मानकर सोपमेय ही स्वीकार करना आवश्यक है ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियकं और मारणान्तिक-समुदातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके चतर्मानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियकसमुदातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंस्थिततां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंस्थितगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँ पर

१ क-क प्रयोः 'अदीदकाले' इति पाठो नास्ति ।

दिद्विसमाणा । मारणंतियममुग्धादगेदेहि तिहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुमखेचादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ कारणं मिच्छाईद्वीणं व वत्तन्नं ।

सम्माभिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणं अप्पणो मच्चपदाणं वट्टमाणकाले खेत्त-भंगो । एदेहि दोहि गुणद्वानेहि अदीदकाले सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्धादगेदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाईज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो, एगणिरयावासस्स अमंखेज्जवणं गुलाणि ठरिय तप्पाओगाहि सखेज्जविल-सलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदं सणादो । मारणंतिय-उववादगेदेहि अमंजदसम्मादिद्वीहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाईज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । कुदो ? सदुक्खं भट्टुवाहाणं खादफलस्स तिरियलोगस्स अमखेज्जदिभागचुवलं भादो । जदि वि उट्ठं गंतूग समनिलवगमूलविकखं भेण मणुसगाइं गच्छति, तो वि तिरियलोगस्सा-संखेज्जदिभागो, तिरिच्छेण लट्ठखेत्तस्स विलखेत्तवगमूलगुणिदेसेदोए संखेज्जदिभाग-पमाणचादो । एदमत्थपदं सब्बत्थ जहासंभं जणिज्जण जोजियव्वं ।

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी रपशतक्षेत्रकी प्ररूपणा मिथ्याद्यष्टिगुणस्थानके समान है । मारणा-नितकसमुदागत नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी सपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्य तवां भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँ पर कारण मिथ्याद्यष्टियोंके समान कहना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्याद्यष्टि और अन्यतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके अपने सवंपदोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और चैत्तिकसमुदागत उक्त दोनों ही गुणस्थानवाले जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातया भाग और अट्टाईद्वीपमे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, एक नारकावासके असंख्यत वनांगुल्लोको स्थापन करके तत्प्रा-योग्य सख्यात विलशालाकावोसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्र देखा जाता है । मारणान्तिकसमुदागत और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातया भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणीवद्वादि बिलोंके मारणात्तिक व उपपादगत उक्त नारकीयोंका) अपने दोनों ओरके दंडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका वनफल तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग पाया जाता है ।

यद्यपि ऊपर जाकर अपने बिलके वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे नारकी मनुष्यगतिको जाते हैं, तो भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही स्पर्शनक्षेत्र रहता है, क्योंकि, तिरिच्छे-रूपसे लघ्व उस क्षेत्रका प्रमाण, बिलसम्बन्धी क्षेत्रके वर्गमूलसे गुणित अगोत्रेणीका सख्या-तया भाग ही होता है । यह अर्थपद सत्यं यथासंभव जान करके जोड़ना चाहिए ।

विदियादि जाव छट्टीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिद्वि-सासण-सम्मादिद्वीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१७॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगेद-मिच्छादिद्वीणं उववादगिरिहिदेसपदद्विदसासणसम्मादिद्वीणं च परूवणाए सेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिवट्टाचादो ।

एग वे तिणि चत्तारि पंच चोइसभागा वा देसूणां ॥ १८ ॥

एत्थ 'वा' सद्वच्चिदत्थं ताम वत्तइस्मांभो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउव्वियसमुग्धादगेदेहि विदियादि पंचपुटविमिच्छादिद्वि-सासणमज्जादिद्वीहि चटुण्हं लोगणममंखेज्जदिभागो, अट्टाईज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोमिदो । एत्थ कारणं पुनं व वत्तन्नं । मारणंतिय-उववादगेदेहि मिच्छादिद्वीहि अदीदकाले एगो चोइस-भागो विदियाए पुढवीए फांसिदो । तदियाए ने चोइसभागा, चउत्थीए तिणि चोइसभागा,

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकीयोंमें मिथ्या-द्यष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, चैत्तिक और मारणान्तिक-समुदागत तथा उपपादगतको प्राप्त मिथ्याद्यष्टि नारकी जीवोंकी तथा उपपादविरहित और श्रेय पदमतिष्ठित सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा वर्तमानकालसे प्रतिबद्ध होनेसे क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीणि, चार और पांच भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८ ॥

यहाँपर पहले 'वा' शब्दसे सूचित अर्थको कहने हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और चैत्तिकसमुदागत द्वितीयादि पांच पृथिवियोंके मिथ्या-द्यष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकीयोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । यद्वापर कारण पूर्वके समान ही यहना चाहिए । दूसरी पृथिवीमें मारणान्तिकसमुदागत और उपपादगत मिथ्याद्यष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें एक बड़े चौदह (१६) भाग स्पर्श किया है । तीसरी पृथिवीके नारकी जीवोंने दो बड़े चौदह (१६) भाग, चौथी पृथिवीके नारकीयोंने

१ द्वितीयादिगु प्राप्तसत्था मिथ्याद्यष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्थानसंख्यमाण, एकः दो त्रयः चत्वारः पञ्च षट्संख्या वा दशोना । स ति १, ८.

पंचमाए चत्तारि चोइसभागा, छट्ठीए पंच चोइसभागा. सन्वत्थ गेरइयाणमगम्मखेत्तण्णा सि वत्तञ्जं । एवं सासणसम्मादिट्ठीणं पि वत्तन्न । णवरी उववादो णत्थि । किमद्वमेदसि- मदीदकाले एत्थिं खेत्तं होदि ? गिगमण-पवेसणं पडि सम्मादिट्ठीणं व णियमाभावा । भोगभूमिसंठाणमंठिदा असंखेज्जदीव-समुद्धा गेरइएहि कथं पुत्तिज्जंति ? ण, तत्थ वि गेरइयाणं गिगमण पवेसं पडि विरोहाभावादो ।

सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

एदेसिं दोण्हं गुणद्वयणं वट्टमाणकाले सत्थाणादिपंचपदद्वियाणं मारणंतिपदद्विय- असंजदसम्मादिट्ठीणं च परुवणाए खेत्तमंगो । एदेहि चैव अदीदकाले सत्थाणादिपंचपद- तीन घटे चोइह (१३) भाग, पांचवीं पृथिवीके नारकियोने चार घटे चोइह (१४) भाग और छठी पृथिवीके नारकियोने पांच घटे चोइह (१५) भाग प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है । इन सभी पृथिवियोंके नारकियोंका देशोन क्षेत्र नारकियोंके अगम्यक्षेत्रसे कम कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उक्त पृथिवियोंके सर्व पदगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है ।

शंका—उक्त नारकियोंका अतीतकालमें इतना (सूत्रोक्त) स्पर्शनक्षेत्र क्यों होता है ? समाधान—इतना अधिक स्पर्शनक्षेत्र इसलिए होता है कि उक्त पृथिवियोंमें निर्गमन और प्रवेशनके प्रति अर्थात् जोग और आनेकी अपेक्षा रुम्यग्दृष्टि जीवोंके समान मिथ्यादृष्टि जीवोंका नियम नहीं है ।

शंका—भोगभूमिकी रचनासे सस्थित असंख्यत द्वीप-समुद्र नारकियोने कैसे स्पर्श किये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहाँपर भी नारकियोंका निर्गमन और प्रवेश होनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् मारणान्तिकसमुद्रतकी अपेक्षा नारकी जीवोंका उक्त क्षेत्रमें प्रवेश और निर्गमन बन जाता है ।

द्वितीय पृथिवीमे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्या- तवां भाग स्पर्श किया है ॥ १९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकृत्यिकसमुद्रात, इन पांच पदोंपर स्थित नारकी जीवोंकी तथा मारणान्तिकपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी वर्तमानकालमें स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके उक्त गुण-

द्विदेहि मारणंतिपदद्विदअसंजदसम्मादिट्ठीहि य विदियादि-छट्ठिविविसेसिएहि चटुण्हं लोगमसंखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जदो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कारणं पुव्वं व वत्तन्नं । विदियादि-छसु पुटवीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो णत्थि ।

सत्तमाए पुटवीए गेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणखेत्तपरुवयं, उवरिमत्तेण अदीदाणगदकालोमिसिहुसंचपरुव- णादो । एदस्स परुवणाए खेत्तमंगो ।

छ चोइसभागा वा देसूणा ॥ २१ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारविदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुद्वादगेदेहि मिच्छा- दिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु चटुण्हं लोगमसंखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जदो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तन्नं । एसो 'वा' सदत्थो । मारणंतिप-उववादगेदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु छ चोइसभागा चित्ताए जोयणतहस्सेणूण हेदिमचट्ठिहि

स्थानवर्ती स्वस्थानादि पांच पदस्थित जीवोंने और मारणान्तिपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यतवां भाग और अजड- द्वीपसे असंख्यतगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए । द्वितीयादि छह पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

सातवीं पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यतवां भाग स्पर्श किया है ॥ २० ॥

यह सूत्र वर्तमानकालिक क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेवाला है, न्यौकि, आगेके सूत्रद्वारा अतीत अनागत कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है । इसकी अर्थात् वर्तमानकालके स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह घटे चोइह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारपत्त-स्थान, वेदना, कषाय और वैकृत्यिकसमुद्रातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यतवां भाग और अजडद्वीपसे असंख्यतगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँ पर भी कारण पूर्वके समान कहना चाहिए । यही 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्रात और उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागतकालमें चित्रा पृथिवीके एक

सहसेहि ऊणा फोसिदा । न केवलं हेट्टिल्लजोयेणेहि चैव ऊणा, किंतु अण्णो वि देसो लोग्गालीए अमंतरे गेरइएहि अचुत्तो अत्थि । तं कथं गव्वदे ? ' विदियाए पुढवीए एगो चोइसभागो देखणो ' इदि सुचवयणादो । अण्णहा एदस्स देखणत्तं पिंडिदूणं संपुण्णो एगो चोइसभागो होज्ज, चिचाए जोयणसहसपवेसादो । एत्थ पुणो केण खेत्तेणूणे एगो चोइसभागो चि वुत्ते वुच्चदे-गिरयगइपाओगाणुप्पि-पंचिदितिरिक्खगइपा-ओगाणुप्पुच्चीहि पडिबद्धखेत्तं मोत्तूण अण्णखेत्तेणूणो । चादरुद्धसव्वखेत्तेणत्तं फिण्ण वुच्चदे ? न, तत्थ वि आणुप्पिबिवागपाओगखेत्ताणं संभवं पडि विरोहाभावादो ।

सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२ ॥

इजार योजनसे कम और अघस्तन चार पृथिवीयोंसम्बन्धी चार हजार योजनसे कम छह बटे चौदह (१५) भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर केवल पृथिवीयोंके अघस्तन एक एक हजार योजनसे ही कम क्षेत्र नहीं समझना, किन्तु अन्य भी देश (क्षेत्र) लोक-नालीके भीतर नारिकीयोंसे अछूता (असृष्ट) है ।

शुक्रा—यह कैसे जाना ?

समाधान—' द्वितीय पृथिवीका स्पर्शन देशोन एक बटे चौदह भाग है ' इस सूत्र-बचनसे उक्त बात जानी जाती है । यदि ऐसा न माना जाय, तो इस पृथिवीका देशोन क्षेत्र पिंडित अर्थात् एकत्रित होकर सम्पूर्ण एक बटे चौदह (१५) भाग हो जायगा, क्योंकि, चित्रा पृथिवीका एक हजार योजन उस एक रात्रुमें ही प्रविष्ट है ।

शुक्रा—यहां पर एक बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम कहा है ?

समाधान—पैसी आशका करनेपर उत्तर देते हैं कि नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और पंचेन्द्रियतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन दोनोंसे प्रतिबद्ध क्षेत्रको छोड़कर अन्य दोष क्षेत्रसे कम कहा है ।

शुक्रा—वायुसे रुके हुए सर्वक्षेत्रसे कम उक्त क्षेत्र क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर भी आनुपूर्वीनामकर्मके विपाकके प्रायोग्यक्षेत्रके संभव होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारिकीयोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २२ ॥

१ म प्रती ' परेदो ' इति पाठ ।

२ क्षेत्रनिमित्तीकस्यासंख्यमाण । स. वि. १, ८

एदंसि तिण्हं गुणद्वगणं सत्तमाए पुढवीए मारणंतिय-उववादपदा णत्थि । सेसपंच-पददिट्ठिहि तिण्णिगुणद्वगजीवेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु चट्ठण्हं लोग्गणमसंखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कारणं पुवं व वत्तव्वं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, ओघं ॥ २३ ॥

सत्याणसत्याण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठिहि तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदित्थ्याणपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोग्गणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । असंखेज्जेसु समुदेसु तसजीवविरहिदेसु कथं विहारवदित्थ्याणपरिणदाणं तिरिक्खणं संभवो ? न तत्थ पुव्ववेरियेदेवाणं पयोगदो विहारविरोहाभावादो । अदीदकाले विहरंतविरिक्खेहि दुत्तखेचायणविहाणं वुच्चदे-पुव्ववेरियेदेवपयोगदो उवरि जोयणलक्खं-

इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीवोंके सातवीं पृथिवीमें मारणान्तिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । दोष स्वस्थानादि पांच पदोंपर विद्यमान उक्त तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ओघके समान सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंने मृत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारयत्थस्थानसे परिणत तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातव भाग और अदार्ढ्यीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुक्रा—त्रस जीवोंसे विरहित असंख्यात समुद्रोंमें विहारवत्स्थानसे परिणत हुए तिर्यंचोंका अस्तित्व कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वभूतके वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमें कोई विरोध नहीं है । और इसलिये यहां पर उनका अस्तित्व भी संभव है ।

अब अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पर्श किये गए क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—पूर्वभूतके वैरी देवोंके प्रयोगसे चित्रा पृथिवीसे ऊपर एक लाख क्षेत्र

१ तिर्यंगती तिग्गां तिर्यग्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकं स्पृष्ट । ब. ति. १, ८.

२ वा प्रती ' द्युच ' इति पाठः ।

चित्तमेरु-कुलसेल-कुंडल-रुजग-माणसुचर-णगिंदवरपन्वदादिरुद्धखेत्तं मोत्तूण सन्वं फुसंति
 चि लक्खजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उट्ठमणूणवंचासंखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे
 तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेचखेत्तं होदि । वेउव्वियसमुग्घादगदणं वट्ठमाणकाले
 खेचमंगो । तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोमाणं संखेज्जदिभागो, देहि लोगेहिंतो असंखेज्ज-
 गुणो फोसिदो । कारणं, वाउकाइयर्जावा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेचा विउव्वण-
 वस्समा वट्ठमाणकाले होति, ते रज्जुपदरं पंचरज्जुबाहल्लं अदीदकाले फुसंति चि ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेतम्मि पल्लविदो ।

सत्त चोद्दसभगा वा देसूणा ॥ २५ ॥

एतथ 'वा' सद्वहो वुचचे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-
वेजब्बियसमुग्घादगदसासणसम्मादिद्विहिं तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागे,

मेरुप्रमाण, तथा कुलाचल, कुंडलगिरि, रुचकगिरि, मानुयेचर और नगेन्द्रवर पर्वतादिकोंसे कछु क्षेत्रको छोड़कर सभी तिर्यच सर्व द्वीप और समुद्रोंका स्पर्श करते हैं। इसलिये एक लाख योजन बाह्यवाले राजुप्रतरको स्थापन कर ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र हो जाता है। वैदिक-यिकसमुद्रातगत तिर्यचोंका स्पर्शन वर्तमानकालमें क्षेत्ररूपणके समान है। अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीपमके असंख्यातवें भागमात्र वायुकाधिक जीव वर्तमानकालमें चिक्रिया करनेमें समर्थ होते हैं; और वे पांच राजु बाह्यवाले एक राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रको अतीतकालमें स्पर्श करते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टिं तिर्यञ्च जीवोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणमें कहा जा चुका है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिं तिर्यचने भूत और भविष्यकालकी अपेक्षा कुछ कम सात घटे बौद्ध भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५ ॥

इस सूत्रमें स्थित 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्भातगत सासादनसम्यग्दष्टि जीवोंने अतीत और

२ गो जी २५८.

२ प्रतिष्ठा 'फोषिद' इति पाठो नास्ति ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासख्येयमाग सप्त ऋतुर्दसमागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

एदस्स एया सलागा होदि १ । एदेण पमाणेण लवणसमुद्रे कीरमाणे सो जंजू-
दीवादो खेत्तगुणिदेण चउवीसगुणो होदि । बुत्तं च-

वाहिस्सईवगो अब्भतरसुहवगपहिणो ।

जंजूदीवपमाणा खंडा ते होति चउवीसा' ॥ ५ ॥

एदीए गाहाए सन्वेसिं दीव-समुदाणं पुथ पुथ खेत्तफलसलागाओ आणेदग्वाओ ।
तथ अट्ठण्हं खेत्तफलसलागाओ एदाओ-

[१ | २४ | १४४ | ६७२ | २८८० | ११९०४ | ४८३८४ | १९५०७२]

लवणसमुद्रे खेत्तफलवृत्तपण्यो पमाणेण एगं होदि । लवणसमुद्रे पमाणेण धादहसंडमिह
कीरमाणे छगुणो होदि । कालोदयसमुदो अट्ठावीसगुणो होदि । पोक्सरदीवो वीसुत्तर-
सदगुणो होदि । पोक्सरसमुदो चटुसदछण्णउदिगुणो होदि । एवं लवणसमुद्रे जंजूदीव-

इसकी अर्थात् जम्बूद्वीपके उक्त क्षेत्रफलकी एक शालाका (१) होती है । इस प्रमाणसे
लवणसमुद्रका माप करनेपर वह जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे चौबीस गुणा होता है । कहा भी है-
लवणसमुद्रकी बाह्यसूचीके वर्गको उसीकी आभ्यन्तर सूचीके वर्गके प्रमाणसे कम
करनेपर जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलप्रमाण उसके चौबीस खंड होते हैं ॥ ५ ॥

इस गायोके अनुसार समस्त द्वीप और समुद्रोंकी पृथक् पृथक् क्षेत्रफल शालाकाएं
ले आना चाहिए । उनमेंसे आठ द्वीप-समुद्रोंकी क्षेत्रफल शालाकाएं इस प्रकार होती हैं-
१, २४, १४४, ६७२, २८८०, ११९०४, ४८३८४, १९५०७२.

उदाहरण—(१) लवणसमुद्र-बाह्यसूची ५ लाख , आभ्यन्तरसूची १ लाख योजन.

$$५' - १' = २५ - १ = २४.$$

(२) धातकीखंडद्वीप-बाह्यसूची १३ लाख, आभ्यन्तरसूची ५ लाख योजन.

$$१३' - ५' = १६९ - २५ = १४४.$$

(३) कालोदधि-बाह्यसूची २९ लाख, आभ्यन्तरसूची १३ लाख योजन.

$$२९' - १३' = ८४१ - १६९ = ६७२ । इत्यादि ।$$

लवणसमुद्रका उत्पन्न हुआ क्षेत्रफल अपने प्रमाणकी अपेक्षा एक होता है । लवण-
समुद्रके प्रमाणसे धातकीखंडका प्रमाण करनेपर धातकीखंड छह गुणा होता है । कालोदधि-
समुद्र अट्ठावीसगुणा है । पुष्करवर्षद्वीप एक सौ बीसगुणा है । पुष्करवर्षसमुद्र चारसौ छयानवे
गुणा है । इस प्रकारसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाणशालाकाओंसे द्वीप और सागरोंसम्बन्धी

१ बारिस्सईवगो अब्भतरसुहवगपहिणो । कवस्स कसिमिह रिरे पण्डितीवदिबंभपमानं ॥ ति प.
५, १९०. बारिस्सईवगं अब्भतरसुहवगपहिणं । जंजूवासिमिमे ठप्पियेत्ताणि क्कणि । वि. सा ३१९.

सलागाहि दीव-सायरजंजूदीवसलागाओ ओवड्डिय गुणगारा उप्पोदेदग्वा । १।६।२८।
१२०।४९६।२०१६।८१२८ । एवं ठविदगुणगारसलागाहि लवणसमुद्रे जंजूदीवसलागाओ
गुणिय जंजूदीवजोयणपदराणि गुणिदे इच्छिददीव-सायरणं खेत्तफलं होदि । संपहि समुदाणं
चेव खेत्तफलमाणेदुभिच्छामो ति अप्पो इच्छिद-इच्छिदसमुदाणं लवणसमुद्रे गुणगार-
सलागाणयविधानं वुत्तदे- लवणोदयसमुदाओ कालोदयसमुदो खेत्तफलेण अट्ठावीसगुणो ।
तमिह उप्पाइज्जमाणे दो रूवे ठविय पठमस्स चट्ठी गत्थि चि एगरूवमवणिय सेसेगरूवं
विरलिय सोलस दाट्ठण अण्णोणभासे कदे सोलस होति । ते दुगुणिय चचारि अत्रणिदे
कालोदयसमुदस्स अट्ठावीस गुणगारसलागा उप्पज्जंति । तेहिं लवणोदयसमुदस्स

जम्बूद्वीपप्रमाण शालाकाएं अपवर्तितकर गुणमार उत्पन्न करना चाहिए जो इस प्रकार आते
हैं— १, ६, २८, १२०, ४९६, २०१६, ८१७८ ।

उदाहरण—(१) लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपशालाकाएं २४। ल. स. की द्वीप सा. सम्बन्धी
शालाकाएं २४ । ३४' = १ लवणसमुद्रकी गुणकारशालाका ।

(२) धातकीखंडद्वीपकी प्रमाणशालाका १४४। १४४' = ६ गुणकारशालाकाएं ।

(३) कालोदकसमुद्रकी प्रमाणशालाका ६७२ । ६७२' = २८ गुणकार-
शालाका । इत्यादि ।

इस प्रकार स्थापन की गई गुणकारशालाकाओंसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाण
शालाकाओंको गुणित करनेपर पुन उस जम्बूद्वीपके प्रतरात्मक योजनोंसे गुणा करनेपर
इच्छित द्वीप और सागरोंका क्षेत्रफल आता है ।

उदाहरण—(१) धातकीद्वीप-गुणकारशालाका ६।

$$६ \times २४ \times ७९०५६९४१५० \text{ धातकीद्वीपका क्षेत्रफल ।}$$

(२) कालोदधि-गुणकारशालाका २८।

$$२८ \times २४ \times ७९०५६९४१५० \text{ कालोदधिका क्षेत्रफल ।}$$

(३) पुष्करद्वीप-गुणकारशालाका १२०।

$$१२० \times २४ \times ७९०५६९४१५० \text{ पुष्करद्वीपका क्षेत्रफल । इत्यादि ।}$$

भब केवल समुद्रोंका ही क्षेत्रफल निकालना चाहते हैं, इसलिए अपने अपने इष्ट
समुद्रोंकी लवणसमुद्रप्रमाण गुणकारशालाकाओंके निकालनेका विधान करते हैं—

लवणोदकसमुद्रसे कालोदकसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा अट्ठावीस गुणा है । उसे
बलान करनेके लिए दो रूपको स्थापनकर प्रथमसमुद्रकी बुद्धि नहीं है, इसलिए एक रूप
कमकर दोय एक रूपको विरलन कर उसके ऊपर सोलह बेकर परस्परमें गुणित करनेपर
सोलह ही होते हैं । उन्हें दूना कर उनमेंसे चार कम कर देने पर कालोदकसमुद्रकी अट्ठावीस
गुणकारशालाकाए उत्पन्न होती है ।

१, ४, २५.]

छक्खंडागमे जीवद्वानं

[१९७]

खेचफले गुणिदे कालोदयसमुद्रस्स खेचफलं होदि । लवणसमुद्रदो पोक्खरसमुद्रो खेचगुणिदेण चत्तारिसदछण्णउदिमच्चगुणो होदि । तस्मिं गुणगारे आणिज्जमाणे तिण्णि समुद्रा चि कट्ठु रूवूणं करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्ण-म्मासे कदे वेसदछप्पणा होति । ते दुगुणिय पुघ ड्विय पुणो पुव्विल्ल-विरलणमेव विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णगुणं करिय उप्पणारासिं दुगुण-रासीदो अविणिदे पोक्खरसमुद्रस्स गुणगारसलागा होति । तेहि लवणसमुद्रखेचफले गुणिदे पोक्खरसमुद्रस्स खेचफलं होदि । पुणो चउत्थसमुद्रो लवणसमुद्रं दट्ठणट्ठानीसदाहिय अट्ठसहस्सगुणो होदि । एदस्स गुणगारस्स उप्पत्ती वुच्चदे- चत्तारि रूवूणे करिय विर-लिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णगुणे कदे छण्णउदिरूवाहियचत्तारिसहस्साणि होति । ते दुगुणिय पुघ ड्विय पुव्विल्लविरलणारासिं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्ण-

उदाहरण—कालोदयि लवणसमुद्रसे दूसरा समुद्र है, अतः क्रमशालाका २

२ - १ = १, १ = १६, १६ × २ = ४ = २८. कालोदकसमुद्रकी गुणकारशालाका.
कालोदकसमुद्रकी गुणकारशालाकाओं द्वारा लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । लवणसमुद्रकी अपेक्षा पुष्करसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा चारसौ छयानवे गुणा है । उसका गुणकार निकालनेके लिए पुष्करसमुद्र तीसरा है, इसलिये तीनमेंसे एक कम करके शेष वच्चे दोका विरलनकर एक एक रूपके प्रति सोलह देकर परस्परमें गुणा करने पर दो सौ छप्पन होते हैं । उन्हें दुगुणा करके पृथक् स्थापित कर पुन पहिलेके विरलनको ही विरलित कर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर और परस्परमें गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे उसीकी दूनी राशिमेंसे घटाने पर पुष्करसमुद्रकी गुणकारशालाकापं होती है ।

उदाहरण—पुष्करसमुद्रकी क्रमशालाका २.

३ - १ = २; १६ × १६
१ १ = २५६, २५६ × २ = ५१२.

विरलनराशि २; १ १ = १६, ५१२ - १६ = ४९६ पुष्करसमुद्रकी गुणकारशालाका.
इन गुणकारशालाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर पुष्करसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । पुनः चौथा समुद्र लवणसमुद्रको देखते हुए आठ हजार एक सौ अठ्ठाईस गुणा है । इस गुणकारकी उत्पत्ति कहते हैं—

चारमेंसे एक कम करके शेषको विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छयानवे होते हैं । उन्हें दुगुणाकर पृथक् स्थापनकर पहिलेकी विरलनराशि को विरलित कर रूपके प्रति चार देकर परस्पर गुणा करनेपर

१९८]

फोसणगुणमे तिरिक्खफोसणपरूवणं

[१, ४, २५.]

गुणे कदे चउत्तही उप्पज्जदि । पुणो पुव्विल्लदुगुणिदरासिमिह एदमवणिदे चउत्थसमुद्रस्स गुणगारसलागा होति । एदाहि लवणसमुद्रखेचफले गुणिदे चउत्थसमुद्रखेचफलं होदि । एवमणेण जीवपदेण सव्वसमुद्राणं खेचफलमाणेदन्वं ।

तथ्य सव्वपिच्छमस्स संयंभुरमणसमुद्रस्स खेचफलाणयणं मण्णेदे- दीव-सागर-रूवाणि अद्धिदे समुद्रसंखा होदि । ताओ समुद्रसलागाओ रूवूणाओ करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णमत्थे कदे जोयणलक्खवणेण छत्तीससदरूवाहिय-तिसहस्सपदुप्पणेण जगपदरमिह भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो एदं दुगुणिय पुघ ड्विय पुव्विल्लविरलणं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णमत्थे कदे छप्पणजोयणलक्खाए सेटिं खंडेदूण एगखंडमागच्छदि । तं पुव्विल्लदुगुणिदरासिमिह अवणिदे संयंभुरमणसमुद्रस्स गुणगारसलागा होति । एदाहि लवणसमुद्रखेचफले गुणिदे

सौसठ संख्या उत्पन्न होती है । पुनः पहिलेकी दुगुणित राशिमेंसे इस राशि को कमा देनेपर चौथे समुद्रकी गुणकारशालाकापं हो जाती है ।

उदाहरण—चतुर्थसमुद्रकी क्रमशालाका ४;

४ - १ = ३; १६ × १६ × १६
१ १ १ = ४०९६, ४०९६ × २ = ८१९२.

४ × ४ × ४ = ६४; ८१९२ - ६४ = ८१२८ चतुर्थ समुद्रकी गुणकारशालाका.
इन गुणकारशालाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करनेपर चौथे समुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । इस प्रकार इस उक्त बीजपदसे सभी समुद्रोंका क्षेत्रफल निकालना चाहिए ।

उनमें सबसे अन्तिम जो स्वयंभूरमणसमुद्र है, उसके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान कहते हैं—सर्वद्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है, उसे आधा करने पर सर्व समुद्रोंकी संख्या हो जाती है । उन समुद्रशालाकाओंको एक कम करके विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर आपसमें गुणा करने पर तीन हजार एक सौ छत्तीससे गुणित एक लाख योजनके वर्गसे जगप्रतमें भाग देने पर एक भाग आता है । पुनः इसे दूना करके पृथक् स्थापित कर पहिलेके विरलनको विरलितकर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर आपसमें गुणा करने पर छप्पन लाख योजनके प्रमाणसे जगश्रेणीको खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है । उसे पहिले दूनी की गई राशिमेंसे घटा देनेपर स्वयंभूरमण समुद्रकी गुणकारशालाकापं हो जाती है ।

सयंभुरमणसमुद्रस्स खेत्तफलं जगपदरस्स वासीदिभागो सादिरेगो होदि' । एत्थ करणगाहा-

सोलह सोलसहिं गुणे रुवूणोवहिसलगसंखा ति ।

दुगुणमिह तमिह सोहे चउक्कपहद चउक्कं तु ॥ ६ ॥

संपदि सन्वसमुद्राणं खेत्तफलसंकलणा बुच्चदे-लवणसमुद्रस्स एगा गुणगारसलगा, कालोदयसमुद्रस्स अट्ठावीस । एदेसिं संकलणमाणिज्जमाणे ' रूपेणमादिंसुणमेकोनगुणो-न्मथितमिच्छा' एदेण अज्जाखंडेण आणेदव्वं । एगमादिं कादूण सोलसगुणकमेण गदा चि

इत शालाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणित करनेपर स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल जगप्रतरका साधिक व्यासीवां भाग आता है । इस विषयमें करणगाथा इस प्रकार है—

विवक्षित समुद्रकी क्रमशालाकाकी संख्यामेंसे एक कम करके शेष संख्याके प्रमाण सोलहको सोलहसे गुणाकर उपलब्ध राशिको दूना कर दे और विरलन राशिप्रमाण चारको चारसे गुणाकर लब्धको उस द्विगुणित राशिमेंसे घटा देनेपर विवक्षित समुद्रकी गुणकार-शालाकाएं आ जाती हैं ॥ ६ ॥

उदाहरण—सर्वद्वीप-समुद्रोंकी संख्या = २४, सर्वसमुद्रोंकी संख्या $\frac{२४}{२} = १२$

$$१६ - १ = १५ \text{ (जगप्रतर)} = १५, १५ \times २ = ३०$$

$$४४ - १ = \frac{४३}{५६००००} = ४३, ४३ - ४३ = ० \text{ स = स्वयंभूरमणसमुद्रकी गुणकारशालाका}$$

$$(२४ - ४३) \times ४३ = ४३ \text{ का क्षेत्रफल} = \text{स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल} = \frac{४३}{४३}$$

अब सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं—लवणसमुद्रकी गुणकारशालाका एक है, कालोदकसमुद्रकी गुणकारशालाका ५६०००० है । इनका संकलन लानेके लिए उक्त प्रकारसे प्राप्त शालाकाओंमेंसे ' एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे और पुन. एक कम गुणकार-शालाकाका भाग देनेसे शिच्छित राशि उत्पन्न हो जाती है ' इस आर्याखंडसे शिच्छित संकलन ले आना चाहिए । चूंकि एकको आदि लेकर सोलह गुणितक्रमसे राशि बढ़ी है, इसलिये दो

१ सयंभुरमणसमुद्रस्स खेत्तफलं जगतेदीए इगां णवत्तेहिं गुणिय सवसदचवसीदिरूहेहिं मज्जिदयेच पुनो एक्कलक्ख भासवइस्सपवपजोयेहिं गुणिदरज्जए कम्महियं होदि । ति. प. पत्र १७१.

कट्ठु दो रूवे ठविय' अद्विय पुधं ठविय उवरि एगरूवं दादव्वं । पुणो तं सोलसेहि गुणिय ' रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं ' एदेण अज्जाखंडेण लद्धविसद्वध्पणेषु रुवूणेषु आदि-संगुणेषु रुवूणगुणगारेण भजिदेसु जं लद्धं तं दुगुणिय पंच अवणिदे पक्खे सलगसंकलणा होदि । कथं पंच समुध्पणा ? पुञ्चपक्खिखत्तएगादिचदुगुणकमेण गदरासिं मेलाविदे अवणयणरासी आगच्छदि । एदाहि पुव्वुत्तसंकलणसलगाहि लवणसमुद्रखेत्तफलं गुणिदे लवण कालोदयसमुद्राणं खेत्तफलं होदि । तिण्हं समुद्राणं खेत्तफलसंकलणा बुच्चदे—तिसु रूवेसु एगरूवमवणिय पुध द्वविय सेसमद्विय रूवस्सुवरि वर्गणं ठविय तस्सुवरि रूवं ठविय हेडिमन्डवरिरुवराणि सोलसेहि गुणिय ' रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं ' एदेण अज्जा-

रूपोंको स्थापितकर आधा करके पृथक् स्थापितकर ऊपर एक रूप दे देना चाहिए । पुनः उसे सोलहसे गुणितकर 'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा' इस आर्याखंडसे प्राप्त दोसौ छप्पन रूपोंमेंसे एक कम कर आदिसे संगुणित करनेपर तथा एक कम गुणकारसे भाग देनेपर जो राशि लब्ध हो उसे दुगुणाकर उसमेंसे पांच घटा देनेपर एक पक्षमें अर्थात् केवल समुद्रोंसम्बन्धी शालाकाओंकी संकलना हो जाती है ।

उदाहरण—लवणोदक और कालोदककी गुणकारशालाकाओंका संकलन—

$$\text{कालोदककी शालाका } २, १ \times १६, १ \times १६, १६ \times १६ = २५६,$$

$$\left(\frac{२५६ - १}{१६ - १} \right) = \frac{२५५}{१५} = १७, १७ \times २ = ३४, ३४ - ५ = २९$$

शंका—यहांपर पांच कैसे उत्पन्न हुए ?

समाधान—पूर्वके एकको आदि लेकर चतुर्गुणितक्रमसे द्वाविंशत राशिको मिला देनेपर अपनयनराशि आ जाती है ।

उदाहरण—पांचकी उत्पत्ति—१+४=५ अपनयनराशि (दो समुद्रोंकी अपनयनशालाका) ।

इन पूर्वोंके संकलनशालाकाओंसे लवणसमुद्रसम्बन्धी क्षेत्रफलको गुणित करने पर लवणसमुद्र और कालोदकसमुद्र, इन दोनोंका क्षेत्रफल हो जाता है ।

उदाहरण—लवणसमुद्रका क्षेत्रफल—७९०५६२४१५० × २४;

लवणोदक और कालोदकको संकलित गुणकारशालाका २९;

$$७९०५६२४१५० \times २४ \times २९ \text{ लवणोदक और कालोदकका संकलित क्षेत्रफल.}$$

अब तीन समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं—तीन रूपोंमेंसे एक रूपको घटाकर उसे पृथक् स्थापित करे । पुनः शेषको आधा कर रूपके ऊपर वर्गणराशिको स्थापित-कर और उसके ऊपर रूपको स्थापितकर अघस्तन और उपरिम रूपोंको सोलहसे गुणाकर

[२०१]

हस्तभागमे जीमद्वानं

१, ४, २५,]

खंडेण लद्धा चारि सहस्सा छण्णउदी । 'रूपेणमादिसंशुणमेकोनगुणोन्माथितमिच्छा' एदेण अज्जाखेहेण लद्धाणि वे सदाणि तेहसराणि, एदाणि दुगुणिय एकावीसमवणिदे गुणवारसलागासंकलणा हेदि । कथमेकवीसस्स उप्पत्ती ? एगत्वं विरलिय चचारि दाहण अण्णोण्णमत्थं करिय पंचहि गुणिय एगादिचदुगुणसंकलणं पक्खिचे अवण-यणसलागपमाणं एकावीसं हेदि । एत्थ करणगाहा—

इहसलागखुत्तो चत्तारि परोपेण समुणिय ।

इहसलागखुत्तो चत्तारि परोपेण समुणिय ॥ ७ ॥

पचगुणे खिचन्वा एगादिचदुगुणा संकलणा ॥ ७ ॥

एत्थ सत्त्वत्य दुरुवृणगच्छं विरेद्वं ५।२१।८५।३४१।३६५।५४६१।

एदाओ अवणयणधुवरासीओ अणंतरहेदिमं चदुहि गुणिय क्वं पक्खिचे उप्पज्जंति जाव 'रूपेण गुणा और अयमि वर्गणा' इस आर्याखंडसे चार हजार छयनचै (४०९६) संख्या प्राप्त होती है । पुन उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे 'एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे, पुनः एक कम गुणकारशलाकाका भाग दे, तो इष्टराशि उत्पन्न हो जाती है' इस आर्याखंडके अनुसार दो सौ तेहस्र (२७३) संख्या प्राप्त होती है । इस संख्याको दूनाकर उसमेंसे इक्कीस घटा देनेपर गुणकारशलाकाओंका संकलन हो जाता है ।

उदाहरण—प्रथम तीन समुद्रोंका संकलन—शलाका ३,

$$\begin{aligned} १ \times १६ &= १६ \\ १ \times १६ &= १६ \\ १ \times १६ &= १६ \\ ४०९६ - १ &= ४०९५ \\ ४०९५ - १ &= ४०९४ \\ ४०९४ - १ &= ४०९३ \\ ४०९३ \times २ &= ८१८६ \\ ८१८६ - २१ &= ८१६५ \end{aligned}$$

तीन समुद्रोंकी संकलित गुणकारशलाका ।

शंका—यहांपर घटाई जानेवाली इक्कीस संख्याकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

समाधान—एकरूपको विरलित कर उसके ऊपर चारको दैयरूपसे देकर अन्योन्याभ्यास करके उसे पांचसे गुणाकर एक आदि चतुर्गुणसंकलनको प्रक्षेप करने पर अपनयन-शलाकाका प्रमाण इक्कीस हो जाता है ।

$$\begin{aligned} ४ &= ४ \\ १ - २ &= १, १ = ४, ४ \times ५ = २०, २० + १ = २१ \\ \text{उदाहरण—२१ की उत्पत्ति—} & ३ - २ = १, १ = ४, ४ \times ५ = २०, २० + १ = २१ \end{aligned}$$

तीन समुद्रोंकी अपनयनशलाका.

इस विषयमें यह करणगाथा है—

इष्ट शलाकाराशिका जो प्रमाण हो उतने चार चारको रखकर परस्परमें गुणा करे, पुन उसे पांचसे गुणा करे और फिर एक आदि चतुर्गुणसंकलनराशिको प्रक्षेप करना चाहिये । ऐसा करतेपर अपनयनराशिका प्रमाण आ जाता है ॥ ७ ॥

यहांपर सर्वत्र दो रूप कम गच्छराशिका विरलन करना चाहिये । ५, २१, ८५, ३४१, १३६५, ५४६१ ये घटाई जाने वाली ध्रुवराशियां अनन्तर अद्यस्त राशिको चारसे गुणाकर

[१, ४, २५]

कोसणगुणमे तिरिखफोसणरूपवणं

संयुद्धमणसुद्धो सि । संपदि संयुद्धमणसुद्धविरहिदसन्वसुद्धखेचफलाण्यणविधानं बुच्चदे—दीव-सायररूवाणं अद्धं रूवणं विरलिय क्वं पडि वेणिण दाहण अण्णोण्णमासे कदे चोदसगुणिदजोयणलक्खमूलेण खंडिदसेहीए वग्गमूलस्स अद्धमागच्छदि । अथ पुव्वविरलणाए रूव पडि जदि चत्तारि रूवाणि दाहण अण्णोण्णमासो कीरदे, तो चोदस-गुणजोयणलक्खेण खंडिदे सेहीए चदुभागो आगच्छदि । अथ क्वं पडि सोलस दाहण अण्णोण्णमासो कीरदि, तो जोयणलक्खवग्गेण तिसहस्सच्छत्तीससदरूवगुणिदेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो तं रूवणं करिय एगेण आदिणा गुणिय पण्णारस-

और इनमें एक प्रक्षेप करनेपर उत्पन्न होती है, और इसी क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक सत्पन्न होती हुई बली जाती है ।

$$\begin{aligned} ४ \times ४ &= १६; & १६ \times ५ + ५ &= ८५ \text{ चार स.} \\ ४ \times ४ \times ४ &= ६४, & ६४ \times ५ + ५ &= ३४१ \text{ पांच स.} \\ ४ \times ४ \times ४ \times ४ &= २५६; & २५६ \times ५ + ५ &= १३६५ \text{ छह स.} \\ ४ \times ४ \times ४ \times ४ \times ४ &= १०२४, & १०२४ \times ५ + ५ &= ५४६१ \text{ सात स.} \\ ४ \times ४ \times ४ \times ४ \times ४ \times ४ &= १६३८४, & १६३८४ \times ५ + ५ &= ८१८६१ \text{ आठ स.} \end{aligned}$$

अथ स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफल निकालनेका विधान करते हैं—द्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है उसे आधाकर उसमेंसे एक घटावे । पुनः दोन राशिका विरलनकर प्रत्येक रूपके प्रति दैयरूपसे दो को देकर परस्पर गुणा करनेपर समुद्रेश-गुणित लक्ष योजनके वर्गमूलसे खंडित जगत्रेणीके वर्गमूलका आधा प्रमाण आता है । अब यदि पूर्व विरलनराशिमैं प्रत्येक रूपके प्रति चार रूपोंको दैयरूपसे देकर परस्पर गुणा किया जाता है, तो चतुर्विंश गुणित लक्ष योजनसे खंडित जगत्रेणीका चौथा भाग आता है । और यदि उसी विरलनराशिमैं प्रत्येक रूपके प्रति सोलहको दैयरूपसे देकर परस्पर गुणा किया जाता है तो तीन हजार एक सौ छत्तीस (३१३६) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है ।

$$\begin{aligned} \text{उदाहरण—(१) } \frac{२अ}{२} &= अ; & २अ - १ &= \frac{\sqrt{१४०००००}}{२} \text{ यो.} \\ (२) ४अ - १ &= \frac{१४०००००}{४} \text{ यो.} \\ (३) १६अ - १ &= \frac{१४०००००}{१६} \times ३१३६ \end{aligned}$$

स्वेहि भागे हिदे जोयणलखवणेण चालीसाहियसत्तेतालसहससरुवगुणिदेण जगपदरग्धि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । एवं दुगुणिय सेडिअसंखेज्जदिभागमेत्तमवणयणरासिं पुन्विन्नकरणाहाए आणिदमवणिय लवणसमुद्धखेत्तफलेण गुणिदे सयंभूरमणविरहिद-समुद्धानं खेत्तफलं होदि । तं केत्तियमिदि भणिदे एगूणचालीसाहियवारससदस्वेहि जग-पदरग्धि भागे हिदे एगभागपमाणं होदि । तत्थ मूलिल्लदोसमुद्धखेत्तफलं संखेज्ज-जोयणपदरमेत्तमवणिय रज्जुपदरग्धि अविणेदे एकवंचासरुवेहि सादिरेगेहि जगपदरग्धि-खंडिदे एगखंडो आगच्छदि । तं संखेज्जसच्चिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-

पुनः उते, अर्थात् १६ के गुणितक्रमसे उपलब्ध राशिको, एक कम करके आदि स्थानवर्ती एकसे गुणितकर, पन्द्रह रूप्यसे भाग देनेपर चालीस अधिक सैतालीस हजार अर्थात् सैतालीस हजार चालीस (४७०४०) रूप्यसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है ।

$$\text{उदाहरण—} \frac{16 \left(\frac{100000 \times 3136}{16 - 1} \right) - 1}{16 - 1} = \frac{100000 \times 47040}{16 - 1}$$

इस प्रमाणको दुगुणाकर उसमेंसे पूर्वोक्त करणगाथासे निकाली हुई जगत्रोणिके असख्यातवें भागप्रमाण अपनयनराशिको घटाकर लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे गुणा करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल हो जाता है । वह क्षेत्रफल कितना होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि वह उनतालीस अधिक बारह सौ अर्थात् बारहसौ उनतालीस (१२३९) रूप्यसे भाजित जगप्रतरका एक भाग प्रमाण होता है ।

$$\text{उदाहरण—} \left\{ 2 \left(\frac{16 \times 100000 \times 47040}{16 - 1} \right) - \frac{16}{16 - 1} \right\} \times 16 = \frac{16 \times 100000 \times 47040}{16 - 1}$$

छोड़ शेष समुद्रोंका क्षेत्रफल
(इसी प्रमाणको उत्पन्न करनेकी प्रक्रियाके विस्तारके लिये देखो गोमटसार जीवकांड स टीका व हिन्दी अनुवाद गाथा ५४७, पृ ९६४ आदि)

स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समुद्रोंके उक्त क्षेत्रफलमेंसे मूल अर्थात् आदिके लवणोदधि और कालेष्वाधि इन दो समुद्रोंके प्रतरात्मक संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रफलको घटाकर पुन शेष राशिको प्रतरात्मक राशुके प्रमाणमेंसे घटा देनेपर साधिक इकावन रूप्यसे जगप्रतरके खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है ।

$$\text{उदाहरण—} 2 - \left(\frac{16}{1239} - 16 \right) = \frac{16}{1239} \quad \left(\frac{16}{1239} \right) \times 16 = \frac{16}{1239}$$

भाग तिर्यक् सासादन जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र

भागमेंचं तिरिखसासणसत्थाणखेचं होदि । सेसपदसासणसम्मादिट्टीहि सवे दीव-समुद्रा-पुन्वेवरियदेवसंबंधेण पुसिज्जंति चि कट्टु जोयणलखवाहल्लं तप्पाओगवाहल्लं वा रज्जु-पदरग्धुमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण इहदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । 'वा' सहस्स अत्थो गदो ।

मारणंतियसमुधादगेहि सत्त चोदसभागा देवणा पोसिदा । तिरिखसासणा मेरुमूलादो हेड्डा किण मारणंतियं करेति चि बुत्ते णेरइएसु किण उपपज्जंति ? सभावदो । जदि एवं, तो हेड्डा सभावदो चैव मारणंतियं ण मेलंति चि-किण घेप्पदे ? जदि सासण-सम्मादिट्टिणो हेड्डा ण मारणंतियं मेलंति, तो तेषिं भवणवासियदेवेषु मेरुतलादो हेड्डा इट्ठिदेषु उपपत्ती ण पावदि चि बुत्ते ण एस दोसो, मेरुतलादो हेड्डा सासणसम्मादिट्टिणं मारणंतियं णत्थि चि एवं सामणवयणं । विसेसदो पुग भणमाणे णेरइएसु हेट्ठिम-

उक्त एक खंडको तिर्यचोके अवगाहनासम्बन्धी संख्यात सूत्र्यगुलौसे गुणा करनेपर तिर्यलोकके संख्यातवें भागप्रमाण तिर्यक् सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । चूंकि, विहारवत्त्वस्थानादि शेष पवस्थित तिर्यक् सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा समस्त द्वीप और समुद्र पूर्वमवके चैरी देवोंके सम्बन्धसे स्पर्श किये गये हैं, इसलिए लक्ष योजन बाह्यत्ववाले अथवा तत्प्रायोग्य बाह्यत्ववाले राजुप्रतरके ऊपरकी ओरसे उनचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यलोकका संख्यातवां भाग हो जाता है । इसप्रकारसे यह सूत्रपठित 'वा' शब्दका अर्थ हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्रातको प्राग्न तिर्यक् सासादनसम्यग्दृष्टियेने कुछ कम सात थदे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—तिर्यक् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे मारणा-न्तिकसमुद्रात क्यों नहीं करते हैं ?

प्रतिशंका—यदि ऐसी शंका करते हैं, तो आप ही बताइए कि तिर्यक् सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—वे नारकियोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते हैं ।

प्रतिसमाधान— यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे भी वे स्वभावसे मारणान्तिकसमुद्रात नहीं करते हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं ?

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुतलसे नीचे मारणान्तिकसमुद्रात नहीं करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भवनवासी देवोंमें उनकी उत्पत्ति भी नहीं प्राप्त होती है ?

समाधान—उक्त शंकापर ध्वलाकार उत्तर देते हैं कि, यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मेरुतलसे नीचे सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका' मारणान्तिकसमुद्रात नहीं होता है, यह सामान्य अर्थात् द्रव्याधिकनयका वचन है । किन्तु विशेष अर्थात् पर्यायिकनयकी

एङ्दिणु वा ण मारणंतियं मेलंति चि एस परमत्थो । कथमेत्थ देस्सणत्तं ? ण ताव हेट्ठिम-
जोयणसहस्सेण ऊणा सत्त चोद्दसभागा, तिस्सिखसामणेहि भवणमासिएसु मारणंतियं
मेल्लमाणेहि तस्स वि छुण्णसंभवोवलंभादो । मेरुमूलादो हेट्ठा देस्सणजोयणलस्सं फुत्तंताणं
सासादणानं सत्त चोद्दसभागेहि सादिरेगेहि होदज्जसिदि ? ण एम दोसो, छमगं पयद्देहिं
पडिणिपयउपनिट्ठणेहि तसजीवेहि गिरंतरं ण सत्त रज्जू फुत्तिजंति, तथा संभवासंभवा ।
सो वि कथं णव्वदे ? देस्सणवयणणहाणुवचचीदो । उववादस्स एकारह चोद्दसभागा पोसिदा
सि वत्तव्वं । सुत्ते अउत्तं कथमेदं णव्वदे ? कम्मइयकायजोगिसासाणामेकारह-चोद्दस-

विचक्षसे कथन करने पर तो वे नारकियोंमें अथवा मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रियजीवोंमें
मारणान्तिकसमुदात नहीं करते हैं, यही परमार्थ है ।

शुंका—यद्वापर अर्थात् मारणान्तिकसमुदातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रमें
देशोन्ना अर्थात् कुछ कम सात बटे चौदह भागका कथन कैसे किया, क्योंकि, मेरुतलके
अधोभागवर्ती एक हजार योजनसे कम सात बटे चौदह ($\frac{१४}{१०}$) भाग तो माने नहीं जा
सकते । इसका कारण यह है कि भवनवासियोंमें मारणान्तिकसमुदातको करनेवाले तिर्यच
सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा उसके भी छुप जानेकी संभावना पाई जाती है । इसलिये मेरु-
तलसे नचि कुछ कम एक लक्ष योजन प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करनेवाले तिर्यच सासादन-
सम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र साधिका सात बटे चौदह ($\frac{१४}{१०}$) भाग होना
चाहिए, न कि देशोन सात बटे चौदह भाग ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि छहों मार्गोंको प्रवृत्त,
अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधोदिशा सम्यन्धी छहों मार्गोंसे जानेवाले,
पंच प्रतिनियत उत्पत्ति स्थानवाले असजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु स्पर्श नहीं किये
जाते हैं, क्योंकि, उस प्रकारकी संभावनाका अभाव है ।

शुंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—‘देशोन’ वचनकी अन्यथा अनुपपत्तिसे । अर्थात् यदि मारणान्तिक-
समुदात करनेवाले असजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया जाता, तो
सुत्रमें ‘देशोन’ यह वचन नहीं दिया जाता । इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि
मारणान्तिकसमुदात करनेवाले असजीवोंके द्वारा सात राजुके स्पर्श किये जानेकी निरन्तर
संभावना नहीं है ।

उपपदको प्राप्त तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह ($\frac{१४}{१०}$) भाग
स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

शुंका—सूत्रमें नहीं कही गई यह बात कैसे जानी जाती है ?

भागपोसणपरूवयसुत्तादो, सुद्धबंधम्मि उववादपरिणयसासणणामेकारह-चोद्दसभागा-
पोसणपरूवयसुत्तादो च णव्वदे । एत्थ महेत्ते उववादपोसणखेत्ते सेत्ते मारणंतियफोमणमेव
किमट्ठं परूविद ? ण, एत्थ उववादविचक्षाए अभामादो । तदविचक्षा किण्णिबंधणा,
सासणणामेङ्गिदिएसु अणुपज्जमाणानं तत्थ मारणंतियविहणणिबंधणा । तेण उववादस्स
एकारह चोद्दसभागा फोसणसुवलब्भदे ।

सम्माभिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखे-
ज्जदिभागो ॥ २६ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणकाले सव्वपदपरूवणाए खेतंभंगो । सत्थणमत्थाण-
विहारविमत्थाण-वेदण-रुसाय-चेउविण्यपदट्ठिदस्सम्मभिच्छादिट्ठीहि तीदाणगदकालेसु विण्ह

समाधान—कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{१४}{१०}$)
भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक आगे कहे जानेवाले इसी स्पर्शनप्ररूपणके सूत्रसे, तथा खुदा-
बंधमें कहे गये उपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{१४}{१०}$) भागप्रमाण
स्पर्शन करनेकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि उपादपदको प्राप्त तिर्यच
सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ।

शुंका—उक्त प्रकारसे इतना अधिक उपादपदका स्पर्शनक्षेत्र होते हुए भी यहाँ
पर मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र ही किसलिये प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहाँ पर उपादपदकी विचक्षाका अभाव है ।

शुंका—उपादपदकी विचक्षा न होनेका क्या कारण है ?

समाधान—उपादपदकी विचक्षा न होनेका कारण एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होने
वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उनमें मारणान्तिकसमुदातका विधान है । अर्थात् सासा-
दनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, फिर भी वे उनमें मारणान्तिकसमुदात
करते हैं । इसलिये यहाँ पर उपादकी विचक्षा नहीं की गई, और इसीलिये उपादपदका
ग्यारह बटे चौदह ($\frac{१४}{१०}$) भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र प्राप्त हो जाता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां
भाग स्पर्श किया है ॥ २६ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालमें स्वस्थानादि सर्व पदसम्यन्धी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररू-
पणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुदात,
इन पांच पदोंवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोने भूत और भविष्य इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अङ्गिद्वीपसे

१ कम्मइयकायनोगीसु $\times \times$ सासणसम्मोदिट्ठी $\times \times$ एकारह चोद्दसभागा देस्सणा । जी. को १६-९८.

२ म प्रती ‘ण’ इति पाठो नास्ति ।

३ अतिष्ठु ‘किण्णबंधणा’ इति पाठः ।

४ सम्मग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । स. वि. १, ८.

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणो ।
एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा सासणपरूवणाए तुल्ला ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ २७ ॥

तिरिस्वगदीए तिरिस्खेसु ति महाधिकारो अणुवट्ठे । एवं सुत्तं वट्ठमाणकाल-
विसिद्धुअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदखेत्तं जदो परूवेदि, तदो एदस्स परूवणाए खेत्तमंगो ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिहि सत्याणपदे वट्ठमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो । एदे
असंजदसम्मादिट्ठिणो सत्याणपदे सव्वदीवेषु होति, लवण-कालोदय-सयंभूरमणसमुदेषु
च । तम्हा तेससमुदसंखेज्जगुणपदं एत्थ सत्याणखेत्तं होदि । एदस्साणयणविधानं पुव्वं व
कादव्वं । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेसु वट्ठुता अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यद्यपि पर्यायार्थिकनयकी स्पर्शनप्ररूपणा सासादन-
गुणस्थानकी स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य जानना चाहिये ।

असंयतसम्यग्दृष्टि और सयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यचोने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २७ ॥

‘तिर्यक्कणतिमै तिर्यचोने’ इस महाधिकारकी यद्यपि मनुष्युति होती है । श्रुंकि यह
सूत्र वर्तमानकालबिसिद्ध असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोके स्पर्शनक्षेत्रका प्ररूपण
करता है, इसलिये इसकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान ही है ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तिर्यच जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा
कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २८ ॥

स्वस्थानपदपर वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका संख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाहज्जादो असंख्यातगुणा
क्षेत्र मतीतकालमें स्पर्श किया है । ये असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच स्वस्थानस्वस्थानपदपर सर्व
जीवोंमें होते हैं, तथा लयणसमुद्र, कालोक्कसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रमें भी होते हैं ।
इसलिये शेष समुद्रोंके क्षेत्रसे होत राजुप्रतर यद्यपि स्वस्थानक्षेत्र होता है । इसके
निकालनेका विधान पूर्वके समान ही करना चाहिये । विहारस्वस्थान, वेदना, कयाय
और वैक्रियिकसमुद्रात, इन पदोंपर वर्तमान जीवोंने मतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन

१. इसवदव्यग्दृष्टिभि बभतावयवैल्लोकस्यावश्येयमागः षट्, नतुदसभागा वा ऐशोना । न. वि. १, ६-

भागं, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणं रुंसंति । कुदो ? पुन्व-
वेरियदेवपयोगदो जोयणलक्खवाहल्लं संखेज्जजोयणवाहल्लं वा रज्जुपदं सव्वमदीदकाले
फुंसंति चि । मारणतियपदे वट्ठमाणेहि छ चौदसभागा देसूणा पोसिदा । कुदो ? अचुद-
क्रपादो उवरि तेसिमुप्पत्तीए अभावादो तत्थ गमणाभावा । न च उप्पचिखेत्तमुल्लंघिय
गमणं संभवदि, अहप्पसंगा । उवरि णवगेवज्जेसु मिच्छादिट्ठिणो जदि उप्पज्जंति, तो
असंजदसम्मादिट्ठिणं संजदासंजदाणं च उप्पत्ती किमिदि ण होज्ज ? मिच्छादिट्ठिणो दव्व-
ल्लिगेण उप्पज्जंति चे, एदे वि दव्वल्लिगेण चैव उप्पज्जंतु, ण कोवि दोसो । उप्पज्जंतु चे,
ण, खेत्तस्स देसूणसत्तं-चौदसभागत्तप्पसंगादो ? ण एस दोसो, जदि वि णवगेवज्जेसु
दव्वल्लिगिणो असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा च उप्पज्जंति, तो वि सत्त चौदसभागा ण
होति, माणुसंखेचादो चैव तत्थुप्पत्तीदो । उववादगेदेहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणम-

लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाहज्जादो असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वमवके वैरी वेयोंके प्रयोगसे एक ढाख योजन याहल्यवाला
अथवा संख्यात योजन याहल्यवाला राजुप्रतररूप सर्वक्षेत्र मतीतकालमें स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकसमुद्रातपदपर वर्तमान जीवोंने छुट कम छह बटे चौदह भाग (१४) स्पर्श किये
हैं, क्योंकि, मनुष्यतत्त्वसे ऊपर उनकी सत्यचिका अभाव होनेसे यद्यपि गमनका अभाव
है । और, त्र्यचिक्षेत्रको उल्लंघन करके गमन संभव नहीं है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त
हो जायगा ।

शुंका—मनुष्यतत्त्वसे ऊपर यदि नवप्रवेयकोंमें तिरियादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं,
तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोकी उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिये ? यदि कहा
जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होंगे,
इसमें कोई दोष नहीं है । यदि कहा जाय कि ये नवप्रवेयकोंमें उत्पन्न होंगे, सो ऐसा भी
नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, फिर स्पर्शनक्षेत्रके वेगोन सात बटे चौदह (१४) भाग
प्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यद्यपि नवप्रवेयकोंमें द्रव्यलिंगी मिथ्या-
दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव उत्पन्न होते हैं, तो भी सात बटे चौदह
(१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उन नवप्रवेयकोंमें मनुष्यसेवसे ही
उत्पत्ति होती है । अर्थात् उनमें मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यच नहीं ।

उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यच जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-

१. अतिगुं 'तस्स' इति पाठः ।

२. नतिरिय देव-अयदा उक्कस्सेणणुदो वि विगंणा । न अवर-देव-मिण्णा नेवेज्जतो वि गच्छंति ॥
(न. वि. १, २४५)

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तं जहा- तिरिक्खेसु तिरिक्ख-देव-गेरइयसम्मादिट्ठिणो ण उपपज्जंति चि । कुदो ? सहावादो । मणुसइयसम्मादिट्ठिणो चैव उपपज्जंति, पुब्बं मिच्छत्तंसिदेहि चट्ठतिरिक्खाउअचादो । तेण ते वि भोगभूमासु चैव उपपज्जंति, दाणादिसयलदसधम्ममे विज्जमाणानुमोदादो । तेण संयंपहपव्वदोवरिमभागो सब्बो चैव उववादपरिणदसम्मादिट्ठीहि पुसज्जदि चि तस्साणयण-विधाण वुच्चदे- संयंपहपव्वददो परभागो देहि वि पासिहि रज्जुपंचट्ठभागो रज्जूए तप्पाओग्गा संखेज्जा भागा वा होति । तेषु रज्जुविकखंभरिह फेडिदेसु अवसेसा तिणिण अट्ठभागा रज्जुए संखेज्जदिभागो वा होदि । एदेण विक्खंभायोमेण ट्ठिदसम्मादिट्ठि-उववादखेत्तं—

विक्खमवगदसगुणकरणी वट्ठस्स परिट्ठो होदि ।

विक्खमचउभागो पलियगुणिदो हवे गणिद' ॥ ८ ॥

एदीए गाहाए पदरागारेण कदे जगपदरं अट्ठसत्तावणभागवभहियचालीसोचर-चट्ठहि सदेहि खंडिद-एयभागो सादिरेगो आगच्छदि, तप्पाओगसंखेज्जखेत्तेहि छिण्णेग-

लोक आदि तीन लोकोँका असंख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है— तिर्यचोँमें तिर्यच, देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है । केवल क्षायिक-सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, उन्होंने पूर्वमें मिथ्यात्वसे संसिक्त परिणामोंके द्वारा तिर्यच आयुको बांध लिया है । सो वे भी जीव भोगभूमिके तिर्यचोँमें ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंकी दान आवि समस्त दश धर्मोंमें अनुमोदना विद्यमान रहती ही है । इसलिए स्वयंप्रभ पर्वतका उपरिम सर्व भाग उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच जन्मोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, अतः उसके निकालनेके विधानको कहते हैं—

स्वयंप्रभ पर्वतसे परभागवर्ती क्षेत्र दोनो ही पाश्चीसे राजुके पांच बटे आठ ($\frac{1}{2}$) भाग अथवा राजुके तत्प्रायोग्य संख्यात बहुभाग प्रमाण होता है । उन भागोंको राजुके विष्कम्भसे घटा देनेपर तीन बटे आठ ($\frac{2}{3}$) भाग अवशेष क्षेत्र अथवा राजुका संख्यातवां भागप्रमाण होता है । इस विष्कम्भ और आवामसे स्थित सम्यग्दृष्टिके उपपादक्षेत्रको—

विष्कम्भका वर्गकर उसे दशसे गुणा करके उसका वर्गमूल निकाले, वही वृत्त अर्थात् गोलाकृति क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण हो जाता है । पुनः विष्कम्भके चतुर्भासे परिधिको गुणा करनेपर क्षेत्रफल हो जाता है ॥ ८ ॥

इस गाथासूत्रके अनुसार प्रतराकारसे करनेपर आठ बटे सत्तावन भागसे अधिक चार सौ चालीस (४४०८८) भागोंसे खंडित सातिरेक एक भागप्रमाण जगप्रतर होता है ।

१ त्रि मा. ९३.

भागो वा । तं उस्सेधसंखेज्जं गुलेहि गुणिदे तिरिक्खसम्मादिट्ठिउववादखेत्तं होदि । संजदासंजदेहि सत्थाणपदट्ठिएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ सत्थाणखेत्तमाणिज्जमाणे तिरिक्खसम्मादिट्ठि-उववादपदरखेत्तमुस्सेधगुणगारवज्जिदं रज्जुपदरमिह अवणिदे जगपदरं सादिरेयंपंचास-रूवेहि भजिदएगभागो आगच्छदि । तं संखेज्जुस्सेधं गुलेहि गुणिदं संजदासंजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउवियपरिण-देहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइ-

$$\begin{aligned} \text{उदाहरण—विष्कम्भ } \frac{3}{2}; \quad & \sqrt{\frac{3}{2} \times \frac{3}{2} \times \frac{10}{1} \times \frac{3}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2}} = \sqrt{\frac{50}{64}} \times \frac{3}{2} \times \frac{1}{2} \\ & = \frac{19}{16} \times \frac{3}{2} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{59}{256}; \quad \frac{59}{256} \times \frac{1}{2} = \frac{59}{512} \end{aligned}$$

उपपादका क्षेत्रफल.

विशेषार्थ—यहां उपलब्ध भागप्रमाणको सातिरेक कहनेका अभिप्राय यह है कि जो $\frac{59}{512}$ का वर्गमूल $\frac{1}{16}$ ले लिया गया है वह यथार्थ वर्गमूलसे कुछ अधिक हो गया है जिससे भागद्वार कुछ बढ़ गया है । पहले इसी विष्कम्भको लेकर परिधि के भिन्न प्रमाण द्वारा भिन्न क्षेत्रफल निकाला गया है । (देखो पृ १६९.)

अथवा तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है । उसे संख्यात उत्सेधांगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थानपदस्थित संयतासयत तिर्यचोँने सामान्यलोक आदि तीन लोकोँका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको निकालनेपर उत्सेधगुणकारसे रहित तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद प्रतरक्षेत्रको राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर साधिक पचपन रूपोंसे भाजित एक भाग जगप्रतर आता है ।

उदाहरण—तिर्यच सम्यग्दृष्टियोंका उपपादप्रतरक्षेत्र =

$$\frac{59}{256} \times \frac{1}{2} = \frac{59}{512}; \quad 1 - \frac{59}{512} \times \frac{1}{2} = \frac{453}{512} = \frac{453}{512}$$

उसे संख्यात उत्सेधांगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यच संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमान होता है ।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्भूत, इन पदोंसे परिणत तिर्यच संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोँका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

ज्जादो अमरेज्जगुणो अतीदकाले फोभिदो । कुदो ? मंजदामंजदणं वेरियदेममंवेण जोयणल्लखवाहं तिरियपरस्म अदीदकाले पोमो अत्थि ति । मारणतियममुग्गदग्गदेहि संजदामंजेदेहि छ चोदमभागा देयणा फोमिदा, तिरिस्सुसंजदामंजदणमच्चुदरुपो चि मारणतिण्ण गमणमंमदादो ।

पंचिदियतिस्ख-पंचिदियतिस्खपज्जत्त-जैणिणीसु मिच्छादि-
ट्टीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २९ ॥

एदं सुत्तं चट्टमाणकालमंवेवि ति एदस्स परुणणए सुत्तमो ।

• सव्वलोगो वा ॥ ३० ॥

परिमोदो एदं सुत्तं तीदाणागदकालमंवेवी । एत्थ ताम 'वा' मद्दो उच्चदे-
वि-विसेमणविसिद्धसखाणतिस्खमिच्छादिट्टीहि तिहं जोगणमंवेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोमिदो । पंदं मेत्तमाणिज्जमाणे
अमंखेजेसु समुद्वेसु भोगभूमिपडिमागदीनाणमंतरेसु ट्टिद्वेसु सखाणपदाट्टितिविदा तिरिस्सगा

संख्यातना भाग और अर्धाष्टांशमे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमे स्पदो किया है, क्योंकि, संयतामंयत तिर्यचोका घेरी देवोंके हरणसम्यग्गमे एक छाग योजन पाइय्याले तिर्यक्-प्रतरका अतीतकालमे स्पदो किया गया है । मारणातिकममुदागत तिर्यक् संयतामंयतोने कुछ कम छह बटे बौद्ध (६४) भाग स्पदो किये हैं, क्योंकि, तिर्यक् संयतामंयतोका अच्युतकल्प तक मारणान्तिस्समुदातसे गमत संभव है ।

पंचेन्द्रियतिर्यक्, पंचेन्द्रियतिर्यक् पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यक् योनिमनियों मिथ्यादि जीवोंने कितना क्षेत्र सार्थ किया है ? लोकका असंख्यातां भाग स्पदो किया है ॥ २९ ॥

यह सूत्र यतमानकालमम्बनी है, इसलिए इसकी सार्धानप्रकृणा क्षेत्रप्रकृणाके समान जानना चाहिये ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यक् जीवोंने अतीत और अनागत कालमे तर्जलोक सार्थ किया है ॥ ३० ॥

पारिदोमन्यायमे यह सूत्र भूत और भविष्यकालपरवर्षी है । यहाँपर पदेते 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं—पंचेन्द्रियतिर्यक्, पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्त और योनिमती इन तीन बिन्दु-भणोंसे बिशिष्ट स्वस्यानपक्षिय तिर्यक् मिथ्यादि जीवोंने कामान्यलोक भावि तीन लोकोंका असंख्यातां भाग, तिर्यक्लोकका संख्यातां भाग और अर्धाष्टांशसे असंख्यातगुणा क्षेत्र सार्थ किया है । इस क्षेत्रको निकालनेपर असंख्यात समुद्रोंमे और भोगभूमिके प्रतिभागकर जीवोंके अन्तराष्टोंमे स्थित क्षेत्रोंमे स्वस्यानपक्षिय उक्त तीन प्रकारके तिर्यक् नहीं हैं, इसलिये इस

णत्थि ति पंदं त्वं पुच्यथोणगागिय म्मुपदग्गहि अगिय मंवेज्जमुचिंजुयेहि मुणिदे तिरियलोगस्स मंवेज्जदिभागमेत्तं पंचिदियतिस्सनिगमिच्छादिद्विमन्याणत्वेत्तं होदि । विहावदिमत्याग-वेदण-रुमाय-उच्चियपदपरिषदतिविहिमिच्छादिट्टीहि तिहं जोगणम-मंवेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स मंवेज्जदिभागो अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोमिदो । इदो ? मिक्कित्तेदममेण मन्वदीर-भागेषु मंचणं पडि विगहामादो । नेत्थ मंवेज्ज-गुत्थाहत्तं तिरियपरमुग्गमंमग्गानाममंडालि करिय पदरागोत्तं उदं पंचिदियतिस्स-निगमिच्छादिद्विदिभागदिमन्यागाट्टिमेत्तं तिरियलोगस्स मंवेज्जदिभागमेत्तं होदि । 'वा' मद्दो गदो । मारणतिय-उपपदाट्टितसुत्तवी मोत्तुण मेत्तमग्गं बाहिरे अणियचत्तट्टियेद्वादो ।

क्षेत्रमे पूर्वजिज्ञानमे प्रकार और राज्यपरमेमे प्रकार संख्यात सूत्रंमुत्तमे गुणा रत्तेपर तिर्यक्लोकका संख्यातमे भागप्रमाण पंचेन्द्रियतिर्यक्, पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्त और योनिमती इन तीन प्रकारके मिथ्यादि तिर्यचोका स्वस्यानत्वेत्तं हो जाता है । विहावपरस्वग्गान, वेदना कताग और वैदितिकममुदागत इन पर्योम परिवत्त उक्त तीन प्रकारके मिथ्यादि तिर्यचोमे नामान्यलोक भावि तीन लोकोंका संख्यातां भाग, तिर्यक्लोकका संख्यातां भाग और अर्धाष्टांशमे धमक्यातगुणा क्षेत्र सार्थ किया है, क्योंकि, पूर्वपरके मित्र या जगुत्तर देवोंके पदावे सब ऊँच और मंमं समुद्रोंमे तंगार (विहार) करनेके प्रति कोई तिर्यक् नहीं है । इसलिए यहाँपर संख्यात भंगुल्य गार्हत्याने तिर्यक्प्रतरका ऊपरमे उत्तमम भंग करने प्रतरपरारंभ सगति यलोपर पंचेन्द्रिय तिर्यक् भावि तीन प्रकारके मिथ्यादि तिर्यक् तर्जलोकस्थी विहावपरस्वग्गान मादिता क्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यक्लोकका संख्यातां भागप्रमाण होता है । इस प्रकारमे 'वा' शब्दका अर्थ हुआ ।

मारणातिस्समुदात और उपपारपरग्ग पंचेन्द्रिय तिर्यक् भावि तीन प्रकारके मिथ्यादि तिर्यक् जीवोंने तर्जलोक सार्थ किया है ।

ग्रंथा—लोकान्तीके बाहिर प्रसक्तविक जीवोंके असंख्य होनेसे ' मंचलोक रत्ते किया है ' यह दखन कैसे प्रतिष्ठ होता है ।

ममाधान—यह कोई क्षेत्र नहीं, क्योंकि, मारणातिस्समुदात और उपपारपर-रिक्कित्तेत्तमोत्तमो छोटुपर क्षेत्र प्रपञ्चोत्तमो का प्रसक्तविक बाहिर प्रसक्तका प्रतिष्ठेत्त किया गया है ।

१ उपपार-मारणातिस्समुदातमुत्तम नेवदना । मन्वादिपारिदि व कथि ति तिदेहि तिदेह ॥
नो. टी. १९९.

सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो ॥ ३१ ॥

सेसाणमिदि उच्चै ससाणसम्मदिद्वि-सम्मामिच्छादिदि-असंजदसम्मदिद्वि-संजदा-
संजदा वेचच्चा, अण्णोसिमसंभादो । एक्किस्से तिरिक्खगदीए तिरिक्खगदीणिमिदि
बहुसणिदो कथं घडदे ? ण एस्स दोसो, एक्किस्से वि तिरिक्खगदीए गुणद्वानादिभेएण
बहुसविरोहाभावादो । एदंस्सि चट्ठहं गुणद्वानाणं परुवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा ।
अदीदकाले एदंस्सि तिरिक्खोघपरुवणाए तुल्ला । णवरे जोणिणीसु असंजदसम्मदिद्वीणं
उववादो णत्थि, एत्तिओ वेव विसेसो ।

पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

वट्टमाणकाले सत्थाण-वेदण-कसायपदे वट्टमाणपंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि
चट्ठहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टहज्जदो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणाति-
उववादपदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो णर-तिरियलोगेहिदो असंखेज्जगुणो ।

क्षेप तिर्यंचगतिके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओषकें समान है ॥ ३१ ॥

‘क्षेप’ ऐसा पद कहने पर सासावतसम्यग्दृष्टि, सम्यग्गिमथ्यादृष्टि, असंयतसम्य-
ग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इनके अतिरिक्त अन्य
तिर्यंचोंका ग्रहण करना असंभव है ।

शंका—एक ही तिर्यंचगतिके होने पर ‘तिरिक्खगदीणं’ यह श्रुत्युचनका निर्देश
कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक तिर्यंचगतिसामान्यके होने पर भी
गुणस्थान आदिके भेदसे बहुत्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

इन उक्त चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रके समान है
और इन्हीं चार गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंकी अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा तिर्यंचोंकी ओघ
स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य है । किन्तु योनिमित्तियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपापाद नहीं
होता है, इतनी मात्र ही विशेषता है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्धपर्याप्त जीवोंने कितनाक्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असं-
ख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३२ ॥

वर्तमानकालमें स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, और कयायसमुद्घात, इन पर्वोंपर वर्तमान
पंचेन्द्रियतिर्यंच अर्थात्तकोने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और
अर्द्धार्द्धीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपापाद पर्ववाले
पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और
मनुष्यलोक तथा तिर्यंचलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

संव्वलोगो वा ॥ ३३ ॥

पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तेत्ति अणुवट्टदे । एत्थ ताव ‘वा’ सद्व्हे उच्चदे-
सत्थाण-वेदण-कसायपदगदेहि पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टहज्जदो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ?
अट्टहज्जदीव-समुद्वेसु कम्मभूमिपडिभागो सयंपहपव्वदपरभागो च तेषि संभवादो । अदीद-
काले सयंपहपव्वदपरभागं सव्वं ते पुंसंति चि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेत्तं
होदि । तस्साणयणविधाणं बुच्चदे—सयंपहपव्वदव्वदभंतरखेत्तं जगपदरस्स संखेज्जदिभागं
रज्जुपदरमिह अवणिदे सेसं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो होदि । तं संखेज्जच्चिअंगुलेहि
गुणिदे’ तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणमंगुलासंखेज्जदिभागो ग्राहणाणं
कथं संखेज्जगुलस्सेधो लब्भदे ? ण, मुअंपंचिदियादितसकलेवरसु अंगुलस्स संखेज्जदि-
भागमादि कादूण जाव संखेज्जजोयणाणि चि कमवट्टीए द्विदेसु उपपज्जमाणामपज्जत्ताणं
संखेज्जगुलस्सेध पडि विरोहाभावादो । अथवा सव्वसु दीव-समुद्वेसु पंचिदियतिरिक्ख-

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्धपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रमें ‘पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त’ इस परकी अनुवृत्ति होती है । अत्र यद्वांपर
‘वा’ शब्दका अर्थ कहते हैं—स्वस्थान, वेदना और कयायसमुद्घात, इन पर्वोंको प्राप्त
पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर्थात्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यंचलोकका संख्यातवां भाग और अर्द्धार्द्धीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,
अर्द्धार्द्धीप और दो समुद्रोंमें, तथा कर्मभूमिके प्रतिभागवाले स्वयंप्रभपर्वतके परभागमें पंचे-
न्द्रियतिर्यंच लब्धपर्याप्त जीवोंका होना सम्भव है । अतीतकालमें स्वयंप्रभपर्वतके सम्पूर्ण
परभागको वे जीव स्पर्श करते हैं, इसलिये वह क्षेत्र तिर्यंचलोकका संख्यातवां भागमात्र
होता है । अत्र उस क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—स्वयंप्रभपर्वतका आरभ्यन्तर
क्षेत्र जगप्रतरके संख्यातवां भागप्रमाण है । उसे राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर क्षेप क्षेत्र जगप्रतरका
संख्यातवां भाग होता है । उसे संख्यात सूत्र्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंचलोकका संख्यातवां
भाग हो जाता है ।

शंका—अंगुलके असंख्यातवां भागमात्र अथवाहनवाले लब्धपर्याप्त जीवोंके संख्यात
अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सूत्र पंचेन्द्रियादि जमजीवोंके अंगुलके संख्यातवां भागको
आदि करके संख्यात योजनों तक क्रमवृद्धिसे स्थित शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाले लब्धपर्याप्त
जीवोंके संख्यात अंगुल उत्सेधके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

अथवा, सभी द्वीप और समुद्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि,
१ प्रथिणु ‘शुणिवेदि’ इति पाठः ।

अपज्जत्ता अत्थि । कुदो, पुव्वेरियदेवसंबंधेण एगबंधणवद्धज्जजीविणिकाओगाढ-
कम्मभूमिपिडिमागुप्पणओरालियेदेहमच्छादीणं सव्वदीवि-समुदेसु संभवोवलंभादो । महा-
मच्छोणाहणम्हि एगबंधणवद्धज्जजीविणिकायाणमत्थिचं कंधं णव्वेदे ? वगगणम्हि उत्त-
अप्पावहुगादो । ते जहा- 'सव्वत्थोवा महामच्छरिरे पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता
तसकाइयजीवा । तेउकाइया जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगरो ? असंखेज्जा लोगा ।
पुढविकाइया जीवा विसेसाहिया । केत्तियमेचो विसेसो ? असंखेज्जलोगमेचो । तेसिं पडि-
भागो वि असंखेज्जलोगमेचो । एवं आउकाइया विसेसाहिया । वाउकाइया विसेसाहिया ।
वणफ्फकाइया अणंतगुणा ति । ण च सव्वे ते पज्जत्ता चेव, तसअपज्जत्ताणं पि' तेउ-
काइयाणं च संभवादो । ण च सुदमररे चेव पंचिदियअपज्जत्ताणं संभवो ति वोचुं जुत्तं,
तस्स विधाययसुत्तामावा । महामच्छादिदेहे तेसिमत्थितस्स सूचनं पुण इदमप्पावहुगसुत्तं
होदि । तसपज्जत्तरासीदो तसअपज्जत्तरासी असंखेज्जगुणो । तेण जत्थ तसजीवाणं

पूर्वमवके वैरी देवोंके सम्यन्धसे एक बंधनमें बद्ध पट्कायिक जीवोंके समूहसे व्याप्त और
कर्मभूमिके प्रतिभागमें उत्पन्न हुए औदारिकदेहवाले महामच्छादिकोंको सर्वद्वीप और
समुद्रोंमें संभावना पाई जाती है ।

शंका—महामच्छकी अवगाहनामें एक बन्धनसे बद्ध पट्कायिक जीवोंका अस्तित्व
कैसे जाना जाता है ?

समाधान—वर्गणाखंडमें कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे जाना जाता है । वह इस
प्रकार है— 'महामरस्यके शरीरमें सबसे कम जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र त्रसकायिक
जीव होते हैं । उन त्रसकायिक जीवोंसे तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं । गुणकार
क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । तेजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष
अधिक होते हैं । कितने प्रमाण विशेषसे अधिक होते हैं ? असंख्यात लोकमात्र विशेषसे अधिक
होते हैं । उनका प्रतिभाग भी असंख्यात लोकमात्र होता है । इसी प्रकारसे पृथिवीकायिक
जीवोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं । अप्कायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष
अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं ।'

महामच्छके शरीरमें ऊपर कहे गये सब जीव केवल पर्याप्त ही नहीं होते हैं,
किन्तु उसके शरीरमें त्रसकायिक लब्धपर्याप्त जीव और तेजस्कायिक जीवोंका भी
होना संभव है । तथा मृत शरीरमें ही पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त जीव संभव हैं
ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके विधायक सूत्रका अभाव
है । किन्तु महामच्छादिके देहमें उनके अस्तित्वका सूचक यही उक्त अल्पबहुत्वसूत्र है ।
त्रसपर्याप्तपराशिसे त्रसअपर्याप्तपराशि असंख्यातगुणी होती है, इसलिए जहा पर त्रसजीवोंकी

संभवो होदि, तत्थ सव्वत्थ वि पज्जत्तेहितो अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा होति । तम्हा
संखेज्जगुलाहल्लं तिरियपदरमेगणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठडेद तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तसत्थाण-वेदण-कसायखेत्तं होदि ।
'वा' सद्धो गदो । मारणतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणगमणं
पडि विरोहाभावा ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठाहि केव-
डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगदारे परुविदो ति गेह परुविज्जदे ।

सव्वलोगो वा ॥ ३५ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्धो उच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कमाय-
चेउन्वियपरिणदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो, तीदाणागदकालेसु वेरियदेव-
संबंधेण वि माणुसोत्तरसेलादो परदो गमणाभावा । माणुसखेत्तस्स पुण संखेज्जदिभागो

संभावना होती है वहा पर सर्वत्र ही पर्याप्त जीवोंसे अर्पण-जीव असंख्यातगुणे होते हैं ।
अतएव संख्यात अंगुल बाह्यवाले तिर्यक्प्रतरके उनचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित
करने पर तिर्यलोकके संख्यातवें भागमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यक् लब्धपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान
वेदना और कषायसमुदातगत क्षेत्र होता है । इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ ।

मारणान्तिकसमुदात और उपपादगत पंचेन्द्रियतिर्यक् लब्धपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक
स्पर्श किया है, क्योंकि, उनके सर्व लोकमें गमनागमनके प्रति विरोधका अभाव है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः
प्ररूपण नहीं किया जाता है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंने अतीत और अनागत-
कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३५ ॥

अब यहांपर पहिले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-
वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकृतिकसमुदातसे परिणत उपर्युक्त जीवोंने सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीत और अनागतकालमें वैरी
देवोंके सम्बन्धसे भी मानुषोत्तर शीलसे परे मनुष्योंके गमनका अभाव है । किन्तु मनुष्यक्षेत्रका

[२१७]

छत्तखंडागो जीवद्वानं

१, ४, ३६.] मिच्छादिद्वीणं आगासगमणादिवित्तित्तिविहिदाणं जोयणलखबाहल्लेण फासाभावादो ।

अथवा सच्यपदेहि माणुसलोगो देखणो पोसिदो, पुब्बवेरियदेवसंघेण उट्ठं देयणजोयण-
लम्बुप्पायणसंभवादो । एत्तो 'वा' सक्खो । मारणंतिय-उववादगेदेहि सबलोगो पोसिदो,
सबलोगे गमणागमणे विरोहाभावादो ।

सासणसम्मादिद्वीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-

भागो' ॥ ३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुब्बं परूविदो ।

सत्त चोदसभागा वा देसूणा ॥ ३७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवादिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउन्मियसमुग्धादगेदेहि सासण-
सम्मादिद्वीहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो । माणुससेत्तस्स संखेज्जदिभागो
पोसिदो । अथवा विहारादि-उवरिमपदेहि माणुसखेतं देखणं पोसिदं । केण ऊणं ? चित्त-संख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, आकाशगमनादि विशिष्ट द्रव्यसे विरहित मिथ्या-
दृष्टि जीवोंके एक लाख योजनके बाह्यसे सर्वत्र स्पर्शका अभाव है । अथवा, सर्व पर्वोंकी
अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने देशोन मनुष्यलोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभ्रवके घेरी
देवोंके सम्मन्धले ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक उनका जाना आना संभव है । इस
प्रकार यह 'वा' शब्दका अर्थ समान्त हुआ ।मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टि
जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, इन दोनों पर्वोंकी अपेक्षा सर्वलोकके भीतर जाने
आनेमें कोई विरोध नहीं है ।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र

स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

इस सूत्रका अर्थ पहले कथा जा चुका है ।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और

अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ३७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेवना, कपाय और वैकिकिसमुद्घातगत सासा-
दनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है,
तथा माणुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

पर्वोंकी अपेक्षा देशोन मनुष्यक्षेत्रको स्पर्श किया है ।

शुंका—यहां देशोन पदसे कितना कम क्षेत्र विवक्षित है ?

शुंका—सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकसाप्तस्येयमागः सच चटुर्दशमागा वा देशोनाः । ४. वि. १, ८.

[१, ४, ३७.]

फोसणणुगमे मणुससोसणपक्खणे

कुलसेल-मेरुपन्द-जोइसावासादिणा । माणुसेहि अगमपदेसस्म तस्स कथं माणुसखेत-
वपस्सो ? ण, लद्धिसंयणणुणीणमगमपदेसाभावा । मारणंतियसमुग्धादगेदेहि सत्त चोदस-
भागा देखणा पोसिदा । किं कारणं ? सासणणं मारणंतिएण भवणवासियेलोमादो इट्ठा
गमणाभावादो, उवरि सन्नत्थ मारणंतिएण गमणसंभवादो । उववादगेदेहि तिण्हं लोगणम-
संखेज्जदिभागो पोसिदो; तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । ण ताव गोइय
सासणणं मणुससुप्पज्जमाणणं पोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, दुक्खं भ-
दुवाहुत्तेत्तफलस्स गोइयअसंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियदेत्तफलस्सेन तिरियलोगसंसंज्जदि-
भागत्तुवलंभादो । णादीदकाले अट्ठरज्जुमाळरिय ट्ठिदेवसामाणणं मणुस्सेसुप्पज्जमाण-
मुववादपोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, छक्कावकमणियमवलण पणदालीस-समाधान—चित्रायुधिषी, कुलाचल, मेरुपर्वत और ज्योतिष्क आवास आदिसे हीन
प्रदेश विवक्षित है ।शुंका—मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले इस कुलाचल आदिके क्षेत्रको 'मनुष्यक्षेत्र'
यह संज्ञा कैसे प्राप्त है ?समाधान—नहीं, क्योंकि, लद्धिसमग्न मनुष्योंके लिए (मनुष्यलोकके भीतर)
अगम्य प्रदेशका अभाव है ।मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने कुछ कम सात बटे चौदह
(३७) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक
समुद्घातके द्वारा भवनवासियोंके निवासलोकसे नीचे गमन नहीं होता है । किन्तु ऊपर सर्वत्र
मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा गमन संभव है । उपपादगत उक्त तीनों प्रकारके सासादन-
सम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।शुंका—मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र भी
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं होता, क्योंकि, (असंख्यात योजन धिस्तुत श्रेणीयद्वादि
विलोकके) अपने दोनों ओरके दंडाकार व मुजाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल, नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि-
योंके मारणान्तिकक्षेत्रफलके समान, तिर्यग्लोकके असंख्यातवर्धे भागप्रमाण पाया जाता है ।
और न अतीतकालमें ही आठ राजुप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित और मनुष्योंमें उत्पन्न
होने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादसमन्धी स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां

भाग स्पर्श किया है ।

शुंका—'दुग्धभट्टाहुत्तफलस्स' इस पदका अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं हुआ । प्रायः यही पद पहले
भी आ चुका है । (देखो पृ. १८७.) इस पदकी यथाशक्य सार्थकता निकालकर अर्थ कर दिया
गया है । संभव है ये उक्त नरकके बड़े से बड़े विलोकके नाम हों । त्रिलोकप्रज्ञातिमें विलोकके नाम
इस प्रकारके मिलते हैं, किन्तु ये नाम हमें अभी तक नहीं मिले ।

माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा पोसिदो । मारणंतियसमुग्घादगेदेहि चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठुइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । कारणं चित्तिय वत्तव्वं । पमत्तसंजदण्हडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ ३९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं उत्तो चि संपदि ण उच्चदे । एवं पज्जत्तमणुम-मणुसिणीसु । णवरि मणुसिणीसु असंजदसम्मादिट्ठणिं उववादो णत्थि । पमत्ते तेजाहारं णत्थि ।

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगेदेहि चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । मारणंतिय-उववादगेदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदातगत संयतासंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्ठुइज्जादोसे अनंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण विचार कर कहना चाहिए । प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लगाकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानहीं मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र ओघप्ररूपणोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ।

सयोगिकेवली जिनोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह आये हैं, इसलिये अर्थ नहीं कहते हैं । इसी प्रकारसे पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यानीयोंका स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि मनुष्यानीयोंमें असंयतसम्पद्यष्टि जीवोंका उपादा नहीं होता है, और प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें तैजस एवं आहारकसमुदात नहीं होते हैं ।

लब्धपर्याप्त मनुष्योंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कपायसमुदातगत लब्धपर्याप्त मनुष्योंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदात और उपादापदगत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सव्वलोगो वा ॥ ४१ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगेदेहि चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा अदीदकाले पोसिदो । मारणंतिय-उववादगेदेहि सव्व-लोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणे विरोहाभावा ।

देवगदीए देवसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४२ ॥

एत्थ ताव मिच्छादिट्ठिणिं उच्चदे- सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखे-ज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठुइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एवं विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेडव्वियपदाणं पि वत्तव्वं । मारणंतिय-उववादगेदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो अमंखेज्जगुणो पोसिदो । सासणसम्मा-दिट्ठिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेडव्वियपदाणं खेत्तं चोघं । मारणंतिय-

लब्धपर्याप्त मनुष्योंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ४१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कपायसमुदातगत लब्धपर्याप्त मनुष्योंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभाग अतीतकालमें स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदात और उपादागत मनुष्योंने सर्व-लोक स्पर्श किया है क्योंकि, उनके सर्वत्र गमनानागमनमें कोई विरोध नहीं ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्याद्यष्टि और सामादनसम्यग्द्यष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४२ ॥

यहांपर पहले मिथ्याद्यष्टिदेवोंका स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं-स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत मिथ्याद्यष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्या-तवां भाग और अट्ठुइज्जादोसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे विद्यार्थ-त्वस्थान, वेदना, कपाय और धैर्यक्रियरूपसमुदात, इन पदोंको प्राप्त देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । मारणान्तिकसमुदात और उपादापदवाले मिथ्याद्यष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और धैर्यक्रियरूपवाले सासादनसम्यग्द्यष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघक्षेत्रको प्ररूपणके समान है । मारणान्तिक-

उपवादागदणं पि खेचोघमेव होदि । एसा वट्टमाणपमाणपरूवणा । अदीदाणागद-
परूवणट्टमाह—

अट्ट णव चौदसभागा वा देसूणा ॥ ४३ ॥

सत्याणसत्याणमिच्छादिद्वीहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ ओघकारणं वत्तन्वं । सासण-
सम्मादिद्वीहि सत्याणसत्याणपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ वि ओघकारणं वत्तन्वं ।
विहारवदिसत्याण-वेदण-कसाय-वेअन्विपपरिणदेहि देणुणट्टाणजीवेहि अदीदकाले अट्ट
चौदसभागा देसूणा पोसिदा । केण ऊणा ? तदियणुदविहेट्टिमत्तलसहस्सजोयणेहि अणोहि
वि देवाणमगम्मपदेसेहि । मारणंतिपसमुवादागदेहि मिच्छादिहि-सासणसम्मादिद्वीहि णव
चौदसभागा देसूणा पोसिदा, हेड्डा दो रज्जू, उवरि सत्त रज्जू ति । उपवादागदेहि

समुद्धत और उपपादपदवाले जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र ओघ क्षेत्ररूपणके समान ही होता
है । इसप्रकार यह वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा समाप्त हुई । अब अतीत
और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये
हैं ॥ ४३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान पदवाले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अर्द्धार्द्धीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र
स्पर्श किया है । यहाँपर कारण ओघके समान कहना चाहिए । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत
सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातवां भाग और अर्द्धार्द्धीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँपर भी कारण
ओघके समान ही कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकियिकसमुद्धत,
इन पदोंसे परिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि, इन वों गुणस्थानती देवोंने अतीतकालमें
कुछ कम आठ बटे चौदह (१५) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—यहाँ आठ बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम हैं ?

समाधान—तृतीय पृथिवीके अधस्तन तलसम्बन्धी एक हजार योजनोले, तथा
अन्य भी देवोंके अगम्य प्रदेशोंसे, कम हैं ।

मारणान्तिकसमुद्धतगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने मंदराचलसे
नीचे वों राशु और ऊपर सात राशु, इस प्रकार कुछ कम नौ बटे चौदह (१५) भाग स्पर्श

मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वीहि पंच चौदसभागा देसूणा पोमिदा, सहस्मारकप्पादो उवरि-
भेदेसियुवादाभावा । छक्कावक्कमणियमे संते पंचचौदसभागफोसणं ण जुज्जदि ति णासकणिज्जं,
चटुण्हं दिसाणं हेट्टवरिमदिसाणं च गच्छंतेहि तदा मारणं षडि विरोहाभावादो ।

का दिसा णाम ? सगट्टाणादो कंडुज्जुवा दिसा णाम । ताओ छब्बेव, अणोसिम-
संभवादो । का विदिसा णाम ? सगट्टाणादो कण्णायारेण द्दिद्वेत्तं विदिसा । जेण सव्भे
जीवा कण्णायारेण ण जांति तेण छक्कावक्कमणियमो जुज्जेदं । ण च एगदंडेणव उपपत्ति-
द्वुणेण उवरि सरिसा होति ति णियमो, एगंगुलादिवियपेहि तिरिक्खेण आयदं पटमदंडं
काऊण तिरिक्ख-मणुसाणं विदियदंडेण सगुणत्तिट्ठणपावणे विरोहाभावादो । भवणवासिएसु
उपपज्जमाणतिरिक्खुवादावेत्ते गहिदे पंच रज्जू सादिरिया किण्ण होति ति उत्ते ण होति,

किये हैं । उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह
(१५) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सहस्मारकल्पसे ऊपर इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका
उपपाद नहीं होता है ।

शंका—छहों दिशाओंमें जाने आनेका नियम होनेपर सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका
स्पर्शनक्षेत्र पाच बटे चौदह भागप्रमाण नहीं बनता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, चारों दिशाओंको और
ऊपर तथा नीचेकी दिशाओंको गमन करनेवाले जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धतके प्रति कोई
विरोध नहीं है ।

शंका—दिशा किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने स्थानसे याणकी तरह सीधे क्षेत्रको दिशा कहते हैं ।
वे दिशाएं छह ही होती हैं, क्योंकि, अन्य दिशाओंका होना असंभव है ।

शंका—विविधा किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने स्थानसे कर्णरेखाके आकारसे स्थित क्षेत्रको विविधा कहते हैं ।

चूंकि मारणान्तिकसमुद्धत और उपपाद पदगत सभी जीव कर्णरेखाके आकारसे
अर्थात् तिरछे मार्गसे नहीं जाते हैं, इसलिए छह दिशाओंके अपकम अर्थात् गमनागमनका
नियम बन जाता है । तथा, एक वंडके द्वारा ही सत्र जीव ऊपर उत्पत्तिस्थानकी अपेक्षा
समतलस्थ हो जाते हैं, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, एक अंगुल आदिके विकल्पसे
तिरछे रूपसे आयत प्रथम वंडको करके तिर्यच और मनुष्योंका द्वितीय वंडके द्वारा अपने
उत्पत्तिस्थानको पानेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—भवनवासियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यचोंके उपपादक्षेत्रको प्रद्वय करने पर
साधिक पांच राशु स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

अहियखेत्तादो उणखेत्तस्स बहुत्तुदेसा । तं क्वं णव्वदे ? हेट्ठा दंढायारेण ओयरिय विग्गहं काऊण भवणवासिसिएसुपपणाणं पढम-विदियदेहेहि अदीदकाले रुद्धखेत्तादो सहस्सा-रुत्तादेसजाए उवरिमभागस्स संखेज्जगुणत्ता । विमाणसिहसुत्तुदेहेहि अदीदकाले रुद्धखेत्तादो सहस्सा-उवरिमभागो, सहस्सारुत्तरिमपज्जवसाणस्स लक्खपमाणजोयोणेहिंतो बहुअत्तादो । तं कुदो णव्वदे ? देखणपंच-चोहसभागफोसण्णहाणुवचचीदो ।

सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तपरूत्तणाए उत्तो ति इह ण उच्चदे ।

अट्ट चोहसभागा वा देसूणा ॥ ४५ ॥

समाधान—ऐसी शंका करने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा कम क्षेत्रकी अधिकताका उपदेश पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नीचे दंडाकार आत्मप्रदेशोंसे उत्तरकर और विग्रह करके भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रथम और द्वितीय दंडोंके द्वारा अतीतकालमें रुद्धक्षेत्रसे सहस्रार कल्पकी उपपादशय्याका उपरिम भाग संख्यातगुणा है, इसलिए जाना जाता है कि नीचेके अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरका हीन क्षेत्र प्रधानतया विवक्षित है । देवोंके विमानोंका माप उत्सेधयोजनके प्रमाणसे है, इसलिए उपपादशय्यासे ऊपरी भाग अर्थात् विमानशिखरसे लेकर उसी कल्पके अन्त तकका क्षेत्र स्तोक अर्थात् अल्प नहीं है, क्योंकि, मेरुतलसे नीचेके एक लाख प्रमाणयोजनोंकी अपेक्षा सहस्रारकल्पके विमानशिखरसे ऊपरी पर्यन्तभागका प्रमाण बहुत है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—अन्यथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका देशोन पांच बटे चौबह (१५) भाग स्पर्शनक्षेत्र बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि भवनवासी देवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरके विमानवासी देवोंका क्षेत्र यहां पर प्रधानतया ग्रहण किया गया है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असल्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्रकरणमें कहा गया है, इसलिए यहां पर नहीं कहा जाता है । सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४५ ॥

सत्याणसत्याणपरिणदेहि सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि तिण्हं लोगाम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एसो 'वा' सद्व्वो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कमाय-वेउव्विय-भारणंतियसमुग्गदादेहि असंजदसम्मादिट्ठिहि अट्ट चोहसभागा देखणा पोसिदा । उववादेगेदेहि छ चोहसभागा पोसिदा, अच्छुदकप्पादो उवरि मणुसवदिरित्ताणसुवादाभावा । एवं सम्माभिच्छदिट्ठिणं पि । णवरि भारणंतिय-उववादेगदा णत्थि ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मा-दिट्ठिहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४६ ॥

वाणवेंतर-जोदिसियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिणं खेत्तमंगो । भवणवासिय-मिच्छादिट्ठिहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कमाय-वेउव्वियसमुग्गदादेहि वट्ट-माणकाले चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो । अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो । उववादे-परिणदणं पि एवं चेव वत्तव्वं । जदि वि एदं वट्टमसंखेज्जसेदीमेचं, तो वि तिरिय-

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका सख्यातवां भाग और अट्टाहज्जिपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कमाय, धैक्रियिक और मारणान्तिकसमुदागत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम आठ बटे चौबह (१५) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने छह बटे चौबह (१५) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर मनुष्योंको छोड़कर अन्य जीवोंके उत्पन्न होनेका अभाव है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका भी स्पर्शन जानना चाहिए, विशेष बात यह है कि इनके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्य-ग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असल्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

वानव्यन्तर और ज्योतिष्क मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्रकरणके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कमाय और धैक्रि-यिकसमुदागत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । यद्यपि यह उपपादक्षेत्रसम्बन्धी मार्ग असंख्यात श्रेणीप्रमाण होता है, तथापि तिर्यलोकके असंख्या-

लोगस्स असंखेज्जदिभागं चेव उववादेण वहुमाणकाले फुसदि, तिरियलोगमज्झमि तद-
संखेज्जदिभागो चेव भवणावासाणमवद्वाणादो, तदवद्धिददिसं मोचूण्णदिसाए गमणा-
भावादो, हेट्ठा ओयरिय उप्पज्जमाणानं सुहु शोवत्तादो । मारणंतियसमुग्धादगेदेहि तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो । भवणवासियसासणसम्मा-
दिट्ठीणं खेत्तमंगो ।

अद्धुट्ठा वा, अट्ट णव चोदसभागा वा देसूणा ॥ ४७ ॥

भवणवासियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवादिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-
पदेहि अद्धुट्ठा वा अट्ट चोदसभागा वा देखणा । अट्टुट्टरज्जू सयमेव विहरंति । कधमाहुट्ट-
रज्जू जादा ? मंदरतलादो हेट्ठा दोणि, उवरि जाव सोधम्मविमाणसिहरधज्जडो चि
दिवट्टुरज्जू । उवरिमदेवयोगेण अट्ट रज्जू । मारणंतियसमुग्धादगेदेहि णव चोदसभागा

तवें भागप्रमाण क्षेत्र ही उपपादके द्वारा वर्तमानकालमें स्पर्श किया जाता है, क्योंकि,
तिर्यग्लोकके मध्य भागमें और उसके भी असंख्यातवें भागमें ही भवनवासी देवोंके आवासोंका
अवस्थान है । तथा, जिस दिशामें विमान अवस्थित हैं उस दिशाको छोड़कर अन्यदिशामें
गमन करनेका अभाव है, तथा, नीचे उतरकर उपपन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण बहुत कम है ।
मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग
और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । भवन-
वासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र क्षेत्ररूपणके समान है ।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, आठ भाग
और नौ भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवा भाग और अट्ठाईहीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-
वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपदवाले उक्त देवोंने चौवह भागोंमेंसे
देशोन साढ़े तीन भाग, (२८) अथवा आठ भाग (१६) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । भवन-
वासी देव साढ़े तीन राजु स्वयं ही विहार करते हैं ।

शंका—साढ़े तीन राजु कैसे हुए ?

समाधान—मंदराचलके तलभागसे नीचे तीसरी शुशिवी तक दो राजु और ऊपर
सौधर्मकल्पके विमानके शिखरपर स्थित ध्वजादंड तक डेढ़ राजु, इस प्रकार मिलाकर साढ़े
तीन राजु हुए ।

उपरिम अर्थात् ऊपरके आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंके प्रयोगसे आठ राजुप्रमाण

देसूणा पोसिदा । उवरि सच्च, हेट्ठा दोणि, एवं णव रज्जू । उववादपरिणदेहि तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो ।
ओयणलखवाहं तिरियपदरमदीकाले किण्ण पुसिज्जदि ? ण, तिरिच्छेण भवणद्धिपदेसं
गंतूण हेट्ठा मुक्कमारणंतियाणमुववादेण हेट्टुवरिमासेसखेत्तफुसणाभावादो । पुणो कधं
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं जुज्जेदे ? सगावद्धिपदेसादो हेट्ठा गंतूण तिरिच्छेण
पल्लिडिय सगभवणेषुपपणाणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो उववादफोसणं होदि । अण्णहा
किण्ण होदि ? भवणवासियपाओगाणुपुव्विपडिचद्वागासपेदसाणमवद्वाणवसेण मारणंतिय-
संभवादो । भवणवासियसासणसम्मादिट्ठिसव्वपदानं भवणवासियमिच्छादिट्ठिमंगो । वाण-
वैतरमिच्छाट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स

विहार करते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं भवनवासी देवोंने नौ बटे चौदह (१६)
भाग स्पर्श किये हैं । मंदराचलसे ऊपर लोकके अन्त तक सात राजु और नीचे तीसरी
शुशिवी तक दो राजु, इस प्रकार नौ राजु होते हैं । उपपादपरिणत उक्त देवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईहीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने अतीतकालमें एक लाख योजन बाह्यवाला
तिर्यक्प्रतरप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं स्पर्श किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यग्रूपसे भवनस्थित प्रदेशको जाकर नीचे मार-
णान्तिकसमुद्घातको करनेवाले जीवोंके उपपादपदकी अपेक्षा नीचे ओर ऊपरके समस्त
क्षेत्रको स्पर्शन करनेका अभाव है ।

शंका—तो फिर भवनवासी देवोंके उपपादपदकी अपेक्षा तिर्यग्लोकका संख्यातवां
भाग स्पर्शनक्षेत्र कैसे बन सकता है ?

समाधान—अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर पुन तिरछे रूपसे पलट करके
अपने भवनोंमें उतपन्न होने वाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण उपपादपद-
सम्यन्धी स्पर्शनक्षेत्र हो जाता है ।

शंका—यह स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि, भवनवासी देवोंके योग्य आनुपूर्वनिर्णामकर्मसे प्रतिषेद्ध आकाश-
प्रवेशोंके अवस्थानके वशसे मारणान्तिकसमुद्घात होता है, इसलिये उक्त स्पर्शनक्षेत्र अन्य
प्रकारसे नहीं बन सकता है ।

भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके स्वस्थानादि सभी पदोंका स्पर्शनक्षेत्र भवनवासी
मिथ्यादृष्टि देवोंके समान है । मिथ्यादृष्टि और सासादबसम्यग्दृष्टि वानव्यन्तर देवोंने
स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य-

संखेज्जदिभागो, अद्दुहज्जदो असंखेज्जगुणो । तं जहा—एगं जगपदरं ठविय तप्पाओग-
संखेज्जपदरं गुलेहि भागे हिदे वेंतरावासाण पमाणं होदि । तमेगावाभोगाहणाए संखेज्जघण-
गुलपमाणाए गुणिदे संखेज्जगुलाणि बाहल्लं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं जगपदरं
होदि । असंखेज्जजोयणवित्थहा वेंतरावासा अप्पधाणा चि कट्ठु इदं भणिदं । अह जइ ते
चेय पहाणा, जगपदरस्स असंखेज्जजाणि पदरं गुलाणि भागहारं ठविय असंखेज्जघण-
गुलेहि एगावासुप्पणेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कमाय वेउब्बियपदपरिणदमिच्छादिहि-सासणसम्मादिहि सगपच्चएण आहुहु-
चोहसमागा देहणा पोसिदा । परपच्चएण अह चोहसमागा देहणा पोसिदा । मारणतिय-
समुग्धादगेहि णव चोहसमागा पोसिदा । उववादेण तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अद्दुहज्जदो असंखेज्जगुणो पोसिदो । उववादेण तिरिय-
लोगदो असंखेज्जगुणं खेत्तं वट्ठुमाणकाले अवलंभिय हिद्वेंतरा अदीदकाले कथं
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं पुसंति चि उत्ते ण एस दोसो, खेत्तं णाम सव्वजीवाण-

ग्लोकका संख्यातवां भाग और अद्दुहदीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वट्ठु
इस प्रकार है— एक जगप्रतरो स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात प्रतरागुल्लोसे भाग
देनेपर संख्यात घनांगुलप्रमाण व्यन्तर देवोंके आवासोंका प्रमाण हो जाता है । उसे
संख्यात अंगुलप्रमाण एक आवासकी अवगाहनासे गुणा करनेपर संख्यात घनांगुल बाह्य-
वाला और तिर्यग्लोकके संख्यातर्धे भाग प्रमाण जगप्रतर होता है । यद्यपि असंख्यात योजन
विस्तारवाले भी व्यन्तरोंके आवास होते हैं, किन्तु वे यहापर प्रधानरूपसे विवाक्षित नहीं
हैं, इस अपेक्षासे यह उक्त स्पर्शनक्षेत्र कहा है । और यदि वे ही अर्थात् असंख्यात योजन
विस्तार वाले विमानोंको ही प्रधान माना जाय, तो जगप्रतरका असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण
भागहार स्थापित करके एक आवासके क्षेत्रफलकी अपेक्षा उत्पन्न होने वाले असंख्यात
घनांगुल्लोसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है ।

विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासा-
दनसम्यग्दृष्टि भवनवासी देवोंने स्वप्रत्ययसे अर्थात् अपने आप कुछ कम सोहे तीन बटे
चौदह (२६) भाग स्पर्श किये हैं । किन्तु परप्रत्ययसे अर्थात् अन्य देवोंके प्रयोगसे कुछ
कम आठ बटे चौदह (१८) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्धातगत उक्त दोनों
गुणस्थानवर्ती व्यन्तर देवोंने नौ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादकी अपेक्षा
उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां
भाग और अद्दुहदीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शुक्ला—उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें व्याप्त
करके स्थित व्यन्तर देव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातर्धे भागको स्पर्श करते हैं ?

भोगाहणाओ उववादविसिद्धाओ एगहुं करिय गहिदे होदि । तेण तिरियलोगदो वेंतर-
मिच्छादिहि-उववादखेत्तमसंखेज्जगुणं जादं । पोसणमिह पुण जीवपण्डिद्विदओगाहणाओ
ण घेपंति, किंतु तीदकाले उववादपरिणदमिच्छादिहि-सासणसम्मादिहिद्वेतेहि छिच्छ-
खेत्तमेव घेपंति, वेंतरसु वि ण देवा गोरइया वा उप्पज्जंति, ण च एंदिदिया विग-
ल्लिंदिया, किंतु सणि-असणिपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसा चेव । ण च वेंतराणमावासा
सोधम्मादिसु तिरियलोगवाहिरसु कप्पेसु अत्थि, तधोवदेसामावा । ण च लक्खजोयण-
बाहल्लतिरियपदरमिह सव्वत्थ वेंतरावासा चेव, जोदिसियवासाणं वेलंथरपणणादिआवासाणं
च अभावप्पमंगा । ण च भूमीए चेव वेंतरावासा होति चि णियमो अत्थि, आगासपदि-
द्वियाणं पि वेंतरावासाणं संभवादो । ण च तिरियलोमे चेव वेंतरावामाणमत्थित्तणियमो,
इद्दा पंकवहुलपुट्ठवीए वि भूत-रक्खसावासाणमुलंभादो । तम्हा किंचूणमजोएदुण वेलक्ख-
बाहल्लतिरियपदरं ठविय सत्तकदीए ओवद्विय पदरागरेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागबाहल्लं जगपदरं होदि । एवं चेव जोदिसियाणं पि वत्तनं, पव्वरि उववादखेत्ते

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व जीवों की उपपादविशिष्ट अवगाहना-
ओंको एकट्ठा करके ग्रहण करने पर 'क्षेत्र' यह नाम होता है, इसलिये मिथ्यादृष्टि व्यन्तर-
देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा हो जाता है । पर स्पर्शनमें जीवोंसे
प्रतिष्ठित अवगाहनाएँ नहीं ग्रहण की जाती हैं, किन्तु अतीतकालमें उपपादपरिणत मिथ्यादृष्टि
और सामादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंसे स्पर्शित क्षेत्र ही ग्रहण किया जाता है । व्यन्तरोंमें
भी न तो देव अथवा नारकी जीव उत्पन्न होते हैं और न एकैन्द्रिय व त्रिकलेन्द्रिय जीव ही,
ब्रह्मा केवल सक्षी व असक्षी पंचेन्द्रियतयिच और मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं । तथा तिर्यग्लोकसे
बाहिर स्थित सौधमोदि कल्पोंमें भी व्यन्तर देवोंके आवास नहीं होते हैं, क्योंकि, इस
प्रकारके उपदेशका अभाव है । और न लाख योजन बाह्यवाले तिर्यक्षप्रतरे ही सर्वत्र व्यन्तर
देवोंके आवास होते हैं, अन्यथा चन्द्र, सूर्यादि ज्योतिष्क देवोंके आवासोंका ओर वेलधर,
पन्नग आदि भवनवासी देवोंके आवासोंके अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । तथा भूमिमें
ही व्यन्तर देवोंके आवास होते हैं, ऐसा भी नियम नहीं है, क्योंकि, आकाशमें प्रतिष्ठित
व्यन्तरोंके आवास सम्भव हैं । और न तिर्यग्लोकमें ही व्यन्तर देवोंके आवासोंके अस्तित्वका
नियम है, क्योंकि, नीचे रत्नप्रभा पृथिवीके पंकवहुल भागमें भी भूत और राक्षस नामके व्यन्तर
देवोंके आवास पाये जाते हैं । इसलिये कुछ कम क्षेत्रको नहीं जोड़कर दो लाख योजन
बाह्यवाले तिर्यक्षप्रतरको स्थापित करके सातकी छति अर्थात् वर्गसे अपवर्तितकर प्रतराकारसे
स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातर्धे भागप्रमाण बाह्यवाला जगप्रतर हो जाता है ।

इसी प्रकारसे ही ज्योतिष्क देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह

१ रज्जु रुद्धी गुणित्वया णवणवदिसइस्सा आधिपलक्खेण । तम्मज्जे तिविगग्गा वेंतरदेवाण होति पुरा ॥

मवण मवणपुराणि आवासा इय मवति निविगग्गा । जिणपुदकमलविणिगद्वेंतरपण्णाविगमाए । रयणप्पहुदवीए
मवणाणि दीह-उवदिउवरीणि । मवणपुराणि दहगिरिपहुदीणं उवरे आवासा ॥ ति प पन १९४

आणिज्जमाणे णवजोयणसदवाहलं तिरियपदरं सत्तकीए खंडिदे पदरागारेण हुइदे तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागवाहलं जगपदरं होदि ।

सम्पामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो- सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउज्जिय-
मारणंतियपदपरिणदेहि सम्पामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि भवणवासिय-वैतर-जोदि-
सिएहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

अट्टुट्टा वा अट्ट चौदसभागा वा देसुणा ॥ ४९ ॥

सत्थाणसत्थाणभवणवासिय-वाणवैतर-जोदिसिय-सम्पामिच्छादिट्टि-असंजदसम्मा-
दिट्टीहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो
असंखेज्जगुणो पोसिदो । णवरि भवणवासिएसु चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो
चि वत्तज्जं । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउज्जिय-मारणंतियपदपरिणदेहि सम्मा-

हे कि उनके उपपादक्षेत्रको लाते समय नौ सौ योजन वाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको सातके
वर्गद्वारा ऋडितकर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यलोकके सत्थातर्वे भागप्रमाण वाहल्य-
वाला जगप्रतर होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्भात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन भाग और कुछ कम आठ वटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४९ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि भवनवासियोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, पेसा कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणा-

१ १२७७८वीं गुणित्वं एकस्ययदसुउरं हि जोयणए । तस्मिं कणभवेस सोधम पेसांमि नोदिसिया ढ
ति. प. ७, ५.

मिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टीहि अट्टुट्टा चौदसभागा देसुणा समपचएण; परपचएण अट्ट
चौदसभागा देसुणा पोसिदा । णवरि सम्पामिच्छादिट्टीणं मारणंतियपदं णत्थि ।

सोधमीसाणकप्पवासियदेवेषु मिच्छादिट्टिपहुडि जाव असंजद-
सम्मादिट्टि ति देवेषं ॥ ५० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउज्जियपदपरिणदेहि मिच्छा-
दिट्टीहि वट्टमाणकाले चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।
मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्ज-
गुणो पोसिदो । सेसगुणट्टाणजीवेहि अप्पण्णो पदेसु वट्टमाणेहि चटुण्हं लोगणमसंखे-
ज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तीदे काले सोधमीसाणकप्पवासिय-
मिच्छादिट्टि-सासणसम्मादिट्टीहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदि-
भागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तं जहा- सन्वे इंदया संखेज्जोयण-
वित्थडा, सेठीवट्टा असंखेज्जजोयणवित्थडा, पइणयवा मिस्सा । एत्थ जदि वि सव्व-

न्तिकसमुद्भात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने
स्वप्रत्ययसे कुछ कम साढ़े तीन वटे चौदह (५०) भाग स्पर्श किये हैं; तथा परप्रत्ययसे
कुछ कम आठ वटे चौदह (५०) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि देवोंके मारणान्तिकपद नहीं होता है ।

सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयत-
सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनवे
समान है ॥ ५० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत
मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और
अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्भात और उपपादपद-
परिणत सौधर्म-ईशान देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तथा
नरलोक और तिर्यलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान
स्वस्थान आदि अपने अपने पदोंमें वर्तमान सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती देवोंने सामान्य
लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है । अतीतकालमें सौधर्म और ईशान कल्पवासी स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि
और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और
अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह इस प्रकार है- सभी इन्द्रकविमा
संख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं, श्रेणीबद्धविमान असंख्यात योजन बिस्तृत और

१ इदयसेदीमदपरणण्यां कमेण विपारा । सखेज्जमसखेज्ज उमप व य बोयणण हवे । वि. सा. १६८.

विमाणानि असंखेज्जजोयणवित्थडाणि चि धेप्पंति, तो वि सव्वविमाणखेत्तफलसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चैव होदि । तं नहा- एगविमाणायामो असंखेज्जजोयण- भेत्तो चि कट्ठु असंखेज्जजोयणवित्थभेणायामं गुणिय विमाणुस्सहसंखेज्जगुलेहि गुणिदे- तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि, एक्केक्कविमाणायाम-वित्थसंमाणं सेट्ठिपट्टमवग- मूलदो असंखेज्जगुणपमाणवादो । तं सोधम्मीसाणविमाणसंखाए गुणिदे वि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि चि । एत्थ सव्वकप्पाणं कमेण विमाणसंखापरुवयमाहाओ-

वत्तीस सोहम्मो अट्ठवीसं तथेव ईसाणे ।

वाह सणक्कुमारे अट्ठेव य होति माहिदे ॥ १० ॥

नद्धे कप्पे बग्घोत्तरे य चचारि सयसहस्साह ।

छसु कप्पेसु य एय चउरासीदी सयसहस्सा ॥ ११ ॥

पण्णासं तु सहस्सा जतय-काट्ठिणसु कप्पेसु ।

सुक्क-महासुक्केसु य चचालीस सहस्साह ॥ १२ ॥

प्रकीर्णकविमान मिश्र अर्थात् संख्यात और असंख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं । यद्वापर यदि सभी विमान असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं, ऐसा समझकर ग्रहण करते हैं तो भी सभी विमानोंके क्षेत्रफलका जोड़ तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है । यह इस प्रकारसे है— एक विमानका आयाम असंख्यात योजनप्रमाण होता है । इसलिय असंख्यात योजन विष्कम्भसे आयामको गुणा करके विमानके उत्सेधसम्बन्धी संख्यात अंगुलोंने गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, एक एक विमानका आयाम और विष्कम्भ जगज्जोके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणित (हीन) प्रमाण होता है । उसे सोधमें ईशानकल्पकी विमानसंख्यासे गुणा करनेपर भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही रहता है । यद्वापर सभी कल्पोंके विमानोंकी क्रमसे संख्याओंकी प्ररूपणा करमेवाली गायार्इ इस प्रकार है—

सौधर्मकल्पमें बत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकारसे ईशानकल्पमें अट्ठार्विंश लाख, सैनकुमारकल्पमें बारह लाख तथा माहेन्द्रकल्पमें आठ लाख विमान होते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पमें दोनों कल्पोंके मिलाकर चार लाख विमान हैं । इस प्रकार इन ऊपर बताए गये छह कल्पोंमें विमानोंकी संख्या बौरासी लाख होती है ॥ ११ ॥

अैसे— $3200000 + 2600000 + 1200000 + 600000 + 400000 + 800000 = 6800000$ सौधर्मादि छह स्वर्गोंकी विमानसंख्या ।

लान्तव और कापिष्ठ इन दोनों कल्पोंमें पचास हजार विमान होते हैं । शुक्र और महाशुक्र कल्पमें चालीस हजार विमान हैं ॥ १२ ॥

१ ' असंखेज्जगुणपमाणवादो ' इति पाठ प्रतिपाति ।

छच्चेव सहस्साहं सयारकप्पे तथा सहस्सारे ।
सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुरे चैय ॥ १३ ॥
एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु, तिसु मय्ममेसु सचहियं ।
एक्काणउद्विमाणा तिसु गेवज्जेसुवरिमेसु ॥ १४ ॥
गेवज्जायुवरिमया गव चैव अणुदिसा विमाणा ते ।
तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवति संखाए ॥ १५ ॥

विहार-वेदण-कमाय-वेउविययपेदेहि अट्ठ चोहसमागा देवणा पोसिदा । मारणंतिय- परिणदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणेहि गव चोहसमागा पोसिदा । उववादपरिणदेहि दिवट्ठ- चोहसमागा पोसिदा । सोधम्मकप्पो धरणीतलादो दिवट्ठुरज्जुमोस्सरिय द्विदो त्ति सम्मा- मिच्छादिट्ठिहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चट्ठुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउविययपदपरिणदेहि अट्ठ चोहस- मागा देवणा पोसिदा । एवं असंजदसम्मादिट्ठिणं पि । गवरि मारणंतिएण अट्ठ चोहस- मागा, उववादेण दिवट्ठु-चोहसमागा देवणा पोसिदा । जेणवं देवोधादो सोधम्मकप्पे ण

शतार और सहस्वार कल्पमें छह हजार विमान होते हैं । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चार कल्पोंमें मिलाकर सातसौ विमान होते हैं ॥ १३ ॥

अघस्तन तीन प्रैवेयन्में एक सौ स्यारह विमान, मध्यम तीन प्रैवेयन्में एक सौ सात विमान और उपरिम तीन प्रैवेयन्में इत्थानवें विमान होते हैं ॥ १४ ॥

नव प्रैवेयन्को ऊपर अट्ठारिंश संख्यावाले नौ विमान होते हैं । उनके ऊपर अट्ठार संख्यावाले पांच विमान होते हैं ॥ १५ ॥

विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुदात, इन पदोंको प्राप्त सौधर्म- ईशान कल्पके मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । मारणात्तिकपदसे परिणत उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादन- सम्यग्दृष्टि देवोंने नौ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपाक्वपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सौधर्मकल्प धरणीतलसे डेढ़ राजु ऊपर आकर स्थित है । स्वस्थानस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अट्ठारिंशीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने मारणात्तिकसमुदातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग और उपपादकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

विसेसो अत्थि तेण देवोधमिदि सुत्तवयणं सुहु सुवडमिदि ।

सणक्कुमारपहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियेदेवसु मिच्छा-दिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

एदेसि पंचहं कप्पणं चटुगुणद्वानजीवेहि जहासंभवं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेडविय-मारणतिय-उववादपरिणदेहि चटुहं लोगणमसंखेज्जदि-भागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एसा बहुमाणपरूवणा ।

अट्ट चौदसभागा वा देसूणा ॥ ५२ ॥

पंचकप्पवासियचटुगुणद्वानजीवेहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि अदीदकाले चटुहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेडविय-मारणतिय-पदपरिणदेहि अहु चौदसभागा देसूणा पोसिदा । उववाद-परिणदेहि सणक्कुमार-माहिंदेदेवेहि तिणिण चौदसभागा देसूणा पोसिदा । बम्ह-बम्हुर-चर-

चूकि देवोंके ओषस्पर्शनसे सौधर्मकल्पमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिय 'देवोध' यह सूत्र-वचन भले प्रकार सुघटित होता है ।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर शतार सहस्सारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, इन पदोंसे यथासंभव परिणत उक्त पाँचों कल्पोंके चारों गुणस्थानोंमें रहने-वाले देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अद्वार्षीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह वर्तमानकालिक स्पर्शनके क्षेत्रकी प्ररूपणा है ।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्सारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुण-स्थानवर्ती देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५२ ॥

सनत्कुमारादि पांच कल्पोंके चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानस्वस्थान पदपरिणत देवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अद्वार्षीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और मार-णान्तिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपरिणत सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम तीन बटे चौदह (१३) भाग स्पर्श किये हैं । ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े

कप्पवासियेदेवेहि आहुट्ट-चोदमभागा देसूणा पोसिदा । लंतय-काविट्ठेदेवेहि चचारि चौदस-भागा देसूणा पोसिदा । सुक्क-महासुक्केदेवेहि अट्टपंचम-चोदसभागा देसूणा पोसिदा । सदर-सहस्सारकप्पवासियेदेवेहि पंच चौदसभागा देसूणा पोसिदा । गवरि सम्माभिच्छा-इड्ढिणं मारणतिय-उववादा णत्थि ।

आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियेदेवसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ५३ ॥

एदस्स सुत्तस्स बहुमाणखेत्तपरूवयस्स अत्थो पुवं परूविदो त्ति पुणो ण उच्चवेद ।
छ चौदसभागा वा देसूणा पोसिदा ॥ ५४ ॥

मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि सत्थाण-सत्थाणपदपरिणदेहि चटुहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अहुइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एसो 'वा' सट्ठो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेडविय-मारणतियपरिणदेहि छ चौदस-

तीन बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । लान्तय और कापिट्ट कल्पवासी देवोंने कुछ कम चार बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । शुक्र और महाशुक्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े चार बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । शतार और सहस्सार कल्पवासी देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष यात यह है कि सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

आनतकल्पसे लेकर आरण-अच्युत तक कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५३ ॥

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिय पुनः नहीं कहा जाता है ।

चारों गुणस्थानवर्ती आनतादि चार कल्पवासी देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५४ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य-लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ हुआ । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम

भाग देवणा पोसिदा, चिचाए उवरिमलदो हेडा एदेसि गमणाभावादो । मिच्छादिट्टि-सासनसम्मादिट्ठीणं उववादो चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्ज-गुणो । कुदो ? एगपणदालीसजोयणलक्खविकखंम-संखेज्जरज्जुआयदमुववादखेत्तं तिरिय-लोगस्स असंखेज्जदिभागं ण पोवेदि ति । सम्माभिच्छादिट्ठीणं मारणतिय-उववादपदं णत्थि । असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणदेहि अद्धल्लक-चोइसभागा देवणा पोसिदा । आरणच्छुद-कप्पे छ चोइसभागा देवणा पोसिदा । कि कारणं ? तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदा-संजदणं वेरियदेवसंबंधेण सब्बदीव-सायरेसु डिदानं तत्थुववादोवलंभादो ।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥५५॥

एदस्स सुचस्स वट्टमाणपरुवणा खेत्तमंगो । अदीदपरुवणा वि खेत्तमंगो चेय । कुदो ? चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च समाणत्तु-वलंभादो ।

छह बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, विघ्ना पृथिवीके उपरिम तलसे नीचे इनके गमनका अभाव है । उक्त मिथ्यादृष्टि और सासावनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादकी अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, पैतालीस लाख योजन विष्कम्भवाला और संख्यात राजुप्रमाण भागत उक्त देवोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको नहीं प्राप्त होता है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुदात और उपपादपव नहीं होते हैं । आनत-प्राणत करणके उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम साढ़े पांच बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारण और अभ्युतकल्पमें उक्त पदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीप और सागरोंमें विद्यमान तिर्यक असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंका आरण-अभ्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है ।

नववैश्वेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक विमानके गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिये । तथा अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही है, क्योंकि, सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणित क्षेत्रकी अपेक्षा समानता पाई जाती है ।

अणुदिस जाव सब्बहुसिद्धि विमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

एदसु ट्टिदअसंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउब्बिय-मारणतिय-उववादपरिणदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो, णवगेवज्जादिउवरिमदेवाणं तिरिक्खेसु चयणोववादाभावादो । णवरि पंच-पदपरिणदेहि सब्बहुसिद्धिदेहि माणुसलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो ।

एवं गदिसगणा समता ।

इंदियाणुवादेण एहंदिय-चादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सब्बलोगो ॥ ५७ ॥

एहंदिएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववादपरिणदेहि तीद-वट्टमाण-कालेसु सब्बलोगो फोसिदो । वेउब्बियपरिणदेहि वट्टमाणकाले चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदि-

नव अनुदिश विमानोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्य-ग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५६ ॥

इन नव अनुदिश और पांच भुजुतर विमानोंमें रहने वाले स्वस्थानस्वस्थान, विहारस्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुदात और उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और माणुष-क्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, नववैश्वेयकादि उपरिम कक्षवासी देवोंका व्यवन होकर तिर्यचोंमें उपपाद होनेका अभाव है । विशेष बात यह है कि स्वस्था-नादि पांच पर्वोंसे परिणत सर्वार्थसिद्धिके देवोंने मनुष्यलोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

इस प्रकार गतिमार्गेणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमागणके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपर्याप्त, एकेन्द्रियअपर्याप्त; चादर एकेन्द्रिय, चादर एकेन्द्रियपर्याप्त, चादर एकेन्द्रियअपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, इन पर्वोंसे परिणत एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सर्वलोक स्पर्श किया है । वैक्रियिक-पदपरिणत एकेन्द्रिय जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां

भागो पोसिदो । माणुसखेत्तं ण णव्वदे । अदीदकाले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, णर-
तिरियलोगेहिंत्तो असंखेज्जगुणो पोसिदो । अदीदकाले पंचरज्जुबाहलं तिरियपदरं विउच्च-
माणा वाउकाइया प्रसंति । ति । वादेइंदिय-वादेइंदियपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कमाय-
परिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंत्तो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
किं कारणं ? जेण पंचरज्जुबाहलं रज्जुपदरं वाउकाइयाजीवावुरिदं वादेइंदियजीवावुरिद-
अट्टपुढवीओ च, तेसिं पुढवीणं हेट्ठा द्विदवीसावीसजोयणसहस्सवाहलं तिणिण तिणिण
वादेवलए लोगंतट्टिदवाउकाइयखेत्तं च एगट्ठ कदे लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि ति ।
एदेहि अदीदकाले वि एचियं च खेत्तं पोसिदं, विवक्खिखदपदपरिणदाणमेदेसिं सच्च-
मणरयच्छणाभावादो । वेउच्चियपदपरिणदेहि वट्टमाणकाले चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो,
माणुसखेत्तदो अणुणिदविसेसो फोसिदो । तीदे काले तिण्हं लोगणं संखेज्जदिभागो,
दोलोगेहिंत्तो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणतिय-उववादपरिणदेहि तीद-चट्टमाणकालेसु

भाग स्पर्श किया है । इस विषयमें मनुष्यक्षेत्रका प्रमाण ज्ञात नहीं है । उन्हीं जीवोंने अतीत-
कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकेसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालमें पांच राजु बाह्यप्रमाण
तिर्यक्प्रतरको विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीव निरन्तर स्पर्श करते हैं । स्वस्थान, वेदना
और कषायसमुदात्त, इन पक्षोंसे परिणत बादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने
वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा
तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—वादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंके संख्यातवें भाग स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है ?

समाधान—इसका कारण यह है कि पांच राजु बाह्यवाला राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्र
वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण है और वादर एकेन्द्रिय जीवोंसे आठों पृथिवियों व्याप्त
हैं । उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस बीस हजार योजन बाह्यवाले तीन चीन चातचलयोंको
और लोकान्तमें स्थित वायुकायिक जीवोंके क्षेत्रको एकत्रित करनेपर सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका संख्यातवा भाग हो जाता है ।

इन्हीं उक्त जीवोंने अतीतकालमें भी इतना ही क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, विचक्षित
पदपरिणत इन उक्त जीवोंके सभी कालोंमें अन्यत्र रहनेका अभाव है । वैकृतिकसमुदात्तसे
परिणत वादरएकेन्द्रिय और वादरएकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मानुषक्षेत्रसे अज्ञातविशेष प्रमाणक्षेत्र स्पर्श
किया है । अतीतकालमें उन्हीं जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग
और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकसमुदात्त और उपवादपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें

सम्बलोगो पोसिदो । एवं वादेइंदियअपज्जत्तणं पि वत्तव्वं । णवरि वेउच्चियं णत्थि ।
सुट्ठमेइंदिय-सुट्ठमेइंदियपज्जत्तणत्तएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववाद-
परिणदेहि तिसु वि कालेसु सम्बलोगो पोसिदो, 'सुट्ठमा जल-थलागासे सम्बत्थ्य होति'
त्ति वयणादो ।

**वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं
खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५८ ॥**

एदस्सत्थो—वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियएहि तेसिं पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-
विहारवादिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं
लोगणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंत्तो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तेसिं चैव अपज्जत्तेहि
सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तदो

सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे वादर एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र
कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके वैकृतिकसमुदात्त नहीं होता है । स्वस्थान-
स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुदात्त और उपवादपरिणत सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म
एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श
किया है, क्योंकि, 'सूक्ष्मकायिकजीव जल, स्थल और आकाशमें सर्वत्र होते हैं,' ऐसा
आगमका वचन है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियपर्याप्त, द्वीन्द्रियअपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियपर्याप्त,
त्रीन्द्रियअपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपर्याप्त और चतुरिन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषाय-
समुदात्तसे परिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और अट्टाईद्वीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदात्त और उपवादपरिणत उक्त जीवोंने
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों
लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुदात्त-
परिणत उन्हीं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह

असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसा वडुमाणपरुवणा पुब्बुत्तरसंमालणणिमित्तं कदा ।

सन्वलोगो वा ॥ ५९ ॥

एतय ताव 'वा' सद्वो उच्चदे-नीहंदिय-तीहंदिय-चउत्तिदिहि तेसिं चैव पज्जेहि य सत्थानसत्थान-विहारवदिसत्थान-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो । विगलंदियसत्थानत्था सयंपहपव्वदस्स परमाणे चैव हंतति त्ति तदो परमाणे पुब्बं व पदरागारेण ठव्हे विगलंदियसत्थानसत्थानखेचं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेचं होदि । ससपदेहि वहरिसंबंधेण विगलंदिया सन्नत्य तिरियपदन्मंतरे हंतति त्ति पदरागारेण ठव्हे एदं वि खेचं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेचं चैव होदि । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सन्वलोगो पोसिदो । तेसिं चैव अपज्जेचेहि सत्थान-वेदण-कसाय-परिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाज्जदो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सन्वलोगो पोसिदो । पंचिदिय-

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा पूर्व और उत्तर अर्थके अर्थात् अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके संमालनेके लिए की गई है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५९ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुदातपरिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातयां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातयां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है ।

स्वस्थानस्वस्थानस्य विकलेन्द्रिय जीव स्वयम्प्रमर्षवर्तके परमाणुमें ही होते हैं, इसलिये परमाणवर्ती क्षेत्रको पूर्वके समान प्रतराकारसे स्थापित करनेपर विकलेन्द्रिय जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है । शेष पर्येकी अपेक्षा धीरी जीवोंके सम्बन्धसे विकलेन्द्रिय जीव सर्वत्र तिर्यक्प्रतरके भीतर ही होते हैं, इसलिये प्रतराकारसे स्थापित करनेपर यह क्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र ही होता है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । उन्हीं जीवोंसे स्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुदातपरिणत अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातयां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातयां भाग तथा अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदात तथा उपपादपरिणत विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र

तिरिक्खअपज्जत्ताणं जधा कारणं उचं, तथा एतय वि पुघ पुघ विगलंदियअपज्जत्ताणं वत्तन्वं ।

पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६० ॥

एदस्स सुत्तस्स परुवणा खेत्तपंचिदियदुगपरुवणाए तुल्ला, उभयत्य वडुमाण-कालावलवणं पडि साधम्ममादो ।

अट्ट चोदसभागा देसूणा, सन्वलोगो वा ॥ ६१ ॥

दुविधपंचिदियमिच्छादिट्ठीहि सत्थानपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाज्जदो असंखेज्जगुणो । एतय पुब्बं व जोदिसिय-वेत्तावासरुद्धखेचं अदीदकाले पंचिदियतिरिक्खेहि सत्थानीक्यखेचं च धेत्तुण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दुरिसेद्व्यो । एसो 'वा' सद्वच्चिदत्यो । विहारवदिसत्थान-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ट चोदसभागा पोसिदो, मेरुमूलदो उवरि छ, देट्ठा दो रज्जु-

वतलाते समय जिन प्रकार (उक्त क्षेत्र-हेतिका जो) कारण कहा है, उसी प्रकारसे यहांपर भी पुणक् पुणक् द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र बतलाते हुए उसी कारणको कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातयां भाग स्पर्श किया है ॥ ६० ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनोंकी क्षेत्रप्ररूपणाके समान है, क्योंकि, दोनों ही स्थानोंपर वर्तमानकालके अवलम्बनके प्रति समानता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६१ ॥

सत्थानस्वस्थानपदपरिणत पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातयां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातयां भाग और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर पूर्वके समान ही ज्योतिष्क और व्यन्तर देवोंके आवासोंसे रुद्ध क्षेत्रको तथा अतीतकालमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके द्वारा स्वस्थानीकृत अर्थात् स्वस्थानस्वस्थानरूपसे परिणत क्षेत्रको लेकर तिर्यग्लोकका संख्यातयां भाग दिखाना चाहिए । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुदातपरिणत उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंने आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, मेरुवर्तके मूळभागसे ऊपर छह राजु ओर ऋषि दो राजु, इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रके भीतर सर्वत्र पूर्वपदपरिणत

१ पंचेन्द्रियं मिथ्यादृष्टिभिलोकित्यावप्यभाग अट्ठा चतुर्दशभागं वा देहोना सर्वलोको वा । स वि. १, ६०.

खेत्तव्यमन्तरे सव्यत्य पुन्यपदपरिणददुविहपंचिदियाणमुलंभा । मारणतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो, विवक्खिददीदकालचादो ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ ६२ ॥

एदेसिं गुणद्वगणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तपरुवणा एदेसिं चैव खेत्ताणिओग-द्वारोघमिह उत्तपरुवणाए तुल्ला । कुदो ? सासणपहुडि जाव संजदासंजदो ति सव्वपदानं चट्ठुहं लोगणमसंखेज्जदिभागचेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणेण च एदेसिं चैव खेत्ताणिओगद्वारउत्तपदेहि साधम्ममुलंभादो । सेसगुणद्वगणं पि सव्वपदेहि सस्सिचत्तद-गादो च । अदीदकालमस्सिदूण परुवणं कीरमाणे वि गत्थि भेदो, पंचिदियवदिरिचगुण-पडिक्खणाणमभावा ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ ६३ ॥

एत्थ वि तिविधं कालमस्सिदूण ओघपरुवणा चैव कादब्बा, उमयत्थ पंचिदियं पडि भेदाभावा ।

दोनो प्रकारके पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं । मारणास्तिकसमुदात और उपपादपदपरिणत उक्त दोनों प्रकारके जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालकी यहां पर विवक्षा की गई है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

इस गुणस्थानोंकी वर्तमानकालविशिष्ट स्पर्शनकी प्ररूपणा, इन्हीं जीवोंके सेवानुयोग-द्वारेके ओघमें कही गई क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयत्तासंयत गुणस्थान तक सर्व पदोंका स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवर्ष भागसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रसे इन्हीं पूर्वोक्त जीवोंके क्षेत्रानु-योगद्वारमें कहे गये पूर्वोक्त साथ साधर्म्य पाया जाता है; तथा प्रमत्तसंयतादि शेष गुणस्थान-वर्ती जीवोंके भी सर्वपदोंके साथ सदृशता देखी जाती है । अतीतकालका आश्रय लेकर स्पर्शनप्ररूपणाके करने पर भी कोई भेद नहीं है, क्योंकि, पंचेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर गुण-स्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका अभाव है ।

सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

यहां पर भी तीनों कालोंको आश्रय लेकर ओघ स्पर्शनप्ररूपणा ही करता आदिष्ट, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर पंचेन्द्रियताके प्रति भेदका अभाव है ।

पंचिदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असं-खेज्जदिभागो ॥ ६४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परुवणा खेत्तमंगा । उत्तमेव किमिदि पुणो वि उब्बदे, फला-भावा ? ण, मंदवुद्धिभविज्जणमंभालणदुवारेण फलोवलंभादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ६५ ॥

सत्याण-वेदण-कसायपरिणदेहि तीदे काले तिहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ पंचिदियतिरिक्ख-अपज्जचाणं व तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं दस्सिदव्वं । एसो 'वा' सइस्सविदत्थो । मारणतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वलोगमिह एदेहि पदेहि सह सव्व-अपज्जचाणं गमणगमणपडिसेहाभावा ।

एवमिदियमगणा समत्ता ।

लघ्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असं-ख्यातवर्ष भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

इस सूत्री स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

शंका—कहां गई बात ही पुन क्यों कही जाती है, क्योंकि, कहे हुएके पुनः कहनेमें कोई फल नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदवुद्धि भव्यजनोंके संभालनेकी अपेक्षा पुनः कथन करनेका फल पाया जाता है ।

लघ्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कयायसमुदातपरिणत उक्त लघ्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवर्ष भाग, तिर्यलोकका संख्यातवर्ष भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर लघ्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवोंके समान ही तिर्यलोकका संख्यातवर्ष भाग दिखाता आदिष्ट । यह सूत्रोक्त 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादपरिणत लघ्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, सम्पूर्ण लोकमें इन दोनों पूर्वोक्त साथ सभी पंचेन्द्रिय लघ्यपर्याप्त जीवोंके गमन और भागमनके प्रतिषेधका अभाव है ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-
बादरपुढविकाइय--बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-
बादरवणफदिकाइयपत्तेयसररीर-तत्सेवअपज्जत-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-
आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-तत्सेवपज्जत-अपज्जतएहि
केवडियं खेतं पोसिदं, सव्वलोगो' ॥ ६६ ॥

पुढविकाइय-आउकाइय-तेसिं चैव सव्वसुहुमेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-
मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । बादरपुढविकाइय-
बादरआउकाइय-तेसिं चैव अपज्जत-बादरतेउकाइय-तत्सेव अपज्जतवणफदिकाइयपत्तेय-
सररीबादरणिगोदपदिहिद-तेसिं चैव अपज्जतएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि
तीदाणागदवद्वमाणकालेसु तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिमागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो,
माणसखेचादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्वं कथं णव्वदे ?

कायमार्गाणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक
जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायु-
कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पाँचोंके बादर काय-
सम्बन्धी अपर्याप्त जीव; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक,
सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र
स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

संस्थानसंस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुदात और उपपादपदपरिणत
पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव और उन्हींके सर्व सूक्ष्मकायिक जीवोंने तीनों ही
कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । संस्थान, वेदना और कषायपदपरिणत यादर पृथिवी-
कायिक, बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, यादर अग्निकायिक और उन्हींके
अपर्याप्त जीवोंने, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर बादरानिगोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त
जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका
असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श
किया है ।

शुंका—उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, यह कैसे जाना ?

१ कायानुवादेन स्थावरकायिकं सर्वलोकः स्पृष्टः । अ. सि. १, ८.

उव्वदे—एदे पुढवीओ चैव असिदण अण्हंति । सव्वपुढवीओ च सत्तरल्लुआयदाओ,
पढमपुढवी सादरेयएगरज्जुलंदा [१] । विदियपुढवी छहि सत्तभागेहि समहियएगरज्जु-
लंदा [१६] । तदियपुढवी पंच-सत्तभागाहिय वे रज्जुलंदा [२६] । चउत्थपुढवी चचारि-
सत्तभागाहिय-तिण्णरज्जुलंदा [३६] । पंचमपुढवी तिण्णिसत्तभागाहिय-चचारिरज्जुलंदा
[४६] । छट्ठपुढवी वे-सत्तभागाहियपंचरज्जुलंदा [५६] । सत्तमपुढवी एग-सत्तभागाहिय-
छरज्जुलंदा [६६] । अट्ठमपुढवी सादरेयएगरज्जुलंदा । पढमपुढविवाहल्लं असीदिसहस्सा-
हियजोयणलक्खपमाणं होदि १८०००० । विदियपुढवी वत्तीसजोयणसहस्सवाहल्लो
३२००० । तदियपुढवी अट्ठावीसजोयणसहस्सवाहल्लो २८००० । चउत्थपुढवी चउवीस-
जोयणसहस्सवाहल्लो २४००० । पंचमपुढवी वीसजोयणसहस्सवाहल्लो २०००० ।
छट्ठपुढवी सोलसजोयणसहस्सवाहल्लो १६००० । सत्तमपुढवी अट्ठजोयणसहस्सवाहल्लो
८००० । अट्ठमपुढवी अट्ठजोयणवाहल्लो ८ । एदाओ अट्ठपुढवीओ पदरागारेण ठड्दे
तिरियलोगावाहल्लोदो संखेज्जगुणवाहल्लं जगपदरं होदि । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि

समाधान—ये बादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकर
रहते हैं । और सभी पृथिवियों सात राजुप्रमाण आयत हैं । प्रथम पृथिवी साधिक एक राजु
चौड़ी है (१) । द्वितीय पृथिवी छह यते सात भागोंसे अधिक एक राजु चौड़ी है (१६) ।
तृतीय पृथिवी पांच बटे सात भागोंसे अधिक दो राजु चौड़ी है (२६) । चौथी पृथिवी चार
बटे सात भागोंसे अधिक तीन राजु चौड़ी है (३६) । पांचवी पृथिवी तीन बटे सात भागोंसे
अधिक चार राजु चौड़ी है (४६) । छठी पृथिवी दो बटे सात भागोंसे अधिक पांच राजु चौड़ी
है (५६) । सातवीं पृथिवी एक बटे सात भागसे अधिक छह राजु चौड़ी है (६६) ।
आठवीं पृथिवी कुछ अधिक एक राजु चौड़ी है (१) । प्रथम पृथिवीकी मोटाई एक लाख
अस्सी हजार योजन प्रमाण है (१८००००) । द्वितीय पृथिवी बत्तास हजार योजन मोटी है
(३२०००) । तृतीय पृथिवी अट्ठाईस हजार योजन मोटी है (२८०००) । चौथी पृथिवी बीस
हजार योजन मोटी है (२४०००) । पांचवीं पृथिवी बीस हजार योजन मोटी है (२००००) ।
छठीं पृथिवी सोलह हजार योजन मोटी है (१६०००) । सातवीं पृथिवी आठ हजार योजन
मोटी है (८०००) । आठवीं पृथिवी आठ योजन मोटी है (८) । इन आठों पृथिवियोंको
प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके बाह्यसे संख्यातगुणा बाह्यप्रमाण जगप्रतर
होता है (वेसो पृ. ९१) । इसलिये उक्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा है,
यह जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुदात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने भूल, भविष्य भोर वर्तमान

तीदाणागदवद्वृमाणकालेषु सन्वलो गो पोसिदो । कुदो ? तस्सद्वावचदो । तेऊणं पुढविभंगो णवरि वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले पंचण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तीदे तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं जघा- तेउकाइया पज्जत्ता चेव वेउव्वियसरीरं उट्ठवेत्ति, अपज्जत्तेसु तदभावा । ते च पज्जत्ता कम्मभूमीसु चेव होंति ति । सयंपहपव्वदपरभागखेचं जगपदेरे बद्धे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि ति । अघवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता कम्मभूमीए उप्पण्णा वाउसंबंधेण संखेज्जजोयणवाहल्लं तिरियपदरं अदीदकाले सन्वमावुरिय विउव्वंति ति गहिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चेव होदि । बादरतेउकाइया बादरपुढविभंगो, बादरपुढविकाइया इव बादरतेउकाइया वि सन्वपुढवीसु अच्छंति ति । णवरि वेउव्वियपदस्स तेउकाइयेउव्वियपदभंगो । वाउकाइयाणं तीदाणा- गदकालेषु तेउकाइयाणं भंगो । णवरि वेउव्वियस्स वट्टमाणकाले माणुसखेचगदविसो ण जाणिज्जदि । अदीदकाले वेउव्वियपरिणदेहि वाउकाइएहि तिण्हं लोगणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिं तो असंखेज्जगुणो पोसिदो । सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि बादरवाउकाइएहि

इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनका यह स्पर्शनक्षेत्र सभावसे ही है । अश्रिकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पृथिवीकायिक जीवोंके समान जानना चाहिए । विशेष यात यह है कि वैक्रियिकसमुद्रातपदपरिणत अश्रिकायिक जीवोंने वर्तमानकालमें पांचों प्रकारके लोकोंका असंख्यातवां भाग तथा भूतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है—

तेजस्कायिक पर्याप्त जीव ही वैक्रियिकशरीरको उत्पन्न करते हैं, क्योंकि, अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकशरीरके उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव है । और वे पर्याप्त जीव कर्मभूमिमें ही होते हैं, इसलिए स्वयम्भूतपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रको जगप्रतरूपसे करनेपर तिर्यग्लोकका सख्यातवा भाग होता है । अथवा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव वायुके सम्बन्धसे अतीतकालमें संख्यात योजन बाह्यत्ववाले सर्व तिर्यक् प्रतरको व्याप्त करके विक्रिया करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है । बादर तेजस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके समान है, क्योंकि, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान बादर तेजस्कायिक जीव भी सभी पृथिवियोंमें रहते हैं । विशेष यात यह है कि वैक्रियिकपदका स्पर्शन तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके समान जानना चाहिए । वायुकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अतीत और अनागतकालमें तेजस्कायिक जीवोंके समान है । विशेष यात यह है कि वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदकी मनुष्यक्षेत्रगत विशेषता नहीं जानी जाती है । अतीतकालमें वैक्रियिकपदपरिणत वायुकायिक जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । सत्थान-सत्थान, वेदना और कपायसमुद्रातपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने अतीत, अनागत और

तीदाणागदवद्वृमाणकालेषु तिण्हं लोगणं संखेज्जदिभागो दोलोगेहिं तो असंखेज्जगुणो फोसिदो । वेउव्वियपदस्स वट्टमाणकाले खेचभंगो । तीदे काले वेउव्वियपदस्स वाउकाइय-वेउव्वियभंगो । मारणंतिय-उववावदपरिणदेहि बादरवाउकाइएहि सन्वलो गो पोसिदो । एवं बादरवाउकाइयअपज्जत्ताणं । णवरि वेउव्वियपदं णत्थि । सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववावदपरिणदेहि तीदाणा-गदवट्टमाणकालेषु सन्वलो गो पोसिदो ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणफदि-काइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

एदस्स सुचस्स अत्थो जघा खेत्ताणिओगहरे उच्चो तथा वचच्चो ।

सन्वलो गो वा ॥ ६८ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्धो चुच्चेद- बादरपुढविकाइयपज्जत्त-बादरआउकाइयपज्जत्त-बादरणिगोदपदिडिदपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगणमसंखे-

वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्य-लोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकसमु-द्रातपदका स्पर्शनक्षेत्र वर्तमानकालमें क्षेत्ररूपणके समान है । अतीतकालमें वैक्रियिकसमु-द्रातपदका स्पर्शनक्षेत्र वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके स्पर्शनके समान है । मारणान्तिक-समुद्रात और उपपादपदपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे बादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए । विशेष यात यह है कि इनके वैक्रियिकसमुद्रातपद नहीं होता है । सत्थानसत्थान, वेदना, कपाय, मारणान्तिकसमु-द्रात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अश्रिकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्यक्षशरीर पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६७ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६८ ॥ यहाँपर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— सत्थानसत्थान, वेदना और कपायसमुद्रात-परिणत बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादरनिगोदप्रतिष्ठित

अदिभागो, तिरियलोगादो संखेजगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेजगुणो पोसिदो। मारणंतिय-
उववादपरिणदेहि सबलोगो पोसिदो। बादरवणफ्फाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताएहि य सत्थाण-
वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेजदिभागो, तिरियलोगस्स संखेजदिभागो। किं
कारणं? सव्वपुडवीसु बादरवणफ्फाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता गत्थि, 'चित्ताए उवरिमभागे
चेव अत्थि' ति आहरियवयणादो। अथवा, पत्तेयसरीरपज्जत्ता तिरियलोगादो संखेजगुणं
खेत्तं पुसंति। कुदो? बादरणिगोदपदिद्विदुपज्जत्ताणं तिरियलोगादो संखेजगुणपोमणसेत्त-
म्भुवगमादो। ण च पत्तेयसरीरपज्जत्तवदिरित्तिवाद्दरणिगोदपदिद्विदुपज्जत्ता अत्थि।
बादरणिगोदपदिद्विदा सव्वे पत्तेयसरीरा चेवेत्ति कथं णव्वदे?

वीने जोणीभूदे जीवो न्कमद सो न अण्णो वा।

जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥ १६ ॥

इदि सुत्तवयणादो णव्वदे।

पर्याप्त जीवीने सामान्यलोक आवि तीन लोकोंका असंन्यातवां भाग, तिर्यग्लोकमे संख्यात-
गुणा ओर मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पशं किया है। मारणातिकममुदात और
उपपादपदपरिणत जीवीने सर्व लोक स्पशं किया है। मन्वानान्वन्यान, येवना और कृत्तय-
समुदातपदपरिणत बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकदरीर पर्याप्त जीवीने सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग स्पशं किया है।

शुंका—बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकदरीर पर्याप्त जीवीके तिर्यग्लोकके संख्यातये
भागमात्र स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है?

समाधान—सर्व पृथिवियोंमें बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकदरीर पर्याप्त जीव नहीं
होते हैं, क्योंकि, 'चित्रापृथिवीके उपरिम भागमें ही बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकदरीर
पर्याप्त जीव होते हैं' इस प्रकार आचार्योंका वचन है।

अथवा, प्रत्येकदरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकमे संख्यातगुणे क्षेत्रको स्पशं करते हैं,
क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवीका तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र
स्वीकार किया गया है। तथा प्रत्येकदरीर पर्याप्त जीवीको छोड़कर बादरनिगोदप्रतिष्ठित
पर्याप्त नामके कोई अन्य जीव नहीं होते हैं। इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे
संख्यातगुणा बन जाता है।

शुंका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक दरीरी ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—'येनीभूत थीजमें वही पूर्ण पर्याप्तगुला जीव अथवा अन्य दूसरा भी
जीव सक्रमण करता है। और जो ब्रज मूलादिक बादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक
जीव हैं ये सब प्रथम अवस्थामें प्रत्येकदरीर ही होते हैं' ॥ १६ ॥

इस छत्रवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक दरीरी
ही होते हैं।

बादरणिगोदपदिद्विदुपज्जत्ता सव्वासु पुडवीसु अत्थि ति कथं णव्वदे? मन्वपुडवीसु
विज्जमाणपुडविंकाइयपज्जत्तपोसणेण सह एगत्तेणुमदिद्विअसंखेजजाणि तिरियपदराणि ति
वक्कराणमयणादो णव्वदे। तम्हा पत्तेयसरीरपज्जत्तेहि पोसिदखेत्तेण तिरियलोगादो संखेज-
गुणेण होदव्वमिदि। जथा पत्तेयसरीरमणफ्फाइयपज्जत्ता सव्वासु पुडवीसु होति,
तथा बादरआउक्काइयपज्जत्तेहि वि सव्वासु पुडवीसु होदव्वं। अथवा बादरणिगोदपदि-
द्विदुपज्जत्तपत्तेयसरीरा चैव मन्वपुडवीसु होति। बादरणिगोदगणमजोणीभूदपत्तेयसरीर-
पज्जत्ता चित्ताए उवरिमभागे चैव होति ति रुडु बादरवणफ्फाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ते
बादरणिगोदगणमजोणीभूदे चैव घेत्तण तिरियलोगस्स संखेजदिभागो ति घेत्तव्वं।
मारणंतिय-उममादपरिणदेहि सबलोगो पोसिदो। एत्तं बादरतेउक्काइयपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं।
णवरि चेउडिमस्स तिरियलोगस्स मखेज्जदिभागो वत्तव्वो।

बादरवाउपज्जत्ताएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स संखेज्जदि-
भागो ॥ ६९ ॥

शुंका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना?
समाधान—'सर्व पृथिवियोंमें विद्यमान पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवीके स्पर्शनके
मात्र परकयसे उपदिष्ट प्रमंन्यात तिर्यक प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होता है' इस प्रकारके
व्याख्यावचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें
होते हैं।

इसलिए प्रत्येकदरीर पर्याप्त जीवीसे स्पष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा होना
चाहिए। जिस प्रकारसे प्रत्येकदरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव सभी पृथिवियोंमें होते
हैं, उसी प्रकारसे बादर जलकायिक पर्याप्त जीव भी सभी पृथिवियोंमें होना चाहिए। अथवा,
बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येकदरीरवाले जीव ही सर्व पृथिवियोंमें होते हैं। बादर-
निगोदके अयोनीभूत प्रत्येक दरीर पर्याप्त जीव बिना पृथिवीके उपरिम भागमें ही होते हैं,
इसलिए बादर निगोदोंके अयोनीभूत बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकदरीर जीव ही प्रमुख
करके अर्थात् उनकी मोक्षा 'तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है' ऐसा अर्थ प्रदर्शना
चाहिए। मारणातिकसमुदात और उपपादपदपरिणत जीवीने सर्व लोक स्पर्शन किया है। इसी
प्रकारसे बादर तेजस्ककायिक पर्याप्त जीवीका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात
यह है कि तेजस्ककायिक जीवीके धैकियिकसमुदात पदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां
भाग होता है, ऐसा कहना चाहिए।

बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवीने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है? लोकका
संख्यातवां भाग स्पर्शन किया है ॥ ६९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जथा खेत्ताणिओगदारे उत्तो तथा वत्तव्वो, वड्डमाणकाल-
मस्सिदूण हिदत्तादो ।

संव्वलोगो वा ॥ ७० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउब्बियपरिणदेहि तिण्हं लोगणं संखेज्जदिभागो,
दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपदपरिणदेहि संव्वलोगो फोसिदो ।

वणफ्फदिकाइयणिगोदजीववादरसुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केव-
डियं खेत्तं पोसिदं, संव्वलोगो ॥ ७१ ॥

वणफ्फदिकाइयणिगोदजीवसुहुमपज्जत्त-अपज्जत्तएहि सत्थाण-वेदण-कसाय-मारण-
तिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु संव्वलोगो पोसिदो । वादरवणफ्फदिकाइय-
वादरणिगोद-तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहिं सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिसु वि कालेसु

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर कहना
चाहिए, क्योंकि, वर्तमानकालको आश्रय करके यह सूत्र स्थित है अर्थात् कहा गया है ।

वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक
स्पर्श किया है ॥ ७० ॥

सत्स्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकिकियकसमुदातपरिणत उक्त जीवोंने
सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन
दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादपद-
परिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक वादर जीव, वनस्पति-
कायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक वादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक वादर
अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त
जीव, निगोद वादर पर्याप्त जीव, निगोद वादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त
जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श
किया है ॥ ७१ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत
वनस्पतिकायिक निगोद जीव और उनके सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही
कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुदातपदपरिणत वादर वन-
स्पतिकायिक, वादर निगोद उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्य-

तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुमखेत्तादो असंखेज्जगुणो
पोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु संव्वलोगो पोसिदो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगि-
केवलि ति ओघं ॥ ७२ ॥

वड्डमाणकालमदीदकालं च अस्सिदूण जथा ओघग्ग्हि सप्तमादिगुणानं परूवणा
कदा, तथा एत्थ वि कादव्वा । णवरि मिच्छाईणं पंचिदियमिच्छादिट्ठिभंगो, मारणंतिय-
उववादपदं मोत्तूण अण्णत्थ संव्वलोगत्ताभावा ।

तसकाइयअपज्जत्तणं पंचिदियअपज्जत्तणं भंगो ॥ ७३ ॥

वड्डमाणकालमस्सिदूण जथा पंचिदियअपज्जत्तणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि
वड्डमाणकालमस्सिदूण परूवणा कादव्वा । जथा अदीदकालमस्सिदूण सत्थाण-वेदण-
कसायपदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जदो

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोके संख्यातगुणा और मनुष्यक्षेत्रसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुदात और उपपादपदपरिणत उक्त
जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर
अयोगिरेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ ७२ ॥

वर्तमानकाल और अतीतकालको आश्रय करके जैसी ओघ स्पर्शनप्ररूपणामें सासादन
आदि गुणस्थानोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करना चाहिए । विशेष
वात यह है कि त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा
पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि जीवोंके समान जानना चाहिए, क्योंकि, मारणान्तिकसमुदात और
उपपादपदको छोड़कर अन्यत्र अर्थात् शेष पदोंमें सर्वलोकप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रका अभाव है ।

त्रसकायिक लब्धपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पंचेन्द्रियलब्धपर्याप्त जीवोंके
समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७३ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जिस प्रकारसे पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त जीवोंकी स्पर्शन-
प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी वर्तमानकालका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा
करना चाहिए । तथा जैसे अतीतकालका आश्रय करके स्वस्थान, वेदना और कषायसमुदात-
परिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां

वेदण-कसाय-वेउवियपरिणेदहि अट्ट चोइसभागा देवणा पोसिदा । घणलोगमहुभागूण-तेदलीसरूनेहि छिण्णोगभागो, अबोलोणं साउचउववीसरूवेहि छिण्णोगभागो, उडुलोगमहु-भागूणसादुट्टारस रूवेहि छिण्णोगभागो, गर-तिरियलोगेहिदो असंखेज्जगुणो पोसिदो चि बं उचं होदि । मारणंतियपदेण सव्वलोगो पोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ ७६ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदण जथा खेत्ताणिओगद्वारस्स ओघमिह एदेसि चटुणं गुण-ट्टाणणं खेत्तपरूवणा कदा, तथा एत्थ वि सिस्ससंभालणं परूवणा कादव्वा; णत्थि कोइ विसेसो । अदीदकालमस्सिदण जथा पोसणाणिओगद्वारस्स ओघमिह तीदाणागदकालेसु

वत्स्यस्थान, वेदना, कपाय और वैकृतिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चोवह (१८) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि घनकार लोकको आठवें भागसे कम तेतलीस (४२४) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा अधोलोकको साढ़े चौबीस (२४३) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा ऊर्ध्वलोकको आठवें भागसे कम साढ़े अठारह (१८३) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग प्रमाण होता है । अर्थात् उक्त तीनों ही पद्धतियोंसे क्षेत्र निकालने पर वही देशोन आठ राशु प्रमाण आ जाता है ।

उदाहरण—(१) घनलोक— $३४३ - \frac{३४३}{८} = ८$ राशु.

(२) अधोलोक— $१९६ - \frac{४२}{२} = ८$ राशु.

(३) ऊर्ध्वलोक— $१४७ - \frac{१४७}{८} = ८$ राशु.

इसप्रकार सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्वानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जैसी क्षेत्राश्रयगृह्यारके भोगमें इन चारों गुणस्थानोंकी क्षेत्रप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए । इसके अनितरिक्त अन्य कोई विशेषता नहीं है । अतीतकालका आश्रय करके जैसी स्पर्शनश्रयगृह्यारके भोगमें अतीत और अनागत कालोंकी अपेक्षा इन चार गुणस्थान-

१ सासादनसम्यग्दृष्टिगार्धनी क्षीणकषायान्तर्ना सामान्योक्त स्पर्शनम् । स. वि. १, ८.

असंखेज्जगुणो, मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगो पोसिदो चि पंचिदियअपज्जणणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि कायव्वा ।

एव कायमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिवजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केव-डियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७४ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालमस्सिदण द्विदमिदि एदस्स परूवणं कीरमाणे जथा खेत्ताणि-ओगद्वारे पंचमण-चचिवजोगिमिच्छादिट्ठीणं परूवणा कदा, तथा एत्थ वि मंददुद्धिसिस्स-संभालणं परूवणा कादव्वा ।

अट्ट चोइसभागा देसुणा, सव्वलोगो वा ॥ ७५ ॥

पंचमण-पंचवचिवजोगिमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणेदहि तिण्हं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ सत्थाणखेत्ताणयणविधाणं जाणिय कादव्वं । एसो 'वा' सव्वचिदत्थो । बिहार-

भाग और अर्द्धाद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा मारणान्तिकसमुद्रात और उपपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, इसप्रकारसे जैसी पंचेन्द्रियलक्ष्यपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र वर्तमानकालका आश्रय करके स्थित है, इसलिए इसकी प्ररूपणा करनेपर जैसी क्षेत्राश्रयगृह्यारमें पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी मंददुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७५ ॥

स्वस्थानसत्थानपदपरिणत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेका विधान जान करके करना चाहिए । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । बिहार-

१ योगाश्रयदेन भायसानसगोमिगिमिथ्यादृष्टिभिर्भोक्त्वावस्सेयमाणं कथं चतुदशभागा वा देशोना सर्व-लोको वा । स. वि. १, ८.

एदेहि चटुगुणट्ठाणजीवेहि छुत्तखेत्तपरूवणा कदा, तथा एत्थ वि कादव्वा, विसेसाभावा ।
णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिसु उववादो णत्थि, उववादेण पंचमण-वचि-
जोगाणं सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहा ।

पमत्तंसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७७ ॥

एदेसिमट्ठणं गुणट्ठाणं जथा पोसणाणिओगहारस्स ओघमिह तिण्णि काले
अस्सिदूण परूवणा कदा, तथा एत्थ वि कादव्वा । जदि एवं, तो सुत्ते ओघमिदि किण्ण
परूविदं ? ण, तथा परूवणाए कायजोगाविणाभाविसजोगिचउव्विहसमुघादेखेत्तपडिसेह-
फलत्तादो ।

वर्ती जीवसे स्पर्शित क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए,
क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, उपपादके साथ पांचों मनोयोग
और पांचों वचनयोगोंका सद्धानवस्थानलक्षण विरोध है, अर्थात् उपपादमें उक्त योग संभव
नहीं है ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया
है ॥ ७७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें तीनों कालोंका आश्रय करके
जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी प्ररूपणा काययोगके अविनाभावी सयोगि-
केवलीके चारों प्रकारके समुदातक्षेत्रके प्रतिषेध करनेके लिए है ।

विशेषार्थ—यदि सूत्रमें 'असंखेज्जदिभागो' पदके स्थान पर 'ओघ' ऐसा पद
दिया जाता तो केवल मनोयोगी और वचनयोगियोंका स्पर्शनक्षेत्र बताते समय, जो केवल
काययोगके निमित्तसे ही केवलीके समुदात होता है जिसका कि स्पर्शनक्षेत्र लोकका
असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है, उसका प्रतिषेध नहीं हो पाता; अर्थात्
अनिष्ट प्रसंग उपस्थित हो जाता । उसी अनिष्टापत्तिके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें 'ओघ' पद न
देकर 'असंखेज्जदिभागो' पद दिया है ।

१ सयोगकेवलिना लोकस्यातस्येयमागः । स. सि. १, ८.

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ७८ ॥

सत्याणसत्याण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-भारणतिय-उववादपरिणदकायजोगिमिच्छा-
दिट्ठीणं तिसु वि कालेसु सन्वलोगनुवलंभादो, विहारवदिसत्याण-वेउव्वियपदेहि वट्ठमाण-
काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो
असंखेज्जदिगुणत्तेण; अदीदकाले अट्ठ-चोदसभागत्तेण च तुल्लनुवलंभादो, सुत्तेण ओघ-
मिदि उच्चं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछट्टमत्था
ओघं ॥ ७९ ॥

एदेसिमेक्कारसण्हं गुणट्ठाणं तिविहं कालमस्सिदूण सत्याणादिपदानं परूवणा
कीरमाणे पोसणाणिओगहारोघमिह जथा तिविहकालमस्सिदूण एक्कारसण्हं गुणट्ठाणं
सत्याणादिपरूवणा कदा, तथा कादव्वा; णत्थि एत्थ कोवि विसेसो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ७८ ॥
स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणास्तिकसमुदात और उपपाद-
पदपरिणत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तीनों ही कालोंमें सर्वलोक पाया जाता
है । विहारवत्त्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिरियलोकके संख्यातवें भागसे, और मनुष्यक्षेत्रसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रकी अपेक्षा, तथा अतीतकालमें आठ वटे चौदह (१४) भागप्रमाण
स्पर्शनसे तुल्यता पाई जाती है, इसलिये सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

इन ग्यारह गुणस्थानोंकी तीनों कालोंको आश्रय करके स्वस्थानादि पदोंकी प्ररूपणा
करने पर स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें जिस प्रकारसे तीनों कालोंका आश्रय लेकर ग्यारह
गुणस्थानोंकी स्वस्थानादि पदसमन्धी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी
करना चाहिए, क्योंकि, यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां
भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ८० ॥

१ काययोगिना मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगकेवल्यत्तानामयोग केवलिना च सामान्यलोक स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एदम्स सुतरस पुधांसो द्विस्तो ? न, मनोविक्रमलि-चत्तारिपुत्रवादा हाय-
जोमाविणामविणो चि मदेमहाविज्जानावोदणफलभादो । एसजोसं कादृग ओघमिदि उने
मि ओघत्तणहायुवचीदो कायजोगी मि चट्ठहं ममुवाटणमरियत्तं परिच्छिज्जेदे चै, ण
एस दोसो, ओघमिदि उते इमणि पट्ठाणि अस्थि, इमणि च णरिय नि (ण) णब्बदे । जणि
मंसंति पट्ठाणि तेमि पक्खणाओ ओघपक्खणाए तुहा चि एवियमेत्तं चेय णब्बदे । तेण
पुत्र सुत्तांसो कायजोगिस्सि चउव्विहममुवाटणमव्यिचपट्ठपाणफलो चि ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ८१ ॥

द्वन्द्वियपक्खणाए ओघत्तं तुज्जेदे । पज्जसाद्वियपक्खणाए पूण ओघत्तं णव्वि,
ओरालियजोगे णिक्खे विहारचेउव्वियपदाणमट्ठ-चोदमभागताणपुत्तंभादो । तदो णव्व
भेदपक्खणा कीरदे- मरथाणमन्याण-वेदण रुसाय-मागणंतियपरिणदेदि तियु मि स्सत्तेसु
मव्वलोगो पेमिदो । उमभादो णव्वि, दोणं महाणपट्ठाणलसुगनविरोहा । चट्ठमाणफले

जंका — इस मूलकं पृथक् आरम्भ करनेका क्या फल है ?

ममाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, मयोगिदेवर्गमें दंत, कपाटादि चारों मनु
खत काययोगकं अवितानावासी होते हैं, इस बातका मंदेयधार्या जनोंको ज्ञान करानेके लिए
इस मूलका पृथक् निर्माण किया गया है, और यही मूलके पृथक् निर्माणका फल है ।

जंका — पूर्वमूल और इस मूलका एक योग अर्थात् एक ममास करके 'ओघ'
वेसा कहने पर भी ओघत्व-अव्ययानुगुणस्तिमे काययोगी मयोगिकेवर्गमें दंत कपाटादि
चारों समुदातोंका सन्तिय जाना जाता है, फिर पृथक् मूल निर्माणकी क्या उल्लेखिता है ?

ममाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'ओघ' वेसा कहनेपर भी ये समुक्त
वियक्षित पद होते हैं, और ये समुक्त पद नहीं होते हैं, ऐसा, विदोष नहीं जाना जाता है । किन्तु
जो पद संक्षेप हैं उनकी प्रकरणार्थ ओघप्रकरणके साथ समान होती हैं, इसमामात्र ही जाना
जाता है । इसलिये पृथक् पृथका आरम्भ काययोगी मयोगिकेवर्गमें चारों प्रकारके समुदा-
तोंका अस्मिन्व्य प्रतिपादन करनेका फलके लिए है ।

ओदरिककाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पष्टनैम्य ओघके समान सर्व-
लोक है ॥ ८१ ॥

द्रव्याधिकतमकी प्रकरणोंमें तो ओघगता घटित होता है, किन्तु पर्वाणामिक्कयकी
प्रकरणोंमें क्षीयगता घटित नहीं होता है, क्योंकि, ओदरिककाययोगके विच्छेद करनेपर
विहारवत्त्वस्थान और शैक्रियिक पक्षोंके स्पष्टनैम्य ओघ आठ बटे बीस (१६) भाग नहीं
पाया जाता है । इससे यदापर भेदप्रकरण की जाती है । स्पष्टनैम्यस्थान, वेदना, कषाय
और मारणातिक्कपरपरिणत ओदरिककाययोगी विध्याएचे जीवोंमें तीनो ही कानोंमें
सर्वलोक स्पष्ट किया है । यदापर तपपादक नहीं है, क्योंकि, ओदरिककाययोग और
उपपादक, इन दोनोंका सहानवस्थाकलक्षण विरोध है । वर्तमानकायमें शैक्रियिकपरपरिणत

वेउव्वियपरिणदेदि चट्ठहं लोपाणममंनेज्जदिभागो, माणमंनेचादो अमंनेज्जगुणो पेमिदो ।
भीदाणासदेसु निणं लोपाणं मंनेज्जदिभागो, दोलंसेहिंनो 'अमंनेज्जगुणो, वाउसहय-
'उव्वियपक्खणमस पापगापिसस'ण । विहारपरिणदेदि ओरालियकायजोगिमिच्छादिद्विदि
चट्ठमाणफले निणं लोपाणममंनेज्जदिभागो, निरियलंतासम मंनेज्जदिभागो, अगुहज्जादो
अमंनेज्जगुणो पेमिदो । नीदागागट्ठालेसु निणं लोपाणममंनेज्जदिभागो, निरियलंतासम
मंनेज्जदिभागो, अट्ठाज्जादो अमंनेज्जगुणो पेमिदो ।

मामणममादिद्विदि क्वडियं खत्तं पेमिदं. लोपस अमंसेज्जदि-
भागो ॥ ८२ ॥

एदम्स पट्ठमाणममंनेज्जगुणस नैचमियोगदोर ओरालियहायजोगिमामण-
मुत्तमेय पक्खणा फलत्वा ।

सत्त चेदिसभागा वा देसूणा ॥ ८३ ॥

मन्याणमन्यान-विहारदिपरथाण-वेदण-रुसाय-वेउव्वियपरिणदेदि मामणमममा-
इत जीवोंमें मासाल्लोक यदि चार लोकोंका समंन्यायों भाग, और मनुष्यप्रेमसे
अमंन्यायगुणा क्षेत्र स्पष्ट किया है । यतीन धीर ज्ञानगत, इन दोनों कानोंमें सामान्यलोक
आदि तीन ओषोंका संन्यायार्थ भाग, और नल्लोक तथा निर्यल्लोक, इन दोनों लोकोंमें
अमंन्यायगुणा क्षेत्र स्पष्ट किया है, क्योंकि, यहाँ पर गानुकायिक जीवोंके शैक्रियिकपद-
समंन्याय गणानसंन्यायी प्रचानताये वियसा की गई है । विहारलस्यस्यगानपदके परिणत
ओदरिककाययोगी विरगदृष्टि जीवोंमें वर्तमानकालमें सातल्लोक आदि तीन लोकोंका
अमंन्यायार्थ भाग, निर्यल्लोकका संन्यायार्थ भाग और अट्ठाद्विपदेय अमंन्यायगुणा क्षेत्र
स्पष्ट किया है । इतनी जीवोंमें यतीनकाल धीर ज्ञानगतकालमें सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका अमंन्यायार्थ भाग, निर्यल्लोकका संन्यायार्थ भाग और अट्ठाद्विपदेय अमंन्यायगुणा
क्षेत्र स्पष्ट किया है ।

ओदरिककाययोगी मानादनमम्यदृष्टि जीवोंमें कितना क्षेत्र स्पष्ट किया है ?
लोकका अमंन्यायार्थ भाग स्पष्ट किया है ॥ ८२ ॥

इस वर्तमानकालमध्यवी पृथकी अवन्यायगुणार्थमें बड़े गये ओदरिककाययोगी
मानादनमम्यदृष्टियोंकी अवन्यायगुणा करनेको के मूलके समान स्पष्टनैम्यकरण करना चाहिए ।

उक्त जीवोंमें यतीन और ज्ञानगत कालकी अवन्याय कृत कम मात्र बटे बीस
भाग स्पष्ट किये हैं ॥ ८३ ॥

स्वरथायमन्याय, विहारलस्यस्थान, वेदना, कषाय और शैक्रियिकपरपरिणत

दिट्ठीहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । उववादो णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि सत्त चोदसभागा देहणा पोसिदा । केण उणा ? इसिपब्भारपुटवीए उवरिमबाहल्लेण ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्ताणिओगद्दोरालियकायजोगसम्मामिच्छादिट्ठिसुत्त-परूवणाए तुल्ला । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि ओरा-लियसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिंते सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवा भाग और मातुलक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इन जीवोंके उपपाद-पद नहीं होता है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—यहांपर कुछ कमसे कितना कम क्षेत्र समझना चाहिए ?

समाधान—ईषत्वाग्भार पृथिवीके उपरिम भागके बाह्यप्रमाणसे कुछ कम क्षेत्र समझना चाहिए ।

औदारिककाययोगी सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८४ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रातुल्योद्धारमें वर्णित औदारिककाययोगी सम्यग्भिथ्यादृष्टि-योंके क्षेत्रका वर्णन करनेवाले सूत्रकी प्ररूपणाके तुल्य है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत औदारिककाययोगी सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठइद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । औदारिककाययोगी सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

औदारिककाययोगी, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि असं-जदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्ज-गुणो चट्टमाणद्वाए फोसिदो ।

छ चोदसभागा वा देसूणा ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि असंजदसम्मा-दिट्ठीहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सहस्रचिदत्थो । मारणंतिय (-उववादा-) परिणदेहि छ चोदसभागा देहणा पोसिदा, अब्बुदुकप्पादो उवरि असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजदानुववादाभावादो ।

पमतसंजदपट्टुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

एदेसिमट्टुण्हं गुणट्ठाणाणं तिणिण वि काले अस्सिदूण परूवणं कीरमाणे खेत्त-

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक-समुदातपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है ।

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत-कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठइद्वीपसे असंयतगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुदात और उपपाद-पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अब्बुतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी तीनों ही कालोंका आश्रय करके स्पर्शानप्ररूपणा करनेपर

उवात्तभवसरीरपढमसमए उववादोवलंभा । मिच्छादिद्वीणं पुण मारणंतिय-उववादपदाणि लभंति, अणंतो ओरालियमिस्सइंदियअपज्जत्तरासी सट्ठाणे परट्ठाणे च वक्कमणोवक्कमणं करेमाणो लभमदि चि । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि असंजदसम्मादिद्वीहि ओरालियमिस्सकायजोगीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कथं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? ण, पुवं तिरिक्ख-भणुस्सेसु आउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं धेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय बद्धाउवसेण भोगभूमिसंठाणअसंखेज्जदीवेषु उप्पणोहि भवसरीरगहणपढमसमए वट्ठमाणेहि ओरालियमिस्सकायजोगअसंजदसम्मादिद्वीहि अदीदकाले पोसिदतिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभा । कवाडगदेहि सजोगिकेवलीहि ओरालियमिस्सकायजोगे वट्ठमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ कवाडवेत्तादो जगपदरुप्या-यणविधानं जाणिय वत्तन्वं ।

उपपाद पाया जाता है । मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी मारणान्तिक और उपपादपद पाये जाते हैं, क्योंकि, अनन्तसंख्यक औदारिकमिश्रकाययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थानमें अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, अर्थात् जाती आती, पाई जाती है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कपायसमुदात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठइद्वीपसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा अतीतकालमें स्पर्श किया है ।

शंका — औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपादक्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, पूर्वमें तिर्यव और मनुष्योंमें आयुको बांधकर पीछे सम्यक्को ग्रहण कर, और दर्शनमोहनीयका क्षय करके बांधी हुई आयुके वशसे भोगभूमिकी रचनावाले असंख्यात द्वीपोंमें उत्पन्न हुए, तथा, भव-शरीरके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा अतीतकालमें स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है ।

कपाटसमुदातको प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोगमें वर्तमान सयोगिकेवलियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठइद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालकी अपेक्षासे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर कपाटसमुदातगत क्षेत्रकी अपेक्षासे स्पर्शन-क्षेत्रसम्बन्धी जगप्रतरके उत्पादनका विधान जान करके कहना चाहिए । (इसके लिए देवो क्षेत्रप्ररूपणा पृ. ४९ आदि) ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिद्वीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एदं सुत्तं जेण वट्ठमाणकाले पडिवद्धं तेणदस्स वक्खणाणे कीरमाणे जघा खेत्ताणि-ओगहारे वेउव्वियकायजोगिमिच्छाहट्ठिप्पहुडि-वद्धसुत्तस्स वक्खाणं कदं, तथा एत्थ वि कायन्वं ।

अट्ठ तेरह चोदसभागा वा देसूणा ॥ ९१ ॥

सत्थाणसत्थाणपरिणद-वेउव्वियमिच्छादिद्वीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवादिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोदसभागा फोसिदा । उववादो णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि तेरह चोदसभागा फोसिदा, हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू । घणलोगमेगरूवस्स अट्ठ-तेरसभागूण-सत्तावीसरूवेहि खंडिदएगखंडं फोसंति त्ति वुत्तं होइ ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९० ॥

चूंकि यह सूत्र वर्तमानकालसे सम्बद्ध है, इसलिए इसका व्याख्यान करने पर जिस प्रकारसे क्षेत्रानुयोगद्वारमें वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिक जीवोंसे प्रतिबद्ध सूत्रका व्याख्यान किया है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए ।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह, और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय, और वैक्रियिक-समुदातपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । यहां पर उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, मिश्रयोग और कर्मणकाययोगके सिवाय अन्य योगोंके साथ उपपादपदका सहानवस्थानलक्षण विरोध है) । मारणान्तिकसमुदातपद-परिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) तेरह बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि भेरु-तट्टसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए । घनाकारलोकको एक रूपके आठ बटे तेरह (१६) भागसे कम सत्ताइस (२६१) रूपोंसे खंडित (विभक्त) करने पर एक खंड प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

सासनसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९२ ॥

एदस्स वट्ठमाणपरूवणा खेत्तमंगो । सत्थाणसत्थाणपरिणद्वेउव्वियकायजोगि-
सासनसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइ-
ज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागपरूवणं पुवं व वत्तवं ।
विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोइसभागा फोसिदा । उववादो
णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि वारह चोइसभागा फोसिदा । तेणोघमिदि जुज्जेदं ।

सम्माभिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९३ ॥

जेणेदेसिं वट्ठमाणपरूवणा खेचोघपरूवणाए तुल्ला, तेणोघं होदि । अदीदपरूवणा
वि फोसणोघेण तुल्ला । तं जहा- सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-
वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोइसभागा देवणा फोसिदा । असंजद-

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्पद्दष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघस्पर्शनेके
समान है ॥ ९२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणोंके समान है । स्वस्थानस्वस्थान-
पदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्पद्दष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन
लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागकी प्ररूपणा पूर्वके समान ही
करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुदात, इन पदोंसे परिणत
वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । इनके
उपपादपद नहीं होता है । मारणान्तिकसमुदातपदसे परिणत उक्त जीवोंने वारह बटे चौदह
(१४) भाग स्पर्श किये हैं । इसलिए सूत्रमें दिया गया ' ओघ ' यह पद युक्तिसंगत है ।

वैक्रियिककाययोगी सम्पद्गिभ्यादष्टि और असंयतसम्पद्दष्टि जीवोंका स्पर्शन
ओघके समान है ॥ ९३ ॥

चूंकि इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रसम्पद्ग्यो
ओघप्ररूपणोंके तुल्य है, इसलिए उनकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके तुल्य होती है । अतीत-
कालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी ओघस्पर्शनप्ररूपणोंके समान है । वह इस प्रकारसे है— स्वस्थान-
स्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सम्पद्दष्टि और असंयतसम्पद्दष्टि जीवोंने सामान्यलोक
आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठाईद्वीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और
मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं ।

सम्मादिट्ठस्स उववादो णत्थि । सम्माभिच्छादिट्ठस्स मारणंतिय-उववादो णत्थि । तेणेत्य
वि ओघत्तमेदेसिं जुज्जेदं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासनसम्मादिट्ठि-असं-
जदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ ९४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्ठमाणपरूवणा खेत्तमंगो । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववाद-
परिणद्वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठिहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-
वेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि । सासनसम्मादिट्ठिस्स वि एवं चेव वत्तवं, वाणवेंतर-
ओदिसियदेवाणमसंखेज्जानासेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागोद्विदिय ट्ठिदं सासनण-
मुपत्तिदंसणादो । असंजदसम्मादिट्ठिहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि
चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, वाणवेंतर-ओदिसिय-

वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्पद्दष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है । वैक्रियिककाययोगी
सम्पद्गिभ्यादष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसलिए
यहां पर भी ओघपना बन जाता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादष्टि, सासादनसम्पद्दष्टि और असंयत-
सम्पद्दष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श
किया है ॥ ९४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान,
वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादष्टि जीवोंने अतीत-
कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग,
और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके
विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुदात, ये पद नहीं होते हैं । सासादनसम्प-
द्दष्टि गुणस्थानकी भी स्पर्शनप्ररूपणा इसी प्रकारसे कहना चाहिए । तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागको व्याप्त करके स्थित वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके असंख्यात आवासोंमें सासा-
दनसम्पद्दष्टि जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उप-
पादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्पद्दष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,

भयणवासिणसु एदेसिमुववादाभावा; सम्मादिट्ठिउववादयाओमसोधम्मदिउवरिमविमाणानं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव अवद्वानादो ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि आहारकायजोगिपमत्तसंजदेहि तीदे काले चटुण्हं लोगानमसंखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । उववाद-वेउव्वियं गत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि चटुण्हं लोगानमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । आहारमिस्स-कायजोगिपमत्तसंजदेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चटुण्हं लोगानमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ ९६ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु

वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और भवन्वासी देवोंमें इनका, अर्थात् वैकिक्रिमिश्रकाययोगी जीवोंका, उपपाद नहीं होता है, सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादके प्रायोग्य सौधर्मादि उपरिम विमानोंका तिर्यग्लोकके असंख्यातवर्ग भागमें ही अवस्थान देखा जाता है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत आहारककाययोगी प्रमत्त-संयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्य क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । आहारककाययोगियोंके उपपाद और वैकिक्रियकपद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत आहारककाययोगी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवा भाग स्पर्श किया है ।

कर्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ९६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत कर्मणकाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंने तीनोंही कालोंमें चूंकि सर्वलोग स्पर्श किया है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा

जेण सच्चलोगो फोसिदो, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं । एत्थ विहारवदिसत्थाण-वेउव्विय-मारणंतियपदाणि गत्थि ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा ।

एवकारह चोदसभागा देसूणा ॥ ९८ ॥

एत्थ उववादवदिरत्तिसेसपदाणि गत्थि, कम्मइयकायजोगिविवक्खादो । उववादे-वट्टमाणा सासणा हेट्ठा पंच, उवरि छ रज्जूओ फुसंति त्ति एवकारह चोदसभागा फोसिद-खेत्तं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ॥ ९९ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिवट्ठचादो ।

छ चोदसभागा देसूणा ॥ १०० ॥

पद कहा है । यहाँ, अर्थात् कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके, विहारवत्स्वस्थान, वैकिक्रिय और मारणान्तिकसमुद्घात, इतने पद नहीं होते हैं ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९७ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९८ ॥

यहाँपर उपपादपदको छोड़कर शेष पद नहीं हैं, क्योंकि, कर्मणकाययोगकी विवक्षा की गई है । उपपादपदमें वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुके मूलभागसे नीचे पाँच राजु और ऊपर अच्युतकल्पतक छह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए ग्यारह बटे चौदह (१३) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है ।

कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९९ ॥

वर्तमानकालसे प्रतिसंबद्ध होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०० ॥

एतत् वि उवाच पदमेकं च । तिरिक्त्वा संजदसम्माद्विणो जेणुवरी छ रज्जुओ गंतुण्णज्जंति, तेण फोसणखेचपरुवणं छ-चोदसभागमेत्तं होदि । हेट्ठा फोसणं पंचरज्जु-पमाणं ण लम्बदे, णेरइया संजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसुवादाभावा ।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ॥ १०१ ॥

पदगदकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा फोसिदा, लोगपेत्तद्विदवादवलएसु अपविट्ठजीवपदेसत्तादो । लोगएणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलएसु वि पविट्ठजीव-पदेसत्तादो ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०२ ॥

एदस्स सुत्तस्स परुवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिचद्धत्तादो ।

यहां पर भी केवल उपपादपद्धी होता है । तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूंकि भेदतलसे ऊपर छह राजु जाकरके उत्पन्न होते हैं, इसलिये स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा छह बटे चौदह $\frac{1}{4}$ भाग प्रमाण होती है । मेरुतलसे नीचे पांच राजु प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि, नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०१ ॥

प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलियोंने लोकके असंख्यात यहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोकपर्यंत स्थित वातवल्योंमें केवली भगवान्के आत्मप्रदेश प्रतरसमुद्धातमें प्रवेश नहीं करते हैं । लोकपूरणसमुद्धातमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, लोकके चारों ओर व्याप्त वातवल्योंमें भी केवली भगवान्के आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०२ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

१ वेदादवादेन कांपुवेदीमिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासत्येयमाग स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दशमाणा वा देशोना सर्व-लोको वा । स. वि. १, ८.

अट्टचोदसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १०३ ॥

सत्थाणत्थेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वाणवत्तर-जोदि-सियावासे संखेज्जजोयवाहलं रज्जुपदं च घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो सोहेदव्वो । विहारवादिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ट चोदसभागा फोसिदा, अट्टरज्जु-वाहल्ल-ज्जुपदपरिभ्रमणसच्चिजुत्तदेवित्थि-पुरिसवेदमिच्छादिट्ठीणमुवलंभादो । मारणंति-य-उवाच-परिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, दुपदपरिणदमिच्छादिट्ठीणमगमपदेसाभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो ॥ १०४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परुवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिचद्धत्तादो ।

अट्ट णव चोदसभागा देसूणा ॥ १०५ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०३ ॥

सत्थानस्य स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके आवासोंको, तथा संख्यात योजन प्रमाण बाह्यवाले राजुप्रतरको ग्रहण करके तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग साधलेना चाहिए । विहारवत्सत्थान, देवना, कषाय और वैकृतिकसमुद्धातपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{1}{4}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, आठ राजु बाह्यवाले राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रमें परिभ्रमणकी शक्तिसे युक्त देव स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं । मार-णान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, मारणान्तिक और उपपाद, इन दोनों पदोंसे परिणत स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके समस्यप्रदेशका अभाव है ।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०५ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासत्येयमाग अष्टौ नव चतुर्दशमाणा वा देशोना । स. वि. १, ८

सत्याणत्थेहि सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, अदीदकालविवक्खादो । एत्थ वि पुव्वं व तिणिण खेत्ताणि धेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दसिदब्बो । एसो 'वा' सहडो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि अट्ठ चोदसभागा देह्णणा फोसिदा, अट्ठ-रज्जुवाहल्लरज्जुपदरब्भंतरे देवित्थि-पुरिससासणाणं गमणागमणं पडि पडिसेहामावा । मारणांतियपरिणदेहि णव चोदसभागा देह्णणा फोसिदा । हेट्ठा पंच रज्जु फोसण किण्ण लब्भदे ? ण, णेरहएहिंतो इत्थि-पुरिसवेदे सासणाणं तिरिक्ख-मणुस्सेसु मारणांतियमेल्ल-माणमभावदो, तिरिक्खित्थि-पुरिसवेदसासणाणं णिरयगदिं मारणांतियं मेल्लमाणम-भावदो च । उववादपरिणदेहि एक्कारह चोदसभागा देह्णणा फोसिदा । सुत्ते उववाद-फोसणं किण्ण बुत्तं ? ण, फोसणसुत्ते उववादविवक्खाभावा । णिरयादो आगच्छेत्तेहि पंच

उक्त दोनों वेदवाले स्वस्थानस्थ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईवीपसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यद्वापर अतीतकालकी विवक्षा है । यद्वापर भी पूर्वके समान तीनों क्षेत्रोंको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दर्शाना चाहिए । यद्वा स्रष्टापठित 'वा' शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुदात-परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरके भीतर देव स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है । मारणान्तिकसमुदातपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम नौ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—मेरुतलसे नीचे पांच राजुप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नारकियोंसे स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यचों और मनुष्योंमें मारणान्तिकसमुदात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव है, तथा नरकगतिके प्रति मारणान्तिकसमुदात करनेवाले स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी अभाव है ।

उपपादपदपरिणत-उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—सूत्रमें उपपादपदसम्बन्धी स्पर्शनका प्रमाण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पर्शानागमसम्बन्धी सूत्रमें उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है ।

नरकगतिले आनेवाले जीवोंकी अपेक्षा पांच राजु, और देवगतिले आनेवाले जीवोंकी

रज्जु, देवेहिंतो आगच्छेत्तेहि छ रज्जु फोमिदा त्ति एक्कारह चोदसभागा फोसणखेत्तं होदि । सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०६ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालविवक्खादो ।

अट्ठ चोदसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ १०७ ॥

सत्याणत्थेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तीदकालविवक्खादो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउब्बिय-मारणांतियपरिणदेहि अट्ठ चोदसभागा देह्णणा फोसिदा । णवरि सम्मा-मिच्छाहट्ठीणं मारणांतियं गत्थि । उववादपरिणदेहि छ चोदसभागा देह्णणा फोसिदा । णवरि सम्मामिच्छादिट्ठीणं उववादो गत्थि । इत्थिवेदेसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो गत्थि ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १०८ ॥

अपेक्षा छह राजु स्पर्श किये गये हैं । इस प्रकार ग्यारह बटे चौदह (१६) भाग उपपादका स्पर्शनक्षेत्र है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०६ ॥

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०७ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी तृतीय व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहां पर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुदातपद नहीं होता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । विशेषता यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपाद-पद नहीं होता है । स्त्रीवेदी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०८ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः सत्तासत्तैर्लोकसासस्येयमगः षट् षट्संभागा वा देवोताः । न. वि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, विवस्सिदवट्ठमाणकालघादो ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०९ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो, विवस्सिदवट्ठिदकाल-घादो । मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अचुदकपादो उवरि तिरिक्खसंजदासंजदणमुव्वनादाभावा ।

पमतसंजदपहुडि जाव अणियट्ठिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्ठमाणपरूवणा खेत्तभंगा । अदीदकाले एदेहि सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदि-भागो फोसिदो । पमतसंजदे तेजाहारपदानं वि एवं चेव वत्तव्वं । गवरि इत्थिवेदे तेजाहारं

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणके समान जानना चाहिए ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागतकालकी विवक्षामें कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकृतिकपदपरिणत स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{14}{1}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर तिर्यच संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदीयोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उप-शामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणके समान है । अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकृतिकसमुद्धतपरिणत इन्हीं उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुदात और आहारकसमुदात, इन दोनों ही पदोंमें इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि ऋग्वेदमें

१ प्रमत्तार्पणद्विवाहरान्तानीं सामान्यान्तं स्पर्शनम् । स सि १, ८

णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ १११ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदणुंसयवेदमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो; विहारपरिणदेहि तिसु वि कालेसु तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो नि; तेण ओधत्तं जुज्जदे । किंतु वेउव्वियपदस्स ओधभंगो ण होदि, तत्थ वेउव्वियपदं वट्ठ-माणकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमदीदकाले उभयत्थ वि अट्ठ पंच चोद्दसभागा चि १ ण, पदविसेसविवक्खाभावेण ओधणिहेसस्स विरोहाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ११२ ॥

तैजस और आहारकसमुदात, ये दोनों पद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ १११ ॥

शंका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद, इन पदोंसे परिणत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूकि सर्वलोक स्पर्श किया है; तथा विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिये सूत्रमें कहा गया ओघपना घटित हो जाता है । किंतु वैकृतिकपदका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, वहां पर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें (देखो पृ. १४८), वैकृतिकपदका वर्तमानकालमें तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र, और अतीतकालमें दोनों ही स्थलोंपर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें और आदेशप्ररूपणके अन्तर्गत, वेद-प्ररूपणामें आठ बटे चौदह ($\frac{14}{1}$) तथा पांच बटे चौदह ($\frac{14}{1}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, पदविशेषकी विवक्षाका अभाव होनेसे सूत्रमें ओघपदका निर्देश विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

नपुंसकवेदी सामादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११२ ॥

१ नपुंसकवेद्युं मिथ्यादृष्टानां सामादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एदस्स वडुमाणपरूवणा खेत्तमंगो ।

वारह चोदसभागा वा देसूणा ॥ ११३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयसासेहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, पहाणीकदतिरिक्खससणरासिचादो । उववादपरिणदेहि एक्का-रह चोदसभागा देसूणा फोसिदा, णवुंसगवेदतिरिक्खससणेसुण्णज्जमाणदेव-णेरहयणं छ-पंचरज्जुवाहल्लतिरियपदरफोसणेवलंभादो । मारणतिय-परिणदेहि बारह चोदसभागा फोसिदा, णेरहय-तिरिक्खणं पंच-सचरज्जुवाहल्लरज्जुपदरफोसणोवलंभादो ।

सम्माभिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वडुमाणपरूवणा खेत्तमंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयवेदसम्माभिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणम-

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अद्वाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहाँपर तिर्यक् सासादन जीवराशिकी प्रधानता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह (१३) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नपुंसकवेदी तिर्यक् सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंकी अपेक्षा छह राजु, और नारकियोंकी अपेक्षा पांच राजु, इसप्रकार मिलकर ग्यारह राजु वाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने धारह बटे चौदह (१३) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, नारकियोंके पांच राजु और तिर्यकोंके सात राजु, इसप्रकार धारह राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाहज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियरासिस्स पावण्णादो । मारणतिय-उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वडुमाणपरूवणा खेत्तमंगो ।

छ चोदसभागा देसूणा ॥ ११६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसगवेद-असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाहज्जादो असंखेज्जगुणो । एते 'वा' सहङ्गे । मारणतियपरिणदेहि छ चोदसभागा देसूणा फोसिदा, अञ्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खासंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजदाणं गमणाभावा । उववादपदं णत्थि । णवरि असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणदेहि चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाहज्जादो असंखेज्जगुणो ।

पमतसंजदपहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ ११७ ॥

संख्यातवां भाग, और अद्वाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहाँपर तिर्यक्-राशिकी प्रधानता है । चहाँपर मारणान्तिकसमुद्भूत और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अद्वाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यकोंके गमनका अभाव है । यहाँपर उपपादपद नहीं होता है । विशेष बात यह है कि उपपादपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और अद्वाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

उक्त नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ११७ ॥

पमत्ते तेजहाराभावादो ओयचं न जुब्बदे ? न, सुत्ते पदविवक्खाए विणा साम-
ण्णिदेसादो । सेसं चित्तिं वत्तव्वं ।

अपगदवेदएसु अणियट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति
ओयं ॥ ११८ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्ठमाणदीदकालपरूपाणा ओघादो न भिज्जदि ति सुत्ते ओय-
मिदि भणिदं ।

सजोगिकेवली ओयं ॥ ११९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? न, पुब्बसेत्तेण सजोगिवेत्तस्स अदीद-वट्ठमाणकालेसु
तुल्लुत्ताभावादो एगजोगिचाणुववर्त्तीए । एदस्स ति सुत्तस्स अत्थो सुगमो ति न किंचि
जुब्बदे ।

एवं वेदमगणा समत्ता ।

शुंका—प्रमत्त गुणस्थानमें नपुंसकवैदी जीवोंके तेजस और आहाररुसमुदायका
अभाव होनेसे सूत्रोंक ओषपना नहीं घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सूत्रमें उक्त दोनों पदविशेषोंकी विवक्षितके बिना सामान्य
निर्देश किया गया है ।

दोप पदोंका स्पर्शनक्षेत्र विचार करके कहना चाहिए ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान और अतीतकालमध्यग्यी स्पर्शतयकरूपा ओघस्पर्शनप्रकरूपणामे
भिन्न नहीं है, इसलिय सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११९ ॥

शुंका—ऊपरके सूत्रका और इस सूत्रका, अर्थात् दोनों सूत्रोंका, एक योग (समास)
क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रमत्तसंयतादिके क्षेत्रसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रके अर्थात्
और वर्तमानकालमें समाजताका अभाव होनेसे एकयोगपना नहीं बन सकता है ।

इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, इसलिय विशेष कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

इसप्रकारसे वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोथकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओयं ॥ १२० ॥

एदस्स सुत्तस्स अदीद-वट्ठमाणकाले अस्मिन्ण परूप्पे करेमाणे कोमणमूलोवादो
न केण ति अवेण भिज्जदि ति ओयमिदि सुत्तवयणं सुदु मंदं । तदो मूलोपपरूप्पं सुदु
संभालिय एदय मिस्माणं पडिबोहो कायव्वो ।

लोहगयविमेषावोहणद्वयुत्तरमुत्तं मण्णदे—

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा स्ववा ओयं ॥ १२१ ॥
कदो ? ओयमुहुमसांपराइयउवसम-त्तवगोहिदो एदमि विमेषाभावा । सो च
विमेषामावो मिस्माणं सण्णिदरितियव्वो ।

अकसाईसु चट्ठुणमोयं ॥ १२२ ॥

क्कायमार्गणाने अनुवादमे कोषरूपायी, मानरूपायी, मायाकरापी और लोभ-
करापी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-
स्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२० ॥

इस सूत्रकी अर्थात् और वर्तमानकालको भाष्य करके प्रकरण करनेपर स्पर्शानु-
योगशास्त्री मूल भोगप्रवृत्तयामे किमी भी संशय घेर नहीं दे, इसलिय 'ओघ' ऐसा सूत्र-
वृत्तन सुस्पष्ट है । अतएव मूल भोगप्रवृत्तयामे भलेप्रकार समाल करके यहांपर शिष्योंको
प्रतिबोधित करना चाहिए ।

अब लोपकरूपगत विशेषताके मयबोधनाय उत्तर सूत्र कहते हैं—

त्रिंशेष चात यह है कि लोभकरापी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायणगुणस्थानवर्ती उप-
शुमक और शपक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ १२१ ॥

क्योंकि, भोगनिवृत्तित सूक्ष्मसाम्परायणगुणस्थानवर्ती उपशमक और शपकसे
क्कायमार्गणाभी उचिते प्ररूपित इन जीवोंके कोई विशेषता नहीं है । यह विशेषताका अभाव
शिष्योंके लिय भलीभांति शिक्षाता चाहिए ।

अकरापी जीवोंमें उपशान्तकराय आदि चार गुणस्थानवालोंका स्पर्शनक्षेत्र
ओघके समान है ॥ १२२ ॥

णामेदेसगहणे वि णामिहसंपच्चओ होदि ति चटुड्ढाणसेण वीदरागाणं चटुण्हं
शुण्हणाणं गहणं होदि । तेसिं परूवणा सुगमा, ओधसमाणत्तादो ।

एवं कसायसगणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-मुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं
॥ १२३ ॥

जेण सत्थान-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदमदि-मुदअण्णाणिमिच्छादिट्ठीहि
तिसु वि कालेसु सब्वलोगो, विहार-वेउव्वियपरिणदेहि । अट्ट चोदसभागा फोसिदा, तेण
ओधमिदि जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२४ ॥

ओघो जेण अणेषयरो मिच्छादिट्ठिओघादिभेदेण, तेण कस्सोघस्स एत्थ गहणं
होदि ति ण गव्वदे ? जेणोघेण सासणसम्मादिट्ठीणं पगरिसेण पक्कासत्ती अत्थि, तस्सेव

‘किंसी भी नामके एक वेशके प्रहण करनेपर भी नामवालोंका सम्प्रत्यय हो जाता
है’ इस न्यायके अनुसार ‘चटुःस्थान’ शब्दसे उपशान्तकषाय आदि वीतरागी चारों
गुणस्थानोंका प्रहण हो जाता है । उनके स्पर्शनकी प्ररूपणा ओघके समान होनेसे सुगम है ।

इसप्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणके अनुवादसे मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका
स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२३ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्भात और उपपादपद-
परिणत मत्तज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श
किया है, तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्भातपदपरिणत जीवोंने आठ घटे चौदह
(१६) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिये सूत्रक ‘ओघ’ यह वचन घटित हो जाता है ।

उक्त दोनों प्रकारके अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके
समान है ॥ १२४ ॥

शंका—चूंकि, मिथ्यादृष्टि-ओघ, सासादनसम्यग्दृष्टि-ओघ, आदिके भेदसे भोच
अनेक प्रकारका है, इसलिये यहांपर किस ओघका प्रहण किया जा रहा है, यह नहीं जाना
जाता है ?

समाधान—जिस ओघके साथ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति
है, उसका ही प्रहण यहांपर किया जा रहा है ।

१ ज्ञानावधारण मत्तज्ञानिभिरुताज्ञानिभिर्वाहृत्सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । व. वि. १, ८.

गहणं । केण सह एत्थ पुण पगरिसेण पक्कासत्ती विज्जदे ? सासणसम्मादिट्ठिस्स ओघेण ।
वट्टमाणकाले चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो सगसव्वपद-
खेतुवलंभादो । तीदे काले वि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागस्स, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागस्स, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणस्स; विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-
पदेसु अट्ट चोदसभागमत्तस्स, मारणंतिय-उववादपदेसु वारमेकारस-चोदसभागखेचस्सुवलं-
भादो । एदमत्थपदं सब्वत्थ वत्तव्वं ।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स
असंखेज्जदिभागो ॥ १२५ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंग, वट्टमाणकालसंबंधिच्चादो ।

अट्ट चोदसभागा देसूणा सब्वलोगो वा ॥ १२६ ॥

सत्थाणपरिणदेहि विभंगणाणमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो ‘वा’

शंका—तो यहांपर किस ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है ?

समाधान—सासादनगुणस्थानके ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, क्योंकि,
वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यतवां भाग और अट्टाहज्जीपसे
असंख्यतगुणा अपने सर्वपदोंका स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । अतीतकालमें भी स्वस्थानपदकी
अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यतवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग
और अट्टाहज्जीपसे असंख्यतगुणा; तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक-
पदोंमें आठ घटे चौदह (१६) भागमात्र, तथा मारणान्तिक और उपपाद, इन दो पदोंमें क्रमशः
चारह घटे चौदह (१३) और ग्यारह घटे चौदह (१६) भागप्रमाण स्पर्शनका क्षेत्र पाया
जाता है । यह अर्थपद सर्वत्र कहना चाहिये ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १२५ ॥

वर्तमानकालसे सम्बन्ध होनेके कारण इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।
विभंगज्ञानी जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा आठ घटे चौदह भाग
और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १२६ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-
लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाहज्जीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह ‘वा’ शब्दका अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना,
१ विभंगज्ञानिना मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासत्संयोग-मार्ग-वर्तमान-वा देशोवा, सर्वलोक-वा ।

व. वि. १, ८.

सहृदो । विहारवदिसत्पाण-वेदण-कसाय-वेडव्वियपरिणदेहि अह चोदसभागा देवणा; मारणतियपरिणदेहि सन्वल्लो गो फोसिदो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२७ ॥

कुदो ? बहुमाणकाले सगसन्वपदानं चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागत्तेण, अट्ठाह-ज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; तीदे काले सत्पाणस्स तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, अट्ठाहज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; विहारवदिसत्पाण-वेदण-कसाय-वेडव्वियपदानं देवण-अट्ठा-चोदसभागात्तेण मारणतियस्स देवण-वारह-चोदस-भागात्तेण, ओघसासणसम्मादिट्ठिवेत्तेण सरिसत्तुवलंभादो । कधं सारिच्चे एगचं ? ण, दव्वट्ठियणयणिवंधणव्वहाराणं सरिसे वि एगचालंवाणसुवलंभा ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ १२८ ॥

कपाय, और वैक्तियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौबह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्रातपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है । शेष अर्थ सुगम है ।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान होनेका कारण यह है कि वर्तमानकालमें स्वकीय सर्वपदोंके स्पर्शनक्षेत्रकी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके अस-ख्यातवें भागसे, तथा अट्ठाईपसे असंख्यातगुणितक्षेत्रसे, अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थानपदका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके सख्यातवें भागसे, तथा अट्ठाईपसे असंख्यातगुणित क्षेत्रसे, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्तियिकसमुद्रात, इन पदोंका कुछ कम आठ बटे चौबह (१६) भागसे, और मारणान्तिकसमुद्रातका कुछ कम बारह बटे चौबह (१३) भागकी अपेक्षा, मोघमरूपित सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके स्पर्शन-क्षेत्रके साथ सदृशता पाई जाती है ।

शंका — सादृश्यमात्र होनेपर सूत्रोंमें 'ओघ' पद द्वारा एकत्व कैसे कहा जा रहा है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयनिबन्धनक व्यवहारोंकी सदृशता होनेपर भी एकत्वावलम्बी व्यवहार पाये जाते हैं ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछदुमस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२८ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टीना सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. वि. १.८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतज्ञानपरिणतसम्यग्दृष्टीना सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. वि. १.८

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, मूलोघमिह वित्थरेण परूविदुच्चादो । तत्थ णाण-विसेसणेण विणा सामण्णेण परूविदमिदि चे ण, सामण्णेण परूविदे वि सा मदि-सुदणाण-परूवणा चैय, मदि-सुदणाणवदिरित्तछदुमत्थसम्मादिट्ठिमणुवलंभा । ओधिणाणविरहिद-सम्मादिट्ठिमणुवलंभा ओधिणाणस्स ओघचं ण जुज्जेदे चे ण, एत्थ दव्वपमाणेण अहियारा-भावा । ओघअसंजदसम्मादिट्ठिआदिफोसणेहि ओधिणाणअसंजदसम्मादिट्ठिआदिफोसणाणं सरिसत्तुवलंभादो ओधिणाणस्स ओघचं जुज्जेदे चैय ।

मणपज्जवणाणीसु पमतंसंजदपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था ति ओघं ॥ १२९ ॥

अदीद-वट्टमाणकाले सन्वपदानमोघसवपदेहि सरिसत्तुवलंभादो एत्थ वि ओघचं जुज्जेदे ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ १३० ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, मूलोघमें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है । शंका — उस मूलोघ स्पर्शनमरूपणमें तो ज्ञानमार्गणारूप विशेषणके बिना सामान्यसे ही कथन किया गया है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सामान्यसे प्ररूपित होनेपर भी वह मतिज्ञान और श्रुत-ज्ञानकी ही प्ररूपणा है, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञानसे रहित छमस्य सम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं ।

शंका — अवधिज्ञानसे रहित सम्यग्दृष्टि जीव तो पाये जाते हैं, इसलिए अवधिज्ञानके ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, यहां पर द्रव्यप्रमाणके अधिकार या प्रकरणका अभाव है । ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके साथ अवधिज्ञानी असंयतसम्य-ग्दृष्टि आदिकोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंकी सदृशता पाये जानेसे अवधिज्ञानके ओघपना घटित हो ही जाता है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछदुमस्य गुण-स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२९ ॥

अतीत और वर्तमानकालमें मनःपर्ययज्ञानियोंमें सम्प्रवित्त-स्पर्शपदोंके स्पर्शनकी ओघ-घर्णित सर्वपदोंके स्पर्शनके साथ सदृशता पाई जानेसे यहां पर भी ओघपना युक्तिसंगत है । केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३० ॥

एदस्स अत्थो सुगमो, ओधम्मि परुविदत्तादो, केवलणणवदिरित्तसजोगिकेवलीणम-
भावा ओधसजोगिपरुवणणं पडि सामण्णा ।

अजोगिकेवली ओधं ॥ १३१ ॥

एदस्स वि अत्थो सुगमो, ओधम्मि परुविदत्तादो । पुध सुत्तारंमो किमट्ठो ? ण,
सजोगि-अजोगिकेवलीणं वडुमाणादीदकालेण पच्चासचीए अभावादो एगजोगाणु-
ववचीए ।

एव णामगणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदण्हडि जाव अजोगिकेवलि
त्ति ओधं ॥ १३२ ॥

एत्थ ओधपरुवणादो ण को वि' भेदो अत्थि, विवक्सिदसंजसामण्णादो । ण
च संजसामण्णविरहिदा संजदा अत्थि, तेसिमसंजदत्तपसंगादो ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ १३३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, ओधमें प्ररूपण किया जा चुका है । दूसरी बात
यह भी है कि केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवलियोंके अभाव होनेसे ओषवर्णित सयोगि-
जिनोकी प्ररूपणाओंके प्रति समानता है ।

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली जिनोका स्पर्शनक्षेत्र ओधके समान है ॥ १३१ ॥
ओधमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है ।

शंका—तो फिर पृथक् सूत्रका भारंम किसलिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगी और अयोगिकेवलियोंके वर्तमान और अतीत-
कालके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे एक योगपना बन नहीं सकता था, अतः पृथक्
सूत्रारंभ किया गया है ।

इसप्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणोके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओधके समान है ॥ १३२ ॥

यहांपर ओधप्ररूपणासे कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि, संयमसामान्यकी विवक्षा है ।
और संयमसामान्यसे रहित संयत होते नहीं हैं । यदि संयमके बिना भी संयमी होने लगे,
तो फिर असंयतपनेका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

संयतोंमें सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओधके समान है ॥ १३३ ॥

१ संयमानुवादेन संयतानां सर्वेषां ५५ सामान्योक्त स्पर्शनम् । त. वि. १, ५,

२ अतिपुं ; को स्थि' न प्रती ' को ' छि' इति पाठ. ।

पुध सुत्तारंमो किमट्ठो ? ण, पुव्विक्खल्लेहि सह फोसणेण पच्चासत्तिअभावप्पदंसण-
फलत्तादो । सेसं सुगमं ।

समाइयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदण्हडि जाव अणि-
यट्ठि ति ओधं ॥ १३४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगममिदि ण एत्थ किंचि वत्तव्वमत्थि ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥

एदस्स वडुमाणपरुवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेडव्वियपरिणेदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तस्स संखेज्जदिभागो;
मारणत्तियपरिणेदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुमखेत्तादो असंखेज्जगुणो तीदे
काले फोसिदो । पमत्ते तेजाहारं णत्थि, लद्धीए उवरि लद्धीणमभावा ।

शंका—तो फिर पृथक् सूत्रका भारंम किसलिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंके स्पर्शनके साथ सयोगिकेवलीके स्पर्शनसे
प्रत्यासत्तिके अभावका प्रदर्शन करना ही पृथक् सूत्रका फल है ।
शेष अर्थ सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनि-
ष्टचिक्करण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओधके समान है ॥ १३४ ॥
यह सूत्र भी सुगम है, इसलिए यहांपर कुछ भी वक्तव्य नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, देयना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग, तथा मारणात्तिक-
पदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य-
क्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि प्रमत्तगुण-
स्थानमें तैजससमुदात और आहारकसमुदात, ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, लब्धिके ऊपर
दूसरी लब्धियां नहीं होती हैं ।

सुहुमसांपराइसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा ओधं ॥ १३६ ॥

एदस्स सुवस्स अत्थो सुगमो, ओघमिह परुविदचादो ।

जहावखादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्टाणी ओधं ॥ १३७ ॥
चटुहं ट्टाणणं समाहारो चटुट्टाणी; सा ओधं भवदि, जहावखादसंजदचटुगुण-
ट्टाणणं परुवणा ओघसरिसा चि जं बुत्तं होदि ।

संजदासंजदा ओधं ॥ १३८ ॥

संजमाणुवादेण संजमासंजम-असंजमाणं कधं गहणं होदि ? एसो संजमाणुवादो ण संजममेव परुवेदि, किंतु संजमं संजमासंजमसंजमं च । तेणेदेसि पि गहणं होदि । जदि एवं, तो एदिस्से मग्गणाए संजमाणुवादवदेसो ण, जुअदे ? ण, अब-णिबवणं व पाघणपदमासेअ संजमाणुवादवदेसजुचीए । सेसं सुगमं ।

सुहसमाप्परायिकशुद्धिसंयतोमं सुहसमाप्परायिक उपशमक और क्षपक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोमं अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३७ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतु स्थानी कहते हैं । उन चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा ओघके समान होती है । अर्थात्, यथाख्यातसंयमवाले अन्तिम चार गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघके सदृश होती है, ऐसा कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३८ ॥

शुंका—संयममार्गणके अनुवादसे संयमासंयम और असंयम, इन दोनोंका ग्रहण कैसे होता है ?

समाधान—संयममार्गणके अनुवादसे न केवल संयमका ही ग्रहण होता है, किंतु संयम, संयमासंयम और असंयमका भी ग्रहण होता है ।

शुंका—यदि ऐसा है तो इस मार्गणको संयमानुवादका नाम देना युक्त नहीं है ? समाधान—नहीं, क्योंकि, 'आव्रवन' वा 'निम्बवन' के समान प्राधान्यपदका आश्रय लेकर 'संयमानुवादसे' यह व्यपदेश करना युक्तियुक्त हो जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

१ × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्त स्पर्शनम् । स सि १, ८.

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओधं ॥ १३९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओघमिह मिच्छादिट्ठिआदिचटुगुणट्टाणपरुवणाण परुविदचादो ।

एव सजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४० ॥

एदं सुत्तं सुगमं खेत्ताणिओगहारे उचट्ठादो ।

अट्ठ चोदसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १४१ ॥

सत्याणत्थेहि चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठिहि तिहं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउज्जिय-परिणेदेहि देसणट्ठ चोदसभागा; मारणंतिय-उववादपरिणेदेहि सव्वलोगो पोसिदो ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघमें मिथ्यादृष्टि आदि चारगुणस्थानोंकी प्ररूपणाओंका निरूपण किया गया है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रालुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १४१ ॥

स्वस्थानस्य चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य्यलोकका संख्यातवां भाग और अद्वैदीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारचतस्त्वस्थान, वेदना, कषाय और चैत्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । मारणास्तिकसमुदात और उपपाक्वपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

१ × × असंयतानां व सामान्योक्त स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनीनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षेत्राणामान्तानां पवेत्तिपक्व । स. सि. १, ८

सासनसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ १४२ ॥

ओघसासनसम्मादिट्ठिआदिसयलगुणद्वानेहिं तो चक्खुदंसणिसासनसम्मादिट्ठिआदि-
गुणद्वानाणं ण कोविं भेदो, चक्खुदंसणवदिरत्तिसासणादिगुणद्वानाणमभावो । तेण
ओघमिदि सुहु जुज्जेदे ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-
छदुमत्था ति ओघं ॥ १४३ ॥

एदं पि सुचं सुगमं, ओघस्सिद्वि विरथेण परूविदत्तादो । ण च ओघपरूविदमिच्छा-
दिट्ठिआदिखीणकसायपज्जंतगुणद्वानाणि अचक्खुदंसणविरहिदाणि अत्थि, तथागुलं-
भादो । तेनेदंस्सि सन्वेत्तिं पि ओघत्तं जुज्जेदे ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १४४ ॥

सुगममेदं सुचं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछदस्य गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४२ ॥

ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि आदि सकल गुणस्थानोंसे चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि
आदि समस्त गुणस्थानोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंका कोई भेद नहीं है; क्योंकि, चक्षु-
दर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है । इसलिये 'ओघ' यह पद भली भांति
घटित हो जाता है ।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछदस्य
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघप्रकरणोंमें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका
है । और ओघप्ररूपित मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थान अचक्षुदर्शनसे विराहित हैं
नहीं; क्योंकि, ऐसा देखनेमें नहीं आता । इसलिये इन सभी गुणस्थानोंके ओघपना
शुक्तिसंगत है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिशु 'कोत्थि' इति पाठः ।

२ अचक्षुदर्शनीनां मिथ्यादृष्ट्यादिसंज्ञाकरणायान्तानां X सामान्योक्त स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

३ अवाधि-क्षेत्रदर्शनीनां च सामान्योक्त स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एव दंसणमगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी
ओघं ॥ १४६ ॥

जेण सत्थण-वेदण-कमाय-भारणंति-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-
मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो, विहारपरिणदेहि अदीद-चट्टमाणेण तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो;
चट्टमाणकाले वेउव्वियपरिणदेहि (तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,) तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदे पंच चोदसभागा पोंसिदा; तेण
ओघत्तं जुज्जेदे । विहार-चेउव्वियपदेसु देसूणट्ठ-चोदसभागपोंसणखेत्ताभावा ओघत्तं ण वड्ढेदे
इदि पच्चवट्ठाणं ण कायव्वं, सुत्ते पदविसेसाभावा । सव्वलोगत्तमेत्तेण सरिसत्तमालोविय
ओघत्तुववत्तीए ।

केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेस्यामार्गणोंके अलुवादसे कृष्णलेस्या, नीललेस्या और कापोतलेस्यावाले मिथ्या-
दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४६ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणादिकसमुदात और उपपादपदपरिणत
कृष्ण, नील और कापोतलेस्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्व लोक स्पर्श किया
है, विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठईद्वीपसे असं-
ख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने
(सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,) तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और
अट्ठईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा अतीतकालमें उक्त जीवोंने पांच वटे
चौदह (१५) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिये ओघपना वन जाता है ।

शंका—विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुदात, इन दो पदोंमें वेशोन आठ बटे
चौदह (१५) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना घटित नहीं होता है ?

समाधान—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, सूत्रमें पदविशेषकी विवक्षाका
अभाव है । सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रकी सदृशताको देखते हुए ओघपना वन जाता है ।

१ लेस्यालुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८. फास सन्न लेय
तिट्ठाणे अल्लेस्साण । गो. जी. ५४५.

सासनसम्मादिद्विहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-
भागो ॥ १४७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेतमंगो, अल्लीणवट्टमाणत्तादो ।

पंच चत्तारि वे चोदसभागा वा देसूणा ॥ १४८ ॥

सत्थणसत्थण-विहार-वेदण-रूसाय-वेउव्वियपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-
सासणेहि तीदे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाह-
जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । देवे मोत्तूण गेरइय-अपज्जत्तभवणवासिय-वाणवेत्तर-जोदि-
सिय-तिरियेतिरिक्खेसु चव एदस्स खेत्तस्सुवलंभादो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्त-
मुववणं । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणेहि जहाकमेण देसूणा
पंच चत्तारि वे चोदसभागा पोसिदा । गेरइयंहितो तिरिक्खेसु उपज्जमाणसासणे पेक्खि-
दूण एसा फोसणपरूवणा कदा । देवेहिंतो एइदिएसु मारणंतियं मेल्लमाणसासणखेत्ते गहिदे

उक्त तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४७ ॥
वर्तमानकालको व्याप्त करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत
कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह, चार बटे चौदह और दो बटे चौदह भाग
स्पर्श किये हैं ॥ १४८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कयाय और वैकृत्यिकपदपरिणत कृष्ण,
नील और कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग और अट्टारिद्वीपसे असंख्यात-
गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । कल्पवासी देवोंको छोड़कर नारकी, अपर्याप्त भवनवासी, वानव्यंतर
और ज्योतिष्कदेव तथा तिर्यग्लोकवर्ती तिर्यचोंमें ही यह उक्त क्षेत्र पाया जानेसे तिर्यग्लोकके
संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका कथन युक्तिसंगत है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-
परिणत छठी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्यावाले जीवोंने कुछ कम पांच
बटे चौदह (१४) भाग, नीललेश्यावाले पांचवीं पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने
कुछ कम चार बटे चौदह (१४) भाग, और कापोतलेश्यावाले तीसरी पृथिवीके नारकी
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम दो बटे चौदह (१४) भाग स्पर्श किये हैं । नारकि-
योंसे तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे
यह स्पर्शनप्ररूपणा की गई है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिरलोकरातस्येयमाग पच भवरो दो चतुरस्रमाणा वा देशोनाः । स धि, १, ८.

२ ५ ततो ' तिरिय ' इति पाठो नास्ति ।

पुव्विल्लखेत्तेण सह जहाकमेण वारस-एकारस-णव-चोदसभागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदि ति
उत्ते ण लब्भदि, देवाणमप्यणो आउवचरिमममओ ति पुव्विल्लत्तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं
विणासाभावा । किण्ह-णील-काउलेस्सियतिरिक्ख-मणुससासणणमंइदिएसु मारणंतियं मेल्ल-
माणं सत्त चोदसभागा उवरि लब्भंति ति हेट्टिल्लखेत्तेहि सह वारसेकारस-णव-चोदस-
भागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, तिरिक्ख-मणुसउवसमसम्माइट्टीणं उवसमसम्मतकालब्भंतरे
सुट्टु संकिलिट्ठणं पि संजदासंजदाणं व किण्ह-णील-काउलेस्साओ ण हंतिति ति गुरुवदे-
संतरजाणावण्हं तहाणुवदेसादो । देवेसु तिरिक्खगईए उववणेषु उववादस्स एकारस-दस-
अट्ट-चोदसभागमेत्तखेत्तं किण्ण-लब्भदे ? ण, किण्ह-णील-काउलेस्साहि सह अल्लिज्जण
पच्छा ताहि सह उववादाभावो । ण च लेस्सा उववादसमाणकालभाविणी मगणा होइ,

शंका—देवोंसे एकैन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले जीवोंके सासादन गुण-
स्थानसम्बन्धी क्षेत्रके ग्रहण करनेपर पूर्वोक्त क्षेत्रके साथ यथाक्रमसे चारह बटे चौदह (१४)
भाग, ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग, और नौ बटे चौदह (१४) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यो
नहीं पाया जाता है ?

समाधान—पेसी शंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं पाया जाता है, क्योंकि, देवोंके
अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त अपनी पूर्ववर्ती तेज, पक्क और शुक्ल लेश्याओंका विनाश
नहीं होता है, इसलिए उक्त प्रकारका क्षेत्र नहीं कहा गया ।

शंका—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तथा एकैन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात
करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्योंके सात बटे चौदह (१४) भाग तो
ऊपर स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, इसलिए उसे अद्यस्तन उक्त क्षेत्रोंके साथ ग्रहण करने पर
बारह बटे चौदह (१४) भाग, ग्यारह बटे चौदह (१४) भाग और नौ बटे चौदह (१४)
भागप्रमाण क्षेत्र क्यो नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर अत्यन्त संकेशको प्राप्त
हुए भी तिर्यच और मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके सयतासंयतोंके समान कृष्ण, नील
और कापोत लेश्याएं नहीं होती हैं, इस प्रकारका एक दूसरा गुरुका उपदेश है, यह बात
बतलानेके लिए वैसा उपदेश नहीं दिया है ।

शंका—तिर्यचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें उपपादपदका ग्यारह बटे चौदह, दश
बटे चौदह और आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यो नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे
उन्हींके साथ उपपाद नहीं पाया जाता है ।

विशेषार्थ—देवोंमें तीनों अशुभलेश्याएं अपर्याप्तकालमें ही होती हैं । पीछे नियमसे

आधेयपुव्वुत्तरकालेसु असंतीए आहारत्तविरोहादो । तम्हा सुत्तमेव होदु, गिरवज्जादो ।

सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४९ ॥

एदस्स वट्ठमाणपरुवणा खेत्तमंगो । सत्थणसत्थान-विहारवदिसत्थान-वेदण-कसाय-

शुभलेइया हो जाती है । अतएव कृष्ण, नील और कापोतलेइयाके साथ रहनेवाले देवोंके उपपादका अभाव बतलाया, क्योंकि, देवोंका मरण न तो अपर्याप्तकालमें ही होता है और न पूरी आयुके समाप्त हुए बिना ही । अतः यह कहना युक्तिसंगत ही है कि कृष्ण, नील और कापोत लेइयाओंके साथ रहकर पीछे उपपाद नहीं होता है ।

दूसरी बात यह है कि लेइयामार्गणा उपपाद-समान-कालभाविनी नहीं है, क्योंकि, आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें अविद्यमान लेइयाके आधारपेनका विरोध है । इसलिये सूत्रोक्त ही स्पर्शनक्षेत्रका प्रमाण होना चाहिए, क्योंकि, वही प्रमाण निर्दोष पाया जाता है ।

विशेषार्थ—यद्वापर लेइयामार्गणा उपपाद-समानकाल-भाविनी नहीं है, ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकारसे विवक्षित जीवके पूर्व भवको छोड़नेके पश्चात् उत्तर भवको ग्रहण करनेके साथ ही गति, योग, आहार आदि यथासंभव कितनी ही मार्गणाएं परिवर्तित हो जाती हैं, उस प्रकार लेइयामार्गणा परिवर्तित नहीं होती है । इसका कारण यह है कि जीव जिस लेइयासे मरण करता है उसी लेइयासे ही उत्पन्न होता है, ऐसा एकान्त नियम है । और इसी नियमके कारण भवनविक देवोंके अपर्याप्तकालमें तीन अशुभ लेइयाओंका अस्तित्व माना गया है । इसी बातको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया है, उसका भी अभिप्राय यही है कि यदि उपपाद होनेके साथ ही लेइयाके परिवर्तनका नियम अवश्यंभावी होता, तो मरण करनेके पूर्वकालमें और उत्तरकालमें विवक्षित लेइयाके परिवर्तित हो जानेसे आधार-आधेयपना बन जाता, अर्थात्, मरणकाल और उपपादकालरूप पूर्वोत्तरकाल आधेय बन जाते और उनमें होनेवाली लेइया आधार बन जाती । किन्तु भव-परिवर्तनके हो जाने पर भी लेइयापरिवर्तन होता नहीं है, इसलिये कहा गया है कि आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें विवक्षित लेइयाका परिवर्तन न होनेसे आधारपना नहीं बन सकता है ।

उक्त तीनों अशुभलेइयावाले सम्यग्मिध्यादृष्टि और असंयतसम्पदृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैकृतिकपदपरिणत तीनों अशुभलेइयावाले

वेउव्वियपरिणदेहि तिलेस्सियसम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, (तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,) अट्ठुइज्जादो असंखेज्जगुणो । कुदो ? पहाणीकयतिरिक्खरासिचादो । मारणंतिथ-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील्लेस्सियअसंजद-सम्मादिट्ठिहि चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठुइज्जादो असंखेज्जगुणो, छट्ठ-पचम-पुढवीहिंतो माणुसेसु आगच्छमाणअसंजदसम्मादिट्ठिणं पणदालीसजोयणलक्खविकखंभ-पंच-चत्तारिज्जुआयदखेत्तुलंभादो । मारणंतिथ-उववादपरिणदकालेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठिहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठुइज्जादो असंखेज्जगुणो, काउलेस्साए सह असंखेज्जेसु दीवेषु पढमपुढवीए च उप्पज्जमाणखइय-सम्मादिट्ठिछुत्तखेत्तगगहणादो ।

तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५० ॥

एदस्स परुवणा खेत्तमंग, अल्लिणवट्ठमाणत्तादो ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि और असंयतसम्पदृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवा भाग, (तिर्येलोकका संख्यातवा भाग,) और अट्ठईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यद्वापर तिर्यच राशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्धान ओर उपपाद-पदपरिणत कृष्ण और नीललेइयावाले असंयतसम्पदृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्ठईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, छठी और पांचवीं पृथिवीसे मनुष्योंमें होनेवाले क्रमशः कृष्ण और नील लेइयाके धारक असंयतसम्पदृष्टि जीवोंके पैतालीस लाख योजनप्रमाण विपरुक्कम्भवाला, छठी पृथिवीकी अपेक्षा पांच राजु और पांचवीं पृथिवीकी अपेक्षा चार राजु आयत (लम्बा) स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कापोतलेइयावाले असंयतसम्पदृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्येलोकका संख्यातवा भाग और अट्ठईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि यद्वापर कापोत-लेइयाके साथ असंख्यात द्वीपोंमें और प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले क्षाधिकसम्पदृष्टि जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रका ग्रहण किया गया है ।

तेजोलेइयावालोंमें मिध्यादृष्टि और सासादनसम्पदृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

वर्तमानकालको ग्रहण करतेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

अट्ट णव चोदसभागा वा देसूणा ॥ १५१ ॥

सत्थाणपदपरिणदेहि तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासनसम्मादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो^१ । एसो 'वा' सद्वुो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ट-चोदस-भागा, मारणंतिय-उववादपरिणदेहि णव-दिवडु-चोदसभागा पोसिदा^२ ।

सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेतं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो^३ ॥ १५२ ॥

एदस्स परूवणा खेतभंगा ।

अट्ट चोदसभागा वा देसूणा ॥ १५३ ॥

सत्थाणपरिणदेहि दोगुणद्वणजीवेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-

तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदसे परिणत जीवोंने आठ बटे चौदह (१६) भाग, मारणान्तिकसमुद्रातपरिणत उक्त जीवोंने नौ बटे चौदह (१६) भाग और उपपाद-पदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनों गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यावाले जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

^१ तेउस्स य मट्ठाने लोगस्स असखमागसेत्तं तु । अट्टचोदसभागा वा देसूणा इति नियमेष ॥ गो जी ५४६.

^२ एवं तु समुत्पादे णव चोदसभागा य किञ्चा । उववादे पटमपद दिवडुचोदस य किञ्च ॥ गो जी ५४७.

^३ सम्यग्मिथ्यादृष्टयतसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासखेयमागः अट्टो चतुर्दशभागा वा देशोना । स वि. १, ८.

लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि देखण-अट्ट-चोदसभागा । उववादपरिणदेदि दिवडु-चोदसभागा देखणा पोसिदा । णवरि सम्माभिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि । सणक्कुमार-माहिंदे तेउलेस्सा अत्थि चि उववादस्स देखण-तिणि-चोदसभागा किण्ण होंति ? ण, सोधम्मी-साणादो संखेज्जाणि चेव जोयणाणि गंतूण सणक्कुमार-माहिंदकप्पपरंभो होदूण दिवडु-रब्बुमिह परिसमचीदो । तस्सुत्तरिमयेरंते तेउलेस्सिया किण्ण होंति ? ण, तस्स हेड्डिम-विमाणे चेव तेउलेस्सासंभवोवदेसा ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो^१ ॥ १५४ ॥

एदस्स परूवणा खेतभंगा, वट्टमाणकालसंवधादो ।

दिवडु चोदसभागा वा देसूणा ॥ १५५ ॥

संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिक-समुद्रात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

शंका—सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्पमें तेजोलेश्या होती है, इसलिए उपपादका देशोन तीन बटे चौदह (१६) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म और ईशानकल्पसे संख्यात योजन ही ऊपर जाकर सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्प प्रारम्भ होकर डेढ़ राजुपर समाप्त हो जाता है ।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्रकल्पके उपरिम विमानके अन्ततक तेजोलेश्यावाले जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस कल्पके अधस्तन विमानोंमें ही तेजोलेश्याके होनेका उपदेश पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५५ ॥

^१ सयतासयतलोकस्यासखेयमाग अर्थाच्चतुर्दशभागा वा देशोना । स वि. १, ८.

सत्थाणमत्थाण-विहारवदिमत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदतेउलेस्सियसंजदा-संजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइजादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतियपरिणदेहि दिवड्ड-चोदसभागा पोसिदा। उववादा नत्थि।

पमत्त-अपमत्तसंजदा ओधं ॥ १५६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओधमिह पुरुविदत्तादो।

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिडीहि केव-डियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, खेत्तमिह उत्तत्थादो।

अट्ठ चोदसभागा वा देसूणा ॥ १५८ ॥

सत्थाणपरिणदपम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिडीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असं-

खस्थानस्वस्थान, विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकपदपरिणत तेजो-लेइयावाले संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका सख्यातवां भाग, और अट्ठाईवीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुदातपदपरिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) डेढ़ बटे चौदह (३६) भाग स्पर्श किये हैं। इन जीवोंके उपपादपद नहीं होता है।

तेजोलेइयावाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १५६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५७ ॥

क्षेत्रप्ररूपणमें कहे जानेके कारण यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेइयावाले उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५८ ॥

स्वस्थानपदपरिणत पद्मलेइयावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

१ प्रमत्ताप्रमत्तौलोकस्यासंख्येयभाग । स. सि. १, ८

२ पद्मलेइयैमिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्टयन्तौलोकस्यासंख्येयभागः अतौ चतुर्दशभागा वा रेखोना, स. सि. १, ८.

खेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि देसूणट्ठ चोदसभागा पोसिदो। उववादपरिणदेहि देसूणपंच चोदसभागा पोसिदा'। नवरि सम्माभिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा नत्थि।

संजदासंजदेहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १५९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगदारे उत्तत्थादो। उत्तमेव किमिदि पुणो उच्चदे? ण, मंदवुद्धिसिस्समस्स सभालणट्ठं तप्परूखणदो।

पंच चोदसभागा वा देसूणा ॥ १६० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि पम्मलेस्सिय-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि देसूणा पंच चोदसभागा पोसिदा।

तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग और अट्ठाईवीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहार-वत्त्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत पद्मलेइयावाले उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (३६) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह (३६) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुदात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

पद्मलेइयावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है।

शंका — पहले कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदवुद्धि शिष्योंके सभालनेके लिए पुनः उसका प्ररूपण किया गया है।

पद्मलेइयावाले संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिकपदपरिणत पद्म-लेइयावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका सख्यातवां भाग, और अट्ठाईवीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुदात-पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह (३६) भाग स्पर्श किये हैं।

१ पम्मस्स य सट्ठाणसमुग्गवाददुग्गेसु होदि पदमपद । अट्ठचोदसभागा वा देसूणा हेति पियमेव ण गो. वी. ५४८.

२ उववादे पदमपद पण चोदस भागस व देसुणं । गो. जी ५४९.

३ संयतासंयतौलोकस्यासंख्येयभाग पंच चतुर्दशभागा वा देशोना । स. सि. १, ८.

पमत-अपमतसंजदा ओघं ॥ १६१ ॥

सुगममेदं सुतं ।

सुकलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं
खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

एदं सुतं सुगमं, खेत्ताणिओगहारे उत्तत्थादो ।

छ चौदसभागा वा देसूणा ॥ १६३ ॥

सत्थाणपरिणदसुकलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मादिट्ठि-असंजद-
सम्मादिट्ठिहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठहज्जादो-
असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कमाय-वेउज्जिय-मारणंतियपरिणदेहि छ चौदसभागा देसूणा-
पोसिदा । उववादपरिणदसुकलेस्सियमिच्छादिट्ठिहि सासणसम्मादिट्ठिहि य चट्ठुण्हं लोग-
णमसंखेज्जदिभागो, अट्ठहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो; तिरिक्खमिच्छादिट्ठि-सासण-

पबलेइयावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्लेइयावालेमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग
स्पर्श किया है ॥ १६२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

शुक्लेइयावाले उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह
बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत शुक्लेइयावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-
यत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे
चौदह (१५) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत शुक्लेइयावाले मिथ्यादृष्टि और
सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और
अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि तिर्यच मिथ्यादृष्टि
और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्लेइयाके साथ देवोंमें उपपाद नहीं होता है । पैतालीस

१ प्रमत्ताप्रमत्तौलोकस्यासंख्येयभागः । स सि १, ८.

२ शुक्लेइयादिमिथ्यादृष्ट्यासंयतार्थतत्त्वैर्लोकस्यासंख्येयभागः बट् चट्ठदसभागा वा देसूणा । स सि. १, ८.

३ सुकरसं य विट्ठाने पटमो उक्कोदसा हीना ॥ गो. बी. ५४९.

सम्मादिट्ठिणं सुक्कलेस्साए सह देवेषु उववाद्भावा । पणदालीसलक्खजोयणविकखंभेण पंच-
रज्जुआयमेण ट्ठिदखेत्तमाज्जरिय सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिमणुसाणं चेव
सुकलेस्सियदेवेषुववादुवलंभा । ते तत्थ ण उपपज्जंति ति कथं णव्वदे ? पंच चौदसभागु-
वदेसामावादो । उववादपरिणदअसंजदसम्मादिट्ठिहि छ चौदसभागा फोसिदा, तिरिक्ख-
असंजदसम्मादिट्ठिणं सुक्कलेस्साए सह देवेषुववादुवलंभा । सत्थाण-विहार-वेदण-कमाय-
वेउज्जियपरिणदसुकलेस्सियसंजदासंजदेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागो, अट्ठहज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि छ चौदसभागा फोसिदा,
तिरिक्खसंजदासंजदाणं सुक्कलेस्साए सह अच्चुदकप्पे उववादुवलंभा । सम्मादिट्ठि-
दिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

पमतसंजदपहुडि जाव सजोगिकेवलं ति ओघं ॥ १६४ ॥

लाख योजन विष्कम्भसे और पांच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रको व्याप्त करके शुक्लेइयावाले
मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका ही शुक्लेइयावाले देवोंमें उपपाद पाया
जाता है ।

शंका—शुक्लेइयावाले तिर्यच, शुक्लेइयावाले देवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, यह कैसे
जाना ?

समाधान—चूंकि, पांच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके उपदेशका अभाव
है, इससे जाना जाता है कि शुक्लेइयावाले तिर्यच जीव मरकर शुक्लेइयावाले देवोंमें नहीं
उत्पन्न होते हैं ।

उपपादपदपरिणत शुक्लेइयावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे
चौदह भाग (१५) स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्लेइयाके साथ
देवोंमें उपपाद पाया जाता है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रि-
यिकपदपरिणत शुक्लेइयावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां
भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्ठाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।
मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने छह बटे चौदह (१५) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि,
तिर्यच संयतासंयतोंका शुक्लेइयाके साथ अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है । सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि शुक्लेइयावालोंके मारणान्तिक ओर उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोजिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
शुक्लेइयावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६४ ॥

१ गवरि समुच्चादग्निं य सखातीदा इवति भागा वा । सज्जो वा खलु लोगो जासो होदि वि णिदिट्ठो ॥
गो बी ५५० ॥

२ प्रमत्तादिसजोगिकेवल्यात्तानां अलेइयानां च सामान्यलोकं स्पर्शनम् । स सि १, ८.

एदं सुत्तं सुगमं, तदो ण किञ्चि वत्तव्वमत्थि ।

एवं लेस्सामगणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिणसु मिच्छादिट्ठिणहुडि जाव
केवलि ति ओघं ॥ १६५ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, वट्टमाणदीदकाले अस्सिदूण ओघमिह परुविदत्तादो ।

अभवसिद्धिण्हिं केवडियं खेत्तं पोसिदं, सब्वलोगो ॥ १६६ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंति-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सब्वलोगो पोसिदो । विहार-वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोरस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो; असंखेज्जरासीसु तेसिमसंखेज्जदि-भागमेचो तत्थ तत्थ अभव्वरासि ति उवदेसादो । अदीणिण अट्ट चोदसमागा पोसिदा ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

यह सूत्र सुगम है, इसलिए कुछ भी अन्य वक्तव्य नहीं है ।

इसप्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणके अनुवादसे मव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान और अतीतकालको आश्रय करके ओघमें इसका प्ररूपण हो चुका है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणात्तिकसमुद्भूत और उपपादपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्त्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवा भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, असंख्यात प्रमाणवाली पंचेन्द्रियादि राशियोंमें उन उनके असं-ख्यातवें भागप्रमाण वहां पर अर्थात् उन उन विवक्षित राशियोंमें अभव्यराशि होती है, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है । उक्त जीवोंने अतीतकालमें आठ बड़े चौबह (१६) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसप्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ मव्यानुवादेन मव्यानां मिषादृष्टाधयोगिकेव्यत्तानां सामान्योक्त स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ अभव्यैः सर्वलोकं स्पृष्ट । स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठोसु असंजदसम्मादिट्ठिणहुडि जाव
सजोगिकेवलि ति ओघं ॥ १६७ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघमिह तिणिण वि काले अस्सिदूण परुविदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठोसु असंजदसम्मादिट्ठो ओघं ॥ १६८ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवण खेत्तमंगा । सत्थाणपरिणदेहि खइयअसंजदसम्मादिट्ठोहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोरस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंति-उववादपरिणदेहि अट्ट चोदसमागा फोसिदा । उववाद-परिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियलोरस्स संखेज्जदिभागो । तं कथं लभभदे ? वट्टाउअमणुसखइयसम्मादिट्ठोसु तिरिक्खेसुप्यज्ज-माणेसु असंखेज्जदीवेसु अण्डिय सोधम्मीसाणकप्पेसु उप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिणुत्तखेत्तं

सम्यक्त्वमार्गणके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, तीनों ही कालोंका आश्रय करके ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपद-परिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा-क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-वत्त्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणात्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने आठ बड़े चौबह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शुंफा—उपपादगत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कैसे पाया जाता है ?

समाधान—तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले बद्धायुक्त क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके असंख्यात द्वीपोंमें रह करके पुन मरणकर सौधर्म और ईशानकरूपोंमें उत्पन्न होनेवाले

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टाधयोगिकेव्यत्तानां सामान्योक्तम् । किन्तु सवता-सवतानां लोकस्यासंयवभाग. । स. सि. १, ८.

मणुस्सेसुप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिपोसिदखें च धेत्तण लब्भेदे । एदम्मि खेत्ते आणिअ-
माणे देस्सणजोयणलक्खवाहल्लं रज्जुपदरं उड्डं सत्तवग्गेण छिंदिय पदरागारेण ठइदे तिरिय-
लोगस्स वाहल्लादो संखेज्जदिमागवाहल्लं जगपदरं होदि । एवं संजदे ओघत्तं कधं
जुज्जेदे ? ण, उववादविरदिदसेसपदखेत्तेहि तुल्लत्तमावेक्खिय ओघत्तुववत्तीए ।

संजदासंजदपहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६९ ॥

एदस्स वडुमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि
रइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुससेत्तस्स संखे-
ज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा, पोसिदा; खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं तिरिक्खेसु असंभ-
वादो । मारणंतियपरिणदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठइज्जादो असंखेज्जगुणो
तीदे काले पोसिदो, पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभेण संखेज्जरज्जुआयपोसणखेत्तुवलंभादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे स्पर्शित क्षेत्रको, तथा वहाँसे चयकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे स्पर्शित क्षेत्रको ग्रहण करके तिर्यग्लोकेके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन-
क्षेत्र पाया जाता है ।

इस उक्त क्षेत्रके निकालनेपर कुछ कम एक लाख योजन चाहल्यवाले राजुप्रतरको
ऊपरसे सातके वर्ग (४९) द्वारा छेदकर प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकेके बाहल्यसे
संख्यातवें भाग चाहल्यवाला जगप्रतर होता है ।

शुंका—देसा होने पर सूत्रोक्त ओघपना कैसे ग्रहित होगा ?
समाधान—नहीं, क्योंकि, उपपादपदको छोड़ शेष पदोंके क्षेत्रोंके साथ समानता
देखकर ओघपना बन जाना है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोमें संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां
भाग स्पर्श किया है ॥ १६९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैकियिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि
संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यक्षेत्रका
संख्यातवा भाग, अथवा संख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयता-
संयत जीवोंका तिर्यचोमें होना असंभव है । मारणान्तिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयता-
संयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवा भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यात-
गुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, पैतालीस लाख योजन विक्रमके साथ
संख्यात राजुप्रमाण, आयत स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी स्पर्शन-

यमत्तादिगुणद्वानं ओघभंगो, विसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १७० ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघम्मि परूविदत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठिसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदा-
ति ओघं ॥ १७१ ॥

एदस्स सुत्तस्स जेण अदीद-वडुमाणपरूवणा। मूलोघम्मिह उत्तचटुगुणद्वान-अदीद-
वट्टमाणपरूवणाए तुल्ला, तेण ओघत्तं जुज्जेदे ।

उवसमसम्मादिट्ठिसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७२ ॥

वडुमाणपरूवणाए सव्वपदानं ओघत्तं होदु णाम, विसेसाभावा । अदीद-परूवणाए
वि सत्थाणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-
पदानं य देस्सणट्ठ-चोइसभागमेत्तखेत्तुवलंभादो ओघत्त जुज्जेदे । किंतु मारणंतिय-उववाद-

प्ररूपणा ओघके समान है, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें इसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत
गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७१ ॥

चूंकि, इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा मूलोघमें कही गई
उक्त चारों गुणस्थानोंकी अतीत और वर्तमानकालिक प्ररूपणाके समान है, इसलिए ओघ-
पना बन जाता है ।

औपशयिकसम्यग्दृष्टियोमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान
है ॥ १७२ ॥

शुंका—वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणामें सर्व पदोंके ओघपना भले ही रहा
आवे, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । अतीतकालिक प्ररूपणामें भी सर्व पदोंके ओघपना
रहा आवे, क्योंकि, अतीतप्ररूपणामें भी स्वस्थानपदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकेका संख्यातवां
भागमात्र पाया जाता है । तथा, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, और वैकियिकपदोंका
स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम आठ बड़े चौदह (१८) भागप्रमाण पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

परिणदाणमोघचं णत्थि, ओघम्हि उचं अट्ठ-चोदसभागखेत्तं मोत्तूण चट्ठण्हं लोणाणम-
संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणमेत्तपोसणवेत्तुवलंभा । बुद्धो ? मणुसगदिं
मोत्तूण अणत्थ उवसमसम्मत्तेण सह मरणाणुवलंभा ? ण एस दोसो, मारणंतिथ-उववादे
मोत्तूण सेसपदेहि सरिसत्तमत्थि त्ति ओघत्तुववत्तीदो ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछट्टमुत्थेहि केवडियं
खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्ठमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेत्तज्जिय-
परिणदउवसमसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिथपरिणदेहि
चट्ठण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठहज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो, मणुसगदीए चैव
मारणंतिथदंसणादो । सेससव्वगुणट्ठाणाणमोघभंगो ।

किन्तु मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत जीवोंके ओघपना नहीं बनता है,
क्योंकि, ओघमें कहा गया आठ बड़े चौवट्ट (१६) भागप्रमाण क्षेत्र छोड़कर सामान्यलोक
आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे प्रमाणवाला स्पर्शन-
क्षेत्र पाया जाता है । और इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र उपशम-
सम्यक्त्वके साथ मरण नहीं पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन
दोनों पदोंको छोड़कर शेष पदोंके साथ सदृशता है, इसलिए ओघपना बन जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछत्रस्थ गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका
असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणके समान है । स्वस्थान
स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उपशमसम्यग्दृष्टि
संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवा भाग और अट्ठहद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मार-
णान्तिकसमुद्धातपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां
भाग और अट्ठहद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि मनुष्य-
गतिके ही उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धात देखा जाता है । शेष सर्व गुण-
स्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १७४ ॥

सम्माभिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

भिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७६ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि अवगदत्थाणि, ओघम्हि परूविदत्तादो । तदो एदेसिं
परूवणा ण कीरेदे ।

एव सम्भत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सण्णीसु भिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं,
लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा, समल्लीणवट्ठमाणकालत्तादो ।

अट्ठ चोदसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १७८ ॥

सत्थाणपरिणदेहि सणिभिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो,

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७४ ॥

सम्यग्भिच्छादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७५ ॥

भिच्छादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७६ ॥

ये उक्त तीनों ही सूत्र ओघमें प्ररूपित होनेसे अवगतार्थ हैं, अर्थात् इनका अर्थ
जाना हुआ है । इसलिए इनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणके अनुवादसे सब्बी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया
है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७७ ॥

वर्तमानकालको आश्रय करनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणके समान है ।

संज्ञी जीवोंने अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बड़े चौदह
भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि
तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्ठहद्वीपसे असंख्यात-

तिरियलोगस्स संसेज्जदिभागो, अट्टाहजादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहार-वेदण-कसाय-वेज्जियपरिणेदेहि अट्ट चोदसभागा, मारणंतिय-उववादपरिणेदेहि सन्वलोपो पोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछट्टमत्था ओघं ॥ १७९ ॥

एदेसिमोघादो ण को वि' भेदो अत्थि, सण्णिरहिदसासणादीणममाणा ।

असण्णीहि केवडियं खेतं पोसिदं, सन्वलोगो ॥ १८० ॥

सत्थाण-वेदण-कमाय-मारणंतिय-उववादपरिणेदेहि अमण्णीहि तिसु वि अट्टासु सन्वलोगो पोसिदो । विहारपरिणेदेहि तिण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहजादो असंखेज्जगुणो तिसु नि कालेसु पोसिदो । वेज्जियपरिणेदेहि चट्टुण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो, माणुमसेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणे पोसिदो । तीदे पंच चोदसभागा वि वचचं ।

एव सण्णिमगणा समत्ता ।

गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, और धैकियिकपदपरिणत संबी मिथ्यादृष्टि जीवोंने आठ बड़े चोदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुदात और उपपादपदपरिणत संबी जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

संज्ञी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछट्टस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७९ ॥

इन गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणाका ओघस्पर्शनप्ररूपणसे कोई भेद नहीं है, क्योंकि, संज्ञितसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है ।

असंज्ञी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १८० ॥ स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कपाय, मारणान्तिक और उपपादपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवा भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकमें असंख्यातगुणा क्षेत्र तीनों ही कालोंमें स्पर्श किया है । धैकियिकपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है । अतीतकालमें पांच बड़े चोदह (१६) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतिगु ' कोटिय ' इति पाठ, य प्रती ' को छि ' इति पाठः ।

२ वसन्तिभिः सर्वलोक स्पृष्ट । व. ति. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १८१ ॥

उववादस्स रज्जुआयामो आहारणिरुद्धे ण लब्भदि, तेण सन्वलोगो पोसणमावा णोघचं जुज्जेदं ? ण, सरीरगहिदपढमसमए वट्टमाणजीवेहि आजरिसन्वलोगुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ १८२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । तीदकालपरूवणं भण्णमाणे पोसणोघमिह चट्टुण्हं गुणद्वानाणं जहा उत्तं तथा वत्तचं । णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणेदेहि तिण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाह-ज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

पमतसंजदपहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८३ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८१ ॥

शंका—आहारमार्गणाकी अपेक्षा कथन करनेपर उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता है, इसलिये सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रके स्पर्शनका अभाव होनेसे ओघपता नहीं बनता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान जीवोंसे व्याप्त सर्वलोकके पाये जानेसे ओघपता बन जाता है । शेष अर्थ सुगम ही है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । अतीतकालकी प्ररूपणा कहनेपर स्पर्शनके ओघमें जैसा कि इन चारों गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यलोकका संख्यातवां भाग और अट्टाहजादोसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

आहारक जीवोंमें प्रमतसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८३ ॥

१ आहारानुवादेण आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिसंज्ञीणकपायानां सामान्योत्तम । व. ति. १, ८.

२ सयोगिकेवलीनां लोकस्यासंख्येयभागः । व. ति. १, ८.

एदस्स सुचस्स परूवणा अदीद-वड्डमाणेहि ओघतुल्ला । णवरि सजोगेकेवली पदर-लोगपरणपदा णत्थि ।

आहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १८४ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगिसु सन्वेसु अणाहारितुवलंभादो ।
अजोगिअणाहारिपरूवणड्डमुचरसुचं भणदि-

णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेतं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८५ ॥

एदं सुचं सुगमं ।

(एव आहारमगणा समत्ता)

एवं फोसणाणुगमो चि सम्मत्तमणिओगदारं ।

इस सूत्रकी प्ररूपणा अतीत और वर्तमान इन, दोनों कालोंकी अपेक्षा ओघप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि सयोगिकेवलीके प्रतर और लोकपूरणसमुदात, ये दो पद नहीं होते हैं ।

अनाहारक जीवोंमें संभवित गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र कर्मणकाय-योगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ १८४ ॥

इसका कारण यह है कि सभी कर्मणकाययोगियोंके अनाहारकपना पाया जाता है ।

अनाहारी अयोगिजिनके स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि अयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८५ ॥

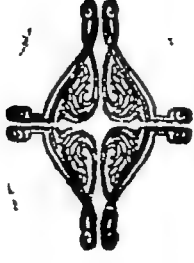
यह सूत्र सुगम है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार स्पर्शनानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अनाहारकेषु भिन्नादिभिः सर्वलोक. स्पष्टः । सासादनस्यदृष्टिमिलोक्त्यास्तस्येयमागः, एकादश पतुर्दशमागा वा देशेनाः । सयोगिकेवलिनो लोकस्यास्तस्येयमाग सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

२ अयोगिकेवलिनो लोकस्यास्तस्येयमाग । स. सि. १, ८.



कालाणुगमो

पडिवादीणमुवलंभा । सो एसो इदि अण्णम्मिह बुद्धीए अण्णारोवणं ठवणा णाम । सा दुविहा, सम्भावाम्भावभेदेण । अणुहरंतए अणुहरंतस्स अण्णस्स बुद्धीए समारोवा सम्भावद्ववणा । तत्त्वदिरिच्चा असम्भावद्ववणा । तत्थ सम्भावद्ववणा कालो णाम पल्लवियं-कुरिय-कुलिद-करलिद-मवुलिद-कलकोइलपुण्णालाववणसंजुजोइयचिच्चालिहियवसंतो । असम्भावद्ववणकालो णाम मणिभेदं-गेरुअ-मट्टी-ठिकरादिसु वसंतो ति बुद्धिबलेण ठविदो । दव्वकालो दुविहो, आगमदो णोआगमदो य । आगमदो कालपाहुडजाणयो अणुवजुत्तो । णोआगमदो दव्वकालो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरिचभेदेण ति विहो । तत्थ जाणुगसरीर-णोआगमदव्वकालो भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेदेण ति विहो । सो वि बहुसो पुवं परुविदो चि णेह बुच्चदे । भवियणोआगमदव्वकालो भविस्सकाले कालपाहुडजाणयो जीवो । वव-भददो गंध-पंचरसद्वपास-पंचवण्णो कुंभारचक्रेट्टिमसिलव्व वत्तणालक्खणो लोभागासपमाणो

प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं । 'वह यही है' इस प्रकारसे अन्य वस्तुमें बुद्धिके द्वारा अन्यका आरोपण करना स्थापना है । वह स्थापना सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी है । अनुकरण करनेवाली वस्तुमें अनुकरण करनेवाले अन्य पदार्थका बुद्धिके द्वारा समारोप करना सद्भावस्थापना है । उससे भिन्न या विपरीत असद्भावस्थापना होती है । उनमेंसे पल्लवित, अंकुरित, कुलित, करलित, पुष्पित, सुकुलित, तथा कोयलके कलकल आलापसे परिपूर्ण वनखंडसे उद्योतित, चित्रालिखित वसन्तकालको सद्भावस्थापनाकालनिक्षेप कहते हैं । मणिविशेष, गेरुक, मट्टी, ठीकरा इत्यादिकमें 'यह वसंत है' इस प्रकार बुद्धिके बलसे स्थापना करनेको असद्भावस्थापनाकाल कहते हैं ।

आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है । कालविषयक प्राभृतका ज्ञायक किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यकाल है । ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्द्रव्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यकाल तीन प्रकार है । उनमें ज्ञायकशरीर नोआगम-द्रव्यकाल भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । वह भी पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः नहीं कहते हैं । भविष्यकालमें जो जीव कालप्राभृतका ज्ञायक होगा, उसे भावीनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं ।

जो दो प्रकारके गंध, पांच प्रकारके रस, आठ प्रकारके स्पर्श और पांच प्रकारके वर्णसे रहित है, कुम्भकारके चक्रकी अधस्तन शिला या कीलके समान है, वर्तना ही जिसका

१ आ प्रती 'परिवादीण-', क प्रती 'पवादीण' इति पाठ ।

२ अ-क प्रलो 'सम्भावद्ववणा वर्णसंस्थानादिमाखुवत्त चित्रादानारोपितं कालो णाम' इति पाठः । अत्र ससृतभावकाया केवल सद्भावस्थापनाया स्वरूपबोधकं दिपणकं प्रतिमाति, न तु मूलप्रार्थनः । क प्रती सम्भाव-अन्ने दिपणसूचकं = इति चिन्हद्रुपलभ्यते । तेन अत्यैवाहुमानस्य पुद्भिर्जायते । आ प्रती स ससृतभावकाया नोपलभ्यते ।

३ प्रतिपु 'मणिभेद गेरुअ-' इति पाठ । न प्रती 'मणिभेदः' इति पाठो नोपलभ्यते ।



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदयलि-पणीक

छत्रखंडागमो

सिरि-वीरसेणाहरिय-विरहय-धवला-टीका-समणिणो

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

कालाणुगमो

कम्मकलंकुत्तिण्णं विबुदसव्वत्थमुत्तवत्थमणं ।

णमिज्जण उसहसेणं कालणिओगं भणिस्सामो ॥

कालाणुगमेण दुविहो गिदेसो, ओघेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णामकालो ठवणकालो दव्वकालो भावकालो चेदि कालो चउव्विहो । तत्थ णामकालो णाम कालसहो । कथं सहो अप्पाणं पडिवज्जादि चे, ण एस देसो; सँ-परप्पयासमयपमाण-

कर्मरूप कलंकसे उत्थर्ण, सर्व अर्थोंके जाननेवाले, और अस्त रहित अर्थात् सदा उर्वित, ऐसे वृषभसेन गणधरको नमस्कार करके अब कालानुयोगद्वारको कहते हैं ॥

कालानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल, और भावकाल, इस प्रकारसे काल चार प्रकारका है । उनमेंसे 'काल' इस प्रकारका शब्द नामकाल कहलाता है ।

शंका—शब्द कैसे अपने आपको प्रतिपादित करता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, शब्दके स्व-परप्रकाशात्मक प्रमाणके

१ अ-या क-प्रतिपु 'तस्मकुलकुल्लेण' इति पाठः ।

२ म स प्रत्यो 'मुत्त', अ-याप्रत्यो 'सुद्ध', क प्रती 'मट्ट' इति पाठः ।

३ काल-प्रत्ययते । स द्विविधः सामान्येन विवेकेण च । म. सि. १, ८.

४ प्रतिपु 'सहस्स ष पर' इति पाठ । न प्रती दु 'सहस्स' इति पाठो नोपलभ्यते ।

अतथो तव्वदिरिचणेआगमदव्वकालो' णाम् । बुत्तं च पंचत्थिपाहुडे—

कालो ति य ववएसो सन्भावपरुवओ हवइ णिच्चो ।

उण्णण्यद्वंसी अत्रो दीहत्तद्दाई' ॥ १ ॥

कालो परिणाममवो परिणामो दव्वकालसंभूओ ।

दोण्ह एस सहाओ कालो खणमगुरो णियदो' ॥ २ ॥

ण य परिणमइ सय सो ण य परिणामेइ अण्णमणेहिं ।

विविहपरिणामियणं हवइ सुहेजु सय कालो ॥ ३ ॥

लोयायासपदेसे एक्केत्तेके जे द्विया दु एक्केत्तका ।

रयणण रासी इव ते कालाण् मुण्यव्वा' ॥ ४ ॥

जीवसमासाए वि उच्चं—

छप्पचणवविहाणं अत्थाण जिणवरोवद्वहण ।

आणाए अहिगमेण य सरहण होइ सम्मत' ॥ ५ ॥

लक्षण है, और जो' लोकाकाशप्रमाण है, ऐसे पदार्थको तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं । पंचास्तिकायप्राप्तमें कहा भी है—

'काल' इस प्रकारका यह नाम सत्त्वरूप निश्चयकालका' प्ररूपक है, और वह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है । दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न' और प्रचंच होनेवाला है; तथा आवली, पल्ल, सागर आदिके रूपसे दीर्घकाल तक स्थायी है ॥ १ ॥

व्यवहारकाल पुद्गलोंके परिणमनसे उत्पन्न होता है, और पुद्गलाविका परिणमन द्रव्यकालके द्वारा होता है; दोनोंका ऐसा स्वभाव है । यह व्यवहारकाल क्षणमंगुर है, परन्तु निश्चयकाल नियत अर्थात् अविनाशी है ॥ २ ॥

वह कालनामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है, और न अन्यको अन्यरूपसे परिणामता है । किन्तु स्वतः नाना प्रकारके परिणामोंको प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका काल स्वयं सुहेतु होता है ॥ ३ ॥

लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान जो एक एक रूपसे स्थित हैं, वे कालणु जानना चाहिए ॥ ४ ॥

जीवसमासमें भी कहा है—

जिनवस्त्रके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, अथवा पंच अस्तिकाय, अथवा नव पदार्थोंका आकाशे और अधिगमसे श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥ ५ ॥

१ स्वगदपपण्णालो स्वगददोगव अट्टकसो य । अगुरवहुगो अयुतो बट्टणलम्बो य कालो णि ।
पचासि गा. २४. २ पंचासि. गा. १०८. ३ पंचासि. गा. १०७.

४ गो. जी ५८८.

५ गो. जी ५९०.

तह आयागो वि बुत्तं—

पचत्थिया य छज्जीवाणिकायकालदव्वमणे य ।

आणामेवो भावे आणाविचएण विचिणादि' ॥ ६ ॥

तह निद्विपिछाहरियप्पयासिदत्तवचत्थसुत्ते वि 'वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य' इदि दव्वकालो परुविदो । जीवद्वानादिसु दव्वकालो ण बुत्तो ति तस्सामावो ण वोत्तुं सक्किज्जेदे, एत्थ छदव्वपदुप्पयणे अहियाराभावा । तम्हा दव्वकालो अत्थि चि घेत्तव्वो । जीवाजीवादिअट्टमंगदव्वं वा णोआगमदव्वकालो । भावकालो दुविदो, आगम-णोआगमभेदा । कालपाहुडजाणओ उवजुत्तो जीवो आगमभावकालो । दव्वकालजणिद-परिणामो णोआगमभावकालो मण्णदि । पोमलादिपरिणामस्स कथं कालववएसो ? ण एस

उसी प्रकारसे आचारांगमें भी कहा है—

पंच अस्तिकाय, पदजीवनिर्काय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आकाश अर्थात् जितेन्द्रके उपदेशसे ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आकाशविचय धर्मध्यानसे संचय करता है, अर्थात् श्रद्धान करता है ॥ ६ ॥

तथा शुद्धपिच्छार्चद्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्रमें भी 'वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व, ये कालद्रव्यके उपकार हैं' इस प्रकारसे द्रव्यकाल प्ररूपित है । जीवस्थान आदि ग्रंथोंमें द्रव्यकाल नहीं कहा गया है, इसलिए उसका अभाव नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, यहां जीवस्थानमें छह द्रव्योंके प्रतिपदनका अधिकार नहीं है । इसलिए 'द्रव्यकाल है' ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

अथवा, जीव और अजीव आदिके योगसे बने हुए आठ मंगरूप द्रव्यको नोआगम-द्रव्यकाल कहते हैं ।

विशेषार्थ—जीव और अजीवद्रव्यके संयोगसे कालके आठ भंग इस प्रकार होते हैं—१ एक जीवकाल, २ एक अजीवकाल, ३ अनेक जीवकाल, ४ अनेक अजीवकाल, ५ एक जीव एक अजीवकाल, ६ अनेक जीव एक अजीवकाल, ७ एक जीव अनेक अजीवकाल ८ और अनेक जीव अनेक अजीवकाल । (देखो मंगलसम्बन्धी आठ आधार, सत्तर १, पृ. १९) कालके निमित्तसे होनेवाले एक जीवसम्बन्धी परिवर्तनको एक जीवकाल कहते हैं । कालके निमित्तसे होनेवाले एक अजीवसम्बन्धी कालको एक अजीवकाल कहते हैं । इस प्रकारसे आठों भंगोंका स्वरूप जान लेना चाहिए ।

आगम और नोआगमके भेदसे भावकाल दो प्रकारका है । काल-विषयक प्राप्तकृता श्रायक और वर्तमानमें उपयुक्त जीव आगम भावकाल है । द्रव्यकालसे जनित परिणाम या परिणमन नोआगमभावकाल कहा जाता है ।

देसो, कज्जे कारणोवयारणिबंधणत्तादो । वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहारकालस्स अत्थिचं ।
तं जहा—

सम्भावसहस्रवाण जीवाणं तह य पोगलण च ।

परिखट्टणसंभूतो कालो णियमेण पण्णत्तो' ॥ ७ ॥

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।

मास उट्ठ अयण सवच्छरो ति कालो परायत्तो' ॥ ८ ॥

णत्थि चिरं वा खिण्ण वुत्तारहिदं तु सा वि खलु बुत्ता' ।

पोगलदन्वेण विणा तद्धा कालो पडुच्च भवो' ॥ ९ ॥ इदि ।

एत्थ केणं कालेण पयदं ? गोआगमदो भावकालेण । तस्स समय-आवलिय-खण-
लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उट्ठ-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पलिदोवम-सागरोवमादि-
रूवत्तादो । कथमेदस्स कालववएसो ? ण, कल्यन्ते संख्यायन्ते कर्म-भव-कायायुस्थितयो-

शंका—पुद्गल आदि द्रव्योंके परिणामके 'काल' यह संज्ञा कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कार्यमें कारणके उपचारके निबंधनसे
पुद्गलादि द्रव्योंके परिणामके भी 'काल' संज्ञाका व्यवहार हो सकता है ।

पंचास्तिकायप्राभृतमें व्यवहारकालका अस्तित्व कहा भी गया है—

सत्तास्वरूप स्वभाववाले जीवोंके, तथैव पुद्गलोंके और 'च' शब्दसे धर्मद्रव्य,
अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्यके परिवर्तनमें जो निमित्तकारण हो, वह नियमसे कालद्रव्य
कहा गया है ॥ ७ ॥

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली, तथा दिन और रात्रि, मास, ऋतु, अयन और
संवत्सर, इत्यादि काल परायण है, अर्थात् जीव, पुद्गल एवं धर्मविक द्रव्योंके परिवर्तनाधीन
है ॥ ८ ॥

वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्रकी, अर्थात् परव और अपरत्वकी, कोई सत्ता नहीं
है । वह वर्तना भी पुद्गलद्रव्यके विना नहीं होती है, इसलिए 'कालद्रव्य' पुद्गलके निमित्तसे
हुआ कहा जाता है ॥ ९ ॥

शंका—ऊपर वर्णित अनेक प्रकारके कालोंमेंसे यहाँपर किस कालसे प्रयोजन है ?

समाधान—नोआगमभावकालसे प्रयोजन है ।

वह काल-समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन,
संवत्सर, जुग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम आदि रूप है ।

शंका—तो फिर इसके 'काल' पेसा व्यपदेश कैसे हुआ ?

१ पंचास्ति गा २३.

२ पंचास्ति. गा. २५.

३ प्रविगु 'वत्ता' इति पाठ ।

४ पंचास्ति. गा. २६.

नेनेति कालशब्दव्युत्पत्तेः । कालः समय अद्धा इत्येकोऽर्थः । समयादीणमत्थो वुच्चदे-
अणोरण्वतरव्यतिक्रमकालः समयः । चोद्दसरज्जुआगासपदेसकमणमेत्तकालेण जो
चोद्दसरज्जुकमणस्सवमो परमाणू तस्स एगपरमाणुकमणकालो समओ णाम । असंखेज्ज-
समए धेत्तूण एया आवलिया होदि । तप्पाओगमसंखेज्जवलियाहि एगो उस्सासणिस्सासो
होदि । सत्तहि उस्सासेहि एगो थोवसणिदो कालो होदि । सत्तहि थोवेहि लवो णाम
कालो होदि । साद्ध-अट्ठचीसलेवेहि णाली णाम कालो होदि । वेहि णालियाहि मुहुत्तो होदि ।

उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च ।

त्रिसत्तिः पुनस्तेषां मुहूर्तो हेतु इष्यते (३७७३) ॥ १० ॥

निमेषाणां सहस्राणि पच भूयः शत तथा ।

दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः (५११०) ॥ ११ ॥

त्रिंशन्मुहूर्तो दिवसः । मुहूर्तानां नामानि—

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च ।

दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्ता ॥ १२ ॥

रोहणो वलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च ।

नारुणश्चार्यमा च स्युर्मोग्यः पचदशो दिने (१५) ॥ १३ ॥

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिसके द्वारा कर्म, भव, काय और आयुकी स्थितियां
कल्पित या संख्यात की जाती हैं, अर्थात् कहीं जाती हैं, उसे काल कहते हैं' इस प्रकारकी
काल शब्दकी व्युत्पत्ति है । काल, समय और अद्धा, ये सब एकार्थवाची नाम हैं ।

समय आदिका अर्थ कहते हैं । एक परमाणुका दूसरे परमाणुके व्यतिक्रम करनेमें
जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं । अर्थात्, चौदह राजु आकाशप्रदेशोंके अतिक्रमण-
मात्र कालसे जो चौदह राजु अतिक्रमण करनेमें समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अति-
क्रमण करनेके कालका नाम समय है । असंख्यात समयोंको ग्रहण करके एक आवली होती है ।
तत्प्रयोग्य संख्यात आवलियोंसे एक उश्वास-निःश्वास निष्पन्न होता है । सात उश्वासोंसे
एक स्तोकासंज्ञिक काल निष्पन्न होता है । सात स्तोकोंसे एक लव नामका काल निष्पन्न
होता है । साढ़े अठ्तीस लवोंसे एक नाली नामका काल निष्पन्न होता है । दो नालिकाओंसे
एक मुहूर्त होता है ।

उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त कहा जाता
है ॥ १० ॥

विद्वानोंने एक मुहूर्तमें पांच हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं ॥ ११ ॥

तीस मुहूर्तोंका एक दिन अर्थात् अहोरात्र होता है । मुहूर्तोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ रौद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ सारभट, ५ दैत्य, ६ वैरोचन, ७ वैश्वदेव, ८ अभिजित्,

सावित्री धुर्यसिद्धश्च दात्रको यम एव च ।

वायुर्दत्ताशनो मानुर्वज्रन्तोऽष्टमो निशि ॥ १३ ॥

सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च ।

पुण्यदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्तोऽप्योऽरुणो मतः (१५) ॥ १५ ॥

समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्तोश्च समा स्मृताः ।

पण्मुहूर्तो दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा ॥ १६ ॥

पंचदश दिवसाः पक्षः । दिवसानां नामानि—

नन्दा भद्रा जया रित्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ।

देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च ॥ १७ ॥

९ रोहण, १० बल, ११ विजय, १२ नैऋत्य, १३ वारुण, १४ अर्यमन् और १५ भाग्य । ये पंद्रह मुहूर्त दिनमें होते हैं ॥ १२-१३ ॥

१ सावित्र, २ धुर्य, ३ वात्रक, ४ यम, ५ वायु, ६ हुताशन, ७ भानु, ८ वैजयन्त, ९ सिद्धार्थ, १० सिद्धसेन, ११ विक्षोभ, १२ योग्य, १३ पुण्यदन्त, १४ सुगन्धर्व और १५ अरुण । ये पंद्रह मुहूर्त रात्रिमें होते हैं, ऐसा माना गया है ॥ १४-१५ ॥

रात्रि और दिनका समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं । हां, कभी दिनको छह मुहूर्त जाते हैं, और कभी रात्रिको छह मुहूर्त जाते हैं ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—समान दिन और रात्रिकी अपेक्षा तो पंद्रह मुहूर्तका दिन और इतने ही मुहूर्तकी एक रात्रि होती है । किन्तु सूर्यके उत्तरायणकालमें अठारह मुहूर्तका दिन और बारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । तथा सूर्यके दक्षिणायनकालमें बारह मुहूर्तका दिन और अठारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । इसलिये श्लोकमें कहा है कि छह मुहूर्त कभी दिनको और कभी रात्रिको प्राप्त होते हैं । अर्थात् दिनके तीन और रात्रिके तीन, इस प्रकार छह मुहूर्त कभी दिनसे रात्रिमें और कभी रात्रिसे दिनकी गिनतीमें आते जाते रहते हैं ।

पंद्रह दिनोंका एक पक्ष होता है । दिनोंके नाम इस प्रकार हैं—

नन्दा, भद्रा, जया, रित्ता और पूर्णा, इस प्रकार क्रमसे पांच तिथियां होती हैं । इनके देवता क्रमसे चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—नन्दा आदि तिथियोंके नाम प्रतिपदासे प्रारंभ करना चाहिए, अर्थात् प्रतिपदाका नाम नन्दातिथि है । द्वितीयाका नाम भद्रातिथि है । तृतीयाका नाम जयातिथि है । चतुर्थीका नाम रित्तातिथि है । पंचमीका नाम पूर्णातिथि है । पुनः पष्ठीका नाम नन्दा-सप्तमी और ऋतुशीका नाम भद्रातिथि है । अष्टमी और त्रयोदशीका नाम जयातिथि है । चतुर्दशी, नवमी और चतुर्दशीका नाम रित्तातिथि है । पंचमी, षडशी तथा पूर्णिमाका नाम पूर्णातिथि है । इसी क्रमसे इनके देवता भी समझ लेना चाहिए ।

द्वौ पक्षौ मासः । ते च श्रावणादयः प्रसिद्धाः । द्वादशमासं वर्षम् । पंचभिर्वर्षैर्युगः । एवमुपरि वि वत्तत्वं जाव कप्पो ति । एसो कालो णाम । कस्स इमो कालो ? जीव-योगलण । कुदो ? तत्परिणामत्तादो । अधवा इमो सुज्जमंडलस्स परियट्ठणलक्खणस्स, तदुदयत्यमणेहिंतो दिवसादीणमुप्पत्तीए । केण कालो कीरदि ? परमट्ठकालेण । कत्थ कालो ? माणुसखेत्तकसुज्जमंडले तियालगोरारणंतपज्जाएहि आवुरिदे । जदि माणुस-खेत्तकसुज्जमंडले कालो हिंदो होदि, कथं तेण स्वप्पोगलणमणंतुणेण पदीवो व्व स-परप्पयासकारणेण जवरसि व्व समयभावेणावट्ठिदेण छव्वपरिणामा पयासिज्जंते ? ण एस दोसो, मिणिज्जमाणदव्वेहिंतो पुयभूदेण मागहपत्थेणेव मवणविरोहामावा । ण चाणवत्था, पईवेण विउचारा । देवलोणे कालामावे तत्थ कथं कालववहारो ? ण, इहत्येणेव

द्वौ पक्षौका एक मास होता है । वे मास श्रावण आदिकके नामसे प्रसिद्ध हैं । बारह मास का एक वर्ष होता है । पांच वर्षोंका एक युग होता है । इस प्रकार ऊपर ऊपर भी कल्प उत्पन्न होने तक कहते जाना चाहिए । यह सब काल कहलता है ।

शंका—यह काल किसका है, अर्थात् कालका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीव और पुद्गलोंका, अर्थात् ये दोनों कालके स्वामी हैं, क्योंकि, काल तत्परिणामात्मक है ।

अथवा, परिवर्तन या प्रवृत्तिणा लक्षणवाले इस सूर्यमंडलके उदय और अस्त होनेसे दिन और रात्रि आदिकी उत्पत्ति होती है ।

शंका—काल किससे किया जाता है, अर्थात् कालका साधन क्या है ?

समाधान—परमार्थकालसे काल, अर्थात् व्यवहारकाल, निवृत्त होता है ।

शंका—काल कहाँपर है, अर्थात् कालका अधिकरण क्या है ?

समाधान—विकालोच्चर अनन्त पर्यायोंसे परिपूरित एकमात्र मानुषक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडलमें ही काल है, अर्थात् कालका आधार मनुष्यक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडल है ।

शंका—यदि एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही काल अवस्थित है, तो सर्व पुद्गलोंसे अनन्तगुणे तथा प्रदीपके समान स्व-प्रकाशनके कारणरूप, और यवराशिके समान समयरूपसे अवस्थित उस कालके द्वारा छह उर्व्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जाते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मापे जानेवाले उर्व्योंसे पृथग्भूत मागव (वैशीय) प्रत्येक समान मापनेमें कोई विरोध नहीं है । न इसमें कोई अनवस्था दोष ही आता है, क्योंकि, प्रदीपके साथ व्यभिचार आता है । अर्थात् जैसे दीपक, घट, पट आदि अन्य पदार्थोंका प्रकाशक होनेपर भी स्वयं अपने आपका प्रकाशक होता है, उसे प्रकाशित

कालेण तेसिं ववहारादो । जदि जीव-योगलपरिणामो कालो होदि, तो सव्वेसु जीव-योगलेसु संठिएण कालेण होदव्वं; तदो माणुसखेत्तेकसुज्जमंडलद्धिदो कालो चि ण घडदे ? ण एस दोसो, गिरवज्जचादो । किंतु ण तहा लोगे समए वा संववहारो अत्थि; अणाहिण-हणरूवेण सुज्जमंडलकिरियापरिणामेसु चैव कालसंववहारो पयदो । तम्हा एदस्सेव गहणं कायव्वं । केवचिरं कालो ? अणादिओ अपज्जवसिदो । कालस्स कालो किं ततो पुधभूदो अणणो वा ? ण ताव पुधभूदो अत्थि, अणवट्टाणप्पसंगा । गाणणो वि, कालस्स काला-भावप्पसंगा । तदो कालस्स कालेण णिहेसो ण घडदे ? ण, एस दोसो, ण ताव पुध-

करनेके लिए अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं हुआ करती है, इसी प्रकारसे कालद्वय भी अन्य जीव पुद्गल, आदि द्रव्योंके परिवर्तनका निमित्तकारण होता हुआ भी अपने आपका परिवर्तन स्वयं ही करता है, उसके लिए किसी अन्य द्रव्यकी आवश्यकता नहीं पड़ती है । इसीलिए अनवस्था दोष भी नहीं आता है ।

शंका—देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहाँके कालसे ही देवलोकमें कालका व्यवहार होता है ।

शंका—यदि जीव और पुद्गलोंका परिणाम ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलोंमें कालको संस्थित होना चाहिए । तब ऐसी दशामें 'मनुष्यक्षेत्रके एक सूर्यमंडलमें ही काल स्थित है' यह बात घटित नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उक्त कथन निरवध (निर्दोष) है । किन्तु लोकमें या शालमें उस प्रकारसे संव्यवहार नहीं है, पर अनादिनिघनस्वरूपसे सूर्यमंडलकी क्रिया-परिणामोंमें ही कालका संव्यवहार प्रवृत्त है । इसलिये इसका ही ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—काल कितने समय तक रहता है ?

समाधान—काल अनादि और अपर्यवसित है । अर्थात् कालका न आदि है, न अन्त है ।

शंका—कालका परिणमन करनेवाला काल क्या उससे पृथग्भूत है, अथवा अनन्य (अपृथग्भूत) ? पृथग्भूत तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग प्राप्त होगा । और न अनन्य (अपृथग्भूत) ही, क्योंकि, कालके कालका अभाव-प्रसंग आता है । इसलिये कालका कालसे निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि पृथक् पक्षमें कहा गया

पक्खुत्तदोसो संभवदि, अणञ्जुवगमा । गाणणपक्खदोसो वि, इड्ढत्तादो । ण चःकालस्स कालेण णिहेसो णत्थि, सुज्जमंडलतरट्ठियकालेण ततो पुधभूदसुज्जमंडलट्ठियकालणिहेसादो । अथवा, जथा घडस्स भावो, सिलावुत्तयस्स सरीरमिच्चादिसु एक्कमिह वि भेदववहारो, तहा एत्थ वि एक्कमिह काले भेदणं ववहारो जुज्जदे । कदिविधो कालो ? सामणेण एयविहो । तीदो अणागदो वट्टमाणो चि तिग्घिहो । अथवा गुणट्ठिकालो भवट्ठिकालो कम्मट्ठिकालो कायट्ठिकालो उववादकालो भावट्ठिकालो चि छव्विहो । अथवा अणयविहो परिणामे-हिंतो पुधभूदकालाभावा, परिणामणं च आणंतिओलंभा । जहत्यमववहो अणुगमो । कालस्स अणुगमो कालाणुगमो, तेण कालाणुगमेण । णिहेसो कदणं पयासणं अहिच्चात्तिजणमिदि एयदो । सो च दुविहो, ओवेण आदेसेण चेदि । तत्थ ओघणिहेसो दव्व-ट्ठियणयपदुप्पायणो, संगहिदत्थादो । आदेसणिहेसो पज्जवट्ठियणयपदुप्पायणो, अत्थभेदा-

दोष तो संभव है नहीं, क्योंकि, हम कालके कालको कालसे भिन्न मानते ही नहीं हैं । और न अनन्य या अभिन्न पक्षमें दिया गया दोष ही प्राप्त होता है, क्योंकि, वह तो हमें इष्ट होना है, (और इष्ट वस्तु उसीके लिए दोषदायी नहीं हुआ करती है) । तथा, कालका कालसे निर्देश नहीं होता हो, ऐसी भी बात नहीं है, क्योंकि, अन्य सूर्यमंडलमें स्थित कालद्वारा उससे पृथग्भूत सूर्यमंडलमें स्थित कालका निर्देश पाया जाता है । अथवा, जैसे घटका भाव, शिलापुत्रकका (पापणमूर्तिका) शरीर, इत्यादि लोकोक्तियोंमें एक या अभिन्नमें भी भेद व्यवहार होता है, उसी प्रकारसे यहां पर भी एक या अभिन्न कालमें भी भेदरूपसे व्यवहार वन जाता है ।

शंका—काल कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—सामान्यसे एक प्रकारका काल होता है । अतीत, अनागत और वर्तमानकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है । अथवा, गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थितिकाल, कायस्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल, इस प्रकार कालके छह भेद हैं । अथवा काल अनेक प्रकारका है, क्योंकि, परिणामोंसे पृथग्भूत कालका अभाव है, तथा परिणाम अनन्त पाये जाते हैं ।

यथार्थ अवबोधको अनुगम कहते हैं, कालके अनुगमको कालानुगम कहते हैं । उस कालानुगमसे । निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एकार्थक नाम हैं । वह निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उक्त दोनों प्रकारके निर्देशोंमें से ओघनिर्देश द्रव्यार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें समस्त अर्थ संगृहीत हैं । आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें अर्थभेदका

चलंगणदो । किमहं दुविहो निहंसो उसहसेणादिगणहरदेवेहि कीरेदे ? न एस दोसो, उहय-
णयमवलंबिय द्विदसचाणुगहहं तथोवेदसादो ।

ओघेण मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च
संवद्धां ॥ २ ॥

‘जहा उदेसो तहा निहंसो होब्बि’ ति जाणावणहं ओघनिहंसो कदो । सेसगुणद्वान-
पडिसेहफलो मिच्छाहद्विनिहंसो । कालादो कालेण णिहालिज्जमाणे केवचिरं हंति ति
पुच्छा जिणपणत्तयमिदं सुत्तमिदि पडुप्पायणफला । बहुसु णाणाजीवमिदि एगयण-
निहंसो जादिणिबंधणो ति न दोसयरो । संवद्धा इदि कालमिसिद्धमद्वुजीवनिहंसो । कुदो ?
सव्वा अद्धा कालो जेसि जीवाणमिदि व-समासवसेण वल्लहदुप्पत्तीए । अथवा, मवद्धा
इदि कालनिहंसो । कथं ? मिच्छादिद्वीणं कालचणणपरिणामिणो परिणामेहिता कयंचि
अभेदमासेज मिच्छादिद्वीणं कालत्तापिराहा । संवकालं णाणाजीवं पडुच्च मिच्छादिद्वीणं
वोच्छेदो णत्थि ति मणिदं होदि ।

अवलंबन किया गया है ।

शंका — वृषमसेनादि गणघरदेवोंने दो प्रकारका निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्याधिक और पर्यायाधिक, इन दोनों
नयोंको अवलम्बन करके स्थित प्राणियोंके अनुग्रहके लिए दो प्रकारके निर्देशका उद्देश
किया है ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा मय-
काल होते हैं ॥ २ ॥

‘जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है’ यह बात जत-
लानेके लिए सूत्रमें ‘ओघ’ पदका निर्देश किया । ‘मिथ्यादृष्टि’ पदका निर्देश, दोष गुणस्थानोंके
प्रतिषेधके लिए है । ‘कालसे’ अर्थात् कालकी अपेक्षा जीवोंके संभालने पर ‘कितने काल तक
होते हैं’ इस प्रकारकी यह पृच्छा ‘यह स्रष्टा जिनप्रसन्न है’ इस बातके बतानेके लिए है । जीवोंके
बहुत होनेपर भी ‘नाना जीव’ इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश आतिनिबंधनक है,
इसलिए कोई दोषोत्पादक नहीं है । ‘सर्वाद्धा’ यह पद कालविशिष्ट बहुतसे जीवोंका निर्देश
करनेवाला है, क्योंकि, सर्व अद्धा अर्थात् काल जिन जीवोंके होता है, इस प्रकारसे ‘ब’
समास अर्थात् बहुव्रीहिसमासके यदासे बाह्य अर्थकी प्रकृति होती है । अथवा ‘सर्वाद्धा’
इस पदसे कालका निर्देश जानना चाहिए, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके कालत्यसे अग्निस
परिणामीके परिणामोंसे कथंचित् अभेदका आश्रय करके मिथ्यादृष्टियोंके कालत्यका कोई
मेव नहीं है । अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सर्वकाल व्युत्पेक्ष्य नहीं
होता है, यह कहा गया है ।

१ मिथ्यादृष्टिनानाजीवीकथा सर्व. काठः । स. वि १, ८.

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्ज-
वसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस
इमो निहंसो । जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

अममिद्वियजीवमिच्छत्तं पडुच्च अणादिअपज्जवसिदमिदि मणिदं, अमव-
मिच्छत्तम्म आदिमज्जन्तामादाओ । ममिद्वियमिच्छत्तकालो अणादिओ सपज्जवसिदो ।
जहा वद्वणकुमारस्म मिच्छत्तकालो । अण्णेगो ममिद्वियमिच्छत्तकालो मादिओ सपज्ज-
वसिदो । जहा कण्ठादिमिच्छत्तकालो । तय जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छत्तकालो,
तम्म इमो निहंसो । सो दुविहो, जहणो उक्कम्मो चेदि । तय जहणकालपरूषणाजाणा-
वणहं जहणेणेत्ति तुत्तं । मुहुत्तस्यंतो अंतोमुहुत्तं, एमो मिच्छत्तजहणकालनिहंसो । तं
जया- मम्मामिच्छादिद्वी वा अमंजदमम्मदिद्वी वा संजदामंजदो वा एमत्तमंजदो वा
परिणामपन्नण मिच्छत्तं गदो । मवजहणमंतोमुहुत्तं अच्छिय पुणरवि सम्मामिच्छत्तं
वा अयंजेमण मद सम्मतं वा संजमासंजमं वा अपमत्तभावणेण संजमं वा पडिअणस्स

एक जीवकी अपेक्षा काल तीन प्रकार हैं, अनादि-अनन्त, अनादि-अनन्त और
सादि-अनन्त । इनमें जो सादि और सान्त काल हैं, उपमा निर्देश इस प्रकार है — एक
जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सादि-सान्तकाल जवन्मसे अन्तमुहुत्तं है ॥ ३ ॥

अमव्यामिद्विक जीवोंके विषयात्यकी अपेक्षा ‘काल अनादि-अनन्त है’ ऐसा कहा
गया है, क्योंकि, अमव्यके विषयात्यका भादि, माय और अन्त नहीं होता है । मव्यामिद्विक
जीवके विषयात्यका काल एक तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि वल्लहकुमारका
विषयात्यकाल । तथा एक और प्रकारका मव्यामिद्विक जीवोंका विषयात्यकाल है, जो कि
सादि और सान्त होता है, जैसे कृष्ण आदिका विषयात्यकाल । उनमेंसे जो सादि और सान्त
विषयात्यकाल होता है उसका यह निर्देश है । यह दो प्रकारका है, जवन्मकाल और उरुह-
काल । उनमेंसे जवन्मकालकी प्ररूपणा की जाती है, यह बतलानेके लिए ‘अघन्ममे’ ऐसा
पद कहा । मुहुत्तके मीतर जो काल होता है, उसे अन्तमुहुत्तकाल कहते हैं । इस पदसे विषया-
त्यके जवन्मकालका निर्देश कहा गया है, जो कि इस प्रकार है —

कोई सम्मगिमथ्यादृष्टि, मयया अमंयतसम्पदृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्त-
संयत जीव, परिणामोंके निमित्तमे विषयात्यको प्राप्त हुआ । सर्व अघम्य अन्तमुहुत्तकाल सब
करके, फिर भी सम्मगिमथ्यात्यको, मयया अमंयमके साथ सम्मकयको, अथवा संयमा-
मंयमको, अथवा अममत्तमायके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे प्राप्त होनेवाले जीवके

१ पृष्ठजीवविषया ५वो मत्ताः-अनादिस्मयंयवान अनादिसुपरंयवान सादिसुपरंयवानेति । तत्र भारेः
वर्षवर्षगतो वष-येनाच्छुदुष्टः । स. वि १, ८.

सर्वजहणो मिच्छत्तकालो होदि । सासनसम्मदिहो मिच्छत्तं किण्ण पडिवज्जाविदो ? ण, सासनसम्मत्तपच्छायदमिच्छादिहिसस अहत्तिव्वसंकिहिसस मिच्छत्तत्तम्हा विणडिअस्स^१ सर्वजहणकालेण गुणंतरसंक्रमणाभावा । उक्कस्सकालपदुप्पायणइयुत्तरसुत्त भणदि-

उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियट्टं देसुणं ॥ ४ ॥

अद्धपोगलपरियट्ट णाम किं ? बुच्चदे-अणाइसंसारे हिंडताणं जीवाणं द्वचपरियट्टुणं खेत्तपरियट्टुणं कालपरियट्टुणं भवपरियट्टुणं भावपरियट्टुणमिदि पच परियट्टुणाणि होति । जं तं द्वचपरियट्टुणं तं दुविहं, नोक्कम्मपोगलपरियट्टुणं कम्मपोगलपरियट्टुणं चेदि । तत्थ नोक्कम्मपोगलपरियट्टु^२ वत्तइस्सामो । तं जहा-जदि वि पोगलानं गमणागमणं पडि

मिथ्यात्वका सर्वजघन्य काल होता है ।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ? अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टिको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचाकर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वसे पीछे आनेवाले, अतितीव्र संकेश-वाले मिथ्यात्वरूपी अन्यकारसे विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीवके सर्व जघन्यकालसे गुणान्तर-संक्रमणका अभाव है, अर्थात् गुणस्थान-परिवर्तन नहीं हो सकता है ।

अब मिथ्यात्वके उत्कृष्टकालके बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

एक जीवकी अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४ ॥

शंका—अर्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं ?

समाधान—इस अनादि ससारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्र-परिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन, इस प्रकार पांच परिवर्तन होते रहते हैं । इसमेंसे जो द्रव्यपरिवर्तन है, वह दो प्रकारका है—नोर्कर्मपुद्गलपरिवर्तन और कर्मपुद्गलपरिवर्तन । उनमेंसे पहले नोर्कर्मपुद्गलपरिवर्तनको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

यद्यपि पुद्गलोंके गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धिसे (किसी

१ प्रतिष्ठु 'विणदिजस्स' इति पाठ ।

२ उत्कृष्टेणार्धपुद्गलपरिवर्तितो देशो न । स सि. १, ८.

३ तत्र नोर्कर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम त्रयाणां शरीराणां वर्णां पर्यायीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकरिम्भर समये ग्रहीता विगच्छरूपवर्णनवादिमिर्तात्रिमन्दमध्यमावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जोर्णा अग्रहीतानन्तवारागततय मिश्रकश्चानन्तवारागतील मध्ये ग्रहीताश्चानन्तवारागतील त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोर्कर्मभावमापचन्ते यावचावत्समुदितं नोर्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । स सि. २, १०. गो. जी. जी. प्र. ५६०.

विरोहो णत्थि, तो वि बुद्धीए आदि कादूण नोक्कम्मपोगलपरियट्टे भणमाणे अपिपद-पोगलपरियट्टुम्भंतरे सर्वपोगलरासिम्हि एक्को वि परमाणु ण भुत्तो चि सर्वपोगलानम-गहिदसण्णा पोगलपरियट्टुपटमसमए कादव्वा । अदीदकाले वि सर्वजीवेहि सर्व-पोगलानमणंतिमभागो सर्वजीवरासीदो अणंतगुणो, सर्वजीवरासिउवविस्मन्नगदो अणंत-गुणहीणो पोगलपुंजो सुत्तुच्चिदो । कुदो ? अमवासिद्धिएहि अणंतगुणेण सिद्धाणमणंतिम-भागेण गुणिदादीदकालमेत्तसर्वजीवरासिसममाणसुत्तुच्चिदपोगलपरिमाणोवलंभा ।

सर्वे वि पोगला खल्ल एगे^१ सुत्तुच्चिदा ह जीवेण ।

असइ अणत्तुत्तो पोगलपरियट्टससारे^२ ॥ १८ ॥

एदीए सुत्तगाहाए सह विरोहो किण्ण होदि चि भणिदे ण होदि, सर्वेगदेसम्हि गाहत्थसर्वसदप्पवुत्तीदो । ण च सर्वम्हि पयट्टमाणस्स सहस्स एगेदसपउत्ती असिद्धा, गामो दद्धो, पदो दद्धो, इच्चादिसु गाम-पदाणमेगेदसपयट्टसद्वलंमादो । तेण पोगल-

विवक्षित पुद्गलपरमाणुपुंजको) आदि करके नोर्कर्मपुद्गलपरिवर्तनके कहनेपर विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर सर्वपुद्गलराशिमैंसे एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सर्व पुद्गलोंकी अग्रहीतसंज्ञा करना चाहिए । अतीतकालमें भी सर्व जीवोंके द्वारा सर्वपुद्गलोंका अनन्तवां भाग, सर्वजीवराशिसे अनन्तगुणा, और सर्व-जीवराशिसे उपरिम वर्गसे अनन्तगुणहीन प्रमाणवाला पुद्गलपुंज भोगकर छोड़ा गया है । इसका कारण यह है कि अभव्यसिद्ध जीवोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवर्णभागसे गुणित अतीतकालप्रमाण सर्वजीवराशिसे समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलोंका परिमाण पाया जाता है ।

शंका—यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो—

इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें समस्त पुद्गल इस जीवने एक एक करके पुन पुन अनन्तवार भोग करके छोड़े हैं ॥ १८ ॥

इस सूत्रगाथाके साथ विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—उक्त सूत्रगाथाके साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, गाथामें स्थित सर्व शब्दकी प्रवृत्ति सर्वके एक भागमें की गई है । तथा, सर्वके अर्थमें प्रवर्तित होनेवाले शब्दकी एकदेशमें प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, ग्राम जल गया, पद (जनपद) जल गया, इत्यादिक वाक्योंमें उक्त शब्द ग्राम और पदोंके एक देशमें प्रवृत्त हुए भी पाये जाते हैं ।

१ प्रतिष्ठु 'एगो' इति पाठः ।

२ स. सि. २, १०. गो. जी., बी. प्र. ५६०.

परियद्वुदिसमए अगहिदसणिदे चैव पोगले तिण्डमेकदसररिणिप्पायणदुममसिद्धिदिहि अणंतगुणे' सिद्धानमणंतिमभागमेसे गेण्हदि । ते च गेण्हतो अप्पणो ओगाडवेचद्धिदे चैव गेण्हदि, णो पुथ सेचद्धिदे । वुत्तं च—

एयम्बेत्तेगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग ।

वच्च जडुत्तेहू सादियमव णादियं चलि' ॥ १९ ॥

विदियसमए वि अप्पिदपोगलपरियद्वुन्मंतरे अगहिदे चैव गेण्हदि । एवमुक्त्तस्तेण अणंतकालमगहिदे चैव गेण्हदि । जहणेण दो-समएसु चैव अगहिदे गेण्हदि, पट्टम-समयगहिदपोगलणं विदियसमए णिजरिय अकम्मभावं गदाणं पुणो तदियसमए तग्गि चैव जीवे णोक्कम्मपज्जाएण परिदाणमुलंभादो । तं कथं गज्जदे ? णोक्कम्मस आवाधाए विणा उदयादिणिसेगुवेदसा । एसो पोगलपरियद्वुक्कालो ति विविहो होदि, अगहिदगहणदा

अतएव पुट्टलपरिवर्तनके आदि समयमें औदारिक आदि तीन शरीरोंमें किन्नी एक शरीरके निष्पादन करनेके लिए जीव अमय्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तयें भाग-मात्र अगृहीत संज्ञावाले पुट्टलोंको ही ग्रहण करता है । उन पुट्टलोंको ग्रहण करता हुआ भी अपने आश्रित क्षेत्रमें स्थित पुट्टलोंको ही ग्रहण करता है, किन्तु पृथक् क्षेत्रमें स्थित पुट्टलोंको नहीं ग्रहण करता है । कहा भी है—

यह जीव एक क्षेत्रमें अवगाढरूपसे स्थित, और कर्मरूप परिणमनके योग्य पुट्टल-परमाणुओंको यथोक्त (आगमोक मित्यात्व आदि) हेतुओंसे सर्व प्रवेदोंके द्वारा बांधता है । वे पुट्टलपरमाणु सादि भी होते हैं, बनादि भी होते हैं, और उभयरूप भी होते हैं ॥ १९ ॥

द्वितीय समयमें भी विवक्षित पुट्टलपरिवर्तनके भीतर अगृहीत पुट्टलोंको ही ग्रहण करता है । इस प्रकार उल्लङ्घकालकी अपेक्षा अनन्तकाल तक अगृहीत पुट्टलोंको ही ग्रहण करता है । किन्तु अद्यकालकी अपेक्षा दो समयोंमें ही अगृहीत पुट्टलोंको ग्रहण करता है, क्योंकि, प्रथम समयमें ग्रहण किये गये पुट्टलोंकी द्वितीय समयमें निर्जरा करके अकर्ममाय (कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुट्टल पुन तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्म पर्यायेसे परिणत हुए पाये जाते हैं ।

शुंका—प्रथम समयमें गृहीत पुट्टलपुन द्वितीय समयमें निर्माण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्मपर्यायेसे परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, भाषायाकालके विना ही नोकर्मके उदय आदिके निकेकोंका उपदेश पाया जाता है ।

यह पुट्टलपरिवर्तनकाल तीन प्रकारका होता है—अगृहीतग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल

१ प्रविगु 'गुणो' इति पाठः । २ गो क. १८५. परं तत्र 'अकुचरेद्' इति स्थाने 'अगरेद्' इति पाठः ।

गहिदगहणदा भिस्सयगहणदा चेदि । अप्पिदपोगलपरियद्वुन्मंतरे जं अगहिदपोगल-ग्रहणकालो अगहिदगहणदा णाम । अप्पिदपोगलपरियद्वुन्मंतरे गहिदपोगलणं चैव ग्रहणकालो गहिदगहणदा णाम । अप्पिदपोगलपरियद्वुन्मंतरे गहिदागहिदपोगलण-मकमेण ग्रहणकालो भिस्सयगहणदा णाम । एवं तीहि पयोरेहि पोगलपरियद्वुक्कालो जीवस्म गच्छदि । एतय निहमदानं परियद्वुणकमो बुभदे । तं जहा-पोगलपरियद्वुदि-ममयणद्धि उणंतकालो अगहिदगहणदा भवदि, ततथ मेमदोपयागमावा । पुणो अगहिदगहणदायमाणे मं भिस्सयगहणदा होदि । पुणो वि तदियवारे अगहिदगहणदाए अणंतकालं गंतुण मं भिस्सयदा होदि । एवं तदियवारे वि अगहिदगहणदाए अणंतकालं गमिय मं भिस्सयदाए परिणमदि । एदेण पयोरेण भिस्सयदाओ वि अणंतओ जादाओ । पुणो णंतकालं अगहिदगहणदाए गमिय मं गहिदगहणदाए परिणमदि । एदेण कमेण अणंतओ कालो गच्छदि जाय गहिदगहणदसलागाओ वि अणंतवं पत्ताओ ति । पुणो उवारे

और मिश्रग्रहणकाल । विवक्षित पुट्टलपरिवर्तनके भीतर जो अगृहीत पुट्टलोंके ग्रहण करनेका काल है उसे अगृहीतग्रहणकाल कहते हैं । विवक्षित पुट्टलपरिवर्तनके भीतर गृहीत पुट्टलोंके ही ग्रहण करनेके कालको गृहीतग्रहणकाल कहते हैं । तथा विवक्षित पुट्टलपरिवर्तनके भीतर गृहीत और अगृहीत. इन दोनों प्रकारके पुट्टलोंके अक्रममे अर्थात् एक साथ ग्रहण करनेके कालको मिश्रग्रहणकाल कहते हैं । इस तरह उक्त तीनों प्रकारसे जीवका पुट्टलपरिवर्तनकाल व्यतीत होता है ।

विशेषार्थ—जिन पुट्टलपरमाणुओंके समुदायरूप समयमयजमें केवल पहले ग्रहण किये हुए परमाणु ही हैं, उस पुट्टलपुट्टको गृहीत कहते हैं । जिस समयप्रवृत्तमें ऐसे परमाणु हैं कि जिनका जीवने पहिले कभी ग्रहण नहीं किया हो उस पुट्टलपुट्टको अगृहीत कहते हैं । जिन समयप्रवृत्तमें दोनों प्रकारके परमाणु हैं उस पुट्टलपुट्टको मिश्र कहते हैं ।

यब यहांपर उक्त तीनों प्रकारके कालोंके परिवर्तनका कन कहते हैं । इस प्रकार है—पुट्टलपरिवर्तनके आदि समयसे लेकर अनन्तकाल तक अगृहीत-ग्रहणका काल होता है, क्योंकि, उसमें दो प्रकारके कालोंका समाव है । पुनः अगृहीतग्रहणकालके अन्तमें एक बार मिश्रपुट्टलपुट्टके ग्रहण करनेका काल आता है । फिर भी द्वितीयवार अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल आकर एकवार मिश्रपुट्टल-पुट्टके ग्रहण करनेका काल आता है । इसी प्रकार तृतीयवार भी अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल आकर एक बार मिश्रग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । इस प्रकारसे मिश्र-ग्रहणकालकी भी शालाकाएं अनन्त हो जाती हैं । पुनः अनन्तकाल अगृहीतग्रहणकालके द्वारा बिता कर एकवार गृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । इस रूपसे अनन्तकाल व्यतीत होता हुआ तब तक चला जाता है जब तक कि गृहीतग्रहणकाल ही शालाकाए भी

१ प्रविगु 'जं गरिद-' इति पाठः ।

अणंतं कालं मिस्सयगहणद्वाए गमेदूणं सइ अगहिदगहणद्वा परिणमदि । एवमेदाहि देहि अद्वाहि अणंतकालं गमिय सइ गहिदगहणद्वा भवदि । एवमेदेण पयारेण जीवस्स कालो गच्छदि जाव एत्थतणगहिदगहणद्वासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ णि । एवं दो परि- यवुणवारा गदा । पुणो णंतं कालं मिस्सयद्वाए गमिय सइ गहिदगहणद्वाए परिणमदि । एदेण पयारेण गहिदगहणद्वासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ । तदो सइमगहिदगहणद्वाए परिणमदि । एदेण वि पयारेण अणंतो कालो गच्छदि जाव एत्थतणअगहिदगहणद्वा- सलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ णि । एत्तो तदियो परियद्धो । संपदि चउत्थपरियद्धं भणि- स्सामो । तं जधा— अणंतकालं गहिदगहणद्वाए गमेदूण सइ मिस्सयगहणद्वाए परिणमदि । एवमेदाहि दोहि अद्वाहि अणंतकालं गमेदि जाव एत्थतणमिस्सयगहणद्वासलागाओ अणं- तत्तं पत्ताओ णि । तदो सइमगहिदगहणद्वाए परिणमदि । पुणो उवरि एदेण चेव कमेण कालो गच्छदि जाव पोगलपरियद्धचरिससमओ णि । पोगलपरियद्धआदिमसमए जे

अनन्तत्वको प्राप्त हो जाती है (इस प्रकार प्रथम परिवर्तनवार व्यतीत हुआ) । पुनः इसके ऊपर अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालकी अपेक्षा धिताकर एकवार अगृहीतप्रदणकाल परिणत होता है । इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंसे अनन्तकाल धिताकर एकवार गृहीतग्रहणकाल होता है । इस तरह उक्त प्रकारसे जीवका काल तब तक व्यतीत होता हुआ चला जाता है जब तक कि यहाँकी गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी शालाकाएं भी अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं । इस प्रकार दो परिवर्तनवार व्यतीत हुए । पुनः अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालके द्वारा धिताकर एकवार गृहीतग्रहणकालका परिणमन होता है । इस प्रकारसे गृहीतग्रहणकालकी शालाकाएं अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं । तत्पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । पुनः इस प्रकारसे भी अनन्तकाल तब तक व्यतीत होता है जब तक कि यहाँ पर भी अगृहीत- ग्रहणकालसम्बन्धी शालाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं । यह तीसरा परिवर्तन है । अब चतुर्थ परिवर्तनको कहते हैं । वह इस प्रकार है—अनन्तकाल गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी धिताकर एकवार मिश्रग्रहणकालका परिवर्तन होता है । इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंद्वारा अनन्तकाल धिताता है जब तक कि यहाँकी मिश्रग्रहणकालसम्बन्धी शालाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं । इसके पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमित होता है । इसके पश्चात् फिर भी इसके आगे इस ही क्रमसे पुनः परिवर्तनके अन्तिम समय तक काल व्यतीत होता जाता है । (इस चतुर्थ परिवर्तनके समाप्त हो जानेपर) नोकर्मपुनः परिवर्तनके

१ प्रतिपु 'गमेदूण ण सइ' इति पाठः ।

२ अगहिसमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं त्वेहं गहिदं च । मिसरं गहिदमगहिदं गहिदं मिसं च अगहिदं च ॥
नो. बी. जी. प. ५१०.

जीवेण णोकम्मसरूवेण गहिदा पोगला ते विदियादिसमएसु अकम्मभावं गंतूण जम्हि काले ते चेव सुद्धा आगच्छंति सो कालो पोगलपरियट्ठेति भण्णदि ।

०	+	+	+	१
+	०	१	+	+
१	१	०	०	०

आदिम समयमें जीवके द्वारा नोकर्मस्वरूपसे जो पुनः प्रहण क्रिये थे वे ही पुनः द्वितीयवि- समयमें अकर्मभावको प्राप्त होकरके जिस कालमें वे ही शुभ पुनः प्रहण करने लगे हैं, वह काल 'पुनः प्रहणपरिवर्तन' इस नामसे कहा जाता है ।

विशेषार्थ — परिवर्तन पांच प्रकारका है—द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरि- वर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन । इनमें से द्रव्यपरिवर्तनके दो भेद हैं—नोकर्मद्रव्य- परिवर्तन और कर्मद्रव्यपरिवर्तन । यहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप बतलाया गया है । उसी स्वरूपके समझानेके लिए मूलमें संक्षिप्त ही गई है । जिसमें अगृहीतस्वरूप शून्य (०) पुनः मिश्रस्वरूप संपद (+) और गृहीतस्वरूप एकका अंक (१) दिया गया है । इसका अभिप्राय यह है कि अनन्तवार अगृहीत परमाणुपुंजके प्रहण करनेके बाद एक बार मिश्र परमाणुपुंजका ग्रहण होता है । पुन अनन्तवार उक्त क्रमसे मिश्रग्रहण करनेके बाद एक बार गृहीत परमाणुपुंजका प्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार गृहीतग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुनः परिवर्तनका प्रथम भेद समाप्त होता है । यह संक्षिप्त प्रथम कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है । तत्पश्चात् अनन्तवार मिश्रका प्रहण होने पर एकवार अगृहीतका प्रहण होता है । और अनन्तवार अगृहीतका प्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका प्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार गृहीतका प्रहण हो जाने पर नोकर्मपुनः परिवर्तनका दूसरा भेद समाप्त होता है । यही दूसरी कोष्ठक-पंक्तिका अभिप्राय है । पुनः अनन्तवार मिश्रका प्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका, और अनन्तवार गृहीतका प्रहण हो जाने पर एकवार अगृहीतका प्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार अगृहीतग्रहण होने पर नोकर्मपुनः परिवर्तनका तीसरा भेद समाप्त होता है । यही तीसरी कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है । पुनः अनन्तवार गृहीतका प्रहण होनेके पश्चात् एकवार मिश्रका और अनन्तवार मिश्रका प्रहण होने पर एकवार अगृहीतका प्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार अगृहीतका प्रहण हो जाने पर नोकर्मपुनः परिवर्तनका चौथा भेद समाप्त होता है । इस सबके समुदायको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते हैं । तथा इसमें जितना समय लगता है उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका काल कहते हैं ।

०	०	१	१
+	१	०	+
१	+	+	०

१ प्रतिपु

इति पाठः ।

एवं दृक्पोगलपरियद्वुगं गदं । खेत्त-काल-भव-भावपोगलपरियद्वुगं साणिदुण
गेण्हिद्ववा । तेसिं गाहाओ—

सव्वे वि पोगला खल्ल एगे मुत्तुब्बिदा दु जीवेण ।
असइ अणंतदुत्तो पोगलपरियद्वससारे' ॥ २२ ॥
सव्वहिं लोणखेत्ते कमसो तण्णयि जण्ण ओच्छुण्ण ।
ओगाहणओ वहुसो हिंढते खेत्तससारे' ॥ २३ ॥
ओसिप्पिणि-उत्सिप्पिणि-समयावल्लिया गिरंतरा सव्वा ।
जादो मुदो य वहुसो हिंढतो कालससारे' ॥ २४ ॥
“गिरआउआ जहण्णा जाव दु उवरिल्लओ दु गेवज्जो ।
जीवो मिच्छत्तवसा भवद्धिदिं हिंढिदो वहुसो” ॥ २५ ॥

इस प्रकार द्रव्यपुद्गलपरिवर्तन समाप्त हुआ । क्षेत्र, काल, भव और भावपुद्गलपरिवर्तनोंको कहलाकर ग्रहण करा देना चाहिए । उन परिवर्तनोंकी (संक्षेपसे अर्थ-प्रतिपादक) गाथाएं इस प्रकार हैं—

इस जीवने इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक एक करके पुनः पुन अनन्तवार सम्पूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं ॥ २२ ॥

इस समस्त लोकरूप क्षेत्रमें एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जिसे कि क्षेत्रपरिवर्तनरूप संसारमें क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुतवार नाना अवगाहनाओंसे इस जीवने न छुआ हो ॥ २३ ॥

कालपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्व समयोंकी आवलियोंमें निरंतर बहुतवार उत्पन्न हुआ और मरा है ॥ २४ ॥

भवपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्वके वशसे जबन्य नारकायुसे लगाकर (तिर्यच, मनुष्य और) उपरिम त्रैवेयक तककी भवस्थितिको बहुतवार प्राप्त हो चुका है ॥ २५ ॥

१ स. सि. २, १०. पर तत्र ‘एगे’ इति स्थाने ‘कमसो’ इति पाठ । सर्वेऽपि पुद्गला खल्ल एकेना-चोविताम् जीविन । समकृत्तनतकलः पुद्गलपरिवर्तनसारे ॥ गो. जी. नी. प्र. ५६०

२ स. सि. २, १० पर तत्र ‘ओच्छुण्ण’ इति स्थाने ‘उप्पण्ण’ इति पाठ । सर्वत्र जगत्सिंहे देवो न भस्ति ननुनाच्छुण्णः । अवगाहनानि वहुसो बध्ममता क्षेत्रससारे ॥ गो. जी. नी. प्र. ५६०.

३ स. सि. २, १० पर तत्र द्वितीयचरणे ‘समयावल्लियासु गिरवसेसासु’ इति पाठः । उत्सर्पणवसर्पण-समयावल्लिकासु नितवसेसासु । जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालससारे ॥ गो. जी. नी. प्र. ५६०.

४ प्रतिपु गायेय २६ तमाकितगाथाया पश्चादुपलभ्यते ।

५ गिरादिजहण्णादिषु जाव दु उवरिल्लया दु गेवेज्जा । मिच्छत्तससिदेण द्दु बहुसो वि भवद्धिदी ममिदा ॥

स. सि. १, १० नरकजन्यायुष्याणुपरिभ्रमन्त्रैवेयकावसानेण । मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्मानिता बहुशः ॥ गो. बी. नी. प्र. ५६०.

सव्वासिं पगदीण अणुभाग-पदेसवधठाणाणि ।
जीवो मिच्छत्तवसा परिभमिदो भावससारे' ॥ २६ ॥
परियाद्धिदाणि वहुसो पच वि परियद्वणाणि जीवेण ।
जिणवयणमलभमाणेण दीदकाले अणताणि' ॥ २७ ॥
जह्द गेण्हइ परियद्व पुरितो अच्छादणस्स विविहस्स ।
तह्द पोगलपरियद्वे गेण्हइ जीवो सरियाणि ॥ २८ ॥

अदीदकाले एगस्स जीवस्स सव्वत्थोवा भावपरियद्वुवारा । भवपरियद्वुवारा अणंत-गुणा । कालपरियद्वुवारा अणंतगुणा । खेत्तपरियद्वुवारा अणंतगुणा । पोगलपरियद्वुवारा अणंतगुणा । सव्वत्थोवो पोगलपरियद्वुकालो । खेत्तपरियद्वुकालो अणंतगुणो । कालपरियद्वुकालो अणंतगुणो । भवपरियद्वुकालो अणंतगुणो । भावपरियद्वुकालो अणंतगुणो' ।

यह जीव मिथ्यात्वके वशीभूत होकर भावपरिवर्तनरूप संसारमें परिभ्रमण करता हुआ सम्पूर्ण प्रकृतियोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश वधस्थानोंको अनेकवार प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥

जिन-वचनोंको नहीं पा करके इस जीवने अतीतकालमें पाँचों ही परिवर्तन पुनः पुनः करके अनन्तवार परिवर्तित किये हैं ॥ २७ ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष नाना प्रकारके वस्त्रोंके परिवर्तनको ग्रहण करता है, अर्थात् उतारता है और पहनता है, उसी प्रकारसे यह जीव भी पुद्गलपरिवर्तनकालमें नाना शरीरोंको छोड़ता और ग्रहण करता है ॥ २८ ॥

अतीतकालमें एक जीवके सबसे कम भावपरिवर्तनके वार हैं । भवपरिवर्तनके वार भावपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणें हैं । कालपरिवर्तनके वार भवपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणें हैं । क्षेत्रपरिवर्तनके वार कालपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणें हैं । पुद्गलपरिवर्तनके वार क्षेत्रपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणें हैं ।

पुद्गलपरिवर्तनका काल सबसे कम है । क्षेत्रपरिवर्तनका काल पुद्गलपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । कालपरिवर्तनका काल क्षेत्रपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भवपरिवर्तनका काल कालपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भावपरिवर्तनका काल भवपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । (इन परिवर्तनोंकी विशेष जानकारीके लिये देखो सर्वार्थसिद्धि २, १०, च गोम्मटसार जीवकांड गाथा ५६० टीका) ।

१ सव्वा पयविद्धिओ अणुभागपदेसवधठाणाणि । मिच्छत्तससिदेण य ममिदा पुण भावससारे । स. सि.

२, १०. सर्वप्रकृतित्थियानुभागप्रदेशवधयोग्यानि । स्थानान्यदुपगतानि भ्रमता मुनि भावससारे ॥ गो. जी. नी. प्र. ५६०.

२ पचविधे ससारे कर्मावसावजैवदक्षितं सुक्ते- । मार्गवपरयन् प्रणी नानादु खण्डले भ्रमति । गो. जी.

जी. प्र. ५६०. ३ गो. जी. नी. प्र. ५६०.

दवियलक्खणं' इच्चारिसादो चि ? ण एस दोसो, जमकमेण तिलक्खणं तं दव्वं; जं पुण कमेण उप्पाद-द्विदि-भंगिल्लं सो पज्जाओ चि जिभोवेदादो' । जदि एवं, तो पुढवि-आउ-तेउ-चाळणं पि पज्जायत्तं पसज्जदि चि बुत्ते, होदु तेसिं पज्जायत्तं, इट्ठचादो । तेसु दव्व-ववहारो वि लोए दिस्सदीदि चे ण, तस्स दुणयणिबंधणणेगमणयणिबंधणचादो । सुदे दव्वद्वियणए अवलंबिदे छच्चेय दव्व्वाणि; असुदे दव्वद्वियणए अवलंबिदे पुढविआदीणि अणेयाणि दव्व्वाणि होति चि वंजणपज्जायस्स दव्वत्तन्नुवगमादो । सुदे पज्जायणए अप्पिदे पज्जायस्स उप्पाद-विणासा दो चेव लक्खणाणि । असुदे अस्सिदे कमेण तिणि चि लक्खणाणि, उप्पणपज्जयस्स वज्जसिलाथंभादिसु वंजणसणिदस्स अवट्ठानुवलंबादो । मिच्छत्तं पि वंजणपज्जाओ, तम्हा एदस्स उप्पाद-द्विदि-भंगा कमेण तिणि वि अविरुद्धा चि धेतत्तव्वं ।

उप्पज्जति वियति य मावा गियमेण पज्जवणयस्स।

दव्वद्वियस्स सब्ब सदा अनुप्पणमविण्ह' ॥ २९ ॥

इस प्रकार आर्ष वचन है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जो अक्रमसे (शुगपत्) उत्पाद, व्यय और प्रौढ्य, इन तीनों लक्षणोंवाला होता है, वह द्रव्य है । और जो क्रमसे उत्पाद, स्थिति और व्ययवाला होता है वह पर्याय है । इस प्रकारसे सिनेन्द्रका उपदेश है ।

शंका—यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायुके पर्यायपना प्रसक्त होता है ? समाधान—भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जावे, क्योंकि, वह हमें इष्ट है ।

शंका—किन्तु उन पृथिवी आदिकोंमें तो द्रव्यका व्यवहार लोकमें दिखाई देता है ?

समाधान—नहीं, वह व्यवहार शुद्धशुद्धात्मक संग्रह-व्यवहाररूप नयद्वय निबंधनक नैगमनयके निमित्तसे होता है । शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलंबन करने पर छहों ही द्रव्य हैं । और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं, क्योंकि, व्यंजनपर्यायके द्रव्यपना माना गया है । किन्तु शुद्ध पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा करने पर पर्यायके उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं । अशुद्ध पर्यायार्थिकनयके आश्रय करने पर क्रमसे तीनों ही पर्यायके लक्षण होते हैं, क्योंकि, वज्राशिला, स्तम्भादिमें व्यंजनसंज्ञिक उत्पन्न हुई पर्यायका अवस्थान पाया जाता है । मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग, ये तीनों ही लक्षण क्रमसे अविरुद्ध हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

पर्यायनयके नियमसे पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्ययको भी प्राप्त होते हैं । किन्तु द्रव्यार्थिकनयके नियमसे सर्व वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् प्रौढ्यात्मक है ॥२९॥

स. त. १, १२

१ दव्व पज्जवविउयं दव्वविउठा य पज्जवा गणि । उप्पाय-द्विदि-भंगा यदि दवियलक्खण एय ॥

२ उप्पादद्विदिभंगा विज्जते पज्जएसु पज्जाया । दव्वदि सति गियर तम्हा दव्व इवदि सव ॥ प्रब.

सा २, ९.

३ स त. १, ११.

इदि एसा वि गाहा ण विरुज्जदे, सुद्धदव्व-पज्जवद्वियणए अवलंबिय द्विदत्तादो । 'भविष्या सिद्धी जेसिं जिविणं ते इवंपि भवसिद्धा' इदि वयणादो सव्वेसिं भव्वजीवाणं वोच्छेदेण होदव्वं, अण्णाहा तल्लक्खणविरोहादो । ण च सव्वओ ण णिट्ठादि, अण्णत्थ तहाणुवलंबादो चि ? ण एस दोसो, तस्साणांतियादो । सो अणंतो बुच्चदि, जो संखेज्जा-संखेज्जरासिन्वए संते अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठदि । बुत्तं च—

सते षए ण णिट्ठादि कालेणणतएण वि ।

जो रासी सो अणतो चि त्रिणिट्ठो महेसिणा ॥ ३० ॥

जदि एवं, तो अद्धपोगलपरियट्ठादिरामीणं सव्वयागमणंतत्तं फिट्ठदि चि बुत्ते फिट्ठदु णाम, को दोसो ? तेसु अणंतववहारो सुत्ताइरियक्खणपसिद्धो उवलम्बदे चे ण, तस्स उवयारणिबंधणचादो । तं जहा—पच्चक्खेण पमाणेण उवलद्धो जो थंभो सो जहा

यह उक्त गाथा भी विरोधको नहीं प्राप्त होती है, क्योंकि, इसमें किया गया व्याख्यान शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनयको अवलम्बन करके स्थित है ।

शंका—'जिन जीवोंकी सिद्धि भविष्यकालमें होनेवाली है, वे जीव भव्यसिद्ध कहलाते हैं', इस वचनके अनुसार सर्व भव्य जीवोंका व्युच्छेद होना चाहिए, अन्यथा भव्यसिद्धोंके लक्षणमें विरोध आता है । तथा, जो राशि व्ययसहित होती है, वह कभी नष्ट नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता; अर्थात् सव्वय राशिका अवस्थान देखा नहीं जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, भव्यसिद्ध जीवोंका प्रमाण अनन्त है । और अनन्त वही कहलाता है जो संख्यात या असंख्यातप्रमाण राशिके व्यय होने पर भी अनन्तकालसे भी नहीं समाप्त होता है । कहा भी है—

व्ययके होते रहने पर भी अनन्तकालके द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे महर्षियोंने 'अनन्त' इस नामसे विनिर्दिष्ट किया है ॥ ३० ॥

शंका—यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंका अनन्तत्व नष्ट हो जाता है ?

समाधान—उनका अनन्तपना नष्ट हो जाय, इसमें क्या दोष है ?

शंका—किन्तु उन अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदिकोंमें अनन्तका व्यवहार सूत्र तथा आचार्योंके व्याख्यानसे असिद्ध हुआ पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन पुद्गलपरिवर्तन आदिमें अनन्तत्वका व्यवहार उपचार-निबन्धनक है । अब इसी उपचारनिबन्धनताको स्पष्ट करते हैं—जो पापणादिका स्तम्भ

१ गो. बी. ५५७.

उपयारेण पच्चक्खो त्ति लोए बुच्चदे, तहा ओहिणणविमयपुल्लंधिय द्विदरासीओ केवलस्स अणंतस्स विसओ त्ति उपयारेण ताओ अणंतओ त्ति बुच्चंति । तम्हा तेसु सुत्ताह-रियक्खवाणपसिद्धेण अणंतववहारेण णेदं वक्खणां विरुद्धदे । अहवा वए संते नि अक्खवो को वि रासी अत्थि, सक्खस्स सपडिक्खल्लसंसेसुल्लंभादो । एसो वि भव्वरासी अणंतो, तम्हा संते वि वए अणंतेण वि कालेण ण णिद्धिस्सइ त्ति सिद्धं ।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालदो हंति, णाणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थो पुवं पस्सविदो त्ति णेह बुच्चदे, पुणरुत्तमया । एत्थ एगसमयनिरुवणा कीरदे । तं जथा- दो वा तिणि वा एगुत्तरवट्ठीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उपसमसम्मादिट्ठिणो उपसमसम्मतद्वाए एगो समओ अत्थि चि सासणत्तं पडिक्खणा एगसमयं दिट्ठा । विदियसमये सव्वे वि मिच्छत्तं गदा, तिसु वि लोएसु सासणणमभावो जादो त्ति लद्धो एगसमओ ।

प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध है, वह जिस प्रकार उपचारसे 'प्रत्यक्ष है' ऐसा लोकमें कहा जाता है, उसी प्रकारसे अद्यध्वानके विषयका उद्देश्यन करके जो राशियां स्थित हैं, वे सब अनन्त प्रमाणवाले केवलज्ञानके विषय हैं, इसलिए उपचारसे 'अनन्त हैं' इस प्रकारसे कही जाती हैं । अतएव सूत्र और आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्याख्यानसे यह व्याख्यान विरोधको प्राप्त नहीं होता है । अथवा, व्ययके होते रहने पर भी सदा अक्षय रहनेवाली कोई राशि है जो कि क्षय होनेवाली सभी राशियोंके प्रतिपक्षके समान पाई जाती है । इसी प्रकार यह मथ्यराशि भी अनन्त है, इसलिए व्ययके होते रहनेपर भी अनन्तकालद्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अथन्यसे एक समय तक होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अवयवार्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनरुक्त दोषके भयसे यहाँ पर नहीं कहते हैं । अब यहाँ पर एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । यह इस प्रकारसे है- दो अथवा तीन, इस प्रकार एक अधिक बुद्धिसे बढ़ते हुए पल्योपमके अभव्यतयें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्यके कालमें एक समयमात्र काल अद्योदय रह जाने पर एक साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए एक समयमें दिखाई दिये । दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये । उस समय तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अभाव हो गया । इस प्रकार एक समयप्रमाण सासादनगुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल प्राप्त हुआ ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिजीवोंकीवर्णना जब वैदिक समय- । स. ति. १, ८.

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६ ॥

दोणि वा तिणि वा एनं एगुत्तरवट्ठीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उपसमसम्मादिट्ठिणो एगसमयमादिं काट्ठग जाट्ठकस्सेण छ आवलियाओ उपसमसम्मतद्वाए अत्थि त्ति मागणत्तं पडिक्खणा । जाव ते मिच्छत्तं ण गच्छंति ताव अणो वि अणो वि उपसमसम्मादिट्ठिणो सासणत्तं पडिक्खंति । एवं गिम्हकालरुक्खलहीव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं कालं जीविहि असुणं होट्ठण सामणगुणद्वारा लम्बदि । केवडिओ सो पुण कालो ? सगरामीदो असंखेज्जगुणो । तं जहा- सामणगुणस्स णिरंतरुक्कमणकालो आत्रलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो । मांतरुक्कमणवारा पुण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता । एवं हंति त्ति कट्ठु सासणुक्कसकालुप्यचिचिहानं बुच्चदे । तं जथा- एगस्स सामणगुणद्वाराणुक्कमणवारास्स जदि मज्झिमपडिचत्तीए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो सामणगुणकालो लम्बदि, संखेज्जवावलिममेत्तो वा, आत्रलियाए संखेज्जदिभागमेत्तो वा, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तउक्कमणवाराणं

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातयें भागप्रमाण है ॥ ६ ॥

दो, अथवा तीन, अथवा चार, इस प्रकार एक एक अधिक बुद्धिद्वारा पल्योपमके असंख्यातयें भागमात्र तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छह आवलियां उपशमसम्यक्त्यके कालमें अद्योदय रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए । वे अब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते हैं, तबतक अन्य अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होते रहते हैं । इस प्रकारसे ग्रीष्मकालके बृहत्तम अद्योदयके समान उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातयें भागमात्र कालतक जीवोंसे भग्न्य (परिपूर्ण) होकर, सासादनगुणस्थान पाया जाता है ।

प्रंका-सो यह काल कितना है ?

समाधान-अपनी, अर्थात् सासादनगुणस्थानवर्ती, राशिसे असंख्यातगुणा है । यह इस प्रकार है- सासादनगुणस्थानके निरन्तर उपक्रमणका काल आयलीके असंख्यातयें भागमात्र है । किन्तु मान्तर उपक्रमणके चार तो पल्योपमके असंख्यातयें भागमात्र हैं । ये चार इस प्रकार होते हैं, येना मानकर सासादनगुणस्थानके उत्कृष्टकालकी उत्पत्तिका विधान कहते हैं । यह इस प्रकार है-

एक जीवके सासादनगुणस्थानके उपक्रमणवारका यदि मध्यम प्रतिपत्तिसे आवलीके असंख्यातयें भागमात्र सासादनगुणस्थानका काल पाया जाता है, अथवा, सख्यात आवली मात्र, अथवा आवलीके संख्यातयें भागमात्र काल पाया जाता है; तो पल्योपमके असंख्यातयें

१ ब्रह्मण पल्योपमासम्बन्धभागः । स. ति. १, ८.

केचित्तियं कालं लभामो त्ति इच्छागुणिदफलम्हि पमाणेणोवड्ढिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो सासणकालो होदि त्ति धेत्तव्वं । जदि वि एत्थ सुत्तं णत्थि, तो वि एदं वक्खणं सुत्तं व सद्देदव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ' ॥ ७ ॥

एदस्सत्थो- एकको उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं गदो । जदि उवसमसम्मत्तद्वा मंहंती हेदि, तो को दोसो ? ण, सासणगुणद्वाए बहुत्तप्पसंगा । जेतियाए उवसमसम्मत्तद्वाए सेसाए जीवो सासणं पडिवज्जदि, तेत्तिओ चेव सासणगुणकालो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा । बुत्तं च-

उवसमसम्मत्तद्वा जत्तियमेत्ता डु होइ अवसिद्धा ।

पडिवज्जता साण तत्तियमेत्ता य तत्सद्दा ॥ ३१ ॥

भागमात्र उपक्रमण वारोंका कितना काल प्राप्त होगा ? इस प्रकार इच्छाराशिसे गुणित फल-राशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए । यद्यपि इस विषयमें कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्रके समान अद्वान करने योग्य है ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्यकाल एक समय है ॥ ७ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ ।

शंका-यदि उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक हो, तो क्या दोष है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक माननेपर सासादन-गुणस्थानकालके भी बहुत्वका प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थानका काल बहुत मानना पड़ेगा । इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्वकालके शेष रहनेपर जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, उतना ही सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेश है । कहा भी है-

जितने प्रमाण उपशमसम्यक्त्वका काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादन-गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उतने प्रमाण ही उसका, अर्थात् सासादनगुण-स्थानका, काल होता है ॥ ३१ ॥

१ एकजीवं प्रति जन्मवैक समय । स. सि. १, ८.

एगसमयं सासाणगुणेण सह ड्ढिदो, विदियसमए मिच्छत्तं गदो । एवं सासणगुणस्स लदो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलिआओ' ॥ ८ ॥

एदस्स अत्थो बुच्चदे- एकको उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्वाए छ आव-लियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो । तत्थ सासणगुणम्हि छ आवलियाओ अन्धिदूण मिच्छत्तं गदो । कुदो ? साहियासु छसु आवलियासु सेसासु सासणगुणपडिवज्जणाभावा । बुत्तं च-

उवसमसम्मत्तद्वा जइ छावलिया इवेज्ज अवसिद्धा ।

तो सासण पवज्जइ णो हेडुक्कडुकालेसु' ॥ ३२ ॥

सम्भामिच्छाड्ढी केवचिरं कालदो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९ ॥

इस ऊपर बतलाए हुए प्रकारसे उक्त जीव एक समय मात्र सासादनगुणस्थानके साथ, अर्थात् उस गुणस्थानमें, दिखाई दिया, और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । इस प्रकार सासादनगुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समयप्रमाण उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है ॥ ८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानमें गया । उस सासादनगुणस्थानमें छह आवली रह करके मिथ्यात्वमें गया, क्योंकि, साधिक छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेका अभाव है । कहा भी है-

यदि उपशमसम्यक्त्वका काल छह आवलीप्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है । यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

(इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा छह आवलीप्रमाण ही सासादनगुणस्थानका उत्कृष्टकाल है ।)

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ९ ॥

१ उत्कृष्टेण षड्वालिका । स. सि. १, ८.

२ उवसमसम्यक्त्वा आवलिमेत्तो इ समयमेत्तो सि । अवसिडे आसानो जणजणइइदयको होदि ॥ ज. सि. १००.

३ सध्वमिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया भवत्येकान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो—अट्ठावीससंतकाम्मियमिच्छादिद्वी वेदगतसम्मचसहिदअसंजद-संजद-पमत्तसंजदा सत्तट्ठ जणा वा, आगालियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता वा, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदा । तत्थ सच्चलद्धमंतोमुहुत्त-मच्छिदूण मिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा पडिवण्णा । गट्ठं सम्मामिच्छत्तं । एवं सम्मामिच्छत्तस्स अंतोमुहुत्तकालो सिद्धो । अप्पमत्तसंजदो किमिदि सम्मामिच्छत्तं ण णीदो ? ण, तस्स संकिलेस-विसोहीहि सह पमत्तापुच्चगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा । मदस्स वि असंजदसम्मादिद्वित्तगुणंतरगमणाभावा । पच्छा सम्मामिच्छादिद्वी संजमं संजमासंजमं वा किण्ण णीदो ? ण, तस्स मिच्छत्त-सम्मत्तसहिदासंजदगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा । किं कारणं ? सहावदो चेय । ण हि सहायो परपज्जणिओगारुहो, विरोहा ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— मोहकर्मकी अट्ठारस प्रकृतियोंकी सच्चा रत्ननेवाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यक्त्वसहित असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाले सात आठ जन, अथवा आत्मीके असंख्यातवै भागमात्र जीव, अथवा पत्थो-पमके असंख्यातवै भागमात्र जीव, परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए । बहापर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुए । तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ ।

शंका—यहां पर अप्रमत्तसंयत जीव, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि अप्रमत्तसंयत जीवके संश्लेशकी वृद्धि हो, तो प्रमत्त-संयतगुणस्थानको, और यदि विद्युत्की वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है । यदि अप्रमत्तसंयत जीवका मरण भी हो, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको अथवा संयमा-संयमको क्यों नहीं प्राप्त करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वसहित मिथ्या-दृष्टिगुणस्थानको, अथवा सम्यक्त्वसहित असंयतगुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है ।

शंका—अन्य गुणस्थानोंमें नहीं जानेका क्या कारण है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है । और स्वभाव दूसरेके प्रसङ्गके योग्य नहीं हुआ करता है, क्योंकि, उसमें विरोध आता है ।

उक्कसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १० ॥

एदस्स अत्थो बुच्चदे-पुब्बुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं गंतूण तत्थतोमुहुत्तमच्छिय जाव ते मिच्छत्तं वा सासंजममम्मत्तं वा ण पडिवज्जंति, ताव अण्णे वि अण्णे वि पुब्बुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जानेद्वत्ता जाव सच्चुक्कस्सो णाणाजीविकसो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालो जादो ति । मो पुण सगरासीदो असंखेज्जगुणो । एदस्स वि कारणं पुवं व वत्तवं । तदो णियमेण अंतरं होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११ ॥

एदस्सत्थो बुच्चदे-एक्को मिच्छादिद्वी तिसुज्जमाणो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो । सच्चलद्धमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण तिसुज्जमाणो चेव सामंजमं सम्मत्तं पडिवण्णो । संकिलेसं पुरिय मिच्छत्तं किण्ण गदो ? ण, तिसोधिअदं संपुण्णमच्छिय संकिलेसं पुरिय मिच्छत्तं गच्छमाणसम्मामिच्छत्तकालस्स बहुत्तप्पसंगा । एविकस्से तिसोहीए कालादो संकिलेस-

नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्टकाल पत्थोपमके असंख्यातवै भागप्रमाण है ॥ १० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— पूर्णक गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और यहांपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अतक वे मिथ्यात्वको अथवा असंयमसहित सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होते हैं, तबतक अन्य भी पूर्णक गुणस्थानवर्ती ही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त करते जाना चाहिए, जबतक कि सयौत्कृष्ट नाना जीवोंकी अपेक्षा रहनेवाला पत्थोपमका असंख्यातवै भागमात्र काल पूरा हो । यह काल अपने गुणस्थान-वर्ती जीवराशिसे असंख्यातगुण होता है । इसका भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए । उसके पश्चात् नियमसे अन्तर हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका जपन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—एक मिथ्यादृष्टि जीव विद्युत् होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर विद्युत् होता हुआ ही असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ।

शंका—संश्लेशको पूरित करके, अर्थात् संश्लेशपरिणामी होकर, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त हुआ ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विद्युत्के संपूर्ण काल तक अपने गुणस्थानमें रह करके और संश्लेशको धारण करके मिथ्यात्वको जानेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वसंगंधी कालके बहुत्वका प्रसंग हो जायगा । इसका कारण यह है कि एक भी विद्युत्के कालसे संश्लेश

विसोहीणं दोण्हं पि कालो दोण्हं विच्चाले द्विदयडिभगकालसहिदो गिच्छएण संखेअगुणो चि अहिप्पाएण मिच्छत्तं ण गीदो । अधवा वेदगसम्मादिद्वी संकिलिस्समाणो सम्मा-मिच्छत्तं गदो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण अविणट्ठसंकिलेसो मिच्छत्तं गदो । एत्थ वि कारणं पुब्बं व वत्तव्वं । एवं दोहि पयरोहि सम्मामिच्छत्तस्स जहणकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

तं कथं ? एको विसुब्बमाणो मिच्छादिद्वी सम्मामिच्छत्तं गदो, सव्वुक्कस्सअंतो-मुहुत्तमच्छिदूण संकिलिद्वो होदूण मिच्छत्तं गदो । पुण्विल्लजहणकालादो एसो उक्कस्स-कालो संखेजगुणो, सव्वुक्कस्सतिकालसमूहचादो । अधवा वेदगसम्मादिद्वी संकिलिस्स-माणो सम्मामिच्छत्तं गदो । सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण असंजदसम्मादिद्वी जादो । एत्थ वि कारणं पुब्बं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च-सव्वद्धा' ॥ १३ ॥

और विशुद्धि, इन दोनोंका ही काल, दोनोंके अन्तरालमें स्थित प्रतिभाग कालसहित निश्चयसे सख्यातगुणा होता है, इस प्रकारके अभिप्रायसे वह वर्धमान विशुद्धिवाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त कराया गया । अथवा, संक्षेपको प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ, और वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविनष्टसंक्षेपी हुआ ही मिथ्यात्वको चला गया । यहां पर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए । इस तरह दो प्रकारोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य-कालकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२ ॥

वह इस प्रकार है— एक विशुद्धिको प्राप्त होनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ । वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और संक्षेपशुक्ल हो करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ । पहले बतलाये गए इसी गुणस्थानके जघन्य कालसे यह उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है, क्योंकि, वह सर्वोत्कृष्ट त्रिकालके समूहात्मक है । अथवा, संक्षेपको प्राप्त होने-वाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । यहांपर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-काल होते हैं ॥ १३ ॥

१ जघन्यतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व. काल । स. वि. १, ८.

अदीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिद्विबोच्छेदो गत्थि । कुदो ? सहावदो । एसो सहाओ असंजदसम्मादिद्विरासिस्सत्थि चि कथं णव्वे ? सव्वद्धा-वयणादो । कथं पक्खो चैव साहणत्तं पडिवज्जे ? ण, उभयपक्खत्तिसट्ठिजुत्तस्स जिणवयणस्स एकस्स वि पक्खसाहणत्ते विरोहाभावा । दिवायरो सुओ उदेदि त्ति वयणस्सेव किरियाविसेसणत्तादो सव्वद्धमिदि पावदि ? ण, तथा विवक्खाभावा । पुणो कथमेत्थतणविवक्खा ? बुच्चदे-सव्वा अद्वा जेसि ते सव्वद्धा, सव्वकालसंबंधिणो चि बुच्चं होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

तं कथं ? अट्टावीससंतकम्मियमिच्छादिद्वी वा सम्मामिच्छादिद्वी वा संजदासंजदो वा पमत्तंसंजदो वा पुब्बं सासंजमसम्मत्ते बहुवारं परियट्ठो अच्छिदो असंजदो जादो ।

इसका कारण यह है कि अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका व्युच्छेद नहीं है ।

शंका—त्रिकालमें भी असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका ऐसा स्वभाव है, यह कैसे जाना ?

समाधान—सूत्र पठित 'सर्वादा' अर्थात् सर्वकाल रहते हैं, इस वचनसे जाना ।

शंका—विवादस्थ पक्ष ही हेतुपनेको कैसे प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उभय पक्षके अतिशय युक्त अर्थात्, उभयपक्षातीत, एक भी जिनवचनके पक्ष और साधनके होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—'दिवाकर स्वतः उदित होता है' इस वचनके समान क्रियाविशेषण होनेसे 'सव्वद्धं' ऐसा पाठ होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है ।

शंका—तो यहां पर किस प्रकारकी विवक्षा है ?

समाधान—वह विवक्षा इस प्रकारकी है— सर्व काल जिन जीवोंके होता है, वे सर्वादा कहलाते हैं, अर्थात् 'सर्वकालसम्बन्धी जीव' यह 'सर्वादा' पदका अर्थ है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

शंका—यह काल कैसे संभव है ?

समाधान—जिसने पहले असंयमसहित सम्यक्त्वमें श्रुतवार परिवर्तन किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ ।

१ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त. । स. वि. १, ८.

सबलहुमंतोमुहुचदमच्छिय मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा संजमासंजमं वा अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । उवरिमगुणङ्गणेहिंतो संकिलेसेण जे असंजदसम्मत्तं पडिवण्णा, ते अविण्णुणे तेण संकिलेसेण सह मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा गेदव्वा । जे हेड्डिमगुणङ्गणेहिंतो विसोहीए सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णा, ते ताए चेव विसोहीए अविण्णुए सह संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा गेदव्वा, अण्णहा जहण्णकालाणुववत्तीदो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरयाणिं ॥ १५ ॥

तं कथं ? एक्को पमत्तो अप्पमत्तो वा चट्ठुहुसुवसामागणमेक्कदो वा समऊणतेचीससागरोवमाउड्डिएसु अणुत्तरविमाणवासियदेवसु उववण्णो । सासंजमसम्मत्तस आदी जादो । तदो बुदो पुव्वकोडाएसु मणुसेसु उववण्णो । तत्थ असंजदसम्मादिड्डी होदूण ताव ड्ढिदो जाव अंतोमुहुचमेत्ताउअं सेसं ति । तदो अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो (१) । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं काटूण (२) खवगसेटिपाओगविसोहीए विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (३) । अनुवखवगो (४) अणियट्ठिखवगो (५) सुहुमखवगो (६) खीणकसाओ (७) सजोगी (८) अजोगी (९) होदूण सिद्धो जादो ।

किर वह सबलहु अन्तमुद्धुत्तं काल रह करके मिथ्यात्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । ऊपरके गुणस्थानोंसे सङ्केशके साथ जो असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं वे जीव उसी अविनष्टसङ्केशके साथ मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराना चाहिए । जो अधस्तन गुणस्थानोंसे विशुद्धिके साथ असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अविनष्टविशुद्धिके साथ संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको ले जाना चाहिए, अन्यथा असंयतसम्यक्त्वका जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥ १५ ॥

शंका—यह सातिरेक तेतीस सागरोपमकाल कैसे समझ है ?

समाधान—एक प्रमत्तसंयत, अथवा अप्रमत्तसंयत, अथवा चारों उपशामकोंमेंसे कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुक्रमकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ, और इस प्रकार असंयमसहित सम्यक्त्वकी आदि हुई । इसके पश्चात् वद्धासे व्युत्त होकर पूर्वकोटिचर्पकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहापर वह अन्तर्मुद्धुत्तप्रमाण आयुके दोष रह जानेतक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा । तत्पश्चात् अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें सहस्रों परिवर्तन करके (२), क्षपकश्रेणिके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो, अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । पुनः अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिष्टातिकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसाम्यरायक्षपक (६), क्षीणकपायधीतरागछस्य (७), सयोगिकेवली (८), और अयोगिकेवली (९) होकरके सिद्ध हो गया ।

१ उत्कर्षेण नयर्निष्ठसागरोपमाणि सातिरेकाणि । स वि १, ८.

एदेहि णवहि अंतोमुहुचेहि ऊणपुव्वकोडीए अदिरिचाणि समऊणतेचीससागरोवमाणि असंजदसम्मादिड्डिस्स उक्कस्सकालो होदि । किमहं समऊणतेचीससागरोवमाउड्डिएसु देवेसुप्पादिदो ? ण, अण्णहा असंजदद्वाए दीहत्ताणुवलंभा । कुदो ? जदि तेचीससागरोवमाउड्डिएसु देवेसु उप्पादिज्जदि, तो वासपुधत्तावसेसे आउए णिच्छएण संजमं पडिवज्जदि । जो पुण समऊणतेचीससागरोवमाउड्डिएसु देवेसुवज्जिय मणुसेसु उववण्णो, सो अंतोमुहुचूणपुव्वकोडिमसंजमेण सह अच्छिय पुणो णिच्छएण संजदो होदि, तेण समऊणतेचीससागरोवमाउड्डिएसु देवेसुप्पादिदो ।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सम्वद्धां ॥ १६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, असंजदसम्मादिड्डिग्घि परूविदच्चादो ।

इन नौ अन्तमुद्धुत्तोंसे कम पूर्वकोटि कालसे अतिरिक्त तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है ।

शंका—ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्टकाल चतलते हुए उक्त जीवको एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है ?

समाधान—नहीं, अन्यथा, अर्थात् एक समय कम तेतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें यदि उत्पन्न न कराया जाय तो, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके कालमें दीर्घता नहीं पाई जा सकती है, क्योंकि, यदि पूरे तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराया जायगा तो, वर्षपृथक्त्वप्रमाण आयुके अवशेष रहने पर निश्चयसे वह संयमको प्राप्त हो जायगा । किन्तु जो एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा, वह अन्तर्मुद्धुत्त कम पूर्वकोटि प्रमाणकाल असंयमके साथ रह कर पुनः निश्चयसे संयत होगा । इसलिये, अर्थात्, असंयतसम्यक्त्वके कालकी दीर्घता वतानेके लिए, एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुको स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न कराया गया है ।

संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके कालमें उसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

१ सयतामयस्य नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । स वि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहणेणंतोमुहुत्तं ॥ १७ ॥

तं कथं ? एकको अट्टावीसंतकस्मियमिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी पमत्तसंजदो वा पुवं पि बहुसो संजमासंजमगुणद्वणे परियद्विदो परियामपचएण संजमासंजमं पडिवणो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तद्वमच्छिदूण पमत्तसंजदचरो मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा असंजदसम्मत्तं वा पडिवणो । पच्छाकदमिच्छत्ता सासंजमसम्मत्ता च अपमत्तभावेण संजमं पडिवण्णा । कुदो ? अण्णहा संजदासंजदद्वए जहणेणत्ताणुववचीए । किमद्वं सम्मा-मिच्छादिद्वी संजमासंजमं गुणं ण, गीदो ? ण, तस्स देसविरदिपज्जाएण परिणमणत्तचीए असंभवा । बुत्तं च-

ण य मरइ गेव संजममुवेइ तह देससजमं वावि ।

सम्मामिच्छादिद्वी ण उ मणत्त समुवाओ' ॥ ३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है—जितने पहले भी यहुतवार संयमासंयम गुणस्थानमें परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्या-द्वि, अथवा असंयतसम्यग्द्वि, अथवा प्रमत्तसंयत जीव पुनः परिणामोंके निमित्तसे संयमा-संयम गुणस्थानको प्राप्त हुआ । चक्षां पर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयतचर है, अर्थात् प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे संयतासंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है, तो मिथ्यात्वको, अथवा संम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयतसम्यक्सत्त्वको प्राप्त हुआ । अथवा, यदि वे पञ्चाच्छत मिथ्यात्व या पञ्चाच्छत असंयमसम्यक्सत्त्ववाले हैं, अर्थात् संयतासंयत होनेके पूर्व मिथ्याद्वि या असंयतसम्यग्द्वि रहे हैं, तो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुए, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो संयतासंयत गुणस्थानका जघन्य काल नहीं बन सकता ।

शंका—सम्यग्मिथ्याद्वि जीव संयमासंयम गुणस्थानको किसलिए नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्याद्वि जीवके देशविरतिरूप पर्यायसे परिणामनकी शक्तिका होना असंभव है । कहा भी है—

सम्यग्मिथ्याद्वि जीव न तो मरता है, न संयमको प्राप्त होता है, न देशसंयमको भी प्राप्त होता है । तथा उसके मारणान्तिकसमुदात्त भी नहीं होता है ॥ ३३ ॥

१ एकजीवं प्रति जक्येनान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८,

२ सी सजम ण गिण्णदि देसजम वा ण बवदे आलं । सम्म वा मिच्छ वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ समसमिच्छपरिणामेषु जहिं आगण पुरा बद्ध । तहिं मरण मरणत्तसमुवादो वि य ण मिस्समि ॥ गो. जी. २३-२४

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणां ॥ १८ ॥

तं कथं ? एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्टावीसंतकस्मिमो मिच्छाद्वी सणि-पंचिदियतिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तएसु मच्छ-कच्छव-मंइकादिसु उववणो । सव्वलहुएण अंतोमुहुत्तकालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो जादो (१) । विस्संतो (२) विसुद्धो (३) होदूण संजमासंजमं पडिवणो । पुव्वकोडिकालं संजमासंजमणुपालिदूण मदो सोधम्मादि-आरणच्छुदंतसु देवसु उववणो । णट्ठो संजमासंजमो । एवमादिल्लेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊगा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो होदि ।

पमत्त-अपमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च संवद्धां ॥ १९ ॥

जेण तिसु वि कालेसु पमत्तापमत्तसंजदेहि विरहिदो एगो वि समओ णत्थि, तेण संवद्धं हवति ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २० ॥

सयतासयत जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥ १८ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है—मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यच अथवा मनुष्य मिथ्याद्वि जीव, संक्षी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक, ऐसे संमूर्च्छन तिर्यच मच्छ, कच्छप, मंडकादिकोंमें उत्पन्न हुआ, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ (१) । पुनः विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके (३), संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहां पर पूर्वकोटी काल तक संयमासंयमको पालन करके मरा और सौधर्मकल्पको आदि लेकर कारण अच्युतान्त कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न हुआ । तब संयमासंयम नष्ट हो गया । इस प्रकार आदिके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयमका काल होता है ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसयत कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९ ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंसे विरहित एक भी समय नहीं है, इसलिये वे सर्वकाल होते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका जघन्य काल एक समय है ॥ २० ॥

१ उत्कृष्टेण पूर्वकोटी देसोना । स. सि. १, ८,

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवोपेक्षया सर्व काल । स. सि. १, ८,

३ एकजीव प्रति जक्येनैकः समय । स. सि. १, ८,

तं जथा—पमत्तस्स ताव एगसमओ बुच्चदे । एक्को अप्पमत्तो अप्पमत्तद्वाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति पमत्तो जादो । पमत्तगुणेण एगसमयं दिट्ठो विदिय-समए मदो देवो जादो । णट्ठो पमादविसिद्धसंजमो । एवं पमत्तस्स एगसमयपरूवणा गदा । अप्पमत्तस्स बुच्चदे—एक्को पमत्तो पमत्तद्वाए खीणाए एगसमयं जीवियमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो । अप्पमत्तगुणेण एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो । णट्ठमपमत्त-गुणद्वयं । अथवा उवसमसेहीदो ओदरमाणो अपुव्वकरणो एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो, विदियसमए मदो देवसुववणो । एवं देहि पयारेहि अप्पमत्तस्स एग-समयपरूवणा कदा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहत्तं ॥ २१ ॥

पमत्तस्स ताव बुच्चदे—एक्को अप्पमत्तो पमत्तपज्जाएण परिणमिय सव्बुक्कस्स-मंतोमुहत्तमच्छिय मिच्छत्तं गदो । एवं पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा गदा । अप्पमत्तस्स बुच्चदे—एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण सव्बुक्कस्समंतोमुहत्तमच्छिय पमत्तो जादो । एसा अप्पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा ।

वह इस प्रकार है—पहले प्रमत्तसंयतका एक समय कहते हैं । एक अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवित शेष रहनेपर प्रमत्तसंयत हो गया । प्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिखा, और दूसरे समयमें मरकर देव उत्पन्न हो गया । तब प्रमादविशिष्ट संयम नष्ट हो गया । इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा हुई । अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं—एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयमात्र जीवनेके शेष रह जाने पर अप्रमत्त-संयत हो गया । तब अप्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिखा, और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया । पुनः अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया । अथवा, उपशमश्रेणीसे उतरता हुआ अपूर्वकरणसंयत एक समयमात्र जीवनेके शेष रहनेपर अप्रमत्त हुआ, और द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो गया । इस तरह दोनों प्रकारोंसे अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहत्तं है ॥ २१ ॥

पहले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं—एक अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयतपर्यायसे परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहत्तं कालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार प्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा हुई । अब अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं—एक प्रमत्तसंयतजीव, अप्रमत्तसंयत होकर, वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहत्तं काल तक रह करके प्रमत्तसंयत हो गया । यह अप्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा है ।

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालदो होति, णाणजीवं पडुव्व जह-णेण एगसमयं ॥ २२ ॥

तं कथं ? दो वा तिणि वा अणियट्ठिउवसामगा सेहीदो ओदरमाणा एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अपुव्वकरणउवसामगा जादा । एगसमयमपुव्वकरणेण सह दिट्ठा विदिय-समए मदो देवा जादा । एवमपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा कदा । अप्पमत्तमपुव्वकरणं करिय विदियसमए कालं कराविय अपुव्वकरणस्म एगसमयपरूवणा किण्ण कदेत्ति बुत्ते ण, अपुव्वकरणपटमसमादो जाव णिद्वा-पयलणं वंधो ण वोच्छिज्जदि ताव अपुव्व-करणं मरणाभावा । एवं चेव तिण्हसुवसामगाणमेगसमयपरूवणा णाणाजीवे अस्सिदूण कायव्वा । गवरि अणियट्ठि-सुहुमउवसामगाणं चंडत-ओदरंतजीवे अस्सिदूण देहि पयारेहि एगसमयपरूवणा कादव्वा । उवसंतकसायस्स चंडतजीवे चेय अस्सिदूण एगसमय-परूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहत्तं ॥ २३ ॥

चारों उपशामक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२ ॥

वह इस प्रकार है—उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले दो, अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उप-शामक जीव एक समयमात्र जीवनेके शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए । तब एक समयमात्र अपूर्वकरणगुणस्थानके साथ दिखे । पुन द्वितीय समयमें मरे, और देव हो गये । इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा की ।

शंका—अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरणगुणस्थानमें ले जा करके और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरणगुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—इसलिए नहीं की, कि अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर अब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियोंका बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती संयतोंका मरण नहीं होता है ।

इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा नाना जीवोंका आश्रय करके करना चाहिए । विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोंके एक समयकी प्ररूपणा उपशमश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवोंको आश्रय करके दोनों प्रकारोंसे करना चाहिए । किन्तु उपशान्तकपाय उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवोंको ही आश्रय करके करना चाहिए ।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहत्तं है ॥ २३ ॥

तं कथं ? सत्तद्ध वा चउवणा वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउवसामगा जादा जाव ते अणियद्विद्वणं ण पावेंति ताव अणो वि अणो वि अप्पमत्ता अपुव्वकरणगुणद्वणं पडि-वज्जवेदव्वा । ओयरमाणअणियद्विणो वि अपुव्वकरणं पडिवज्जवेदव्वा । एवं चढं-ओयरंतजीविहि असुणं होदूण अपुव्वकरणगुणद्वणं अच्छदि जाव तप्पाओगउक्कस्संतो-सुहुत्तं ति । तदो णिच्छएण विरहो । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणसुक्कस्सकालपरूवणा कादव्वा । णवरि उवसंतकसायस्स उक्कस्सकाले भणमाणे एगो उवसंतकसाओ चडिय जाव णोअरदि ताव अणो सुहुमसांपराइया उवसंतकसायगुणद्वणं चडवेदव्वा । एवं पुणो संखेज्जवारं चडाविय उवसंतकालो वडुवेदव्वो जाव तप्पाओगुक्कस्सअंतोमुहुत्तं पत्तो ति ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४ ॥

तं कथं ? एक्को अणियद्विउवसामगो एगसमयं जीविदमत्थि चि अपुव्वउवसामगो जादो एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो लयसत्तमो देवो जादो । एवं तिण्हमुवसामगाण-मेगसमयपरूवणा वत्तव्वा । णवरि अणियद्वि-सुहुमउवसामगाणं चढणोयरणाविहाणेण वेहि

वह इस प्रकार है— सात आठसे लेकर चौपन तक अप्रमत्तसंयत जीव एकसाय अपूर्वकरणगुणस्थानी उपशामक हुए । जब तक वे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त करना चाहिए । इसी प्रकारसे उपशामश्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरणगुणस्थानी उपशामक भी अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त कराना चाहिए । इस प्रकार चढ़ते और उतरते हुए जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरणगुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल पूरा होने तक रहता है । इसके पश्चात् निश्चयसे विरह (अन्तराल) हो जाता है । इसी प्रकारसे तीनों ही उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामकोंके उत्कृष्ट कालको कहनेपर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जब तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत उपशान्तकषायगुण-स्थानको चढ़ाना चाहिए । इस प्रकारसे पुनः संख्यातवार जीवोंको चढ़ाकर उपशान्तकाल उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक घड़ाना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २४ ॥

वह इस प्रकार है— एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय दिखा, और द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त हुआ, तथा उत्तम जातिका अनुत्तरविमानवासी देव हो गया । इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण

१ एकजीवोपेक्षया ष जघन्यैक समय । स. सि. १, ८.

पर्यारेहि, चढणमस्सिदूण उवसंतकसायस्स एगपर्यारेण एगसमयपरूवणा कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥

तं जहा— एक्को अप्पमत्तो अपुव्वउवसामगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्त-मन्थिय अणियद्विद्वणं पडिवणो । एवं तिण्हमुवसामगाणं वत्तव्वं ।

चढुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होति, णाणा-जीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

तं कथं ? सत्तद्ध जणा अहुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अप्पमत्तद्वाए खीणाए अपुव्व-करणखवगा जादा । अंतोमुहुत्तमन्थिय अणियद्विद्वणं गदा । एवं चेव चढुण्हं खवगाणं जाणिदूण भाणिदव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७ ॥

तं जथा— सत्तद्ध जणा वा बहुगा वा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वखवगा जादा । ते तत्थ

और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकोंके चढ़ने और उतरनेके विधानकी अपेक्षा दोनों प्रकारोंसे तथा आरोहणका आश्रय करके उपशान्तकषाय उपशामकोंकी एक प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

वह इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी उपशामक हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २६ ॥

वह इस प्रकार है— सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ, अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए । वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुए । इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य और अयोगिकेवली, इन चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा जान करके कहलाना चाहिए ।

चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७ ॥

वह इस प्रकार है — सात आठ जन अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण

१ सत्क्येणान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

२ चतुर्णां क्षपकाणामयोगिकेवलीनां ष नानाजीवोपेक्षया एकजीवोपेक्षया ष जघन्यमोत्कृष्टमान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियद्विणो जादा । तस्मिं चैव समए अणो अप्पमत्ता अपुव्वखवगा जादा । एव पुणो पुणो संखेज्जचारं चट्ठणकिरियाए कदाए गाणाजीवे अस्सिदूण अपुव्व- करणुक्कस्सकालो होदि । एवं चैव चट्ठहं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८ ॥

तं जहा—एक्को अप्पमत्तो अपुव्वकरणो जादो अंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियद्विखवगो जादो । एवं चैव चट्ठहं खवगाणं जहणकालपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एक्को अप्पमत्तो अपुव्वखवगो जादो । तस्य सव्बुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणि- यद्विगुणद्वयं पडिक्खणो । एगजीवमस्सिदूण अपुव्वकरणुक्कस्सकालो जादो । एवं चैव चट्ठहं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं । एत्थ जहणुक्कस्सकाला वे वि सरिसा, अपुव्वादि- परिणामाणमणुकट्टीए' अभावादो ।

गुणस्थानी क्षपक हुए । वे चहां पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिच्छितकरण गुणस्थानी हो गये । उसी ही समयमें अन्य अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए । इस प्रकार पुनः पुनः संख्यातवार आरोहणक्रियाके करने पर नाना जीवोंका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकका उत्कट काल होता है । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिये ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

यह इस प्रकार है — एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिच्छितकरण क्षपक हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिये ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका उत्कट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ । यहां पर सर्वोत्कट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिच्छितकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह एक जीवको आश्रय करके अपूर्वकरणका उत्कट काल हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिये । यहां पर जघन्य और उत्कट, ये दोनों ही काल सद्यः हैं, क्योंकि, अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिका अभाव होता है ।

विशेषार्थ— यहां पर अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिके अभाव कहनेका

१ अंतोमुहुत्तमेते परिधमयमसद्वलोगपरिणामा । कमवट्टुपुव्वगुणे अनुकट्टो नाधि निमवेण ॥ गो. जी. ५३. यद्वा उभरिपमाका देट्टयमामोहिं सरिगाा गत्थि । तग्ग विदिथं कल्लं अनुव्वकरणं ति भिरिट्ठं ॥ उच्चि. ५१. तत्र अनुकट्टिनाम अवत्तनमयपरिणामखडानां उपपत्तिनमयपरिणामसंघे सादरयं भवति । गो. जी. जी. प्र. ४९. अपूर्वकरणगुणस्थाने नियमेन अवयवमामेन अनुकट्टिनीति, तत एव प्रतिधमयपरिणामानां अनुकट्टिविधानामास. । गो. जी. मं. प्र. ५३.

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो हंति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ ३० ॥

तिसु वि कालेसु जेण एक्को वि समओ सजोगिपरिहिदो गत्थि तेण सव्वदत्तणं जुज्जदे ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१ ॥

तं कथं ? एहो सीणकमाओ मजोगी होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय ममुग्घादं करिय पच्छा जोगणिरोंहं किच्चा अजोगी जादो । एवं सजोगिस्स जहणकालपरूवणा एगजीवं मल्लीणा गदा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा' ॥ ३२ ॥

अभिप्राय इस प्रकार है— विनाशित समयमें विद्यमान जीवके जघन्यतन ममयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ मद्यता होनेको अनुकृष्ट कहते हैं । अथ प्रवृत्तकरणमें भिन्न ममयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सद्यता पाई जाती है, इसलिए यहां पर अनुकृष्टि रचना बतलाई गई है । किन्तु अपूर्वकरण आदिमें उपरितन ममयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी जघन्यतन ममयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सद्यता नहीं पाई जाती है, इसलिए अपूर्वकरण आदिमें अनुकृष्टि रचनाका अभाव होता है । इसी कारण अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंके जघन्य काल और उत्कट काल, मद्यता बतलाये गये हैं ।

नयोजिकेवली तिन कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व- काल होते हैं ॥ ३० ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें एक भी समय सयोजिकेवली भगवावसे विरहित नहीं है, इसलिए सर्व कालपना बन जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोजिकेवलीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१ ॥

यह इस प्रकार है — एक क्षीणकयायवीतरागद्वयस्य संयत जीव सयोजिकेवली हो, अन्तर्मुहूर्त काल रह, समुखात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोजिकेवली हुआ । इस प्रकार सयोजिजिनेके जघन्य कालकी प्ररूपणा एक जीवका आश्रय करके कही गई ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोजिकेवलीका उत्कट काल कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३२ ॥

१ सयोजिकेवलीनां नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । उ. वि. १, ८.

२ पुव्वकीवं प्रति जघन्येनात्तर्मुहूर्तं । उ. वि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पूर्वकोटी रेखोना । उ. वि. १, ८.

तं जथा- एको खइयसम्मादिट्ठी देवो वा णेरइओ वा पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो । सत्त मासे गम्भे अन्निदूण गन्भपवेसणजम्मेण अट्ठावस्सिओ जादो (८) । अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवणो (१) । पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) अप्पमत्तद्वाने अघापमत्तकरणं कादूण (३) अपुव्वकरणो (४) अणियट्ठिकरणो (५) सुहुमखवगो (६) खीणकसाओ (७) होदूण सजोगी जादो । अट्ठहि वस्सेहि सच्चहि अंतोमुहुचेहि ऊणपुव्वकोडिकालं विहरित्ता अजोगी जादो (८) । एवं अट्ठहि वस्सेहि अट्ठहि अंतोमुहुचेहि य ऊणपुव्वकोडी सजोगिकेवलिकालो होदि ।

(ओघपरूवणा समत्ता) ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ ३३ ॥

कुदो ? णिरयगदिम्हि सव्वकालं मिच्छादिट्ठिवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४ ॥

वह इस प्रकार है — एक क्षणिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । सात मास गर्भमें रह करके गर्भमें प्रवेश करनेवाले जन्म-दिनसे आठ वर्षका हुआ (८) । आठ वर्षका होने पर अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान सम्यग्धी सहस्रों परिवर्तनोंका करके (२) अप्रमत्त-संयत गुणस्थानमें अघ-प्रवृत्तकरणको करके (३) क्रमशः अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६), और क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य होकर (७), सयोगि-केवली हुआ । पुनः वहाँ पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण विद्यार करके अयोगिकेवली हुआ (८) । इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण सयोगिकेवलीका काल होता है ।

(इस प्रकार ओघ परूपणा समाप्त हुई) ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें सर्वकाल मिथ्यादृष्टियोंके व्युच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४ ॥

१ विशेषण गम्भुवादेन नरकगतौ नारकेषु सत्तस पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व कालः ।

स. सि. १, ८

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स. सि. १, ८.

तं जथा- एको सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा पुव्वं पि बहुवारपरि-णमिदमिच्छत्तो संकिलेसं पूरेदूण मिच्छादिट्ठी जादो । सव्वजहणमंतोमुहुत्तकालमच्छिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवणो । एवं मिच्छादिट्ठिस्स जहणकाल-परूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३५ ॥

तं जहा- एको तिरिक्खो मणुसो वा सत्तमाए पुढवीए उववणो । तत्थ मिच्छत्तेण सह तेत्तीसं सागरोवमाणि अच्छिय उवट्ठिदो । लद्धाणि णेरइयमिच्छादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सासनसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३६ ॥

कुदो ? णिरयगदिम्हि एदेसिं दोण्हं गुणद्वानां णाणेगजीवजहणुकस्सपरूवणां एदेसिं चेव ओघणोणगजीवजहणुकस्सपरूवणाहिंतो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ ३७ ॥

वह इस प्रकार है — एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, जो कि पहले भी बहुत बार मिथ्यात्वको परिणत हो चुका है, संक्षेपको पूरित करके मिथ्यादृष्टि हो गया । वहाँ पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, विद्युद्ध होकर, सम्यक्त्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालको परूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोपम है ॥ ३५ ॥

वह इस प्रकार है — एक तिर्येच अथवा मनुष्य सातवों पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर मिथ्यात्वके साथ तेत्तीस सागरोपम काल रह कर बाहर निकला । इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टिके तेत्तीस सागरोपम उपलब्ध हुए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंका एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें इन दोनों गुणस्थानोंके नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य काल और उत्कृष्ट कालकी परूपणाओंका इन्हीं दोनों गुणस्थानोंकी ओघगत नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी परूपणाओंसे भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३७ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेः सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? गिरयगदिग्धि असंजदसम्मादिट्ठिविरिहदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८ ॥

तं जहा— एगो भिच्छादिट्ठो वा सम्माभिच्छादिट्ठो वा सम्मत्ते बहुवारं पुवं परि-
यड्ढिदूण अच्छिदो विमुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिक्खणो । तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय
सम्माभिच्छत्तं भिच्छत्तं वा गदो । एवं गिरयगदिअसंजदसम्मादिट्ठिस्स जहणकाल-
परूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३९ ॥

तं जथा— एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीसंतकम्मिओ भिच्छादिट्ठो सत्तमाए
पुडवीए उववणो । छहि पज्जचीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३)
वेदगसम्मत्तं पडिक्खणो । पुणो अंतोमुहुत्तचवेससअड्ढिदीए भिच्छत्तं गदो (४) । आउगं
बंधिदूण (५) अंतोमुहुत्तं विस्समिय (६) उवड्ढिदो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि उणाणि
तेत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो ।

क्योकि, नरकगतिये असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोसे विरहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८ ॥

वह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि सम्य-
क्त्वमें पहले बहुतवार परिवर्तन कर चुका है, पुनः विमुद्ध हो करके सम्यक्त्वको प्राप्त
हुआ । वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा मिथ्यात्वको
प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे नरकगतिये असंयतसम्यग्दृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ ३९ ॥

वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखने वाला एक
तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । पुनः छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (१), विग्राम लेता हुआ (२), विमुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ।
पुनः अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण आयुर्कर्मकी स्थितिके अवशेष रखने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ
(४) । वहाँ आगामी भवकी आयुको बाँचकर (५), अन्तर्मुहूर्त काल विग्राम लेकर (६),
निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिका
उत्कृष्ट काल होता है ।

१ एकजीव प्राति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. वि. १, ८.

पढमाए जाव सत्तमाए पुडवीए गेरइएसु भिच्छादिट्ठो केवचिरं
कालादो होति, णाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४० ॥

कुदो ? भिच्छादिट्ठिविरिहदसत्तहं पुडवीणं सव्वद्धा अभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४१ ॥

तं जहा— अप्पण्णो पुडवीसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठो सम्माभिच्छादिट्ठो वा बहुसो
भिच्छत्तचरो परिणामपच्चण भिच्छत्तं गदो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्विल्लगुणेषु
अण्णदरगुणं गदो । एवं सत्तहं पुडवीणं भिच्छादिट्ठिपादकर्मंतोमुहुत्तपरूवणा कदा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिणि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं
सागरोवमाणि ॥ ४२ ॥

पढमाए पुडवीए एकं सागरोवमं, विदियाए पुडवीए तिणि सागरोवमं, तदियाए
पुडवीए सच्च सागरोवमाणि, चउत्थीए पुडवीए दस सागरोवमाणि, पंचमीए पुडवीए
सत्तारस सागरोवमाणि, छट्ठीए पुडवीए वावीस सागरोवमाणि, सत्तमीए पुडवीए तेत्तीस

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित सातों पृथिवियोंके नारकियोंका सर्वकाल अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४१ ॥

वह इस प्रकार है— अपनी अपनी पृथिवियोंमें स्थित, तथा जिसने पहले भी
बहुतवार मिथ्यात्वको प्राप्त किया है ऐसा कोई असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि
जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहाँ पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल
रह करके पूर्वोक्त दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे
सातों पृथिवियोंके प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की गई ।

उक्त सातों पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक सागरो-
पम, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपमप्रमाण है ॥ ४२ ॥

प्रथम पृथिवीमें एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें तीन सागरोपम, तृतीय पृथिवीमें
सात सागरोपम, चौथी पृथिवीमें दस सागरोपम, पाँचवीं पृथिवीमें सत्तरह सागरोपम, छठी
पृथिवीमें बाईस सागरोपम, और सातवीं पृथिवीमें तेतीस सागरोपम मिथ्यादृष्टि नारकोंका

१ तेत्तेकविंसदससत्तहद्वारविंशतिवयल्लिखसागरोपमा सत्तानां परा स्थितिः । तत्तार्यप्. ३, ९.
उत्कर्षेण यथासंख्यं एरु-त्रि-सप्त-दश-द्वाविंशति-त्रयविंशत् सागरोपमानि । स. वि. १, ८.

सागरोवमाणि मिच्छादिद्विस्स उक्कस्सकालो । कुदो ? एदेहिंतो अधिगंधाभावा । तं पि कुदो णव्वदे ?

एकं तियं सत्त दस तह सत्ताह दु-तिहदेक्कअधिय दस ।

उवही उक्कस्सदिदी सत्तण्ह होइ पुढवीणं ॥ ३४ ॥

इदि णिरयाउबंधसुत्तादो ।

सासणसम्मादिदी सम्मामिच्छादिदी ओधं ॥ ४३ ॥

कुदो ? दोण्हं गुणद्वानाणं गाणाजीवे पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण दोण्हं पि पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छ आवलियाओ अंतोमुहुत्तमेवमादिणा भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिदी केवचिरं कालादो होंति, गाणाजीवं पडुच्च संववद्धा ॥ ४४ ॥

तं जहा- सत्तण्हं पुढवीणं असंजदसम्मादिद्विरिदिदणं सव्वद्वाणुवलंभादो ।

उत्तए काल है, क्योंकि, इनसे अधिक आयुबंधका अभाव है ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है कि सूत्रोक कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ?

समाधान— एक, तीन, सात, दश, तथा सत्तरह सागरोपम, तथा दोसे गुणित एक अधिक दश (२×११=२२) अर्थात् चारस सागरोपम, तथा तीनसे गुणित ग्यारह (३×११=३३) अर्थात् तेलीस सागरोपम, इस प्रकार सातों पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ॥ ३४ ॥

इस नारकायुके बंधमदर्शक सूत्रसे जाना जाता है कि सूत्रोक कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ।

सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीव सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल ओधके समान है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल दोनों गुणस्थानोंका पल्योपमके असंख्यातवै भाग है । एक जीवकी अपेक्षा दोनों गुणस्थानोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल छह आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इत्यादि रूपसे कोई भेद नहीं है

सातों पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४४ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है — कि सातों पृथिवियां किसी भी कालमें असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित नहीं पाई जाती हैं ।

१ वा क प्रश्नो. 'एकदिदा' अत्रा 'एकद्विय' इति पाठ ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४५ ॥

तं जहा—सत्तसु पुढवीसु द्विदवहुसो सम्मत्तचरअट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी वा सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो । एसो सत्तसु पुढवीसु असंजदसम्मादिद्विजहणकालो परुविदो ।

उक्कस्सं सागरोपयं तिणि सत्त दस सत्तारस वावीस तेतीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४६ ॥

तं जहा—एको तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिद्वी पढमाए पुढवीए वा एवं जाव सत्तमीए वा उवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) । सम्मत्तेण अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदि-मच्छिय णिप्फिडिदूण मणुसेसु उवण्णो । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदी असंजदसम्मादिद्विउक्कस्सकालो होदि । णवरि सत्तमाए छहि अंतो-मुहुत्तेहि ऊणा उक्कस्साउट्ठिदि चि वत्तवं, तत्थ मिच्छत्तगुणेण विणा णिग्गमाभावा ।

एक जीवकी अपेक्षा सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४५ ॥

वह इस प्रकार है— सातों ही पृथिवियोंमें स्थित पूर्वमें अनेकवार सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हो कर और अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । यह सातों ही पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल प्ररूपण किया गया ।

सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ कम एक सागरोपम, तीन, सात, दश, सत्तरह, चारस और तेलीस सागरोपम है ॥ ४६ ॥

वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखने वाला एक तिर्यच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव पहली पृथिवीमें, अथवा दूसरी पृथिवीमें, इस प्रकारसे लगा कर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४), सम्यक्त्वके साथ अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुर्कर्मकी स्थितिप्रमाण रह करके वहाँसे निकलकर, मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकारसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुस्थिति ही उस उस पृथिवीके असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है । विशेष बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम उत्कृष्ट स्थिति होती है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, वहाँसे मिथ्यात्वगुणस्थानके विना निर्गमनका अभाव है, अर्थात् मिथ्यात्वके अतिरिक्त अन्य गुणस्था-

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि आउअं वंधिय विस्संतो होदणं मिच्छत्तं गंतूण सत्तमपुडवीदो गिस्सरिदे सम्मत्तकालो बहुगो लब्भदि त्ति बुत्ते ण, सत्तमपुडविणेरइयाणं मणुसेसुव-वादाभावा । असंजदसम्मादिट्ठिणं पि गिरियतिरिक्खाउवंधाभावा । जेण गुणेण आउअ-बंधस्स संभवो अत्थि, तेणैव गुणेण गिगमादो च ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धां ॥ ४७ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीहि विणा सव्वद्धा तिरिक्खगदीए अनुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुतं ॥ ४८ ॥

तं जहा— एकको सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा बहुसो मिच्छत्तचरो मिच्छत्तं पडिक्खणो । सव्वजहणमतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्तगुणेषु अण्णदगुणं

नोसे निकलना नहीं हो सकता है ।

शंका— असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें आगामी भवकी आयुको धांवकर विश्रान्त होता हुआ मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सातवों पृथिवीसे निकलने पर सम्यक्त्वका काल बहुत प्राप्त होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सातवों पृथिवीके नारकोंका मनुष्योंमें उपापाद नहीं होता है । तथा, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके भी नारक और तिर्यंच और आयुके बंधना अभाव है । दूसरी बात यह भी है कि जिस गुणस्थानसे आयुका बंध संभव है, उस ही गुणस्थानसे उसका निर्गमन भी होता है ।

तिर्यंचगतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके विना किसी भी कालमें तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है । एक जीवोंकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४८ ॥

यह इस प्रकार है— पहले बहुतवार मिथ्यात्वमें भ्रमण किया हुआ एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सयसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण-

१ तिर्यंचगति तिरिक्खा मिथ्यादृष्टीनी नानाजीवपेक्षया सर्वं कालं । स. वि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स. वि. १, ८.

गदो । एवं जहणकालपरवर्णा गदा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठं ॥ ४९ ॥

एकको मणुसो देवो गेरइओ वा अणादियल्लव्वीसितसत्तामिओ मिच्छादिट्ठी तिरिक्खेसु उक्खणो । आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि पोगलपरियट्ठाणि परियट्ठिदूण अण्णगदि गदो । असंखेज्जपोगलपरियट्ठाणि त्ति वयणादो अणंतवलद्धी होदि त्ति अणंतगहणं किण्णावणिज्जदे ? ण, अणंतगहणमंतरेण पोगलपरियट्ठस्स अणंतवलद्धीए उच्चायाभावादो । पोगलपरियट्ठाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि चेवेत्ति कथं णव्वदे ? आहरियपरंपरागदवक्खाणा तदव्वगदीए ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ५० ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहणुक्कस्सपरवर्णाहि विसेसाभावा ।

स्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालको प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४९ ॥

मोहकर्मकी छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, देव अथवा नारकी अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । चर्चापर आवलीके असंख्यातवै भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंको परिवर्तित करके अन्य गतिको चला गया ।

शंका— 'असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन' इस प्रकारसे वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, इसलिये सूत्रमेंसे 'अनन्त' पदका ग्रहण क्यों नहीं निकाल दिया जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनन्तपदके प्रद्वण किए विना पुद्गलपरिवर्तनके अनन्तताकी उपलब्धिसा और कोई उपाय नहीं है ।

शंका— तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके यताये गये उक्त पुद्गलपरिवर्तन, 'आवलीके असंख्यातवै भागमात्र ही होते हैं, 'यह कैसे जाना ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आचार्य-परम्परागत व्याख्यानसे उक्त यातका ज्ञान होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोका काल ओघके समान है ॥ ५० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धो जघन्य और उत्कृष्ट कालको प्ररूपणाओंके साथ इन दोनोंकी कालप्ररूपणाओंमें कोई विशेषता नहीं है ।

१ उत्कर्षेणानन्तं कालोऽप्यस्येया पुद्गलपरिवर्ता । स. वि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः । स. वि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ५१ ॥

कुदो ? तीदाणागद-वट्ठमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिट्ठिरिक्खसगदीए अभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुतं ॥ ५२ ॥

तं जथा—एक्को मिच्छादिट्ठी वा सम्माभिच्छादिट्ठी वा संजदासंजदो वा परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । सव्वलहुमंतोमुहुच्चमच्छिय विसोहीए दुक्कओ संजमासंजमं गदो, संकिलेसेण दुक्कओ मिच्छत्तं सम्माभिच्छत्तं वा गदो । एवं जहण-कालपरुवणा गदा ।

उक्कस्सेण तिणि पल्लोवमाणि ॥ ५३ ॥

तं जथा—एक्को मणुस्सो वट्ठतिरिक्खाउओ सम्मत्तं धेचूण दंसणमोहणीयं खवि य देवुचकुरतिरिक्खेसु उववणो । तिणि पल्लोवमाणि तत्थ सम्मत्तेण सह अच्छिय मदो

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित तिर्यचगति नहीं पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोक्का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५२ ॥

वह इस प्रकार है—एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यच जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धिसे बढ़ता हुआ संयमासंयमको प्राप्त हो गया । पुनः संक्षेपसे बढ़ता हुआ मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचका उत्कृष्ट काल तीन पल्लोपम है ॥ ५३ ॥

वह इस प्रकार है—बद्धतिर्यगायुक्क एक मनुष्य सम्यक्त्वको ग्रहण करके, और वर्चानमोहनीयका क्षय कर, देवकुर या उत्तरकुरके तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर तीन पल्लोपम कालप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रह कर मरा, और देव हो गया । इस प्रकारसे

१ अवयवसंयतसम्यग्दृष्टीनाजीवोपेक्षया सर्व-काल । सं. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति अकन्येनान्तर्मुहूर्त । सं. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रीणि पल्लोपमाणि । सं. सि. १, ८.

देवो जादो । एवं तिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो परुविदो ।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ५४ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु संजदासंजदविरहिट्ठिरिक्खाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुतं ॥ ५५ ॥

तं जथा—अट्ठवीसंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा परिणाम-पच्चएण संजमासंजमं गदो । सव्वलहुमंतोमुहुच्चमच्छिय पुण्डुत्ताणमेक्कदरं गदो ।

उक्कस्सेण पुण्वकोडी देसूणा ॥ ५६ ॥

एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी अट्ठवीसंतकम्मिओ सण्णिपंचिदिय-तिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तमंडूक-कच्छ-मच्छवादीसु उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) संजमासंजमं पडिक्खो । एदेहि तीहि अंतोमुहुचेहि उणपुण्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल कहा ।

संयतासंयत तिर्यच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें संयतासंयतोंसे रहित तिर्यचोंका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५५ ॥

वह इस प्रकार है—मोहकर्मकी अट्ठवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हो गया । (इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल सिद्ध हुआ ।)

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यचका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्णप्रमाण है ॥ ५६ ॥

मोहकर्मकी अट्ठवीस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला एक तिर्यच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि, संक्षी पंचेन्द्रिय सम्मूच्छिम पर्याप्त मंडूक, कच्छप आदि तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विध्याम लेकर (२), और विशुद्ध होकर (३), संयमासंयमको प्राप्त हुआ । इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया । (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ ।)

जैसे, एक देव, नारकी, मनुष्य, अथवा विवाहित पंचेन्द्रिय तिर्यक्से विभिन्न अम्बु तिर्यक् अथवा, विवाहित पंचेन्द्रिय तिर्यचोमं उत्पन्न हुआ। वहां पर सभी स्त्री, पुरुष भारी

यिंदोर बात यह है कि पंचेन्द्रिय त्रिचर्यातन्त्रां में सैतालीस पूर्वज्ञोदियों तक भ्रमण कराके पीछे तीन पल्योपमवाले त्रिचर्या में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, अवयर्विज्ञातता के

१ प्रतिगु 'दमपुषत' इति पाठः ।

कुदो ? अपज्जसत्तेण एदेसिमपरिणदाणं पच्छा सेसपुव्वकोडीओ परिभमणे संभावा । अपज्जसत्तएसु कधमित्थिवेदस्स संभवो ? ण, अपज्जचित्थिवेदानमणोणविरोहाभावा । पंचिदियतिरिक्खजोणिीसु पण्णारस पुव्वकोडीओ भमाविय पच्छा देवुत्तरकुवेसु उप्पादेद्वज्जो । कुदो ? वेदंतरसंक्रंतीए अभावादो । गत्थि अण्णो कोइ विससो ।

सासनसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिदियतिरिक्खेसु द्विददोगुणद्वानं गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेअदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छावलियाओ अंतोमुहुत्तमिदि एदेहि विससाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, गाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ६१ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिदियतिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरिहदकालाभावा ।

साथ अपरिणत रुप, अर्थात् लब्धपर्याप्तक रुप विना, उक्त जीवोंके पश्चात् शेष पूर्वकोटियां परिभ्रमण करना संभव नहीं है ।

शंका—लब्धपर्याप्तकोंमें खीवेद कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, लब्धपर्याप्त और खीवेद, इन दोनों अवस्थाओंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें पन्द्रह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुर और उत्तरकुरमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, भोगभूमिमें वेद-परिवर्तनका अभाव है । इसके सिवाय अन्य कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें स्थित उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल पल्लोपमका असंख्यतवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल छह आंवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानोंसे उक्त तीनों पंचेन्द्रिय जीवोंके कालोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदांसजदो वा विसोहि-संकिलेसवसेण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अविणट्ठसंकिलेस-विसोहीहि पडिवण्णगुणंतरस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ६३ ॥

पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तणं संपुणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । कुदो ? मणुस्सस्स चद्धतिरिक्खाउअस्स सम्मत्तं घेचूण दंसणमोहणीयं खविय देवुत्तरकुर-पंचिदियतिरिक्खेसुववज्जिय अप्णो आउट्ठिदिमणुपालिय देवेसुप्पणस्स संपुणतिण्णि-पलिदोवममेत्तसांसंजमसम्मत्तकालुवलंभादो । पंचिदियतिरिक्खजोणिीसु देसूणतिण्णिपलिदोवमाणि । कुदो ? तिरिक्खस्स मणुस्सस्स वा अट्ठावीसंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स देवुत्तरकुरपंचिदियतिरिक्खजोणिीसु उप्पज्जिय वे मासे गब्भे अज्झिदूण निक्खंतस्स मुहुत्तपुघत्तेण विसुदो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय मुहुत्तपुघत्तम्भहिय-वे-मासूणतिण्णि

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

क्योंकि, कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यच यथाक्रमसे विशुद्धि, अथवा संक्लेशके वशासे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, अविनष्ट संक्लेश और विशुद्धिके साथ यथाक्रमसे दूसरे गुणस्थानको प्राप्त हुआ, ऐसे जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्लोपम, तीन पल्लोपम और कुछ कम तीन पल्लोपम है ॥ ६३ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंका सम्पूर्ण तीन पल्लोपम उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, चद्धतिरिगायुष्क मनुष्यके, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षण कर, देवकुर या उत्तरकुरके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके तो सम्पूर्ण तीन पल्लोपममात्र असंयमसहित सम्यक्त्वका काल पाया जाता है । पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें कुछ कम तीन पल्लोपम काल है । क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले तिर्यच अथवा मनुष्य मिथ्या-दृष्टि जीवके देवकुर अथवा उत्तरकुरके पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें उत्पन्न होकर, और दो मास गर्भमें रहकर, जन्म लेनेवाले, और मुहूर्तपुण्यक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको

पलिदोवमाणि सम्मचमणुपालिय देवसुववणस्स देवणतिण्णिपलिदोवमेचसम्मच-
कालुवलंभादो ।

संजदासंजदा ओघं ॥ ६४ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिदियतिरिक्खेसु गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च
जहणेण अंतोमुहुत्तं, उक्खसेण पुव्वकोडी देवणा, इच्चइणा भेदाभावा । गवरि जोगिणीसु
वे मासे अंतोमुहुत्तेहि जणिया चि वत्तवं ।

**पंचिदियतिरिक्खअपज्जा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं
पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६५ ॥**

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खअपज्जचविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं ॥ ६६ ॥

कुदो ? एहंदिय-वेहंदिय-तेहंदिय-चउरिंदियपज्जत्त-अपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त
मणुसपज्जत्तापज्जत्तएसु अण्णदरस्स खुद्दाभवगहणावुड्डिदपंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु

प्राप्त करके मुहूर्तपृथक्चसे अधिक दो मास कम तीन पल्लोपम तक सम्यक्त्वको अनुपालन
करके देवोंमें उत्पन्न होने वाले जीवके कुछ कम तीन पल्लोपमप्रमाण सम्यक्त्वका काल
पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय संयतासंयत तिर्यंचोका काल ओघके समान
है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक
जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण होता है,
इत्यादि रूपसे भेदका अभाव है । विशेष बात यह है कि योनिमतियोंमें दो मास और कुछ
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम, अर्थात् जन्मसे लेकर शीघ्रातिशय संयमासंयमको ग्रहण करने तकके
कालसे हीन, ऐसा काल कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यंच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६५ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यंच जीवोंसे रहित कोई भी काल नहीं
पाया जाता ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त तिर्यंचोका जघन्य काल क्षुद्रभव-
ग्रहणप्रमाण है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय, क्षीन्द्रिय, शीन्द्रिय, बहुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक,
पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक, तथा मनुष्य पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमेंसे किसी एक जीवके
क्षुद्रभवग्रहणकी आयुस्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर,

उववज्जिय सव्वजहणकालमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स खुद्दाभवगहणमेत्तअप-
ज्जत्तकालुवलंभा ।

उक्खसेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

कुदो ? पुव्वुत्ताणमण्णदरस्स पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववज्जिय सणि-
असणि-अपज्जत्तएसु अट्ठइवारसुपज्जिय गिस्सरिदूण पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतो-
मुहुत्तमेत्तुक्खसकालुवलंभा ।

**मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं
कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६८ ॥**

कुदो ? तिविधेषु वि मणुस्सेसु मिच्छादिद्वि-विरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६९ ॥

कुदो ? सम्माभिच्छादिद्विस्स असंजदसम्मादिद्विस्स संजदासंजदस्स वा संकिलेस-

और वहाँ पर सर्व जघन्य काल रह कर, पूर्वोक्त पंचेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए
जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अपर्याप्तकाल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यंचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ६७ ॥

क्योंकि, पूर्वमें कहे गये पंचेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकके पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध-
पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, संज्ञा और असंज्ञी लब्धपर्याप्तकोंमें आठ आठ बार उत्पन्न होकर,
और उनमेंसे निकलकर, पूर्वोक्त जीवोंमेंसे किसी एक जीवकी पर्याप्तको प्राप्त हुए जीवके
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कोई काल नहीं
पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिके, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टिके, कथवा संयतासंयतके

१ मनुष्यगतीं महत्त्येह भिग्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । स. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

वसेण मिच्छत्तं गंतूणं सब्बजहणंमंतोमुहुत्तमिच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स तिसु वि मणुस्सेसु अंतोमुहुत्तमेत्तमिच्छत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणन्भहियाणिं ॥ ७० ॥

कुदो ? अणप्पिदजीवस्स अप्पिदमणुसेसुवज्जिय इत्थि-पुसि-णुसुयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिमसिय अपज्जत्तएसुवज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमिच्छिय पुणो इत्थि-णुसुयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ, पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंदिय देवुत्तरकुवेसु तिणिण पलिदोवमाणि अच्चिय देवेसुववणस्स पुव्वकोडिपुधत्तन्भहियातिणिणपलिदोवम-मुवलंभा । गवरि मणुसमिच्छादिद्विस्स चेय सत्तेचालीसपुव्वकोडीओ अहिया होंति, ण सेसाणं । पज्जत्तमिच्छादिद्वीणं तेवीसपुव्वकोडीओ, मणुसअपज्जत्तएसु तेसिमुप्पत्तीए अभावादो । मणुसिणीमिच्छादिद्वीसु सत्तपुव्वकोडीओ अहियाओ, वेदंतरसंकीए अभावादो ।

संक्षेपके वशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, पूर्वोक्त गुण-स्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें अन्तर्मुहूर्त-मात्र मिथ्यात्वका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि-पृथक्त्ववर्षसे अधिक तीन पल्योपमप्रमाण है ॥ ७० ॥

क्योंकि, अविवाहित जीवके विवाहित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, लक्ष्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, पुन स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्व-कोटियां तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके, देवकुल अथवा उत्तरकुलमें तीन तीन पल्योपमों तक रह करके, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम पाये जाते हैं । विशेष बात यह है कि मनुष्य मिथ्यादृष्टिके ही तीन पल्योपमोंसे अधिक सैंतालीस पूर्वकोटियां होती हैं; शेष मनुष्योंके नहीं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके तेईस पूर्वकोटियां अधिक होती हैं; क्योंकि, मनुष्यलक्ष्यपर्याप्तकोंमें उनकी उत्पत्ति नहीं होती है । मनुष्यनी मिथ्यादृष्टियोंमें सात पूर्वकोटियां अधिक होती है; क्योंकि, उनके वेवपरि-वर्तन नहीं होता ।

१ उत्तरकेण नीणि पस्योपमानि पूर्वकोटीपुव्वक्त्तरैव्यादिक्कानि । व. वि. १, ८.

सासणसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७१ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिद्वीणं सत्तज्जणाणं उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि वि सासणगुणं गदाणं तत्थेगसमयमिच्छिय मिच्छत्तं पडिवण्णाणमेगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥

कुदो ? संखेज्जाणं उवसमसम्मादिद्वीणमुवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयमदि कादूण जावुक्कस्सेण छ आवलियाओ अत्थि ति सासणं पडिवण्णाणं संखेज्जवाराणुसच्चिदसासण-द्वाणमंतोमुहुत्तत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७३ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिद्विस्स उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अत्थि ति सासणं पडिवज्जिय विदियसमए चेव मिच्छत्तं पडिवण्णासासणस्स एगसमयंदसणादो ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि सात आठ जनोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए, तथा वहाँ पर एक समय रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके उत्तरके छ आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंके संख्यात वारोंसे अनुसंचित सासादनगुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य-काल एक समय है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर, दूसरे समयमें ही मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके एक समयप्रमाण काल देखा जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्गान्नीवापेक्षया जघन्येनैक समय । व. वि. १, ८.

२ अतिपु 'सासणार्ण' इति पाठः ।

३ उत्तरकेणान्तर्मुहूर्तः । व. वि. १, ८.

४ एगजीवं अति जघन्येनैक समयः । व. वि. १, ८.

उक्कस्सं छ आवलियाओ' ॥ ७४ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठिस्स उवसमसम्मचद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवज्जिय छ आवलियाओ तत्थ गमिय मिच्छचं पडिवण्णस्स छ-आवलियो-वलंभा ।

सम्माभिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥

पमचमजद-संजदासंजद-अट्ठावीसमोहंसंतकम्मियमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-पच्छायदाणं संखेज्जसम्माभिच्छादिट्ठिणं सव्वजहणंसंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहि-संकिलेस-वसेण सम्मत्त-मिच्छचाणि उवगदाणं सव्वजहणंतोमुहुत्तमुलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७६ ॥

सम्माभिच्छादिट्ठिणं सव्वुक्कस्ससम्माभिच्छचद्धाणं मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहने पर सासावनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलीप्रमाण काल चढ़ां पर यिताकर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके छह आवलीप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत, अथवा संयतासंयत, अथवा मोहकर्मकी अट्टारिस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे पीछे आये हुए संख्यात सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धि और संश्लेशके बराबरी यथाकर्मसे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७६ ॥

मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंसे संख्यात धारमें

१ उत्कर्षेण षडवलिः । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यमोक्तद्वयान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

संजदासंजद-पमत्तसंजदेहि संखेज्जवारमणुत्संचिदद्धानमंतोमुहुत्तमुलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७७ ॥

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स पुव्वुत्तचदुगुणद्वानेषु एगजीवण्णदरगुणपच्छाय-दस्स सव्वजहण्णद्वमच्छिदूण संकिलेस-विसोहिवसेण मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुण-पडिवण्णस्स सव्वजहणंतोमुहुत्तमेचकालुलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७८ ॥

पुव्वुत्तचदुगुणद्वानेषु अदिट्ठमग्गेगजीवण्णदरगुणपच्छायदसम्माभिच्छादिट्ठिस्स दीहद्वमच्छिय देस-सयलसंजमविरहिददोगुणद्वाने गदस्स सव्वुक्कस्संतोमुहुत्तमुलंभा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ ७९ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदमणुत्साणं सव्वकालमणुलंभा ।

संचित हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्वोत्कृष्ट सम्यग्मिथ्यात्वका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, जिसने पूर्वमें मार्ग देखा है, ऐसे पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण-स्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सर्व जघन्य काल रह कर संश्लेश और विशुद्धिके बराबरी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके सर्व जघन्य अन्त-र्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे नहीं देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे जीवके किसी एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके दीर्घ काल तक रह करके देशसंयम और सकलसंयमसे रहित दो गुणस्थानोंमें, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें गये हुए जीवके सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित मनुष्योंका कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वैः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८० ॥

विद्वग्गमिच्छादिद्वि-सम्प्राप्तिच्छादिद्वि-संजदासंजद-पमत्तसंजदगुणद्वानेहिं तो अग-
दस्स सब्बजहणमंतोमुहुत्तुच्चद्वमच्छिय जहणकालाविरोहेण गुणंतरे गदस्स जहणंतोमुहुत्त-
मेवकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिणि पलिदोवमाणि, तिणि पलिदोवमाणि सादिरे-
याणि, तिणि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ८१ ॥

एत्थ सादिरेयसदो दोसु वि तिपलिदोवमेसु संबघणिज्जो, दोण्हं पच्चासच्चिसेण
एगच्चवृत्तगयाणं विसेसणरूपेण पयड्ढादो । तम्हा मणुस-मणुसपज्जत्तएसु सादिरेयाणि
तिणि पलिदोवमाणि, अणत्थ देसूणाणि । कुदो ? ' जहा उदेसो तहा णिहोसो ' वि
णायादो । कथं सादिरेयं ? अट्ठावीसंतकम्मियमिच्छादिद्विस्स पुव्वकोडितिहाए सेसे
चद्धमणुसाउअस्स तदो अंतोमुहुत्तं गंतुण सम्मचं घेतूण दंसणमोहणीयं खविय सम्मचेण

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके असंयतसम्पद्यष्टि मनुष्योंका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८० ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिसने देसे, मिथ्याद्यादि, अथवा सम्यगभिध्याद्यदि अथवा
संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानोंसे आये हुए, तथा सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह
करके अघन्य कालके अविरोधसे गुणस्थानान्तरको प्राप्त हुए जीवके अघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण
काल पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके असंयतसम्पद्यष्टि मनुष्योंका यथाक्रमसे उत्कृष्ट काल तीन पल्यो-
पम, तीन पल्योपम सातिरेक, और देशोन तीन पल्योपम है ॥ ८१ ॥

यहां पर सातिरेक शब्द दोनों ही त्रिपल्योपमों पर संबद्ध करना चाहिये, क्योंकि
प्रत्यासत्तिके वशसे एकत्वको प्राप्त हुए दोनों पदोंके विशेषणरूपसे यह शब्द प्रवृत्त हुआ है
इसलिये मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तिको तो साधिक तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । और
अन्यत्र अर्थात् मनुष्यानीयोंमें, देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । क्योंकि, ' जिस प्रकारसे
उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है ' ऐसा न्याय है ।

शंका—तीन पल्योपमसे सातिरेक अर्थात् अधिक काल कैसे संभव है ?

समाधान—मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तथा पूर्वकोटीके
त्रिभाग दोष रहने पर बांधी है मनुष्य आयुको जिसने ऐसे मिथ्याद्यष्टि मनुष्यके तत्पश्चात् अस्त-
मुहूर्त जाकर सत्यस्त्वकी प्राप्ति करने दर्शनमोहनीयका संप्रण कर सत्यस्त्वके साथ देशोन

१ एक जीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. वि. १, ८.

२ कृत्स्नमे जीने पल्योपमानि सातिरेकानि । स. वि. १, ८.

सह देखणपुव्वकोडितिभागं गमिय तिपलिदोवमाउद्धिदिदेउत्तरकुवेसुपज्जिय अप्पणो
आउद्धिदिमणुपालिय देवेसुपणस्स तिणिपलिदोवमाणुवरि देखणपुव्वकोडितिभासु-
वलंभा । मणुसिणीसु देखणतिणि पलिदोवमाणि, अणदरअट्ठावीसंतकम्मियमिच्छा-
दिद्विस्स तिपलिदोवमिएसु मणुसेसुवज्जिय णव मासे गन्मे अच्छिदूण णिकलंतस्स उचाण-
सेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त दिवसे, रंगतो सत्त दिवसे, अधिरगमणेण सत्त दिवसे, थिर-
गमणेण सत्त दिवसे, कलासु सत्त दिवसे, गुणेषु सत्त दिवसे, अणो वि सत्त दिवसे गमिय
विसुद्धो होदूण सम्मचं पडिवज्जिय अप्पणो आउद्धिदि जीविदूण देवेसु उववणस्स
एगूणवणदिवसेहि अहियणवमासूणतिणिपलिदोवमुवलंभा ।

संजदासंजदपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ ८२ ॥

कुदो ? ओघादो भदाभावा । णवरि संजदासंजदणं सव्वलद्धं जोणिगिक्खमण-
जम्मणुभभवडुवस्सेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो वत्तव्वो, तिरिक्खाणं व मणुस्साणं
अतोमुहुत्तकालेण अणुव्वयगहणाभावा ।

पूर्वकोटीका त्रिभाग बिताकर तीन पल्योपमप्रमाण आयुर्कर्मकी स्थितिवाले देवकुल और
उत्तरकुलओंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुर्स्थितिकी अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके
तीन पल्योपमोंके ऊपर देशोन पूर्वकोटीका त्रिभाग अधिक पाया जाता है ।

मनुष्यानीयोंमें देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । वह इस प्रकारसे है—मोहकर्मकी
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मिथ्याद्याष्टि मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले
भोगभूमियां मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और नौ मास गर्भमें रह कर निकलता हुआ उत्तानशय्या
पर अंगुष्ठ चूसनेरूप आहारसे सात दिन, रंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमनसे सात दिन,
स्थिर गमनसे सात दिन, कलाओंमें सात दिन, गुणोंमें सात दिन, तथा अन्य भी सात दिन
बिताकर, विशुद्ध होकरके सत्यस्त्वको प्राप्त हो, अपनी आयुस्थिति प्रमाण जीवित रह कर
देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उनचास दिवसोंसे अधिक नव मासोंसे कम तीन पल्योपम काल
पाया जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक तीनों प्रकारके मनुष्योंका
उत्कृष्ट वा जघन्य काल ओषके समान है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, ओघवर्णित कालसे इनमें कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि संयता-
संयतोंके सर्वलघु योनि-निष्क्रमणरूप जन्मसे उत्पन्न हुए जीवके आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि-
प्रमाण संयमासंयमका काल कहना चाहिये, क्योंकि, तिर्यचोंके समान मनुष्योंके जन्म लेनेके
पश्चात् अस्तर्मुहूर्त कालसे ही अनुभवतोंके प्रवृत्ति करनेका अभाव है ।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

एइंदियवादर-सुहुम-वि-ति-चउरिंदिय-सणि-असणिणं चिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मणुस-पज्जत्ताणं वा मणुसअपज्जत्तएसु उववज्जिय खुदाभवग्गहणमेवाउडिदिं गमिय पुव्वुत्त-जीविसुपण्णाणं तकाळवलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

पुव्वुत्तपण्णमणुसअपज्जत्तएसु गदेसु तक्काले चैव अण्णणे जीवे मणुसअपज्जत्त-सुप्पादिय उप्पादिय अनुसंधिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेवअणुसंधाण-वारसलागुवलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

पुव्वुत्तजीविहितो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णस्स खुदाभवग्गहणमेव-जहण्णाउडिदिकालदंसणादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८६ ॥

लब्धपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंको अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होते हैं ॥ ८३ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, वादर और सूक्ष्म, तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंखी और संखी पचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके, अथवा मनुष्यपर्याप्तक जीवोंके, लब्ध-पर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थितिको विताकर पूर्वोक्त जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उक्त काल, अर्थात् क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल पाया जाता है ।

लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८४ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें चले जाने पर उसी कालमें ही अन्य अन्य जीवोंको लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न करा करके अनुसंधान करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र अनुसंधानवारोंकी शलाकाएं पाई जाती हैं ।

लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ८५ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवोंसे आकर लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होने-वाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य आयुस्थितिकाळ देखा जाता है ।

उक्त लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८६ ॥

पुव्वुत्तजीविहितो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णस्स अंतोमुहुत्तादो उवरिम-कालवियपण्णमुक्कस्साउडिदियपज्जत्तस्स वि अणुवलंभा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणा-जीवं पडुच्च संवद्धां ॥ ८७ ॥

देवमिच्छादिद्विविरहिदिकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८८ ॥

असंजदसम्मादिद्विस्स सम्मामिच्छादिद्विस्स वा संकिलेसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्व-जहणकालमच्छिय पुव्वुत्तदोगुणद्विगणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेवतकालवलंभा ।

उक्कस्सेण एकत्तीसं सागरोवमाणिं ॥ ८९ ॥

मणुसमिच्छादिद्विस्स दव्वसंजमवलेण एकत्तीससागरोवमाउडिदिदेवसुपण्णजिय मिच्छत्तेण सह अप्पणो आउडिदिमणुपालिय मणुसेसुववण्णस्स एकत्तीससागरोवममेव-देवमिच्छादिद्विकालदंसणादो ।

क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंसे आकर लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके अन्त-र्मुहूर्त काल पाया जाता है, तथा अन्तर्मुहूर्तसे उपरिम कालके विकल्प उत्कृष्ट आयुस्थिति-वाले लब्धपर्याप्तक जीवके भी नहीं पाये जाते ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ८७ ॥

क्योंकि, देवोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके, संक्षेपसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, वहा पर सर्व जघन्य काल रह कर पूर्वोक्त दो गुणस्थानोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल इकतीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥ मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्रव्यसंयमके बलसे इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके साथ अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके इकतीस सागरोपमप्रमाण देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल देखा जाता है ।

* देवगतो देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स हि १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स- हि १-८.

३ उक्कस्सेण कतिशासागरोवमाणे । स हि १, ८.

सासनसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १० ॥

सन्वपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ ११ ॥

देवेषु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स चा विसोहिवसेण सम्मत्तं पडिवज्जिय सव्व-
जहण्णासम्मत्तदुसच्छिय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणदरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालदंसणादो ।

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १३ ॥

उक्कस्साउट्ठिदेवेषुपण्णसंजदस्स भुंजमाणालअस्स घादाभावादो अप्पणो उक्कस्स-
ट्ठिदिं जीविय मणुसेसु उप्पण्णदेवअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवममेत्तकालुवल्लीए ।

सासादनसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिथ्यादष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ १० ॥
क्योंकि, सर्व प्रकारसे, अर्थात् एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा, जघन्य और उत्कृष्ट

कालसे ओघप्ररूपणके साथ कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ११ ॥

क्योंकि, देवोंमें असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२ ॥

क्योंकि, मिथ्यादष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादष्टि देवके विद्युत्तिके वशासे सम्यक्त्वको
प्राप्त होकर, वहां सर्व जघन्य सम्यक्त्वके कालप्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा
सम्यग्मिथ्यात्वमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल देखा
जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागरोपम
है ॥ १३ ॥

उत्कृष्ट आयुकी स्थितिधारक देवोंमें उत्पन्न हुए संयतके मुख्यमान आयुके घातका
अभाव होनेसे अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जीवित रह कर, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
असंयतसम्यग्दष्टि देवके तेत्तीस सागरोपममात्र काल पाया जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दष्टे सम्यग्मिथ्यादष्टेयं सामान्योक्तः कालः । स वि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दष्टेर्नानाजीवोपेक्षया सर्वः कालः । स. वि. १, ८.

३ एकजीवः प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. वि. १, ८.

४ उत्कृष्टेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । स. वि. १, ८.

भवणवासियण्हुडि जाव सदार-सहस्सारकपवासियदेवेषु मिच्छा-
दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ १४ ॥

तिण्हं पि कालाणं देवमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिकालमभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५ ॥

एदस्स अत्थो जघा देवोघस्सिद्दि एदेसिं दोण्हं गुणद्धानाणं जहण्णकालपरूवणा बुत्ता,
तथा भवणवासियण्हुडि जाव सदार-सहस्सारकणो चि मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणं
जहण्णकालपरूवणा कादन्वा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पल्लिदोवमं सादिरेंयं वे सत्त दस चोदस
सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेंयाणि ॥ १६ ॥

एदस्सुदाहरणं- एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी भवणवासियदेवेषु
उववण्णो । पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागम्महिंयं सागरोवमं जीविदणं मिच्छत्तेणव उव-

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार सहस्रार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादष्टि और
असंयतसम्यग्दष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ १४ ॥

क्योंकि, मिथ्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि देवोंसे विरहित तीनों ही कालोंका
अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि देवोंका जघन्य-
काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५ ॥

इस सूत्रका अर्थ, जैसा देवोंके ओघमें इन दोनों गुणस्थानोंकी जघन्य कालप्ररूपणा
कही है उसी प्रकारसे भवनवासीको आदि लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादष्टि
और असंयतसम्यग्दष्टि देवोंकी भी जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त मिथ्यादष्टि और असंयतसम्यग्दष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल साधिक सागरोपम,
साधिक पल्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दश
सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह
सागरोपम है ॥ १६ ॥

इसका उदाहरण— एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादष्टि जीव भवनवासी देवोंमें
उत्पन्न हुआ । वहां पर पल्योपमके असंख्यतवे भागसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर

द्विदो । एसो मिच्छादिद्विणो बद्धआउअघादं पडुच्च कालो वुत्तो । अधवा, अंतोमुहुत्तूण-
अद्धसागरोवमेण सादिरेणं सागरोवमं जीविदूण उव्वद्विदो । एसो सम्मादिद्विणो बद्ध-
आउअघादं पडुच्च उत्तो । एसो भवणवासियमिच्छादिद्वि-उक्कस्सकालो । एकको विरा-
हियंसजदो वेमाणियदेवेसु आउअं बंधिदूण तमोवद्वुणघादेण घादिय भवणवासियेदेवेसु
उववण्णो । छहि पज्जसीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं
पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तूणसागरोवमद्वेण अहियं सागरोवमं तीहि अंतोमुहुत्तूचेहि ऊणयं
सम्मचेण सह जीविदूण उव्वद्विय मणुसो जादो । एसो भवणवासियअंसजदसम्माद्विदिसस
उक्कस्सकालो । वाणवैतर-जोदिसियाणं पि एवं चेव वत्तवं । णवरि अंतोमुहुत्तूणपल्लिदो-
वमद्वेण अहियं पल्लिदोवमं मिच्छनुक्कस्सकालो होदि । एसो चेव कालो तीहि अंतो-
मुहुत्तूचेहि ऊणओ अंसजदसम्माद्विदिसस उक्कस्सकालो होदि । सोधम्मसीणे मिच्छा-
दिद्विस्स उक्कस्सकालो वे सागरोवमाणि पल्लिदोवमस्स अंसखेज्जदिभागेण अन्महियाणि ।
एसो मिच्छादिद्विणो बद्धआउअस्स घादं पडुच्च कालो वुत्तो । सम्मादिद्विणो बद्धेवाउअघादं
पडुच्च अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण अन्महियाणि वे सागरोवमाणि मिच्छनुक्कस्सकालो

मिथ्यात्वके साथ ही पर्यायसे च्युत हुआ । यह मिथ्याद्वि जीवका बद्ध आयुष्कथातकी अपेक्षा
काल कहा । अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हुआ । यह सम्यग्द्वि जीवका बद्धायुष्कथातकी अपेक्षा काल कहा । इस
प्रकार यह भवनवासी मिथ्याद्वि देवोंका उत्कृष्ट काल है । विराधना की है संयमकी जिसने
पेक्षा कोई संयत मनुज्य वैमानिक देवोंमें आयुको बांध करके उसे उद्धर्तनाथातसे घात करके
भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । और छहों पर्यायोंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विधान्त
हो (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरो-
पमसे अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्वके साथ जीवित
रह कर पर्यायसे च्युत हो मनुज्य हुआ । यह भवनवासी असंयतसम्यग्द्विका उत्कृष्ट काल है ।
यानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका भी इसी प्रकारसे काल कहना चाहिए । विशेषतया यह
है कि एक अन्तर्मुहूर्तसे कम आधे पल्लोपमसे अधिक एक पल्लोपम व्यन्तर और ज्योतिष्क
देवोंमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है । यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करने
पर असंयतसम्यग्द्वि व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका उत्कृष्ट काल हो जाता है । सौधर्म और
रेशानकर्ममें मिथ्याद्वि देवका उत्कृष्ट काल पदयोपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो
सागरोपम है । यह मिथ्याद्वि के बद्धायुके घातकी अपेक्षा काल कहा । सम्यग्द्वि जीवके
बद्धेवायुके घातकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम
मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ उगारिदल पडुच्च मणने विरदुगे कमेपरियं । मन्मे मिच्छे घादे पडुच्च तु सज्जत्त ॥ नि. सा. ५३९.

होदि । 'वे सत्त दस' चोद्दस सोलसद्वारस य वीस वावीसा' एदीए गाहाए सह एदस्स
सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयचादो । तं जहा- वुत्तं सुत्तं
वंधपण्डिबद्धं, कालसुत्तं पुण संतमपेक्खिय द्दिमिदि । सणक्कुमार-माहिदे सत्त सागरो-
वमाणि सादिरेयाणि । बम्ह-वम्हत्तरकण्णे दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । लंतव-काविट्ठ-
कण्णे चोद्दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सुक्क-महासुक्केसु सोलस सागरोवमाणि सादिरे-
याणि । सदर-सहस्सारकण्णेषु अद्वारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । जघा देहि पयरोहि
सोधम्मसीणे सादिरेयत्तं परुविदं, तथा एत्थ वि वत्तवं । सोधम्मदि जाव सहस्सारो चि
अंसजदसम्माद्विदिसस उक्कस्सकालो वे सत्त दम चोद्दस सोलस अद्वारस सागरोवमाणि
अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि होति, एदस्स हेट्ठो सम्माद्विद्विस्सुवादाभावा ।

शुका—'सौधर्म-रेशानकल्पसे लगाकर कारण अच्युत कल्प तक क्रमशः 'दो,
सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, वीस और बाईस सागरोपमकी स्थिति होती है' इस
गाथाके साथ, इस उक्त सूत्रका विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूत्र और गाथा, इन दोनोंका विषय भिन्न
भिन्न है । वह इस प्रकारसे है कि उक्त गाथासूत्र तो संघकी अपेक्षा है, किन्तु कालसूत्र
विद्यमान आयुकी अपेक्षा स्थित है ।

सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें कुछ अधिक सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें
साधिक दश सागरोपम, लान्तव-कापिष्ठ कल्पमें साधिक चौदह सागरोपम, शुक्र-महाशुक्र
कल्पमें साधिक सोलह सागरोपम, और शतार-सहस्रार कल्पमें साधिक अठारह सागरोपम
मिथ्याद्विर्गोका उत्कृष्ट काल है । जिस तरह दोनों प्रकारोंसे सौधर्म और रेशान कल्पमें
आयुकी साधिकता प्ररूपण की है, उसी प्रकार यहां पर भी कहना चाहिए । सौधर्म कल्पको
आदि लेकर सहस्रार कल्प तक असंयतसम्यग्द्वि देवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक अन्त-
र्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम,
चौदह सागरोपम, सोलह सागरोपम और अठारह सागरोपम प्रमाण होता है, क्योंकि, इस
कालके नचि सम्यग्द्वि जीवके उपपादका अभाव है ।

१ प्रतिपु 'दस' इति पाठो नास्ति ।

२ पहले विदिए जुगले बन्हाविसु चउसु आणदुगामि । आणदुगे सुदंसणपडुदिसु एकारेसु कमे ॥
दुग सत्त दसं चउदस सोलस अद्वारस वीस वावीसा । तचो एकेकजुदा उक्कसाळ समुदवमाणा ॥
ति. प. ८, ४५८-४५९.

३ बद्धाव पडि मणिद उक्कस्स मज्झिम जहण्णणि । घादाउवमाहेज्ज अण्णसत्त पत्तेमो ॥ ति. प. ८, ४६१

४ मन्मे घादेक्खं सायरेलमयिमभासहस्सा । जलदिदलमुहुत्तुवाळ पडुच्च पडि जाण इणिवय । नि.
सा. ५३९.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परुविदत्तादो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियेदेवसु मिच्छादिट्ठी असंजद-
सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ९८ ॥

कुदो ? एदेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरिहदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहत्तं ॥ ९९ ॥

विशेषार्थ—यहां पर जो बद्ध-आयुधतकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवों के दो प्रकार के कालकी प्ररूपणा की है, उसका अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्यने अपनी संयम-अवस्थामें देवायुका बंध किया । पीछे उसने संक्षेप परिमाणोंके निमित्तसे संयमकी विराधना कर दी और इसीलिये अपवर्तनाघातके द्वारा आयुका घात भी कर दिया । संयमकी विराधना कर देने पर भी यदि वह सम्यग्दृष्टि है, तो मर कर जिस कल्पमें उत्पन्न होगा, वहांकी साधारणतः निश्चित आयुसे अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमप्रमाण अधिक आयुका धारक होगा । कल्पना कीजिए—किसी मनुष्यने संयत अवस्थामें अच्युतकल्पमें संभव थाईस सागरप्रमाण आयुका बंध किया । पीछे संयमकी विराधना और बांधी हुई आयुकी अपवर्तना कर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । पीछे मरण कर यदि सहस्रारकल्पमें उत्पन्न हुआ, तो वहांकी साधारण आयु जो अठारह सागरकी है, उससे घातायुष्क सम्यग्दृष्टि देवकी आयु अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक होगी । यदि वही पुरुष संयमकी विराधनाके साथ ही सम्यक्त्वकी भी विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पीछे मरण कर उसी सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होता है, तो उसकी आयु वहां की निश्चित अठारह सागरकी आयुसे पत्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक होगी । ऐसे जीवको घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

भवनवासीसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९७ ॥

आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नव त्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९८ ॥

क्योंकि, इन कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालक
अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ९९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परुविदत्तादो ।

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं णववीसं छव्वीसं सत्ता-
वीसं अट्ठावीसं एण्णतीसं तीसं एकत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०० ॥

एदेसु एकारससु उक्कस्साउअं वंधिय अप्पण्णो देवेसुप्पज्जिय आउट्ठिमणु-
पालिय मणुसेसुप्पणमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणमप्पण्णो वुत्तुक्कस्सकालुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १०१ ॥

ओघादो गाणेगजीवं पडुच्च भेदाभावा ।

अणुदिस-अणुत्तरविजय-चइजंयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासिय-
देवसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च
सव्वद्धा ॥ १०२ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरिहदतरसण्हं विमाणं सव्वकालमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एकत्तीसं, वत्तीसं सागरोवमाणि सादि-
र्याणि ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, बहुतवार पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

उक्त कल्पवासी देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस,
पचीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम है ॥ १०० ॥

इन सूत्रोंके आरण-अच्युतादि ग्यारह कल्पोंमें उत्कृष्ट आयुको बांधकर और देवोंमें
उत्पन्न होकर, अपनी अपनी आयुस्थितिको परिपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले
मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अपने अपने कल्पका कहा गया उत्कृष्ट काल
पाया जाता है ।

उक्त ग्यारह कल्पोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल
ओघके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, ओघसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा इनके कालमें कोई भेद नहीं है ।
अनुदिश विमानवासी देवोंमें तथा अनुत्तरनामक विजय, वैजयन्त, जयन्त और
अपराजित विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०२ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विराहित उक्त तेरह विमान किसी भी कालमें
नहीं पाये जाते हैं ।

नौ अनुदिश विमानोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल सातिरेक इकतीस
सागरोपम और चार अनुत्तर विमानोंमें साधिक चत्तीस सागरोपम है ॥ १०३ ॥

कुदो ? गुणतरं संकंतीए अभावादो । एत्थ सादियेपमाणेगो समओ, हेडिस्सु-
क्कस्सहिदी समयहिद्या उवरिल्लणं जहण्णहिदी होदि ति आहरियपरंपरागदुवेसादो ।

उक्कस्सेण वचीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०४ ॥

णवसु हेडिमेसु अणुदिसविमाणेसु वचीसं सागरोवमाणि । चदुसु अणुचरविमाणेसु
तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णानि, सुत्ते हि ऊणाहियवयणाभावा ।

संवट्टसिद्धिविमाणवासियेदेवेसु असंजदसम्मादिद्धी केवचिरं
कालदो होति, गाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ १०५ ॥

तिसु वि कालेसु तस्य असंजदसम्मादिद्धिविरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०६ ॥

पुथ सुचारंभादो चेव णव्वदे संवट्टसिद्धिं जहणुक्कस्सहिदी सरिसा ति ।
पुणो जहणुक्कस्सगहणं किमइं कीरदे ? ण तस्स मंददुद्धिजाणुणगहड्डत्तादो ।

एव गदिसगणा समत्ता ।

क्योंकि, इन विमानोंमें अन्य गुणस्थानके संक्रमणका अभाव है । यहाँ पर सातिरेक
(साधिक) का प्रमाण एक समय है, क्योंकि, एक समय अधिक नीचेके विमानकी उत्कृष्ट
स्थिति ही ऊपरके विमानकी जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेशसे
जाना जाता है ।

उक्त विमानोंमें उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे वचीस सागरोपम और तेतीस
सागरोपम है ॥ १०४ ॥

अद्यस्तन नौ अनुविद्या विमानोंमें पूरे बचीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है । चारों
अनुचरविमानोंमें पूरे तेत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, सूत्रमें हीन और
अधिकताके प्रतिपादक वचनका अभाव है ।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें असंयतसम्पदष्टि देव कितने काल तक होते
हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें वहाँ, अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमें, असंयतसम्पदष्टि देवोंके
विरहका अभाव है ।

सर्वार्थसिद्धिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम
है ॥ १०६ ॥

शंका — पृथक् सूत्रके आरम्भसे ही जाना जाता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और
उत्कृष्ट स्थिति सदृश है । फिर भी सूत्रमें जघन्य और उत्कृष्ट पदका ग्रहण किस लिए किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उस पदका ग्रहण मन्दबुद्धि जनोके अनुग्रहके लिए
किया गया है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

१ अ-कर्मको: ' मरदुद्धिजगणाण- ' इति पाठः ।

इंदियाणुवादेण एइदियां केवचिरं कालदो होति, गाणाजीवं
पडुच्च संवद्धा ॥ १०७ ॥

तिसु वि कालेसु एइदियाणं विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ १०८ ॥

अणेइंदियस्स एइदिएसुप्पज्जिय सव्वजहणमेइंदियद्धमच्छिय अणेइंदिए उप्पणस्स
खुदाभवगहणमेत्तएइंदियकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेजयोगलपरियट्ठं ॥ १०९ ॥

अणेइंदियो एइदिएसुप्पज्जिय अदिवहुअं कालं जदि अच्छदि तो आवलियाए
असंखेअदिभागमेत्ताणि चेव योगलपरियट्ठाणि अच्छदि । कुदो ? एदम्हादो उवरि
अच्छणसत्तीए अभावा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ १०८ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियसे रहित अन्य द्वीन्द्रियादिक जीवका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर,
सर्वजघन्य एकेन्द्रिय जीवकी आयुके कालप्रमाण रह करके, पुनः एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य
द्वीन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण एकेन्द्रिय जीवका काल
पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक
असख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १०९ ॥

एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल
रहता है, तो आवलोकिते असंख्यातवै भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है, क्योंकि, इस उक्त
कालसे ऊपर एकेन्द्रियोंमें रहनेकी शक्तिका अभाव है ।

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स ति. १, ८.

२ एकजातं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. ति. १, ८.

३ उत्कर्षणान्तः-कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ता । स ति. १, ८.

बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ११० ॥

बादरेइंदियविराहिकालाभावादो । किमट्टं तेसिं णत्थि विरहो ? सहावदो ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण खुदाभवगहणं ॥ १११ ॥

अणेइंदियस्स सुहुमेइंदियस्स वा बादरेइंदियस्स सव्वजहण्णाउवएसुप्पज्जिय अणिण-
दियं गदस्स खुदाभवगहणमेत्तवादरेइंदियमवाह्दिंए उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११२ ॥

अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो अणेयवियप्पो ति कट्ठु पदरावलियांदिहेट्ठिमविय-
प्पाणं पडिसेहं कादूण उवरिमवियप्पगहणट्ठं असंखेज्जासंखेज्जाणि ति णिदेसो कदो ।
पदर-पल्लादिउवरिमवियप्पपडिसेहट्ठं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिणिदेसो कदो । अणेइंदियो सुहुमे-
इंदियो वा बादरेइंदियस्स उप्पज्जिय तत्थ जदि सुहु महल्लं कालमच्छदि तो असंखेज्जा-

बादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल
होते हैं ॥ ११० ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

शंका—उनका विरह क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ १११ ॥

क्योंकि, किसी अन्य द्वीन्द्रियादि जीवका, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका सर्व
जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुनः अन्य द्वीन्द्रियादिमें उत्पन्न हुए जीवके
क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें
भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है ॥ ११२ ॥

अंगुलका असंख्यातवां भाग अनेक विकल्परूप है, इसलिये प्रतरावली आदि
अधस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध करके उपरिम विकल्पोंके ग्रहण करनेके लिए सूत्रमें 'असं-
ख्यातासंख्यात' ऐसा निर्देश किया । प्रतर, पत्य आदि उपरिम 'विकल्पोंके प्रतिषेध करनेके
लिए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी' इस पदका निर्देश किया है । अन्य द्वीन्द्रियादि अथवा
सूक्ष्म एकेन्द्रिय कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर यदि अति दीर्घकाल

१. प्रविष्टु 'पदरावलियाओ' इति पाठः ।

संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ अच्छदि । पुणो णिच्छएण अण्णत्थ गच्छदि चिं जं
वुत्तं होदि । कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा चि परि-
यम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरुज्झदि चि णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्मवयणं
ण होदि चि तस्सेव ओक्खत्तप्पसगा ।

बादरेइंदियपज्जता केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ११३ ॥

कुदो ? बादरेइंदियपज्जत्ताणं तिसु वि कालेसु विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११४ ॥

सुद्धाभवगहणं संखेज्जावलियमेत्तं, एगं सुहुत्तं छासट्ठिसहस्स-तिसद-छत्तीसरूव-
मेत्तखंडाणि कादूण एगखंडमेत्तत्तादो । एदं पि कथं णव्वदे ?

तिणि सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइ ।

अतोमुहुत्तकाले तावदिया होति खुद्दमवा' ॥ ३५ ॥

तक रहता है, तो असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहता है । पुन निश्चयसे
अन्यत्र चला जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

शंका—'कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करने पर बादर स्थिति
होती है' इस प्रकारके परिकर्म-वचनके साथ यह सूत्र विरोधको प्राप्त होता है ?

समाधान—परिकर्मके साथ विरोध होनेसे इस सूत्रके अवक्षिप्तता (विरुद्धता)
नहीं प्राप्त होती है, किन्तु परिकर्मका उक्त वचन सूत्रका अनुसरण करनेवाला नहीं है,
इसलिए उसके ही अवक्षिप्तताका प्रसंग आता है ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्वकाल होते हैं ॥ ११३ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहुत्त
है ॥ ११४ ॥

क्षुद्रभवग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, क्योंकि, एक मुहुत्तके छयासठ
हजार तीन सौ छत्तीस रूपप्रमाण खंड करने पर एक खंडप्रमाण क्षुद्रभवका काल होता है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—एक अन्तर्मुहुत्त कालमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते
हैं, और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं ॥ ३५ ॥

१ छत्तीस तिणि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि । अंतोमुहुत्तमज्जे पवोसि णिगोयवासम्मि ॥ मावपा. २८.

पि गाहामुत्तादो । मुहुत्तस्स एवदियभागो संसेज्जावलिमेत्तो पि कथं न चन्दे ?

आवलि अणगोरे चस्विदिय-सोद-आण-जिदाए ।

मण-वण-कायफासे अवाय-ईहासुदुत्तासे ॥ ३६ ॥

केवलदसण-गाणे कसायसुकेकर पुथते य ।

पडिवादुवसामेत्य ख्वेतए सपराए य ॥ ३७ ॥

माणद्धा कोथद्धा मायद्धा तह चैव लोमद्धा ।

सुद्धमवगहण पुण निट्टीकरण च बोद्धव्वं ॥ ३८ ॥

इस गायासुत्तसे जाना जाता है कि श्रुद्रमवका काल अन्तमुद्रतका उपासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग है ।

शंका—मुद्रतका उपासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग संख्यात मायलीप्रमाण होता है, यह कैसे जाना ?

समाधान—अनाकार दर्शनोपयोगका अचन्य काल आगे कहे जानेवाले सभी पर्वोंकी अपेक्षा सबसे कम है । (तथापि यह संख्यात मायलीप्रमाण है ।) इससे चन्द्रिरिन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहब्रह्मणका जघन्य काल विशेष अधिक है । इससे, श्रोत्रेन्द्रियजनित अग्रप्रह्वान, इससे घ्राणेन्द्रियजनित मध्यप्रह्वान, इससे क्लिष्टेन्द्रियजनित अग्रप्रह्वान, इससे मनोयोग, इससे वचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शेन्द्रियजनित अग्रप्रह्वान, इससे अवायब्रह्मण, इससे ईशब्रह्मण, इससे श्रुतब्रह्मण और इससे उच्छ्वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३६ ॥

तद्वत्तस्य केवलके केवलब्रह्मण और केवलदर्शन, तथा सकृगाय जीवके शुल्लेक्षया, इन तीनोंका जघन्य काल (परस्पर सहश होते हुए भी) उच्छ्वासके जघन्य कालसे विशेष अधिक है । इससे एकत्ववितर्कजीवाशुल्लेख्यान, इससे पृथक्त्ववितर्कजीवाशुल्लेख्यान, इससे उपशमधेणीसे निरनेवाले सूक्ष्मसागरायसंयत, इससे उपशमधेणीपर चक्रेनेवाले सूक्ष्मसागरायसंयत, और इससे क्षपकधेणीपर चक्रेनेवाले सूक्ष्मसागरायसंयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३७ ॥

संप्रक सूक्ष्मसागरायके जघन्य कालसे मानकगाय, इससे क्रोधकगाय, इससे मायाकगाय, इससे लोभकगाय और इससे लज्जपयति जीवके श्रुद्रमग्रहणका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है । श्रुद्रमग्रहणके जघन्य कालसे रुष्टीकरणका जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

१ कवायपगुहे अदापमिणाधिकारे १-१.

इदि गाहामुत्तादो । अंतोमुहुत्तं पि संसेज्जावलिमेत्तं चेत्त, तदो एदेसिं दोन्दं विसेमो गत्व पि अंतोमुहुत्तवणं मुत्तयं सेदहमुत्पादेदि पि' बुत्ते गत्व सि संदेहो, सुद्धमवगहणमभणिय अंतोमुहुत्तचमिदि मणिदज्जिणादो ताणं विसेमो अतिय चि अव-गम्मेदे । घादसुद्धमवगहणादो नादरेइंदियपज्जत्तजहणाउअं संसेज्जगुणमिदि मणिद-वेअणकालविधाणप्रप्पावहुगादो य । नादरेइंदियपज्जत्तचदिरिचो सव्वजहणाउअवादे-इंदियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अण्णत्थ गदे नादरेइंदियपज्जत्तस्स बहणाकालो लम्भदि चि मणिदं होदि ।

उक्कस्सेण संसेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ११५ ॥

पुढनिकाइएसु गवीम वाससहस्साणि उक्कस्साउअं सुप्पमिदेमत्थिय । नादरेइंदिय-पज्जत्तचमवट्टिदी अमंसेज्जासमेवा किण्ण होदि चि बुत्ते न होदि, तत्थासंसेज्जवार-

इन गायासुत्तसे जाना जाता है कि श्रुद्रमवका काल भी संख्यात मायलीप्रमाण होता है ।

शंका—अन्तमुद्रतं भी तो संख्यात मायलीप्रमाण ही होता है, इसलिये अन्तमुद्रतं और श्रुद्रमग्रहण काल. इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । अतएव यह अन्तमुद्रतका पचनरूप मुत्ताय सन्देहसे उत्पन्न करता है ?

समाधान—इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि, सूत्रमें 'श्रुद्रमवग्रहण' ऐसा पाठ न करके 'अन्तमुद्रतं' ऐसा पचन करनेवाली जिन-आवासे उन दोनोंमें भेद जाना जाता है । तथा, 'घातश्रुद्रमग्रहणकालसे यादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवकी जघन्य आयु संख्यातगुणी है' इस प्रकारके कहे गये वेदनाकालविधानसम्बन्धी अल्पबहुन्यद्वारेसे भी जाना जाता है ।

यादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे व्यतिरिक्त किसी जीवके सव्यं जघन्य आयुवाले यादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमें उत्पन्न होकर, पुनः अन्य पर्याप्तमें चले जाने पर, यादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा यादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ ११५ ॥

पृथिवीकायिक जीवोंमें बाईस हजार वर्षकी उत्कृष्ट आयु सुप्रमिज्ज है ।

शंका—यादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भयस्थिति अमंयात वर्गप्रमाण क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं होती है, क्योंकि, उनमें मसंख्यातवार एक जीवकी उत्पत्ति

१ पत्थिय 'मुत्तादेसि' इति पाठः ।

२ प्रथिय 'एव.तेद-इति पाठः ।

३ प्रथिय 'अहनाउअ' इति पाठः ।

मेजीवस्स उपपत्तीए असंभवा । उक्कस्ससंखेज्जमेत्तं तस्स संखेज्जभागमेत्तं वा वारं जदि उपपज्जदि तो वि असंखेज्जाणि वस्साणि होति ति बुत्ते ण होति, संखेज्जाणि वाससहस्साणि ति सुत्तण्णहाणुववचीदो तप्पाओग्गसंखेज्जवारुप्पत्तिसिद्धीए । अणप्पिदो बादरेइंदियपज्जत्तएस्स संखेज्जाणि वाससहस्साणि उक्कस्सेण तत्थ परिभमिय पुणो अणप्पिदेसु णिच्छएण उपपज्जदि ति भणिदं होदि ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ११६ ॥

कुदो ? एदेत्तिं संवद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएस्स जहणियाए आउद्धिदीए तत्तियमेवाए' उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

कुदो ? अणप्पिदिदिओ बादरेइंदियअपज्जत्तएस्स उपपज्जिय जदि वि संखेज्ज-

असंभव है ।

शंका—यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण घाट, भयवा उसके संख्यातवै भागप्रमाण वार उत्पन्न होता है, तो भी असंख्यात वर्ष तो हो ही जाते हैं ?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय, तो बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल 'संख्यात हजार वर्षप्रमाण है' यह सूत्र-वचन नहीं बन सकता है इसलिये तत्प्रायोग्य संख्यातवार ही बादर एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सिद्ध होती है ।

अविचक्षित कोई जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यातसहस्र वर्षप्रमाण अधिकसे अधिक काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अविचक्षित जीवोंमें निश्चयसे उत्पन्न होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

बादर एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ११७ ॥

क्योंकि, लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य आयुकी स्थिति उतनेमात्र मर्यात् क्षुद्रभव। ग्रहणप्रमाण ही पाई जाती है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११८ ॥

क्योंकि, अविचक्षित इन्द्रियवाला कोई जीव बादर एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तकोंमें

१ प्रतिशु 'वसिष्मेण' इति पाठ ।

सहस्सवारं तत्थेव तत्थेव उपपज्जदि, तो वि तेसु सन्वेसु अंतोमुहुत्तेसु एगद्ध कदेसु वि एगमुहुत्तपमाणाभावा ।

सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ ११९ ॥

कुदो ? संवद्धा सुहुमेइंदियविरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १२० ॥

अणप्पिदिदियस्स सुहुमेइंदियअपज्जत्तएस्स संवजहण्णकालमच्छिय अणप्पिदिदिय गदस्स खुदाभवग्गहणुवलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १२१ ॥

तं जहा—अणिदिदिएहिंतो आगंतूण सुहुमेइंदियसुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तं तेसि-मुक्कस्सभवद्धिदिं तत्थ गमिय अणिदियं गच्छदि । कुदो ? हेउस्सखजिणवयणोवलंमादो ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च संवद्धा ॥ १२२ ॥

उत्पन्न होकर यद्यपि संख्यात सहस्रवार उन उनमें ही उत्पन्न होता है, तथापि उन सभी अन्तर्मुहूर्तोंके एकत्रित करने पर भी एक मुहूर्तप्रमाणका अभाव है, अर्थात् फिर भी पूरा एक मुहूर्त नहीं होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२० ॥

क्योंकि, अविचक्षित इन्द्रियवाले जीवके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लक्ष्यपर्याप्तकोंमें सर्व जघन्य काल रह करके अविचक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, तत्प्रमाण है ॥ १२१ ॥

जैसे, अविचक्षित मन्य इन्द्रियवाले जीवोंसे आकर, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर कोई जीव असंख्यात लोकप्रमाण उनकी उत्कृष्ट भवस्थितिको वहां पर विताकर अन्य इन्द्रियवाले जीवोंमें चला जाता है, क्योंकि, इस प्रकारके हेतुस्वरूप जिन-वचन पाये जाते हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२२ ॥

सन्वद्वासु विरहामात्रा । सो वि कथं गन्वदे ? अण्णहाणुववत्तिहेउलक्खणेव-
लक्खियजिणवयणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुचं ॥ १२३ ॥

केम्महंतं ? तेसि जहण्णाउद्धिमिचं । एत्थ खुद्दामवग्गहणं किण्ण लब्धं दे ? ण,
अपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ तस्स संवामावा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुचं ॥ १२४ ॥

एगउद्धिदो संखेज्जावलियमेत्ता ति कहु संखेज्जवारं वा तत्थेव पुणो पुणो
उपज्जमाणस्स दिवस-पक्ख-मास-उहु-अयण-संवच्छरादिकालो किण्ण लब्धं दे ? ण, तेत्थिय-
चारं तत्थुप्पचीए असंभवा । सो वि कथं गन्वदे ? अंतोमुहुत्तवयणणहाणुववत्तीदो । कथं

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके विरहका अभाव है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—अन्यथाउपपत्तिस्वरूप हेतुके लक्षणसे उपलक्षित जिन-वचनसे जाना
जाता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सर्वदा रहते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

शंका—यह अन्तर्मुहूर्त काल कितना बड़ा लेना चाहिए ?

समाधान—उनकी, अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुके
कालप्रमाण लेना चाहिए ।

शंका—इस सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' के स्थानपर 'क्षुद्रमवग्रहण' इस पदका उपादान
क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, लब्धपर्याप्तक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र उसका, अर्थात्
क्षुद्रमवका होना संभव नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२४ ॥

शंका—अत्र कि एक आयुक्रमकी स्थिति संख्यात आवर्तीप्रमाण है, तब संख्यात-
वार चहा पर ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अथवा
संवत्सर आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उतने वार उस पर्यायमें उत्पत्ति होना असंभव है,
अतने वारमें कि मास, वर्ष आदि प्रमाण स्थितिकाल पाया जा सके ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—अन्यथा, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन नहीं हो सकता था, इस
अन्यथाउपपत्तिसे जाना ।

सज्झ-साहणाणमेयत्तं ? ण, पमाणेणायंता । किंतु एगजीवजहणआउद्धिकालादो
तस्सेवुक्कस्सभवद्धिकालो संखेज्जगुणो, गाणाआउद्धिममूहिणफ्फणत्तादो ।

**सुहुमेहंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो हंति, गाणाजीवं पडुच्च
सन्वद्वा ॥ १२५ ॥**

सुगममंदं सुत्तं, बहुसो परुत्तिदत्तादो । कथमेग-बहुवयणणमेगमहियरणं ? ण एस
दोसो, सन्वत्थ दोण्हमण्णेणाविणाभावुलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दामवग्रहणं ॥ १२६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमवहारकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो वि हंतो
अंतोमुहुत्तामिदि सुत्ते णिहिट्ठो । एसो अपज्जत्ताउद्धिदी जहणिया संखेज्जावलियमेत्ता
अंतोमुहुत्तामिदि सुत्ते किण्ण वुत्ता ? ण एस दोसो, पज्जत्ताउदो अपज्जत्तजहण्णाउअं
संखेज्जगुणह्णिणमिदि पटुप्पायण्डं खुद्दामवग्रहणस्सुवेत्ता ।

शंका—साध्य और साधन, इन दोनोंके एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त कथनमें प्रमाणसे अनेकान्त है, अर्थात्, प्रमाण
स्वयं साध्य होते हुए भी अन्यका साधक होता है ।

किन्तु यथार्थ बात यह है कि एक जीवकी जघन्य आयुस्थितिके कालसे उसीकी
उत्कृष्ट भवस्थितिका काल संख्यातगुणा होता है, क्योंकि, वह नाना आयुस्थितियोंके समूहसे
निष्पन्न होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपण किया गया है ।

शंका—एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका एक अधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्वत्र ही एकवचन और बहुवचन, इन
दोनोंका अविनाभावसम्बन्ध पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रमवग्रहणप्रमाण है ॥ १२६ ॥

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अवधारकाल आवर्तीके असंख्यातवें भागमान
होता हुआ भी 'अन्तर्मुहूर्त' है' ऐसा सूत्रमें निर्देश किया गया है । फिर यह लब्धपर्याप्तक
जीवोंकी जघन्य आयुस्थिति संख्यात आवर्तीप्रमाण होते हुए भी 'अन्तर्मुहूर्तप्रमाण' है,
ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंकी (जघन्य) आयुसे
लब्धपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयु संख्यातगुणी हंत होती है, यह बतलानेके लिए सूत्रमें
क्षुद्रमवग्रहणका उपदेश दिया गया है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परुविदचादो ।

बीहंदिया तीहंदिया चउरिंदिया बीहंदिय-तीहंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ १२८ ॥

उवदेसेण विणा जाणिज्जादि चि सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं, अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥

‘जहा उहेसो तहा णिहेसो’ चि णायादो वि-ति-चउरिंदियाणं जहणकालो खुद्दाभवगहणं, तत्थ अपज्जचाणं संमवा । पज्जचाणं अंतोमुहुत्तं, तत्थ खुद्दाभवगहणस्स संमवामावा ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि' ॥ १३० ॥

तीहंदियाणमेगणवण्णादिवसा उक्कस्साउड्ढिदिपमाणं, चउरिंदियाणं छम्मासा, बीहंदि-

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२७ ॥

पहले बहुतबार प्ररूपण किये जानेसे यह सूत्र सुगम है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रियपर्याप्तक, त्रीन्द्रियपर्याप्तक और चतुरिन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-काल होते हैं ॥ १२८ ॥

उपदेशके विना ही जाना जाता है कि यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १२९ ॥

‘जैसा उद्देश होता है, वैसा ही निर्देश होता है’ इस न्यायसे सामान्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, क्योंकि, उनमें लब्धपर्याप्तक जीवोंकी संभावना है । किन्तु पर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, इनमें क्षुद्रभवग्रहणकी संभावना नहीं है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १३० ॥ त्रीन्द्रिय जीवोंकी उन्नचास दिवस उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण है, चतुरिन्द्रिय

१ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवोपेक्षया सर्व-काल-। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यं क. इत्थमभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ इत्थमेव सर्वेषां निवर्तइसाणि । स. सि. १, ८.

याणं वारस वासा । जदो एवं, तदो संखेज्जाणि वाससहस्साणि चि ण घडेदे ? ण एस दोसो, एदाओ एगाउड्ढिदीओ । एदाहि ण एत्थ कज्जमत्थि, भवड्ढिदीए अहियारादो । का भव-ड्ढिदी णाम ? आउड्ढिदिसमूहो । जदि एवं, तो असंखेज्जाणि वाससहस्साणि भवड्ढिदी किण होदि ? ण एस दोसो, असंखेज्जचारं संखेज्जवाससहस्सविरोहिमंखेज्जचारं वा तत्थुप्पत्तीए संमवामावा । अणप्पिदिदिहंतो आंगत्तुण अप्पिदिदिहत्तु उप्पज्जिय संखे-ज्जाणि चैव हिंडदि, असंखेज्जाणि ण परिभमदि चि बुत्तं होदि ।

बीहंदिय-तीहंदिय-चउरिंदिया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३१ ॥

उवदेसेण विणा एदस्स सुत्तस्स अत्थो णव्वदे ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं ॥ १३२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

जीवोंकी छह मास और द्वीन्द्रिय जीवोंकी बारह वर्ष उत्कृष्ट आयुस्थिति होती है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्रमें कहीं गई संख्यात हजार वर्षोंकी स्थिति नहीं घटित होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ये बातलाई गई स्थितियां एक आयु-समन्वयो हैं, इनसे यहां पर कोई कार्य नहीं है । किन्तु यहां पर भवस्थितिका अधिकार है ।

शंका—भवस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—अनेक आयुस्थितियोंके समूहको भवस्थिति कहते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है, तो असंख्यात हजार वर्षप्रमाण भवस्थिति क्यों नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असंख्यातवार, अथवा संख्यात वर्ष-सहस्रके विरोधी संख्यातवार भी उनमें उत्पत्ति होनेकी संभावनाका अभाव है । अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंसे आ करके विवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर, संख्यातसहस्र वर्ष ही भ्रमण करता है, असंख्यातवर्ष भ्रमण नहीं करता है, ऐसा अर्थ कहा हुआ समझना चाहिए ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३१ ॥

उपदेशके विना ही इस सूत्रका अर्थ म्नात है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३२ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३३ ॥

एदं पि सुगमं चेव । गवरि वीहंदिय-वीहंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ताणं जहाकमेण अंतरविरहिया असीदि-सट्ठि-चालीसअपज्जमवा । जदि वि एत्तियवारमंगो जीवो' तथ-तणुक्कस्सट्ठिदीए उपपज्जदि, तो वि तन्मवट्ठिदिकालसमासो अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव । कथमेदं गव्वेदं ? अंतोमुहुत्तुवदेसणाहाणुववचीदो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति,

णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ १३४ ॥

सुगममेदं सुचं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा मूलोघग्घि मिच्छत्तस्स जहण्णकालपरूवणासुत्तस्स वुचो तथा वत्तव्वो ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है । विशेष बात यह है कि इन्द्रिय, मीन्द्रिय और चतु-रिन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंके यथाक्रमसे अन्तररहित होकर अस्सी, साठ और चालीस लब्धपर्याप्तक भव होते हैं । यद्यपि इतने बार एक जीव उनकी उत्कृष्ट स्थितिमें उत्पन्न होता है, तो भी उनकी भवस्थितिके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

शंका—यह कैसे जानते हैं ?

समाधान—अन्यथा, सूत्रमें अन्तर्मुहूर्तका उपदेश हो नहीं सकता था । इस अन्य-यावुपपत्तिसे जानते हैं कि उन भवोंका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्याद्यष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा कालप्रकरणके मूलोघर्मे मिथ्यात्वके जघन्य कालकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रका कहा है, वैसा ही यहां कहना चाहिए ।

१ प्रतिष् 'बीओ' इति पाठ ।

२ पंचेन्द्रियेषु मिथ्याद्यष्टिर्जातीवपेक्षया सर्वं कालः । स वि. १, ८.

३ एवजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. वि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोटिपुधत्तेणब्भहियाणि,
सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १३६ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' ति गायादो पंचिंदियाणं पुव्वकोटिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसहस्साणि, पंचिंदियपज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तं । एदस्सुदाहरणं—एको एहं-दियादो विगल्लिंदियादो वा आगंतूण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु उववज्जिय सगट्ठिदि-मच्छिय अण्णिदियं गदो । एकस्सेव सागरोवमसहस्सस्स सुवंतम्भूदन्नहुत्तमवेविखिय सागरोवमसहस्साणि ति सुत्ते बहुवयणणिद्देसो कदो ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ १३७ ॥

कुदो ? ओघादो णाणेगजीवसासणादिकालाणं भेदाभावा ।

पंचिंदियअपज्जत्ता वीहंदियअपज्जत्तमंगो ॥ १३८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १३६ ॥

'जैसा उद्देश होता है, तथैव निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ।

भय इन दोनों कालोंका उदाहरण कहते हैं— कोई एक जीव एकेन्द्रिय या विक-लेन्द्रियसे आकर पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थिति तक रह कर, अन्य इन्द्रियको चला गया । यहां पर एक ही सागरोपमसहस्रके, अपने अन्तर्गत बहुत्वको देकर 'सागरोपमसहस्र' ऐसा सूत्रमें बहुवचनका निर्देश किया गया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, ओघप्ररूपणासे नाना और एक जीवसम्बन्धों सासादनदि गुणस्थानोंके कालोंमें भेदका अभाव है ।

पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंका काल द्वीन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंके कालके समान है ॥ १३८ ॥

१ उत्कृष्टेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्याधिकम् । स. वि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्त कालः । स. वि. १, ८.

गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं, उक्कस्सेण अतोसुहुत्तमिच्चाहणा भेदाभावा । गवरि पंचिदियअणजत्तएसु गिरंतरुपज्जणभववारा चउवीस होति ।

एवमिदियमगणा समत्ता ।

कायानुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ १३९ ॥

कुदो ? सन्वद्धासु एदेसिं सताणस्स विच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ १४० ॥

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ जीवो अण्पिदकाइएसु उण्णजिय सन्व-जहणं कालमच्छिय अण्पिदकाइयं गदो । लद्धो जहणेण खुदाभवगहणकालो ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १४१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादिक रूपसे कोई भेद नहीं है । विदोष बात यह है कि पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंमें लगतार निरन्तर उत्पन्न होनेके भववार चौबीस होते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायु-कायिक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन पृथिवीकायिकादिकोंकी संतान परम्पराका विच्छेद नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उक्त जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४० ॥

इसका उदाहरण—अविवाक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व जघन्य काल रह कर अविवाक्षित कायको प्राप्त हुआ । तब क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यत लोकप्रमाण है ॥ १४१ ॥

१ कायानुवादेन पृथिव्यपेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्व कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणासंख्येयः कालः । स. सि. १, ८.

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ अण्पिदकाइएसु उण्णजिय सन्वुक्कस्सियं अण्पिदकाइयद्विदिमसंखेज्जलोगमेत्तं परिभमिय अण्पिदकायं गदो ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउ-काइया बादरवणफदिकाइयपतेयसरीरा केवचिरं कालादो होति, गाणा-जीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ १४२ ॥

कुदो ? सन्वकालमणुच्छिणसंताणत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ १४३ ॥

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ अण्पिदकाइयअण्जत्तएसु उववजिय सन्व-जहणमाउद्विदिं गमिय अण्पिदकाइएसु उववण्णो । लद्धो जहणेण खुदाभवगहणकालो ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ १४४ ॥

कम्मट्ठिदि चि बुत्ते किं सन्वेभिं कम्माणं ट्ठिदीओ वेप्पंति, ओहो एक्कस्स चेय ट्ठिदी वेप्पंदि चि ? सन्वकम्माणं ट्ठिदीओ ण वेप्पंति, किंतु एक्कस्सेव कम्मट्ठिदी वेप्पंदि ।

इसका उदाहरण—अविवाक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें उत्पन्न होकर विवक्षित कायकी असंख्यत लोकप्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक परिभ्रमण करके पुन अविवाक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

बादरपृथिवीकायिक, बादरजलकायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४२ ॥

क्योंकि, इन सर्वोक्त जीवोंकी सर्वकाल अविच्छिन्न संतान पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

इसका उदाहरण—अविवाक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायके लब्ध-पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर वहां की सर्व जघन्य आयुस्थिति को बिताकर पुनः अविवाक्षित-कायिकोंमें उत्पन्न हो गया, तब क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है ॥ १४४ ॥

शंका —‘ कर्मस्थिति ’ इस प्रकार कहने पर क्या सर्व कर्मोंकी स्थितियां ग्रहण की जा रही हैं, अथवा, एक ही कर्मकी स्थिति ग्रहण की जा रही है ?

समाधान —सर्व कर्मोंकी स्थितियां नहीं ग्रहण की जा रही हैं, किन्तु एक मोह-कर्मकी ही स्थिति यहां पर ‘ कर्मस्थिति ’ शब्दसे ग्रहण की जा रही है, क्योंकि, इस प्रकारका

कुदो ? गुरुवदेसदो । तत्थ वि दंसणमोहणीयस्स चेय उक्कस्सट्ठिदीए सत्तरिमारो-
चमकोडाकाडिमेत्ताए गहणं कादब्बं, पाहणियादो । कुदो पहाणत्तं ? संगहिदासेसकम्म-
ट्ठिदीए । के वि आहरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परिणममे उप्पण्णा ति कज्जे कारणोव-
यारमवलंविण बादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते, 'गौण-मुख्ययोमुख्ये
संप्रत्यय' इति न्यायात् । ण च बादराणं सामण्येण वुत्तकालो बादरेगदेसाणं बादरपुढवि-
काइयाणं पि सो चेव होदि ति, विरोहा । सामण्यवादरट्ठिमण्यपयारेण परुविय संपहि
वादरपुढविट्ठिदिं भण्णमाणे उवयारावलंबणे पओजणासावा च । एदस्सुदाहरणं—अण-
पिदवादरकाइओ अपिदवादरकाइएसु उप्पज्जिय तत्थ सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्त-
कालमच्छिय अणपिदवादरकाइयं गदो ।

**बादरपुढविकाइय—बादरआउकाइय—बादरतेउकाइय—बादरवाउ-
काइय—बादरवणफदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ १४५ ॥**

गुरुका उपदेश है । उसमें भी केवल दर्शनमोहनीयकर्मकी ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-
प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वही प्रधान है ।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मकी स्थितिको प्रधानता कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, उसमें सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है ।

कितने ही आचार्य 'कर्मस्थितित्वे बादरस्थितिकी ही 'कर्मस्थिति' यह संज्ञा मानते हैं, कारणके उपचारका अवलम्बन करके बादरस्थितिकी ही 'कर्मस्थिति' यह संज्ञा मानते हैं, किन्तु वह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, 'गौण और मुख्यमें विवाद होने पर मुख्यमें ही संप्रत्यय होता है' ऐसा न्याय है । दूसरी बात यह है कि बादरकायिक जीवोंका सामान्यसे कहा हुआ काल, बादरकायिक जीवोंके एकदेशभूत बादर पृथिवीकायिकोंका भी वही ही नहीं हो सकता है, क्योंकि, इसमें विरोध आता है । तथा, 'सामान्य बादरकायिक स्थितिको अन्य प्रकारसे प्ररूपण करके अब बादरपृथिवीकायिककी स्थितिको कहने पर उपचारके आलम्बनमें कोई प्रयोजन भी नहीं है ।

अब उक्त कर्मस्थितिप्रमाण कालका उदाहरण कहते हैं—अविश्वक्षित बादरकायवाला कोई जीव विश्वक्षित बादरकायिकोंमें उत्पन्न होकर वहां पर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण काल तक रह करके अविश्वक्षित बादरकायिकमें चला गया ।

बादरपृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादरतेजस्कायिकपर्याप्त, बादरवायुकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४५ ॥

सन्वद्धासु एदेसिं विहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणे अंतोमुहुत्तं ॥ १४६ ॥

एदस्सुदाहरणं—एगो अणपिदकाइओ अपिदकाइएसु उप्पज्जिय सन्वजहणमंतो-
मुहुत्तमच्छिय अणपिदकायं गदो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १४७ ॥

सुद्धपुढविवाणमाउट्ठिपमाणं वारह वससहस्सा (१२०००), खरपुढविकाइ-
याणं वावीस वससहस्सा (२२०००), आउकाइयपज्जत्ताणं सत्त वाससहस्सा (७०००),
तेउकाइयपज्जत्ताणं तिणेण दिवसा (३), वाउकाइयपज्जत्ताणं तिणिण वाससहस्साणि
(३०००), वणफहकाइयपज्जत्ताणं दस वाससहस्साणि (१००००) उक्कस्साउट्ठिदि-
पमाणं होदि । एदासु आउट्ठिदीसु संखेज्जसहस्सवारमुप्पणे संखेज्जाणि वाससहस्साणि
होति । उदाहरणं—एगो अणपिदकाइयो, अपिदकाइयपज्जत्तएसु उववणो । पुणो
तम्मिह चेव संखेज्जाणि वाससहस्साणि अच्छिय अणपिदकाइयं गदो ।

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४६ ॥

इसका उदाहरण—एक अविश्वक्षितकायिक कोई जीव विश्वक्षित कायवाले जीवोंमें
उत्पन्न होकर सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविश्वक्षित कायको प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १४७ ॥

शुद्धपृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण बारह हजार (१२०००) वर्ष
है । खरपृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण बारह हजार (२२०००) वर्ष
है । जलकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण सात हजार (७०००) वर्ष है । तेज-
स्कायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन (३) दिवस है । वायुकायिक पर्याप्तक
जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन हजार (३०००) वर्ष है । वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीवोंकी
स्थितिका प्रमाण दश हजार (१०००) वर्ष है । इन आयुस्थितियोंमें संख्यात हजार धार
उत्पन्न होनेपर संख्यात सहस्र वर्ष हो जाते हैं ।

इसका उदाहरण—एक अविश्वक्षित कायवाला कोई जीव विश्वक्षित कायवाले पर्या-
प्तकोंमें उत्पन्न हुआ । पुन उसी ही कायमें संख्यात सहस्र वर्ष रह करके अविश्वक्षित कायको
प्राप्त हो गया ।

१ पृथिवीकायिका द्विविधाः शुद्धपृथिवीकायिका खरपृथिवीकायिकाव्रति । तत्र शुद्धपृथिवीकायिकानां
चकष्टा स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि । खरपृथिवीकायिकानां द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि । वनस्पतिकायिकानां दस
वर्षसहस्राणि । अकायिकानां सप्तवर्षसहस्राणि । वायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि । तेज कायिकानां त्रीणि
रात्रिदिवानि । त १८. वा. ३, ३५.

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ-
काइय-बादरवणफदिकाइयपत्तेसररीअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवगहणं ॥ १४९ ॥

उदाहरणं—एगो अणपिदकाइओ अपिदकाइयअपज्जत्तएसु उववणो । तत्थ
खुदाभवगहणमच्छियूण अणपिदं काइयं गदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५० ॥

उदाहरणं—एगो अणपिदकाइओ अपिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्समतो-
मुहुत्तकालं तत्थ परि भमिय अण्णकायं गदो ।

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुम-
वाउकाइया सुहुमवणफदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता-
पज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ १५१ ॥

बादरपृथिवीकायिकलब्धपर्याप्तक, बादरजलकायिकलब्धपर्याप्तक, बादरतेज-
स्कायिकलब्धपर्याप्तक, बादरवायुकायिकलब्धपर्याप्तक और बादरवनस्पतिकायिक-
प्रत्येकशरीरलब्धपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-
काल होते हैं ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभग्रहणप्रमाण है ॥ १४९ ॥

उदाहरण—एक अविचक्षित कायवाला कोई जीव विचक्षित कायवाले लब्धपर्याप्तक
जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर क्षुद्रभग्रहणकालप्रमाण-रह करके पुनः अविचक्षित
कायको प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५० ॥

उदाहरण—एक अविचक्षित कायिक जीव 'विचक्षित' कायिक जीवोंमें उत्पन्न होकर
सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अन्य कायमें चला गया ।

सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक,
सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोद जीव और उनके ही पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका
काल सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके कालके समान है ॥ १५१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवगहणं
अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण असखेज्जा लोगा । पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च अंतोमुहुत्तमिच्छेदेहि
सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तेहि विसेसाभावा ।

वणफदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो ॥ १५२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवगहणं,
उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जयोगलपरियट्ठमिच्छेदेण एइंदिएहितो वणफदिकाइयाणं
भेदाभावा ।

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च

सव्वद्धा ॥ १५३ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवगहणं ॥ १५४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अट्ठाइज्जादो पोगलपरियट्ठं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल, क्षुद्रभव-
ग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है । पर्याप्तक और अपर्याप्तक
जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादि रूपसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक
जीवोंके साथ सूक्ष्मपृथिवीकायिकायिकके कालमें विशेषताका अभाव है ।

वनस्पतिकायिक जीवोंका काल एकेन्द्रिय जीवोंके कालके समान है ॥ १५२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभव-
ग्रहण और उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस रूपसे एकेन्द्रियोंसे
वनस्पतिकायिक जीवोंके कालका कोई भेद नहीं है ।

निगोद जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते
हैं ॥ १५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा निगोद जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ १५४ ॥

यह भी सूत्र सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अट्ठाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १५५ ॥

१ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

तं जघा- एगो अणकायादो आगंतूण णिगोदिसुवण्णो । तस्य अद्दुहज्जा पोगलपरियट्ठाणि परियट्ठिदूण अणकायं गदो ।

वादरणिगोदजीवाणं वादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ १५६ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवगगहणं, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी इच्चेएण वादरणिगोदाणं वादरपुढविकाइहिंतो भेदाभावा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ १५७ ॥

सुगममेदं मुचं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५८ ॥

तसकाइयाणं तेसिं पज्जत्ताणं च जहणकालो अंतोमुहुत्तं । तसकाइयाणमंतोमुहुत्त-मिदि अमणिय खुद्दाभवगगहणं ति किण्ण वुत्तं ? ण, खुद्दाभवगगहणं पेक्खिदूण जहण-मिच्छत्तकालस्स थोवत्तादो । सेसं सुगमं ।

जैसे- कोई एक जीव अन्य कायसे आ करके निगोविया जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर अद्दार् पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके अन्य कायको प्राप्त हो गया ।

वादरनिगोद जीवोंका काल वादरपुढविकायिक जीवोंके समान है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल शुद्धभव-ग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है, इस रूपसे वादरनिगोविया जीवोंके कालका वादरपुढविकायिक जीवोंके कालसे कोई भेद नहीं है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५७ ॥

यह सत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५८ ॥

त्रसकायिक और उनके पर्याप्तकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुका- 'त्रसकायिक जीवोंका अन्तर्मुहूर्त काल है, ऐसा न कह कर 'शुद्धभव-ग्रहणप्रमाण काल है,' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, शुद्धभवग्रहणके कालको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षा जघन्य मिथ्यात्वका काल और भी छोटा है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ त्रसकायिकेषु विपादयेर्नानाजीवोपेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एक जीव प्रति जघन्यनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि ॥ १५९ ॥

तं जघा- दो जीवा थावरकायादो आगंतूण एगो तसकाइएसु, अण्णेगो तसकाइय-पज्जत्तएसु उववण्णो । तस्य जो सो तसकाइएसु उववण्णो सो पुव्वकोडिपुथत्तब्भहिय-वे-सागरोवमसहस्साणि तस्य परिभमिय थावरकायं गदो । इदरो वि वे सागरोवमसहस्सं परिभमिय थावरं गदो, एत्तो उवरि तस्यच्छणसंभवाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठिण्हुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ १६० ॥

कुदो ? ओधसाणादिसयलगुणट्ठाणाणं णाणेगीवजहण्णुकस्सकालेहिंतो तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तसाणादिसयलगुणट्ठाणाणाणेगीवजहण्णुकस्सकालाणं भेदाभावादो ।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १६१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवगगहणं,

त्रसकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपुथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपमप्रमाण है ॥ १५९ ॥

जैसे- दो जीव एक साथ स्थावरकायसे आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । उनमेंसे जो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपुथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम काल उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायको प्राप्त हुआ । तथा दूसरा जीव भी दो हजार सागरोपमप्रमाण उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायमें चला गया, क्योंकि, इसके ऊपर त्रसकायमें रहना संभव नहीं है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ १६० ॥

क्योंकि, ओघके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंसे त्रसकायिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका कोई भेद नहीं है ।

त्रसकायिकलब्धपपर्याप्तकोंका काल पचेन्द्रियलब्धपपर्याप्तकोंके समान है ॥ १६१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल शुद्धभव-

१ उत्कृष्टेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपुथक्त्वैरभ्यधिके । स. सि. १, ८.

२ क्षेत्राणां पचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वीइंदिय-तीईंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-अपज्जत्तएसु असीदि-सट्ठि-चालीस-चट्ठवीस-अणुवद्भमवेसु बहुसदवारपरियट्ठणसंभूदंतोसुहुत्तकालो इच्चेदिहि विसेसाभावा ।

एव कायमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असं-जदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अपमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सब्वद्धा' ॥ १६२ ॥

कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहि परिणमणकालादो तदुक्कमणकालतरस्स थोवत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

एदस्म सुत्तस्स अत्थणिच्छयसमुपायणइं मिच्छादिट्ठिआदिगुणद्वुणाणि अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कीरेदे । एत्थ ताव जोगपरावत्ति-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि मिच्छच-गुणद्वुणाणस्स एगसमओ परूविज्जेदे । तं जधा-एक्को सासणो सम्माभिच्छादिट्ठी असं-जदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा मणजोगेण अच्छिदो । एगसमओ मण-प्रहण, उत्कट्ट काल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकों यथाक्रमसे अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस क्षुद्रमवोंमें कई सौ बार परिवर्तनसे उत्पन्न हुआ अन्तर्मुहूर्तकाल होता है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगि-केवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, मनोयोग और वचनयोगके द्वारा होनेवाले परिणामन कालसे उनके उप-क्रमणकालका अन्तर अल्प पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थ-निश्चयके समुत्पादनार्थ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—उनमेंसे पहले योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा मिथ्यात्वगुणस्थानका एक समय प्ररूपण किया जाता है । वह इस प्रकार है—सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था ।

१ योगाहुवादेन बालानसयोगिणु मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्तसंयतसंयतकेवलिनो नाना-नीवापेक्षया सर्व काल । स. सि १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । स. सि १, ८.

जोगद्वुआए अत्थि चि मिच्छत्तं गदो । एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदिय-समए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वचिजोगी कायजोगी वा जदो । एवं जोगपरावत्तीए पंच-विहा एगसमयपरूवणा कदा । कथं समयभेदो ? सासणादिगुणद्वुणपच्छाकधत्तेण । गुण-परावत्तीए एगसमओ वुत्तचेदे । त जधा-एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तस्स वचिजोगद्वुआसु कायजोगद्वुआसु खीणासु मणजोगो आगदो । मणजोगेण सह एगसमये मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए वि मणजोगी चेव । किंतु सम्माभिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं वा अपमत्तभावेण संजमं वा पडिक्खणो । एवं गुणपरावत्तीए चउव्विहा एगसमयपरूवणा कदा । कथमेत्थ समयभेदो ? पडिक्खजमाण-गुणभेएण । पुब्बिल्लपंचसु समएसु संपहिल्लद्वुदुसमए पक्खिप्पत्ते णव भंगा होति (९) । एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं खएण मणजोगो आगदो । एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए मदो । जदि तिरिक्खेसु वा मणु-

मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर एक समयमात्र मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया । द्वितीय समयमें भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोगीसे वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया । इस प्रकार योगपरि-वर्तनके साथ पांच प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शंका—यहां पर समयमें भेद कैसे हुआ ?

समाधान—सासादनादि गुणस्थानोंको पीछे करनेसे, अर्थात् उनमें पुनः वापिस आनेसे, समय-भेद हो जाता है ।

अब गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । वह इस प्रकार है—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । उसके वचनयोग अथवा काययोगका काल क्षीण होने पर मनोयोग आगया और मनोयोगके साथ एक समयमें मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शंका—यहां पर समय-भेद कैसे हुआ ?

समाधान—आगे प्राप्त होनेवाले गुणस्थानके भेदसे समयमें भेद हुआ ।

पूर्वोक्त योगपरिवर्तनसम्बन्धी पांच समयोंमें साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थानसम्बन्धी चार समयोंको प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भंग हो जाते हैं । कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । पुनः योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और

सेसु वा उप्पणो, तो कम्मइयकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वा । अथ देव-णेइएसु जइ उववणो तो कम्मइयकायजोगी वेउव्वियमिस्सकायजोगी वा जादो । एवं मरणेण लद्धएगंभेगे पुव्विल्लणवभंसेसु पक्खित्ते दस भंगा हंति (१०) । वाधादेण एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं वचि-कायजोगाणं खएण तस्स मणजोगो आगदो । एगसमयं मणजोगेण मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए वाधादिदो काय-जोगी जादो । लद्धो एगसमओ । एदं पुव्विल्लदसभंसेसु पक्खित्ते एक्कारस भंगा (११) । एत्थ उववुज्जंतीं गाहा—

गुण-जोगपरवत्ती वाधादो मणमिदि ङु चत्तारि ।

जोगेसु हंति ण वर पच्छिल्लदुगुणका जोगे ॥ ३९ ॥

एदमिह गुणद्वाने हिदजीवा इमं गुणद्वानं पडिवज्जंति, ण पडिवज्जंति ति णादूण गुणपडिवण्णा वि इमं गुणद्वानं गच्छंति, ण गच्छंति ति चित्ति य असंजदसम्मादिट्ठि-संजदांसंजद-पमत्तसंजदाणं च चउव्विहा एगसमयपरूवणा परूविदन्वा । एवमपमत्त-संजदाणं । णवरि वाधादेण विणा विविधा एगसमयपरूवणा कादन्वा । किमंठं वाधादो

दुसरे समयमें मरा । सो यदि वह तियेचोंमें या मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तो कर्मणकाययोगी, अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया । अथवा, यदि देव या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ तो कर्मणकाययोगी अथवा वैक्तियिकमिश्रकाययोगी हो गया । इस प्रकार मरणसे प्राप्त एक भंगको पूर्वोक्त नौ भंगोंमें प्रक्षिप्त करने पर दश भंग हो जाते हैं (१०) । अब व्याघातसे लब्ध होनेवाले एक भंगकी प्ररूपणा करते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । सो उन वचनयोग अथवा काययोगके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दृष्ट हुआ और द्वितीय समयमें वह व्याघातको प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया । इस प्रकारसे एक समय लब्ध हुआ । पूर्वोक्त दश भंगोंमें इस एक भंगके प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भंग होते हैं (११) । इस विषयमें उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

गुणस्थानपरिवर्तनं, योगपरिवर्तनं, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगोंमें अर्थात् तीनों योगोंके होने पर, होती हैं । किन्तु सयोगिकेवलीके पिछले दो, अर्थात् मरण और व्याघात, तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

इस विवक्षित गुणस्थानमें विद्यमान जीव इस अविवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, या नहीं, ऐसा जान करके, गुणस्थानोंको प्राप्त जीव भी इस विवक्षित गुणस्थानको जाते हैं, अथवा नहीं, ऐसा चिन्तन करके असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंकी चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । इसी प्रकारसे अप्रमत्तसंयतोंकी भी प्ररूपणा होती है, किन्तु विशेष बात यह है कि उनके व्याघातके बिना तीन प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

१ आ-प्रती 'उववज्जती' क-प्रती 'उववज्जती' इति पाठ ।

णत्थि ? अप्पमाद-वाधादाणं सहअणवद्वानलक्खणविरोहा । सजोगिकेवलस्स एगसमय-परूवणा कीरदे । तं जधा-एक्को खीणकसाओ मणजोगेण अच्छिदो मणजोगद्वारे एगो समओ अत्थि चि सजोगी जादो । एगसमयं मणजोगेण दिट्ठो सजोगिकेवली विदियसमए वचिजोगी वा जादो । एवं चदुसु मणजोगेसु पंचसु वचिजोगेसु पुव्वुत्तगुणद्वानाणं एग-समयपरूवणा कादन्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुरंतं ॥ १६४ ॥

तं जधा- मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदांसंजदो पमत्तसंजदो (अप्पमत्त-संजदो) सजोगिकेवली वा अणप्पिदजोगे हिदो अद्राक्खएण अप्पिदजोगं गदो । तत्थ तप्पाओगुक्कस्समतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६५ ॥

शंका—अप्रमत्तसंयतके व्याघात किस लिए नहीं है ?

समाधान—क्योंकि, अप्रमाद और व्याघात, इन दोनोंका सद्धानवस्थानलक्षण विरोध है ।

अथ सयोगिकेवलीके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था । जब मनोयोगके कालमें एक समय अवाशिष्ट रहा, तब वह सयोगिकेवली हो गया और एक समय मनोयोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । वह सयोगिकेवली द्वितीय समयमें वचनयोगी हो गया । इस प्रकारसे चारों मनोयोगोंमें और पांचों वचनयोगोंमें पूर्वोक्त गुणस्थानोंकी एक समयसम्यग्दृष्टि प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त पांचों मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुरंत है ॥ १६४ ॥

जैसे—अविवक्षित योगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, (अप्रमत्तसंयत) और सयोगिकेवली उस योगसम्यग्दृष्टि कालके क्षय हो जानेसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए । वहां पर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहुरंतकाल तक रह करके पुनः अविवक्षित योगको चले गये ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ १६५ ॥

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहुरंतं । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टे सामान्योक्त काल । स. सि. १, ८.

कुदो ? नाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कसेण पलिदोवमस्स असं-
सेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कसेण छ आवलिपाओ; इच्चदेहि
पंचमण-वचिजोगसासणाणं ओघसासणेहिंतो भेदाभावा । एत्थ वि जोग-गुणपरावत्ति-मरण-
वाधादेहि समयान्निरोहेण एगसमयपरूवणा कायन्वा ।

सम्माभिच्छादिद्वी केवचिरं कालदो होति, नाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

उदाहरणं— सत्तट्ट जणा बहुगा वा मिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी संजदासंजदा
पमत्तसंजदा वा अप्पिदमण-वचिजोगेसु द्विदा अप्पिदजोगद्धाए एगसमओ अत्थि चि
सम्माभिच्छत्तं गदा । एगसमयमप्पिदजोगेण सह दिट्ठा, विदियसमए सन्वे अप्पिदजोगं
गदा । एवं मरणेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-वाधादेहि एगसमयपरूवणा चितिय वत्तन्वा ।

उक्कसेण पलिदोवमस्स असंवेज्जदिभागो ॥ १६७ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगेण सहिदसम्माभिच्छादिद्वीणं पवाहस्स अच्छण्णरूवस्स पलिदो-
वमस्स असंवेज्जदिभागायामस्सुवलभा ।

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पत्योपमका असं-
ख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलियां, इस
रूपसे पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघ-
सम्बन्धी सासादनोके कालसे कोई भेद नहीं है । यहाँ पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थानपरा-
वर्तन, मरण और व्याघातके द्वारा आगमके अविरोधसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल
तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समय होते हैं ॥ १६६ ॥

उदाहरण— विवक्षित मनोयोग अथवा वचनयोगमें स्थित सात आठ जन, अथवा
बहुतसे मिथ्यादृष्टि, असत्यतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव उस विवक्षित
योगके कालमें एक समय अवशिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और एक
समयमात्र विवक्षित योगके साथ दृष्टिगोचर हुए । द्वितीय समयमें सभीके सभी अविवक्षित
योगको चले गये । इसी प्रकार मरणके विना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन और
व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा चिंतन करके करना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ १६७ ॥

क्योंकि, विवक्षित योगसे सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अविच्छिन्नरूप प्रवाह
पत्योपमके असंख्यातवें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है ।

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्यैकः समय । स. सि. १, ६.

२ उत्कर्षेण पत्योपमासस्येयभागः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६८ ॥
एत्थ वि मरणेण विणा गुण-जोगपरावत्ति-वाधादे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा
जाणिय वत्तन्वा ।

उक्कसेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६९ ॥

उदाहरणं—एको सम्माभिच्छादिद्वी अणप्पिदजोगे द्विदो अप्पिदजोगं पडिवणो ।
तत्थ तणाओगुक्कसमंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो । लद्धमंतोमुहुत्तं ।

चटुण्हमुवसमा चटुण्हं खवगा केवचिरं कालदो होति, नाणाजीवं
पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

उवसामगाणं वाधादेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-मरणेहि नाणाजीवे अस्सिदूण
एगसमयपरूवणा कादन्वा । खवगाणं मरण-वाधादेहि विणा जोग-गुणपरावत्तीओ दो
चेव अस्सिदूण एगसमयपरूवणा परूवेदन्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय
है ॥ १६८ ॥

यहाँ पर भी मरणके विना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात, इन
तीनोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ १६९ ॥

उदाहरण—अविवक्षित योगमें विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित
योगको प्राप्त हुआ । वहाँ पर अपने योगके प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके
अविवक्षित योगको चला गया । इस प्रकारसे एक अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने
काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

उपशामक जीवोंके व्याघातके विना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके
द्वारा नाना जीवोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । क्षपक जीवोंकी
मरण और व्याघातके विना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तन, इन दोनोंका आश्रय
लेकर ही एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ एक जीव प्रति जघन्यैक समय । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ चटुर्गद्विपञ्चमकानां क्षपकानां व नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यैकः समय । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७१ ॥

तं जथा-चचारि उवसामगा चचारि खवणा च अणप्पिदजोगे हिंदा अद्वाक्ख-
एण अप्पिदजोगं गदा । तस्य अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि अणप्पिदजोगं पडिवण्णा ।
लद्धमंतोमुहुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एत्थ एगसमयपरूवणा खवगुवसामगणं देहि तीहि पयरोहि जाणिय वचन्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तपरूवणा जाणिय वचन्वा । एत्थ एगसमयवियप्परूवणद्धं गाहा-
एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णव य अहु वा ।

पण पच पच तिण्णि य दु दु दु एगो य समयण्णा ॥ ४१ ॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ।

कायजोगीसु मिच्छादिद्धी केवचिरं कालदो होति, णाणाजीवं
पडुच्च सन्वद्धा ॥ १७४ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

वह इस प्रकार है—अविवक्षित योगमें स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव उस
योगके कालक्षयसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए । वहां पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि
अविवक्षित योगको प्राप्त हो गए । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

यहां पर एक समयकी प्ररूपणा क्षपकोंके योगपरवर्तन और गुणस्थानपरवर्तनकी
अपेक्षा दो प्रकारसे और उपशामकोंकी व्याघातके विना शेष तीन प्रकारसे जान करके कहना
चाहिए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

यहां अन्तर्मुहूर्तकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए । यहां पर एक समय-
सम्यन्धी विकल्पोंके प्ररूपण करनेके लिए यह गाया है—

मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ,
पाच, पांच, पाच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समयसम्यन्धी प्ररूपणके
विकल्प होते हैं । ११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ॥ ४० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७४ ॥

१ उत्कल्पेणान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८.

२ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । स सि १, ८.

कुदो ? सन्वद्धासु कायजोगिमिच्छादिद्धिणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७५ ॥

तं जथा—एगो सासणसम्मादिद्धी सम्मामिच्छादिद्धी असंजदसम्मादिद्धी संजदा-
संजदो पमत्तसंजदो वा कायजोगद्वाए अच्छिदो । तिस्से एगसमयावसेसे मिच्छादिद्धी
जदो । कायजोगेण एगसमयं मिच्छत्तं दिद्धं । विदियसमए अणजोगं गदो । अथवा मण-
वचिजोगेसु अच्छिदस्स मिच्छादिद्धिस्स तेसिमद्वाक्खएण कायजोगो आगदो । एगसमयं
कायजोगेण सह मिच्छत्तं दिद्धं । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं
वा संजमासंजमं अप्पमत्तमावेण संजमं वा पडिवणो । लद्धो एगसमओ । एत्थ मरण-वाधा-
देहि एगसमओ णत्थि । कुदो ? मुदे वाधादिदे वि कायजोगं मोत्तूण अणजोगामावा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पेगलपरियद्धं ॥ १७६ ॥

तं जथा—एगो मिच्छादिद्धी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्वाखएण कायजोगी

क्योंकि, सभी कालोंमें काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय
है ॥ १७५ ॥

जैसे—एक सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि,
अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव काययोगके कालमें विद्यमान था । उस योगके
कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया । तब काययोगके साथ एक
समय मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें वह अन्य योगको चला गया । अथवा,
मनोयोग और वचनयोगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीवके उन योगोंके कालक्षयसे काययोग आ
गया । तब एक समय काययोगके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें
सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असमयके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा
अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया । यहां पर
मरण अथवा व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि, मरण होने पर अथवा व्याघात
होने पर भी काययोगको छोड़कर अन्य योगका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक
असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १७६ ॥

जैसे—मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव, उस योगके

१ एक जीव प्रति जघन्यैक समय । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'सगसमओ' इति पाठः ।

३ उत्कल्पेणान्तर् कालोपसंखेया पुद्गलपरिवर्तो । स सि. १, ८.

जादो, सन्वुक्कसमंतोसुहुत्तमच्छिद्रूण एंइदिएसु उत्पण्णो । तत्थ अणंतकालमसंखेज्ज-
पोगलपरियद्धं कायजोगेण सह परियद्धिद्रूण आवलियाए, असंखेज्जदि मागमेचपोगल-
परियद्धेसुत्पण्णेषु तसेसु आंगत्तूण सन्वुक्कस्समंतोसुहुत्तमच्छिय वचिजोगी जादो । लद्धो
कायजोगेस्स उक्कस्सकालो ।

**सासनसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगि-
भंगो ॥ १७७ ॥**

एदं सुत्तं सुगमं, मणजोगे गिरुद्धे पवंचेण परुविदत्तादो । णवरि मरण-वाघादा
सम्भामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणं णत्थि । सासनसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदणं
वाघादेण एगसमओ णत्थि, मरणेण पुण अत्थि ।

**ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठो केवचिरं कालादो होत्ति,
णाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ १७८ ॥**

कुदो ? ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठिसंताणस्स सन्वद्धासु वोच्छेदाभावा ।

कालक्षय हो जानेसे काययोगी हो गया । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके
एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर अनन्तकालप्रमाण असंख्यत पुद्गलपरिवर्तन काययोगके
साथ परिवर्तन करके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके शेष रहने पर
ब्रह्मजीवोंमें आकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वचनयोगी हो गया । इस
प्रकारसे काययोगका उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काय-
योगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, मनोयोगके निरुद्ध करनेपर पहले प्रपंचसे (विस्तारसे)
प्ररूपण किया जा चुका है । विशेष बात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टियोंके मरण और व्याघात नहीं होते हैं । तथा काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि,
संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंके व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरणकी
अपेक्षा एक समय होता है ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्परके सभी कालोंमें विच्छे-
दका भयाव है ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ १७९ ॥

एत्थ मरण-गुण-जोगपरावचीहि एगसमयो परुवेदव्वो । वाघादेण एगसमओ ण
लभमिदि, तस्स कायजोगाविणाभावित्तादो ।

उक्करसेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

तं जघा-एगो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा वावीसहस्सवाससाउद्धिदिएसु एंइदिएसु
उववण्णो । सन्वजहणेण अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्ति गदो । ओरालियअपज्जत्तकालेणूण-
वावीसवासहस्साणि ओरालियकायजोगेण अच्छिय अण्णजोगं गदो । एवं देख्खवावीस-
वाससहस्साणि जादाणि । अधवा देवो ण उप्पादेदव्वो, तस्स जहणअपज्जत्तकालाणुवलंभा ।

**सासनसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगि-
भंगो ॥ १८१ ॥**

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, पुवं परुविदत्तादो । णवरि वाघादेण एत्थ एग-
समयपरुवणा परुवेदव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल एक
समय है ॥ १७९ ॥

यहां पर मरण, गुणस्थानपरावर्तन और योगपरावर्तनकी अपेक्षा एक समयकी
प्ररूपणा करनी चाहिए । किन्तु यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है,
क्योंकि, वह काययोगका अविनाभावी है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है ॥ १८० ॥

जैसे-एक तिर्यंच, मनुष्य, अथवा देव, बाईस हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले एके-
न्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तपेको प्राप्त हुआ । पुनः इस
औदारिकशरीरके अपर्याप्तकालसे कम बाईस हजार वर्ष औदारिककाययोगके साथ रह
करके पुनः अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष हो जाते हैं ।
अथवा, यहां पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, देवोंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न
होनेवाले जीवके जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियोंका
काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १८१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें कहा जा चुका है । विशेष बात यह है कि
यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ १८२ ॥

कुदो? ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्विसंताणवोच्छेदस्स सन्वद्धासु अभावा ।
एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं तिसमज्जणं ॥ १८३ ॥
तं जहा- एगो एइदिओ सुहुमवाउकाइएसु अधोलोगंते द्विएसु खुदाभवगहणाउ-
द्विएसु तिणि विगहे काऊण उववणो । तत्थ तिसमज्जणखुदामवगहणमपज्जत्तो
होदूण जीविय मदो, विगहं कादूण कम्मइयकायजोगी जादो । एवं तिसमज्जणखुदामव-
गहणमोरालियमिस्सजहणकालो जादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुतं ॥ १८४ ॥

तं जधा- अपज्जत्तएसु उववज्जिय संखेज्जणि भवगहणाणि तत्थ परियद्विय
पुणो पज्जत्तएसु उववज्जिय ओरालियकायजोगी जादो । एदाओ संखेज्जभवगहणदाओ
मिलिदाओ वि मुहुत्तस्संतो चेव होति ।

औदारिकमिश्रकाययोगीमं मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १८४ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगीमं मिथ्यादृष्टियोंकी परस्परके विच्छेदका सर्व-
कालमें अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल
तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १८३ ॥

जैसे—एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें स्थित और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयु-
स्थितिवाले सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रह करके उत्पन्न हुआ । वहाँ पर तीन समय कम
क्षुद्रभवग्रहणकाल तक लक्ष्यपर्याप्त हो, जीवित रह कर मरा । पुनः विग्रह करके कर्मज-
काययोगी हो गया । इस प्रकारसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण औदारिकमिश्रकाय-
योगका जघन्य काल सिद्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८४ ॥

जैसे—कोई एक जीव लक्ष्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहणप्रमाण
उनमें परिवर्तन करके पुनः पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया । इन सब
संख्यात भवोंके ग्रहण करनेका काल मिल करके भी मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है, अधिक
नहीं होता है ।

सासणसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
जहणेण एगसमयं ॥ १८५ ॥

तं जधा- सत्तट्ट जणा बहुआ वा सासणा सगद्धाए एगसमओ अत्थि चि ओरा-
लियमिस्सकायजोगिणो जादा । एगसमयमच्छिदूण विदियसमए मिच्छत्तं गदा । लद्धो
ओरालियमिस्सेण सासणाणमेगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८६ ॥

तं जधा- सत्तट्ट जणा बहुआ वा सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा ।
सासणगुणेण अंतोमुहुत्तमच्छिय ते मिच्छत्तं गदा । तस्समए चेय अण्णे सासणा ओरा-
लियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक-दो-तिणि आदि कादूण जाव उक्कस्सेण पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारं सासणा ओरालियमिस्सकायजोगं पडिवज्जावेदव्वा । तदो
णियमा अंतरं होदि । एवमेस कालो मेलाविदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ ॥ १८७ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १८५ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, अपने योगके कालमें
एक समय अवशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये । उसमें एक समय रह करके
द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगके साथ
सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक समय लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १८६ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाय-
योगी हुए । सासादनगुणस्थानके साथ अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पछि वे मिथ्यात्वको प्राप्त
हुए । उसी समयमें ही अन्य दूसरे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी
हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि करके उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र
बार सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त कराना चाहिए । इसके पश्चात्
नियमसे अन्तर हो जाता है । इस प्रकारसे यह सब मिलाया गया काल पल्योपमके अखं-
क्यातवें भागमात्र होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १८७ ॥

तं जथा—एको सासणो सगद्वाए एगसमओ अत्थि चि ओरालियमिस्सकायजोगी जादो । विदियसमए मिच्छत्तं गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समज्जाओ ॥ १८८ ॥

तं जथा—देवो वा गेरइओ वा उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्वाए छ आवलियाओ अत्थि चि सासणं गदो । एगसमयमच्छिय कालं करिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु उज्जगदीए उववज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगी जादो । समज्जा-छ-आवलियाओ अच्छिय मिच्छत्तं गदो ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

तं जथा—सत्तह जणा बहुगा वा असंजदसम्मादिट्ठिणो गेरइया ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । सब्बलहुं पज्जत्तिं गदा, बहुसागरोवमाणि पुब्बं दुक्खेण सह विदत्तादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९० ॥

जैसे—एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है ॥ १८८ ॥

जैसे—कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली कालके शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहां पर एक समय रह करके मरण कर तिर्यच और मनुष्योंमें अजुगतसे उत्पन्न होकर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया । वहां पर एक समय कम छह आवली तक रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ १८९ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । और बहुतसे सागरोपम काल तक पहले दुःखोंके साथ रहे हुए होनेसे सर्वलघु कालसे पर्याप्तियोंको प्राप्त हुए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९० ॥

तं जथा—देव-गेरइया मणुस्सा सत्तह जणा बहुआ वा सम्मादिट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । ते पज्जत्तिं गदा । तस्समए चैव अण्णे असंजदसम्मादिट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक्क-दो-तिणिणि जावुक्कस्सेण संखेज्जवारा चि । एदाहि संखेज्जसलागाहि एगमपज्जत्तद्धं गुणिदे एगमुहुत्तस्स अंतो चैव जेण होदि, तेण अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९१ ॥

तं जथा—एको सम्मादिट्ठी वावीस सागरोवमाणि दुक्खेक्कसो होदण जीविदो । छट्ठीदो उव्वद्विय मणुस्सेसु उत्पण्णो । विग्गहगदीए तस्स सम्मत्तमाहप्येण उववज्जिदपुण्ण-पोगलस्स ओरालियणामकम्मोदएण सुअंध-सुरस-सुवण्ण-सुहपासपरमाणुपोगलबहुला आगच्छंति, तस्स जोगवहुत्तदंसादो । एदस्स जहणिया ओरालियमिस्सकायजोगस्स अद्वा होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

जैसे—देव, नारकी, अथवा मनुष्य सात आठ जन, अथवा बहुतसे सम्यग्दृष्टि जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । वे सब पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकार एक, दो, तीन इत्यादि क्रमसे उत्कृष्ट संख्यातवार तक अन्य अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये । इन संख्यात शलाकाओंसे एक अपर्याप्तकालको गुणित करने पर वह सब काल चूक एक मुहूर्तके अन्तर्गत ही होता है, इसलिए सूत्रकारने अन्तर्मुहूर्त काल कहा है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९१ ॥

जैसे—छठी पृथिवीका कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी धार्मिक सागर तक दुखोंसे एक रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा । पुनः छठी पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । विश्रहगतमें, सम्यक्त्वके माहात्म्यसे उद्यममें आये हैं पुण्यप्रकृतिके पुद्गलपरमाणु जिसके ऐसे उस जीवके औदारिकनामकर्मके उद्यमसे सुगन्धित, सुरस, सुवर्ण और शुभ स्पर्शवाले पुद्गलपरमाणु बहुलतासे आते हैं, क्योंकि, उस समय उसके योगकी बहुलता देखी जाती है । ऐसे जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९२ ॥

१ का प्रती ' बहु आगच्छति ' इति पाठ ।

एदं कस्स होदि ? सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियेदवस्स तेत्तीस सागरोवमानि सुह-
लालियस्स पमुट्ठुक्खस्स माणुसगन्धे गूह-सुत्तंत-पित्त-खरिस-वस-संभ-लोहि-सुक्कामाद्धिदे
अहदुग्गंधे दूसे दुव्वणे दुप्पसे चमारकुंडोपमे उप्पणस्स, तत्थ मंदो जोगो होदि ति
आहरियपरंपरागदुवदेसा । मंदजोगेण थोवे योगले गेण्हत्तस्स ओत्तलियसिस्सद्धा दीहा होदि
चि उत्तं होदि । अथवा जोगो एत्थ महल्लो चव होदु, जोगवसेण बहुआ-पोगगला
आगच्छंतु, तो वि एदस्स दीहा अपज्जत्तद्धा होदि, विलिसेए दूसियस्स लहुं पज्जत्ति-
समाणे' असामत्थियादो ।

**सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जह-
णेण एगसमयं ॥ १९३ ॥**

एसो एगसमओ कस्स होदि ? सत्तहुज्जणं दंडादो कवाडं गंतूण तत्थ एगसमय-
मच्छिय रुजगं गदाणं, रुजगादो कवाडं गंतूण एगसमयमच्छिय दंडं गदकेवलीणं वा ।

शंका—यह उत्कृष्ट काल किस जीवके होता है ?

समाधान—तेत्तीस सागरोपमकाल तक सुखसे लालित पालित हुए तथा सुखोत्ति रहित
सर्वार्थसिद्धिबिमानवासां देवके विद्या, मूत्र, आंतडी, पित्त, खरिस (कफ) चर्बी, नासिकामल,
लोह, शुक्र और आम्रसे व्याप्त, अतिदुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्बल और दुष्ट स्पर्शवाले चमारके
कुंडके सदृश मनुष्यके गर्भमें उत्पन्न हुए जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल होता
है, क्योंकि, उसके विग्रहगतिमें तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकारका आचार्य-
परम्परागत उपदेश है । मंदयोगसे अल्प पुद्गलोंको ग्रहण करनेवाले जीवके औदारिकमिश्र-
काययोगका काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है । अथवा, यहां पर चाहे योगकाल
बड़ा ही रहा आवे, और योगके वशसे पुद्गल भी बहुतसे आते रहें, तो भी उक्त प्रकारके जीवके
अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि, विलाससे दूषित जीवके शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियोंके
सम्पूर्ण करनेमें असामर्थ्य है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १९३ ॥

शंका—यह एक समय किसके होता है ?

समाधान—वृंडसमुदातसे कपाटसमुदातको प्राप्त होकर और यहाँ एक समय रह
कर प्रतरसमुदातको प्राप्त हुए सात आठ केवलियोंके यह एक समय होता है । अथवा,
क्वक्कसमुदातसे कपाटसमुदातको प्राप्त होकर और एक समय रह करके वृंडसमुदातको
प्राप्त होनेवाले केवलियोंके यह एक समय होता है ।

१ वा पत्तो 'पज्जति भमाणो' इति पाठ ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ १९४ ॥

एदे संखेज्जसमया कम्मिहं होति ? कनाडे चडण-ओयरणकिरियावावदंड-पदर-
पज्जायपरिणदसंखेज्जकेवलीहि संखेज्जसमयपंतीए द्विदेहि अधिउत्तेहि ।

एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण एगसमओ ॥ १९५ ॥

एसो कम्मिहं होदि ? कवाडगदकेवल्लिम्मिहं चडणोदरणकिरियावावदंड-पदरपज्जय-
परिणदकेवलीहिंतो आगदम्मिहं । बहुआ समया किण्ण होति ? ण, कवाडम्मिहं एगसमयं
मोत्तूण बहुसमयमच्छणाभावा । कथमेक्कस्सेव जहणुक्कस्सवत्तो ? ण एस दोसो,
कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चव मम पुत्तो चि लोगे ववहारुलंभा ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय
है ॥ १९४ ॥

शंका—ये संख्यात समय किसमें होते हैं ?

समाधान—कपाटसमुदातकी आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए क्रमशः
वृंडसमुदात और प्रतरसमुदातरूप पर्यायसे परिणत संख्यात समयोंकी पंक्तिमें स्थित, ऐसे
संख्यात केवलियोंके द्वारा अधिकृत अवस्थामें उक्त संख्यात समय पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय है ॥ १९५ ॥

शंका—यह एक समय कहाँ पर होता है ?

समाधान—आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें व्यापृत, ऐसे वृंडसमुदात और
प्रतरसमुदातरूप पर्यायसे क्रमशः परिणत हो उक्त समुदात केवली अवस्थासे आये हुए
कपाटसमुदातगत केवलीके यह एक समय पाया जाता है ।

शंका—उक्त प्रकारके जीवोंके बहुत समय क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कपाटसमुदातमें एक समयको छोड़कर बहुत समय तक
रहनेका अभाव है ।

शंका—तो फिर एक ही समयके जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश कैसे किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कनिष्ठ भी और ग्रेष्ठ भी 'यही हमारा
पुत्र है' इस प्रकारका लोकमें व्यवहार पाया जाता है, इसलिए एकमें भी जघन्य और
उत्कृष्टका व्यपदेश हो सकता है ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालदो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १९६ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु वेउव्वियकायजोगिमिच्छादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिसंताण-वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ ॥ १९७ ॥

तं जधा- एगो मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्दाखएण वेउव्विय-कायजोगी जादो । एगसमयं वेउव्वियकायजोगेण दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्णजोणं गदो । मरणेण विणा सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा जादो । अथवा सासण-सम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वेउव्वियकायजोगेद्वारा एगो समओ अत्थि चि मिच्छादिट्ठी जादो । विदियसमए अण्णजोणं गदो । वाघदेण एगसमओ णत्थि, गिरुद्धकायजोगादो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि एगसमयपरूवणा तीहि पयारेहि कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें वैक्रियिककाययोगवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी परम्पराके विच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १९७ ॥

जैसे-- कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान था । वह उस योगके कालके क्षय हो जानेसे वैक्रियिककाययोगी हो गया । तब वह एक समय वैक्रियिककाययोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मरा और अन्य योगको प्राप्त हो गया । अथवा, मरणके विना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । अथवा, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव, वैक्रियिककाययोगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर, मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समयमें अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय लब्ध होता है । यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, काययोगकी अपेक्षा कथन हो रहा है । (व्याघात तो मन या वचनयोगमें पाया जाता है ।) इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी एक समयकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे करना चाहिए ।

उक्त जीवोंका उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९८ ॥

तं जधा- मिच्छादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिणो देवा णेरइया वा मण-वचिजोगेसु दिट्ठा कायजोगिणो जादा । सव्वक्कस्समतोयुहुत्तमच्छिय अण्णजोगिणो जादा । लब्ध-मतोयुहुत्त ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १९९ ॥

प्राणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदिहि ओघसासणादो भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्ठिणं मणजोगिभंगो ॥ २०० ॥

गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहणेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएण मणजोगिसम्मा-मिच्छादिट्ठीहिंतो वेउव्वियकायजोगिसम्मामिच्छादिट्ठिणं विसेसाभावा ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केव-चिरं कालदो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०१ ॥

जैसे-- मनोयोग या वचनयोगमें स्थित मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कोई देव अथवा नारकी जीव वैक्रियिककाययोगी हुए और उसमें सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य योगवाले हो गये । इस प्रकारसे उक्त कालरूप अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया ।

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १९९ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवली, इस रूपसे ओघवर्णित सासादनगुणस्थानके कालसे इसमें कोई भेद नहीं है ।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २०० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, तथा उत्कृष्ट काल पत्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकारसे मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके कालमें कोई विशेषता नहीं है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ २०१ ॥

एतथ ताव मिच्छादिद्विस्स जहण्णकालो बुच्चदे- सत्तहु जणा बहुआ वा दब्बलिगिणो उवरिमगेवज्जेसु उववण्णा सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । संपहि सम्मादिद्वीणं बुच्चदे- संखेज्जा संजदां सव्वहुदेवेषु दो विग्गहं कादूण पज्जत्तिं गदा । किमहं दो विग्गहे करा- विदा ? बहुपेगलग्गहण्हं । तं पि किमहं ? थोवकालेण पज्जत्तिसमाण्हं । मिच्छादिद्वी दो विग्गहे किण्ण कराविदो ? ण, तत्थ वि पडिसेहामावा ।

उक्कस्सेण पल्लोदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०२ ॥

सत्तहु जणा उक्कस्सेण असंखेज्जेसिमेत्ता वा मिच्छादिद्विणो देव-णेरइएसु उव- वज्जिय वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिद्विणो वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक्क-दो-तिणिण उक्कस्सेण पल्लोदोवमस्स अमखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ लब्भंति । एदाहि वेउव्वियमिस्सदं

यहां पर पहले मिथ्यादृष्टिका जगज्य काल कहते हैं—सात आठ जन, अथवा बहुतसे द्रव्यलिगी जीव उपरिम भ्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तिकपनेको प्राप्त हुए। अग सम्म्यग्दृष्टिका जगज्य काल कहते हैं—सख्यात संयत दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिबिमानवाली देवोंमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए ।

शंका—दो विग्रह किस लिए कराये गये हैं ?
समाधान—बहुतसी पुद्गलवर्णनाओंके प्रहण करानेके लिए दो विग्रह कराये गये हैं ।

शंका—बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण भी किसलिए कराया गया ?

समाधान—अल्पकालके द्वारा पर्याप्तियोंके सम्पन्न करनेके लिए बहुतसे पुद्गलोंका प्रहण आवश्यक है ।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवके दो विग्रह क्यों नहीं कराये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें भी प्रतिषेधका अभाव है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव भी दो विग्रह कर सकते हैं ।

वैक्रियिकमित्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवै भाग है ॥ २०२ ॥

सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे असंख्यातश्रेणिमात्र मिथ्यादृष्टि जीव देव, अथवा नारकियोंमें उत्पन्न होकर वैक्रियिकमित्रकाययोगी हुए, और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमित्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र

१ अ बा-क प्रतिपु 'संखेज्जासंखेज्जा संजदा', म २ श्रुती तु स्वीकृत पाठः ।

२ अ-आ-क प्रतिपु 'सलागाओ' इति पाठो नास्ति । म २ श्रुती तु अस्ति ।

गुणिदे पल्लोदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो वेउव्वियमिस्सकालो होदि । असंजदसम्मा- दिद्वीणं पि एवं चेव वत्तवं । णवरि एदे एगसमएण पल्लोदोवमस्स असंखेज्जदिभाग- मेत्तो उक्कस्सेण उप्पज्जंति, रासीदो वेउव्वियमिस्सकालो असंखेज्जगुणो । तं कथं णव्वदे ? आहरियपरंरागदुव्वेमादो । देवलोए उप्पज्जमाणमम्मादिद्वीहिंतो देव-णेरइएसु उप्पज्ज- माणमिच्छादिद्वी असंखेज्जेसिद्विगुणिदमेत्ता होति चि कालो चि तावदिगुणो किण्ण होदि चि बुत्ते, ण होदि, उहयत्थ वेउव्वियमिस्सद्वासलागाणं पल्लोदोवमस्स अमखेज्जदि- भागमेत्तुव्वेसा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०३ ॥

तं जघा—एक्को दब्बलिगी उवरिमगेवज्जेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहु- मंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । मम्मादिद्वी एक्को संजदा सव्वहुदेवेषु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो ।

वैक्रियिकमित्रकाययोगी जीवोंकी शलाकाएं पारं जाती हैं । इनसे वैक्रियिकमित्रकाय- योगके कालको गुणा करने पर पल्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण वैक्रियिकमित्रकाय- योगका काल होता है । असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भी काल इसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष यान यह है कि ये असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें पल्योपमके असंख्यातवै भाग- मात्र उत्कृष्टरूपसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, इस उत्पन्न होनेवाली राशिसे वैक्रियिकमित्रकाय- योगका काल असंख्यातगुणा है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है कि एक समयमें उत्पन्न होनेवाली असंयतसम्यग्दृष्टिराशिसे उक्त काल असंख्यातगुणा है ।

शंका—देवलोकमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टियोंके देव या नारकियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात श्रेणियोंमें गुणितप्रमाण होते हैं, इसलिये वैक्रियिक- मिथका काल भी असंख्यात श्रेणिगुणित क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमित्रकाययोगियोंमें, वैक्रि- यिकमित्रकालकी शलाकाओंके पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र होनेका उपदेश है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०३ ॥

एक द्रव्यलिगी साधु उपरिम भ्रैवेयकोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्तिको प्राप्त हुआ । एक सम्यग्दृष्टि भावलिगी संयत सर्वार्थसिद्धि- बिमानवासी देवोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०४ ॥

तं जथा—एको तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिद्वी सचमपुढविणेरइएसु उववण्णो सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो । सम्मादिद्विस्स—एको वद्धणिरयाउओ सम्मत्तं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय पढमपुढविणेरइएसु उववज्जिय सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो । दोण्हं जहण्णकालेहिंतो उक्कस्सकाला दो वि संखेज्जगुणा । कधमेदं गव्वदे ? गुरुवदेसादो ।

सासणसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०५ ॥

तं जथा—सचट्ट जणा बहुआ वा सासणसम्मादिद्विणो सगद्धाए एगो समओ अत्थि ति देवेषु उववण्णा । विदियसमए सव्वे मिच्छत्तं गदा । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०४ ॥

जैसे—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और सत्रसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ । अब असंयतसम्यग्दृष्टिकी कालप्रकृपा करता है—कोई एक वद्धनरकायुक्त जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके और प्रथम पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ । दोनोंके जघन्य कालोंसे दोनों ही उत्कृष्ट काल संख्यातगुणे हैं ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे जाना कि वैकृतिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा वतलाए गए जघन्य कालोंसे उन्हींके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होते हुए भी संख्यातगुणित हैं ।

वैकृतिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०५ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुए और द्वितीय समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण है ॥ २०६ ॥

१ अतिथि 'सव्वमिच्छत्त' इति पाठः ।

तं जथा—सचट्ट जणा जावुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा एक-वे-तिणिण समए आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण समऊण-छ-आवलियाओ सासणद्धा अत्थि ति देवेषु उववण्णा । ते सव्वे कमेण मिच्छत्तं गदा । तस्समए चेव पुवं व सासणा देवेषुववण्णा । एवं णिरंतरं गाणाजीवे अस्सिदूण सासणद्धा पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ता सगरासीदो असंखेज्जगुणा जादा ति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०७ ॥

तं जथा—एकको सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि ति देवेषुववण्णो, विदिय-समए मिच्छत्तं गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ २०८ ॥

तं जथा—एको तिरिक्खो मणुस्सो वा उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि ति आसाणं गंतूण एगसमयमच्छिय उजुगदीए देवेषुववज्जिय समऊण-छ-आव-लियाओ आसाणेणच्छिय मिच्छत्तं गदो ।

जैसे—सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र जीव, एक, दो अथवा तीन समयको आदि करके उत्कर्षसे एक समय कम छद् आवलीप्रमाण सासादनकालके अवशेष रहने पर वे सबके सय देवोंमें उत्पन्न हुए । पुनः वे सब क्रमसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही पूर्वके समान अन्य सासादनसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकार निरन्तर नाना जीवोंका आश्रय करके सासादनगुणस्थानका काल पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र और अपनी राशिसे असंख्यातगुणा हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २०७ ॥

जैसे—कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुआ और द्वितीय समयमें ही मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । इस प्रकारसे एक समयप्रमाण काल उपलब्ध हो गया ।

वैकृतिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल एक समय कम छद् आवलीप्रमाण है ॥ २०८ ॥

जैसे—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य उपशमसम्यक्त्वके कालमें छद् आवलियों अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय वहां पर रहकर अजुगतिते देवोंमें उत्पन्न होकर एक समय कम छद् आवलीप्रमाण काल तक सासादनगुण-स्थानके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालदो ह्येति, णाणा-
जीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २०९ ॥

तं जहा-सत्तह जणा पमत्तसंजदा मणजोगेण वचिजोगेण वा अचिदो सगद्धाए
खीणाए आहारकायजोगीसु जादा । विदियसमए मुदा, मूलसरिरं वा पविद्धा । लद्धो एग-
समओ । एतय वाधाद-गुणपरवचीहि एगो समओ ण लब्भदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१० ॥

तं जहा-आहारसरिरमुद्धाविदपमत्तसंजदा मण-वचिजोगिदो आहारकायजोगीसो
जादा । जाधे' ते जोगतरं गदा, ताधे चैव अण्णे आहारकायजोगं पडिवणा । एवमेगादि
एगुत्तरवद्धीए सखेजसलागाओ लब्भंति । एदाहि एगं कायजोगद्धं गुणिदे आहारकाय-
जोगद्धा उक्कस्सिया अंतोमुहुत्तपमाणा होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ ॥ २११ ॥

आहारकायजोगीसु पमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०९ ॥

जैसे—सात आठ प्रमत्तसंयत मनोयोग अथवा वचनयोगके साथ वर्तमान थे । वे
अपने योतकालके क्षीण हो जाने पर आहारकायजोगी हुए । द्वितीय समयमें मरे अथवा मूल
औदारिकशरीरमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकारसे एक समयका काल उपलब्ध हो गया । यहां पर
व्याघात अथवा गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समय नहीं प्राप्त होता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१० ॥

जैसे—आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान
प्रमत्तसंयत जीव आहारकायजोगी हुए । जब वे किसी दूसरे योगको प्राप्त हुए उसी समयमें
ही अन्य प्रमत्तसंयत आहारकायजोगको प्राप्त हुए । इस प्रकार एकको आदि लेकर
एकोत्तर बुद्धिसे संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं । इन शलाकाओंसे एक कायजोगके कालको
गुणा करने पर उत्कृष्ट आहारकायजोगका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारकायजोगी जीवोंका जघन्य काल एक समय
है ॥ २११ ॥

तं जधा-एको पमत्तसंजदो मणजोगे वचिजोगे वा अचिदो आहारकायजोगं
गदो । विदियसमए मदो, मूलसरिरं वा पविद्धो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१२ ॥

तं जधा-मणजोगे वचिजोगे वा द्विदपमत्तसंजदो आहारकायजोगं गदो, सव्व-
क्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणजोगं गदो ।

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालदो ह्येति,
णाणाजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१३ ॥

तं जधा-सत्तह जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमगा आहारमिस्सजोगीसो जादा,
सव्वलुद्धमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा । एवं जहणाकालो परुविदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१४ ॥

तं जधा-सत्तह जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमगा अदिट्ठमगा वा आहारमिस्सकाय-
जोगीसो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा । तस्समए चैव अण्णे आहारमिस्सकाय-
जोगीसो जादा । एवमेक्क-दो-तिणिण जाव सखेजसलागा जादा चि कादब्बं । पुणो

जैसे—मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारक-
कायजोगको प्राप्त हुआ और द्वितीय समयमें मरा, अथवा मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१२ ॥

जैसे—मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकाय-
जोगको प्राप्त हुआ । यहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योगको प्राप्त हुआ ।

आहारकमिश्रकायजोगीसु प्रमत्तसंयतजीव कितने काल तक होते हैं ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तकाल होते हैं ॥ २१३ ॥

जैसे—देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे सात आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्र-
कायजोगी हुए और सर्वलुद्ध अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । इस प्रकार जघन्य
काल कहा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१४ ॥

जैसे—देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे, अथवा अदृष्टमार्गी सात आठ प्रमत्तसंयत
जीव आहारकमिश्रकायजोगी हुए और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी
समयमें ही अन्य भी प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकायजोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो,
तीनको आदि लेकर जब तक संख्यात शलाकाएं पूरी हों, तब तक संख्या बढ़ाते जाना

एदाहि सलागाहि आहारमिस्सकायजोगद्धं गुणिदे आहारमिस्सकायजोगस्स उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१५ ॥

तं जथा—एको पमत्तसंजदो पुव्वमणेगवारमुद्धाविदआहारसरीरो आहारमिस्सकाय-जोगी जादो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

तं जथा—एको पमत्तसंजदो अदिट्ठमगो आहारमिस्सो जादो । सव्वचियेण अंतो-मुहुत्तेण जहण्णकालदो संखेज्जगुणेण पज्जत्तिं गदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २१७ ॥

कुदो ? विग्गहगदीए वड्डमाणजीवानं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

चाहिए । पुनः एन शलाकाअसे आहारकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर आहारक-मिश्रकाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१५ ॥

जैसे—पूर्वमें जिसने अनेक वार आहारकशरीरको उत्पन्न किया है ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और सबसे लघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे जघन्य काल प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

जैसे—नहीं देखा है मार्गको जिसने ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारक-मिश्रकाययोगी हुआ, और जघन्य कालसे संख्यातगुणे सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तद्वारा पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

कर्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २१७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २१८ ॥

तं जथा—एगो मिच्छादिट्ठी विग्गहगदिणामकम्मवसेण एगविग्गहे मारणांतियं गदो । पुणो अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण वद्धाउवसेण उप्पण्णपढमसमए कम्मइयकाय-जोगी जादो । विदियसमए ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१९ ॥

तं जथा—एगो सुहुमेइंदियो अहो सुहुमवाउकाइएसु तिण्णि विग्गहं मारणांतियं गदो । अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण उप्पण्णपढमसमयप्पहुडि तिसु विग्गहेसु तिण्णि समयं कम्मइयजोगी होदूण चउत्थसमए ओरालियमिस्सं गदो । सुहुमेइंदियाणं सुहुमे-इंदिएसु उप्पज्जमाणं तिण्णि विग्गहा होति चि णियमो कधं गण्वदे ? णत्थि एत्थ णियमो, किंतु संभवं पडुच्च सुहुमेइंदियमहणं कदं । बादरेइंदिया सुहुमेइंदिया तसकाया वा सुहुमेइंदिएसु उववज्जमाणा तिण्णि विग्गहे कोंति चि एस णियमो धेत्तव्वो, आइरिय-परंपरागदत्तादो । तिण्णिविग्गहाकरणदिसा बुच्चदे—बम्हलेगुदेसे वामदिसालोगपरंतादो

जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रहगतिनामकर्मके वशसे एक विग्रहवाले मार-णास्तिकसमुदायको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुक्त होकर बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें कर्मणकाययोगी हुआ । पुनः द्वितीय समयमें औदारिकमिश्र-काययोगको, अथवा वैक्रियकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २१९ ॥

जैसे—एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अद्यस्तन सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रहवाले मारणान्तिकसमुदायको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुक्त होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमें तीन समय तक कर्मणकाययोगी होकर चौथे समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हो गया ।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके तीन विग्रह होते हैं, यह नियम कैसे जाना ?

समाधान—यद्यपि इस विषयमें कोई नियम नहीं है, तो भी संभावनाकी अपेक्षा यहाँ पर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका ग्रहण किया है । अतएव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले बादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही तीन विग्रह करते हैं, यह नियम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, यही उपदेश आचार्यपरम्परासे आया हुआ है ।

अब तीन विग्रह करनेकी दिशाको कहते हैं—ग्रहलोकवर्ती प्रदेशपर वामदिशा-

तिरिच्छेण दक्खिणं तिणिणं रज्जुमेचं गंतूण तदो साद्धदसरज्जुणि अथो कंठुज्जुवं गंतूण तदो संसुहं चदुरज्जुमेचं आंगंतूण कोणदिसाठिलोगेरंतसुहुमवाउकाइएसु उपपज्जमाणस्स तिणिण विगहा हंति ।

सासनसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२० ॥

तं जथा- सासनसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी एगविगहं कादणुप्पणपढमसए एगसमओ कम्मइयकायजोगेण लब्धदि ।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २२१ ॥

तं जथा- सासनसम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिणो दोणिण विगहं कादण वदण-वसेणुप्पज्जिय दोणिण समए अच्छिय ओरालियमिस्स वेउवियमिस्सं वा गदा । तस्समए चेए अण्णे कम्मइयकायजोगिणो जादा । एमेवमं कंडयं कादण एरिसाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं कंडयाणि हंति । एदणं सलागाहि दोणिण समए गुणिदे आमलियाए असंखेज्जभागमेत्तो कम्मइयकायजोगस्स उक्कस्सकालो होदि ।

सम्यग्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढ़े दूदा राजु नीचिकी ओर चाणके समान सीधी गतिसे जाकर पश्चात् नामनेकी ओर चार राजुप्रमाण जाकर कोणवर्ती विदामें स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्म वायुकायिकोंमें समुत्पन्न होनेवाले जीवके तीन विग्रह होते हैं ।

‘कार्मणकाययोगी सामादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२० ॥

अैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक विग्रह करके उत्पन्न होनेके प्रथम ममयमें एक समय कार्मणकाययोगके साथ पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्क्रष्ट काल आवलीके असंख्यतर्वे भागप्रमाण है ॥ २२१ ॥

अैसे— पूर्व पर्यायको छोड़नेके पश्चात् कितने ही सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव बांधी हुई आयुके वदासे उत्पन्न होकर विग्रहगतिमें दो विग्रह करके, दो समय रह कर, पुनः औदारिकविश्रकाययोगको अथवा वैकृतिकविश्रकाययोगको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही दूसरे भी जीव कार्मणकाययोगी हुए । इस प्रकार ऐसे एक कांडक करके, इसी प्रकारके अन्य अन्य आयुओंके अनंख्यातर्वे भागमात्र कांडक होते हैं । इन कांडकोंकी दालकाभौसे दोनों समयोंको गुणा करने पर आयुलीका असंख्यतर्वों भागमात्र कार्मणकाय-योगका उत्क्रष्ट काल होता है ।

१. अ क प्रलो ‘काइयाए समुप्पज्जमाणस्स’, आ गती ‘-काइयाएव उपपज्जमाणस्स’ इति पाठ ।

२. प्रतिपु ‘पुरिसाणे’ इति पाठ ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

उक्कस्सेण वे समयं ॥ २२३ ॥

कुदो ? एदेमि सुहुमेहंदिएसु उपपत्तीए अभावा, वट्ठि-हाणिकमेण छिदलोगंते उपपत्तीए अभावादो च ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो हंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिणिण समयं ॥ २२४ ॥

तं जथा- सत्तट्ट जणा वा सजोगिणो समगं कमांडं गदा, पदर-लोगपूरणं गंतूण भूओ पदरं गंतूण तिणिण समयं कम्मइयकायजोगिणो होदण कमांडं गदा ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ २२५ ॥

कुदो ? तिणिण समइयं कंडयं काऊण संखेज्जकंडयाणमुत्तमा ।

एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण तिणिण समयं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्क्रष्ट काल दो समय है ॥ २२३ ॥

क्योंकि, इन सासादन या असंयतगुणस्थानवर्ती जीवोंकी सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें ब्रह्मसत्ता अभाव है । तथा बुद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकके अन्तमें भी उनकी उत्पत्तिका अभाव है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेली कितने समय तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय होते हैं ॥ २२४ ॥

अैसे— सात अथवा आठ सयोगिजिन एक साथ ही कपाटसमुदातको प्राप्त हुए, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुदातको प्राप्त होकर पुनः प्रतरसमुदातको प्राप्त हो, तीन समय तक कार्मणकाययोगी रह करके कपाटसमुदातको प्राप्त हुए ।

कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्क्रष्ट काल संख्यात समय है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, तीन समयवाले कांडकको करके उनके मग्यात कांडक पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका जघन्य और उत्क्रष्ट काल तीन समय है ॥ २२६ ॥

कुदो ? पदरादो लोगपूरणादो वा कवाडस्स गमणामावा ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा' ॥ २२७ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु इत्थिवेमिच्छादिद्वीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुतं ॥ २२८ ॥

तं जधा— एको इत्थिवेदगो सम्मामिच्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी संजदासंजदो
पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णकालमच्छिय अण्णगुणं गदो ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमसदुधत्तं ॥ २२९ ॥

तं जधा— एकको अणप्पिदवेदो इत्थिवेदेसु उववण्णो । पुणो तत्थ इत्थिवेदेण
पल्लिदोवमसदुधत्तं परियट्ठिय अणप्पिदवेदं गदो ।

क्योंकि, कार्मणकाययोगी सयोगिजिनका प्रतर और लोकपूरणसमुदायसे लौटकर
कपाटसमुदायमें जानेका अभाव है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २२७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें स्त्रीवेदवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२८ ॥

जैसे— कोई एक स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा
संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत औष परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सबसे
जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पत्योपमशतपृथक्त्व है ॥ २२९ ॥

जैसे— अविवाक्षित वेदवाला कोई एक जीव स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः वहां पर
स्त्रीवेदके साथ पत्योपमशतपृथक्त्व काल तक परिवर्तन करके अविवाक्षित वेदको चला गया ।

१ स्त्रीवेदेय भिषादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सर्व काल १ स. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त १ स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पत्योपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ २३० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्जगुणो, पल्लिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलि-
याओ, इच्चेएण ओघादो विसेसाभावा ओघमिदि वुत्तं ।

सम्मामिच्छादिद्वी ओघं ॥ २३१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो
पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं, इच्चेदेण
ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्चं
सव्वद्धा' ॥ २३२ ॥

कुदो ? इत्थिवेदमिह असंजदसम्मादिद्विविरहिकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा
पत्योपमका असंख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह
आवलीप्रमाण काल है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है, अतएव ओघ
यह पद सूत्रमें कहा ।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल अपनी
राशिसे असंख्यातगुणित पत्योपमके असंख्यातवें भाग है; तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य
और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कोई काल नहीं पाया
जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यापानिवृत्तिनादान्तानां सामान्योक्त काल । स. सि. १, ८.

२ किंतु अक्षयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सर्व कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जथा— एगो मिच्छादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा इत्थिवेदगो परिणामपचएण असंजदसम्मामिच्छादिद्वी होदएण सच्चजहणमंतोसुहृत्तमिच्छय जहण-कालाविरोहेण गुणंतरं गदो । लद्धो जहणकालो ।

उक्कस्सेण पणवणपल्लिदोवमाणि देसूणाणि ॥ २३४ ॥

कुदो ? अणप्पिदवेदस्स पणवणपल्लिदोवमाउद्धिदिदेयीसु उववजिय छ पज्जचीओ समाणिय अंतोमुहृत्तं विस्सभिय पुणो अंतोमुहृत्तं विसुद्धो होदएण वेदगसम्मत्तं पडिवजिय सम्मत्तेण आउद्धिमणुपालिय कालं कादएण पुरिसवेदं पडिवणस्स तीहिं अंतोमुहृत्तेहि ऊणपणवणपल्लिदोवमुवलंभा ।

संजदासंजदपहुडि जाव अणियट्टि ति ओघं ॥ २३५ ॥

कुदो ? ओघं पेक्खिदएण उत्तगुणट्ठाणां मेदाभाता । णवरि संजदासंजदउक्कस्स-कालमिह अरिय विसेसो । तं जथा— एको अट्ठरीससंतकम्मिओ त्थीवेदसु कुक्कुड-

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या संयत्तासंयत अथवा प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर और सर्वजन्म अन्तर्मुहूर्त रह करके जन्म कालके अविरोधसे किसी दूसरे गुणस्थानको चला गया । इस प्रकार जन्म काल लब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्लोपम है ॥ २३४ ॥

क्योंकि, किसी अधिवाक्षित अन्य वेदवाले जीवके पचवन पल्लोपमकी आयुस्थितियाली देवियोंमें उत्पन्न हो, छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न कर, अन्तर्मुहूर्त विश्राप्त करके, पुनः अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर देवकसम्यक्त्वको प्राप्त कर सम्यक्त्वके साथ अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, मरणको करके पुरुषवेदको प्राप्त हुए जीवके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचवन पल्लोपमप्रमाण काल पाया जाता है ।

संयत्तासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिशुसिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३५ ॥

क्योंकि, ओघके बालको देखते हुए सस्योक्त गुणस्थानोंके कालोंमें कोई भेद नहीं है । केवल संयत्तासंयतके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । यह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्ठारिस

१ उक्कस्सेण पचपंचाशत्पण्योपमानि देवोनामे । स धि. १, ८.

२ क प्रती 'विदे' इति पाठ ।

मक्कहादिसु उमज्जिय वे मासे गन्धमे अच्छिदएण णिप्फिडिय मुहृत्तपुधत्तस्सुपरि सम्मत्तं संजमांसंजमं च जुगवं धेतूण वेमासमुहृत्तपुधत्तणुव्वकोहिं संजमांसंजममणुपालिय मदो देवो जादो चि । ओघमिह पुण अंतोमुहृत्तणुव्वकोहिसंजदासंजदउक्कस्सकालो सण्णि-सम्मच्छिमपज्जत्तमच्छ-कच्छीम-मंहुकादिसु लद्धो, एत्थ सो ण लब्भदि, सम्मुच्छिमेसु इत्थिवेदाभावा ।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २३६ ॥

इतिषु वि अद्वासु पुरिसवेदमिच्छादिद्वीणिं विरहासंभवा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहृत्तं ॥ २३७ ॥

कुदो ? असंजदसम्मामिच्छादिद्विस्स सम्मामिच्छादिद्विस्स संजदासंजदस्स पमत्तसंजदस्स वा दिट्ठमगस्स मिच्छादिद्वी होदएण सच्चजहणमच्छिय गुणंतरं पडिवणस्स अंतो-मुहृत्तुवलंभा ।

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव स्त्रीवेदी कुक्कुड, मर्कट आदिमें उत्पन्न होकर, और दो मास गर्भमें रह, निकल करके मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्व और संयत्तासंयमको गुणपत्त ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्वसे कम पूर्वकोटीचर्यप्रमाण संयत्तासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया । किन्तु ओघकालप्रकरणमें जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी चर्य संयत्तासंयतका उत्कृष्ट काल कहा है यह सभी सम्मुच्छिम पर्याप्त मच्छ, कच्छप मंहुकादिकोंमें ही पाया जाता है, यह यहाँ पर नहीं पाया जाता है; क्योंकि, सम्मुच्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है ।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३६ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका धिरद्व असंभव है ।

एक जीवकी अपेक्षा जन्म काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३७ ॥

क्योंकि, वेदा है मार्गको जिसने, ऐसे असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयत्तासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतके, मिथ्यादृष्टि होकर और सर्वजन्म काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

१ अ प्रती 'णिप्फिडिय मुहृत्तं'; आ प्रती 'णिप्फिडियमंतोमुहृत्तं'; क प्रती 'णिप्फिडिय मुहृत्तं'; म प्रती 'णिप्फिडिय मुहृत्तं' इति पाठः ।

२ प्रतिप 'दुगदं' इति पाठः ।

३ प्रतिप 'कच्छमदि' इति पाठः ।

४ पुंवेदसु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवा पेक्कवाचं; कालः । स. ति. १, ८.

५ एक जीव प्रति जन्मनान्तर्मुहूर्तः । स, ति. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुथत्तं ॥ २३८ ॥

एदस्सुदाहरणं—एक्को ल्थी-णवुंसयवेदेसु बहुवारं परियद्विज्जीवो पुरिसवेदेसु उव-
वण्णो । पुरिसवेदो होदूण सागरोवमसदपुथत्तं परिभमिय अणप्पिदवेदं गदो । तिसदमादिं
करिय जाव णवसदं ति एदिस्से संखाए सदपुथत्तमिदि सण्णा ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अणियट्ठि ति ओधं ॥ २३९ ॥

कुदो ? एदेसिं उत्तगुणद्वाणं णणेगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सकालेहि ओघादो
मेदाभावा । णवरि संजदासंजदाणमित्थिवेदमंगो ।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं
पडुच्च संवद्धा ॥ २४० ॥

कुदो ? संवद्धासु एदेसिं विरहाभावा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २३८ ॥

इसका उदाहरण— स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत वार परिभ्रमण किया हुआ
कोई एक जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुरुषवेदी होकर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक
परिभ्रमण करके अविवक्षित वेदको चला गया । तीन सौ को आदि करके नौ सौ तककी
संख्याकी 'शतपृथक्त्व' यह संज्ञा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
पुरुषवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३९ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोंक गुणस्थानोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अग्र्य
और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि पुरुषवेदी
संयतासंयतोंका काल स्त्रीवेदी संयतासंयतोंके समान है ।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४० ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

१ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

२ अ वा क त्रिपिपु 'अप्यिवेद' इति पाठ ; स प्रती तु स्त्रीकृतपाठः ।

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यावनिवृत्तिबादान्तानां सामान्योक्त काल । स. सि. १, ८.

४ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४१ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा
मिच्छत्तं गंतूण सच्चजहणद्दमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं ॥ २४२ ॥

एदस्सुदाहरणं— एकको परिभमिदत्थी-पुरिसवेदद्विदिगो णवुंसयवेदं पडिवज्जिय
तमच्छंतो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेचपोगलपरियट्ठाणि परिभमिय अण्णवेदं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओधं ॥ २४३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओधं ॥ २४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च
संवद्धा ॥ २४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर्मुहुत्तं
है ॥ २४१ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत, अथवा संयत
जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहां पर सर्व अग्र्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको
प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहुत्तकाल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण
है ॥ २४२ ॥

इसका उदाहरण— जिसने पुरुषवेद और स्त्रीवेदी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया
है, ऐसा कोई एक जीव नपुंसकवेदको प्राप्त होकर, उसे नहीं छोड़ता हुआ आवलीके असे-
ख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंतक परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २४५ ॥

१ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहुत्तं । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणान्त कालोऽसंखेयाः पुद्गलपरिवर्तनः । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यावनिवृत्तिबादान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ किन्त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुतं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणे अंतोमुहुत्तं ॥ २४६ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्विस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स असंजदसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वजहणद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २४७ ॥

कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिगस्स सत्तमपुट्ठीए^१ उप्पज्जिय छ पज्जत्तीओ समा-
णिय विस्समिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तुवासेसे आउए मिच्छत्तं
गंतूण आउअं वंधिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय णिग्गदस्स छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणतेत्तीस-
सागरोवलंभा ।

संजदासंजदण्हडि जाव अणियट्ठि ति ओधं ॥ २४८ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४६ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि या संयतासंयत जीवके असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २४७ ॥

क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठावीस मरुतियोंकी सत्तावाले किसी जीवके सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर, छह पर्यायियोंको सम्पन्न करके, विश्राम कर और विशुद्ध होकर, तथा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, आयुके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर, मिथ्यात्वको जाकर, आगामी भवसम्बन्धी आयुको बांधकर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके निकलनेवाले जीवके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल पाया जाता है ।

संयतासंयतसे लेकर अनिष्टुत्तिकरण गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४८ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

१ एकजीव प्राति जघन्यनान्तर्मुहूर्त । स. ति. १, ८.

२ तत्करणे नयसिक्खसागरोपमाणि देओनानि । स. ति. १, ८.

३ प्रसिद्ध 'सकपुट्ठी' इति पाठ ।

अपगदवेदएसु अणियट्ठिण्हडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ २४९ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावो ।

एव वेदमग्गणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु
मिच्छादिट्ठिण्हडि जाव अपमत्तसंजदा ति मणजेगिभंगो ॥ २५० ॥

कुदो ? दग्गट्ठियणयावलंघणेण । पज्जविट्ठियणए अवलंघिज्जमाणे अत्थि विसेसो ।
तं वत्तइस्सामो । तं जथा- कोधकसाइ मिच्छादिट्ठी एगजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ।
एत्थ कसाय-गुणपरावत्ति-मरणेहि एगममओ वत्तव्वो । वाधादेण एगसमओ ण लब्भदि,
कोधस्सेव तत्थुप्पत्तीदो । तं जथा-एको सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मामिद्धी संजदा-
संजदो पमत्तसंजदो वा कोधकसाइ एगममयं कोधकसायद्धा अत्थि ति मिच्छत्तं गदो ।
एगसमयं कोधेण मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए अण्णकसायं गदो । एसा कसायपरावत्ती ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिष्टुत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४९ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कपायमार्गणके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी और लोभ-
कपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तकका काल मनोयोगियोंके
समान है ॥ २५० ॥

क्योंकि, सूत्रमें द्रव्यार्थिकृतयका अवलम्बन किया गया है । किन्तु पर्यायार्थिकृतयके
अवलम्बन करने पर विशेषता है । उसे कहते हैं । जैसे— क्रोधकपायी मिथ्यादृष्टि जीवका
एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है । यहां पर कपायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन
और मरणके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए । व्याघातकी अपेक्षा एक
समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, व्याघातके होने पर तो क्रोधकी ही उत्पत्ति होती है ।
जैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या सयता-
संयत, अथवा प्रमत्तसंयत क्रोधकपायी जीव क्रोधकपायके कालमें एक समय अवशेष
रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । एक समय क्रोधके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ,
और द्वितीय समयमें किसी और कपायको प्राप्त हो गया । यह कपायपरिवर्तनसम्बन्धी एक

१ अपगतवेदानां सामान्यवत् । स. ति. १, ८.

२ कपायाणुवादेन चटुकसायाणां पिप्पादहजपपप्रवत्तानां मनोयोगिवत् । स. ति. १, ८.

॥ २२३ ॥

एको मिच्छादिद्वी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्स अद्वाक्खएण कोधकसाओ आगदो, एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं असंजदस्ममत्तं संजमांसंजमं अप्पमत्त-भावेण संजमं वा पडिवण्णो । एसा गुणपरवत्ती । एको मिच्छादिद्वी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्सद्वाक्खएण कोहकसाई जादो । एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्ण-कसाएसु उववण्णो । एसो मरणेण एगसमओ । कोहेण मदो णिरयगदीएण उप्पादेदब्बो, तत्थुप्पण्णजीवाणं पढमं कोधोदयस्सुवलंभा । माणेण मदो मणुसगदीएण उप्पादेदब्बो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए माणेदयणियमोवदेसा । मायाए मदो तिरिक्खगईएण उप्पादे-दब्बो, तत्थुप्पण्णाण पढमसमए माओदयणियमोवदेसा । लोभेण मदो देवगदीएण उप्पादे-दब्बो, तत्थुप्पण्णाणं पि णादूण वत्तवं । एवं माण माया लोमाणं वत्तवं । णवरि कसाय-गुण-सेसगुणद्वानाणं पि णादूण वत्तवं । एवं माण माया लोमाणं वत्तवं । णवरि कसाय-गुण-परवत्ति-मरण-वाधोदेहि चउहि वि एगसमयपरूवणा वत्तन्वा ।

समयकी प्ररूपणा है । एक मिथ्यादृष्टि जीव जो कि अन्य कषायमें वर्तमान था, उस कषायके कालक्षयसे क्रोधकषायको प्राप्त हुआ । एक समय वह क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समयमें सभ्यगमिध्यात्वको अथवा असंयतसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अग्रमत्तभावके साथ सयमको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तन है । एक मिथ्यादृष्टि जीव अन्य कषायमें विद्यमान था । उस कषायके कालक्षयसे वह क्रोधकषायी हो गया । एक समय क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें मरा और अन्य कषायोंमें उत्पन्न हुआ । यह मरणकी अपेक्षा एक समय हुआ । क्रोधकषायके साथ मरा हुआ जीव नरकगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम क्रोधकषायका उदय पाया जाता है । मानकषायसे मरा हुआ जीव मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें मानकषायके उदयके नियमका उपदेश देखा जाता है । मायाकषायसे मरा हुआ जीव तिर्यगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, तिर्यकोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मायाकषायके उदयका नियम देखा जाता है । लोभ-कषायसे मरा हुआ जीव देवगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम लोभकषायका उदय होता है, ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है । इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी काल जान कर कहना चाहिए । इसी प्रकार मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषायोंके कालोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि कषायपरिवर्तन, गुणपरिवर्तन, मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पणपटमकालंदि । कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो भावि म गो. जी. २८८.

दोणि तिणि उवसमा केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २५१ ॥

तिसु वि कसाएसु दोणि उवसामगा, अणियद्वीदो उवरि तिण्हं कसायाणमभावा । लोभकसाए तिणि उवसामगा, उवसंतकसाए लोभोदयाभावा । एदेसिं कसायपरवत्ति-गुणपरवत्ति-वाधोदेहि एगसमओ णत्थि । कुदो ? तहाविहुवएसभावा । किंतु अणियद्वि-सुहुमसांपराइयाणं चटंत-ओयरंत-पढमसमए मदाणं एगसमओ लब्भह । अपुव्वस्स पुण ओयरंतस्स पढमसमए चेव । कुदो ? चढमाणअपुव्वस्स पढमसमए मरणाभावा ।

उकस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

कुदो ? चटंत-ओयरंतपज्जयपरिणदजीविहि अंतोमुहुत्तकालं एदेसिं गुणद्वानाणम-सुणत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

क्रोध, मान और माया, इन तीनों कषायोंकी अपेक्षा दो उपशामक अर्थात् आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव, और लोभकषायकी अपेक्षा तीन उपशामक अर्थात् आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेण्यारोहक जीव, कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २५१ ॥

क्रोधादि तीनों ही कषायोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव होते हैं; क्योंकि, अनिवृत्तिकरणसे ऊपर तीनों कषायोंका अभाव है । लोभ-कषायमें अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव होते हैं । क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानमें लोभकषायके उदयका अभाव है । इन उपर्युक्त दो और तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंमें कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता है । किन्तु, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके चढ़ने या उतरनेके प्रथम समयमें मरे हुए जीवोंके एक समय पाया जाता है । अपूर्वकरण गुणस्थानके उतरनेके प्रथम समयमें ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवके प्रथम समयमें मरणका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़ती और उतरती हुई पर्यायसे परिणत जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल इन गुणस्थानोंके अशून्य अर्थात् परिपूर्ण रूपसे पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २५३ ॥

१ द्वयोरुपशमकयो X X केवलोलमस्य च X X सामान्योक्तः काल । स. वि. १, ८.

कुदो ? तिण्हसुवसामगणं मरणेण एगसमओवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? कसायाणसुदयस्स अंतोमुहुत्तादो उवरि णिच्छएण विणासो होदि ति गुरुवेदसा ।

दोणि तिणि खवा केवचिरं कालादो हेंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५५ ॥

एत्थ एगसमओ किण लब्भदे ? उच्चदे- ण ताव कसायपरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, खवगुवसामगे सकसायुदयस्स जहणकालस्स वि अंतोमुहुत्तपरिमाणुवेदसा । ण गुणपरावत्तीए वि एगसमओ, एगसमइयस्स कसायुदयस्स खवगुवसमसेडीसु अभावा । ण वाघादेण, खवगुवसमसेडीसु वाघादस्स पडिसेधा । ण मरणेण वि, सबगेसु मरणाभावा । तदो जहणकालेण णिच्छएण अंतोमुहुत्तेण होदव्यमिदि ।

क्योंकि, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामक जीवोंके मरणके साथ एक समय पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, कर्मायोंके उदयका अन्तर्मुहूर्त कालसे ऊपर निश्चयसे विनाश होता है, इस प्रकार गुरुका उपवेश है ।

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २५५ ॥

शंका—इन सूत्रोंक क्षपक जीवोंके एक समयप्रमाण काल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—उक्त आशंकापर उत्तर कहते हैं कि उक्त दोनों या तीनों गुणस्थानोंमें न तो कर्मायपरिवर्तनसे एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक या उपशामकोंमें अपनी उदयागत कर्मायके उदयका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, ऐसा आचार्य परम्पराका उपवेश है । और न गुणपरिवर्तनके द्वारा ही एक समयप्रमाण काल पाया जाता है, क्योंकि, एक समयवाले कर्मायके उदयका क्षपक और उपशाम भेदियोंमें अभाव है । न व्याघातके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक और उपशाम भेदियोंमें व्याघातका प्रतिषेध पाया जाता है । और न मरणके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपकोंमें मरणका अभाव है । इसलिए यहां पर कर्मायोंका जघन्य काल निश्चयसे अन्तर्मुहूर्त ही होना चाहिए ।

१ × × द्रव्यो. क्षपकयो केवलओमरय ष × सामान्योक्तः काल । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५६ ॥

कमेण अंतोमुहुत्तंतरेण खवगसेट्ठि चडमाणवहुजीवे अरिसदूण जहण्णकालादो संवेज्जगुणकालुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५७ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५८ ॥

एदं पि सुगमं ।

अक्कसाईसु चटुट्ठणी ओघं ॥ २५९ ॥

कुदो ? सन्वेण वि पयारेण णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालगदविसेसाभावा । एवं कसायमगणा समत्ता ।

गाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २६० ॥

उक्त जीवोंके उक्त कर्मायोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, क्रमशः अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे क्षपकधेणी पर चढ़नेवाले बहुत जीवोंकी अपेक्षा जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अकर्मायी जीवोंमें अन्तिम चतुर्गुणस्थानी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २५९ ॥ क्योंकि, सर्व ही प्रकारसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालगत कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कर्मायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्तज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६० ॥

१ × × अकर्मायार्ण ष सामान्योक्तः काल । स. सि. १, ८.

२ ज्ञानावुवादेन भक्कज्ञानिश्रुताज्ञानिणु मिथ्यादृष्टिज्ञानादनसम्पदएवो सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? गणजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियद्धं देहणमिच्चएण ओघादो भेदाभावा । अणादिअणिहण-अणादिसिंहण-अण्णाणेषु मदि-सुदअण्णाणी वि अत्थि, किंतु तेहि एत्थ अणहियरो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६१ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणविरहिदसासणमभावा ।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २६२ ॥

कुदो ? विभंगणाणिमिच्छादिट्ठीणं तिसु वि कालेषु संताणवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमगस्स मिच्छत्तं पडिवज्जिय सव्वजहणद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेवविभंगणकालवल्गमा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २६४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुल्लपरिवर्तन है । इस प्रकारसे ओघके कालसे कोई भेद नहीं है । यद्यपि अनादि-अन्त और अनादि-सान्त अक्षानोंमें मत्यक्षानी और श्रुताक्षानी भी जीव हैं, किन्तु उनका यहां पर अधिकार नहीं है ।

मति-श्रुताक्षानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६१ ॥

क्योंकि, मत्यक्षान और श्रुताक्षानसे रक्षित सासादनगुणस्थानी जीवोंका अभाव है ।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें विभंगक्षानी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके व्युच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयतके मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर और सर्व जघन्य काल तक वहां रद्ध कर गुणस्थानान्तरको गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण विभंगक्षानका काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागरोपम है ॥ २६४ ॥

१ विभंगक्षानिसु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया धर्मः काल । स. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति नवक्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशानि । स. सि. १, ८.

उदाहरणं- एकको मिच्छादिट्ठी सत्ताए पुढवीए उववज्जिय छ पज्जत्तीओ समानिय विभंगणाणी जादो । अप्पणो आउट्ठिमणुपालिय कालं काऊण गिग्गयस्स णट्ठं विभंगणं, अपज्जत्तद्धाए तस्स विरोहा । एवमंतोमुहुत्तणतेत्तीससागरोवमाणि विभंग-णाणस्स उक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो, एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चएण ओघादो भेदाभावादो ।

आभिणिवोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठि-पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ २६६ ॥

कुदो ? गणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि एदेविं ओघादो विसेसाभावा । गवरि ओधिणाणिसंजदासंजदगीवुक्कस्सकालमिह अत्थि विसेसो । तं जहा- एक्को अट्ठाधीस-

उदाहरण- एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर और छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके विभंगक्षानी हुआ । अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर और मरण करके निकला । तब उसका विभंगक्षान नष्ट हो गया, क्योंकि, अपर्याप्तिकालमें विभंगक्षानके होनेका विरोध है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम तेत्तीस सागरोपम विभंगक्षानका उत्कृष्ट काल होता है ।

विभंगक्षानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणा, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण, इस प्रकार ओघ कालसे कोई भेद नहीं है ।

आभिनिवोधिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछवस्य गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इन सूत्रोंके जीवोंके कालमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है । केवल, अवधिज्ञानी संयतासंयत गुणस्थानसम्बन्धी एक जीवके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है- मोहकर्मकी

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्त काल । स. सि. १, ८

२ आभिनिवोधिक्कश्रुतावधिमन पर्ययकेवलक्षानिना सामान्योक्त काल । स. सि. १, ८.

३ प्रल्लिपु ' अत्थि पि विसेसा ' इति पाठः ।

संतकस्मिओ सणिणसग्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विसंसतो
विसुद्धो संजमांसजमं पड्विज्जय मदि-सुदणाणी जादो । तदो अंतोमुहुचं गंवूण ओधि-
णाणमप्योदेदि' । एत्तिओ चेव विसेसो, णत्थि अणत्थ कत्थ वि ।

मणपञ्जवणाणीसु पमत्तंसंजदण्हुडि जाव खीणकसायवीदिराग-
छुदमत्था ति ओघं ॥ २६७ ॥

कुदो? पमत्तापमतंसंज्दणधुवसामगाणं खवमाणं च णाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि
ओघादो भेदाभावा ।

केवल्लणीस मजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ २६८ ॥

कुदो ? केवलणाणविरह्दसजोगि-अजोगिकेवलीणमभावा ।

एव गणभगणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लि
त्ति ओघं ॥ २६९ ॥

अद्वैत प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव संही, सम्पूर्णछिम, पर्याप्तकोमै उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विगुद्ध होकर, संयमासंयमको प्राप्त कर, मति-श्रुतबानी हो गया । पुनः अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् अवाधिबानको उत्पन्न करता है । इतनी मात्र ही विशेषता है और कहीं भी कोई विशेषता नहीं है ।

मनःपर्यङ्गानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर
तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६७ ॥

क्योंकि, प्रमत्त और अमरतत्त्वसंयोंका तथा उपशामक और क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघप्रक्रुणसे कोई भेद नहीं है ।

केवलज्ञानियोगमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६८ ॥

क्योंकि, केवलमानसे रहित सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियोंका अभाव है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणके अनुवादसे संयतोमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली तक जीवोंका काल ओषधके समान है ॥ २६९ ॥

२ प्रतिपु 'ओधिणाणीमुप्पादेदि' इति पाठः ।

२ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्यप्राययथास्थितशब्दस्यतानां ××

सामणसंजमे अवलंबिदे विसंसाणुवलद्धीदो ।

समाइयच्छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदेसु पम तंसंजदण्हडि जाव अणि-
गट्टि ति ओघं ॥ २७० ॥

कुदा ? पमत्तापमत्तणं पाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहणेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोण्हमुवसामगाणं जहणेण पाणेगजीवं पडुच्च एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, दोण्हं खवगाणं पाणेगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण अंतो-मुहुत्तमिच्चएण ओघादो भेदाभावा ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ २७१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण एगसमओ,
अतोमहत्तमिच्चेदेहि विसेसामावा ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा
स्वा ओयं ॥ २७२ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमुभयत्थ संजमभेदाभावा ।

क्योंकि, सयसामान्यके अवलंबन करने पर ओघके कालसे कोई भेद नहीं पाया जाता ।

सामायिक और हेतुपस्थापनाशुद्धिसंयतां प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर
अग्निवृत्तिकरण तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७० ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतो का नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों क्षणोंका न ना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओषके कालसे कोई भेद नहीं है।

परिहारविशुद्धिसंयतोमै प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोका काल ओघके समान है ॥ २७१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जगत्त और उत्कृष्ट काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोमै सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसयत उपशामक और
श्वपकोका काल ओषके समान है ॥ २७२ ॥

प्रयोज्योक्तिः, सुष्ठुसामग्रपराधिकश्रद्धासंयतोके दोनौ श्रेणियोंमें संयमके भेदका अभिभावक है।

जहावसादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्ठाणी ओधं ॥ २७३ ॥

कुदो ? ओघादेसेसु चटुण्हं गुणट्ठाणां संजमभेदाणुवलंभा ।

संजदासंजदा ओधं ॥ २७४ ॥

सुगमो एदस्स अत्थो ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओधं ॥ २७५ ॥

एदस्स वि अत्थो अवधारिओघद्वानं सुगमो ।

एव सजममग्गा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठि केवचिरं कालादो होति, जाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ॥ २७६ ॥

कुदो ? चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठिविरहिकालाभावा ।

यथाख्यातविहारसुद्धिसंयतोमं अन्तिम चार गुणस्थानवाले जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७३ ॥

क्योंकि, ओघ और आदेशमें चारों गुणस्थानोंके संयमोंमें कोई भेद नहीं पाया जाता है ।

संयतासंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक असंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७५ ॥

जिन्होंने ओघसम्यग्धी कालको भलीभांति अवधारण किया है, ऐसे शिष्योंके लिए इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

१. ५. २५५. वेयत्तावतत्ता ५५५. काम्पोजातः कालः । स. सि. १, ८.

२. ५. २५५. वेयत्तावतत्ता ५५५. काम्पोजातः कालः । स. सि. १, ८.

३. ५. २५५. वेयत्तावतत्ता ५५५. काम्पोजातः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७७ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छत्तं गंतूण सच्चजहणद्धमच्छिय गुणतरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालुत्तलंभा ।

उक्खसेण वे सागरोवमसहस्साणि ॥ २७८ ॥

उदाहरणं— एगो अचक्खुदंसणी मिच्छादिट्ठो चक्खुदंसणीसु उववणो । चक्खुदंसणी होदूण वे सागरोवमसहस्साणि परिभमिय अचक्खुदंसणं गदो । लद्धिअपज्जत्तेसु चक्खुदंसणं णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं व किण उच्चदे ? ण, तम्मि भवे तत्थ चक्खुदंसणुव-जोगाभावा । णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं तम्मि भवे णियमंण चक्खुदंसणुवजोगुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुट्टमत्था ति ओधं ॥ २७९ ॥

कुदो ? चक्खुदंसणविरहिकासणादीणमभावा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या अन्यतासंयत, या संयतके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहां पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल दो हजार सागरोपम है ॥ २७८ ॥ उदाहरण— कोई एक अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुआ, और चक्षुदर्शनी होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनको प्राप्त हो गया । (इस प्रकार सूत्रोंक काल सिद्ध हुआ ।)

शंका— निर्धृत्यपर्याप्तकोंके समान लब्ध्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा ? समाधान— नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तकोंके उसी भवमें चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव पाया जाता है । किन्तु निर्धृत्यपर्याप्तकोंके तो उसी भवमें नियमसे ही, चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछस्य गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं ।

१. एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२. तत्त्वमैव वे सागरोपमसहस्रे । स. सि. १, ८.

३. सासादनसम्यग्दृष्टादीनां क्षीणकपायानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव स्वीणकसायवीदराग-
छदुमत्था ति ओयं ॥ २८० ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणविरहिसावरणजीवानुलंभा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८१ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८२ ॥

एदाणि देवि सुत्ताणि अवहारिदण्णाणुवादाणं सुगमाणि ।

एवं दसणमगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील्लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा-
दिट्ठी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सब्वद्धा ॥ २८३ ॥

कुदो ? सब्वकालं तिलेस्सियमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकयायवीतरागछद्मस्य गुण-
स्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २८० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनसे रहित सावरण जीव नहीं पाये जाते हैं ।

अविदर्शनी जीवोंका काल अविधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका काल केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८२ ॥

ज्ञानमार्गणोंके कालानुवादका अवधारण करनेवाले शिष्योंके लिए ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणोंके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने, काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८३ ॥

क्योंकि, सर्वकाल ही तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहा अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८४ ॥

१ अचक्षुदर्शनीसु मिथ्यादृष्ट्यादिकक्षीणकयायान्तानां सामान्योक्तः काल । स. सि. १, ८.

२ अविधि-केवलदर्शनीनोराधावि-केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

३ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया सर्वं कालं । स. सि. १, ८.

किण्हलेस्साए ताव अंतोमुहुत्तपरूवणं कीरदे । तं जघा-णील्लेस्साए अच्छिदस्स
तिस्से अद्वाखएण किण्हलेस्सा जादा । सब्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिदूण णील्लेस्सिओ
जादो । काउलेस्सिओ किण्ण होदि ? ण, किण्हलेस्साए परिणदस्स जीवस्स अणंतरमेव
काउलेस्सापरिणमणसत्तीए असंभवा ।

णील्लेस्साए उच्चदे-हीयमाण-वड्डमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा
अच्छिदस्स णील्लेस्सा आगदा । सब्वजहणमंतोमच्छिय जहणकालाविरौहिण काउलेस्सं
किण्हलेस्सं वा गदो, अण्णलेस्सागमणासंभवा । के वि आहरिया हीयमाणलेस्साए चेव
जहणकालो होदि ति भणंति ।

काउलेस्साए वि उच्चदे-हायमाणणील्लेस्साए तेउलेस्साए वा अच्छिदस्स
काउलेस्सा आगदा । तत्थ सब्वजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय यदि तेउलेस्सादो आगदो, तो
णील्लेस्सं गेदव्वो । अह णील्लेस्सादो आगदो तो तेउलेस्साए गेदव्वो, अण्णदा
संकिलेस-विसोहीओ आउरंतस्स जहण्णकालाणुवत्तीदो । एत्थ जोगस्सेव एगसमओ जहण-

पहले कृष्णलेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—
नीललेश्यामें वर्तमान किसी जीवके उस लेश्याके काल क्षय हो जानेसे कृष्णलेश्या हो गई,
और यह उसमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके नीललेश्यावाला हो गया ।

शंका—कृष्णलेश्याके पश्चात् कापोतलेश्यावाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कृष्णलेश्यासे परिणत जीवके तदनन्तर ही कापोत-
लेश्यारूप परिणमन शक्तिका होना असंभव है ।

अब नीललेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा करते हैं—हीयमाण कृष्णलेश्यामें
अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आगई । तब वह जीव
उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्य कालके अविरोधसे यथासंभव कापोत-
लेश्याको अथवा कृष्णलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, इन दोनों लेश्याओंके सिवाय उसके अन्य
किसी लेश्याका आगमन असंभव है । कितने ही आचार्य, हीयमाण लेश्यामें ही जघन्य
काल होता है, ऐसा कहते हैं ।

अब कापोतलेश्याके जघन्य कालको कहते हैं—हायमाण नीललेश्यामें अथवा
तेजोलेश्यामें विद्यमान जीवके कापोतलेश्या आगई । वह जीव उस लेश्यामें सर्वजघन्य
अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, यदि तेजोलेश्यासे आया है तो नीललेश्यामें ले जाना चाहिए;
और यदि नीललेश्यासे आया है तो तेजोलेश्यामें ले जाना चाहिए । अन्यथा संक्षेप और
विशुद्धिको आपूरण करनेवाले जीवके जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

शंका—यहां पर योगपरिवर्तनके समान एक समयरूप जघन्य काल क्यों नहीं

कालो किण्ण लब्भेदे ? ण, जोग-कसायाणं व लेस्साए तिस्सा परवचीए गुणपरावचीए मरणेण वाघादेण वा एगसमयकालस्सासंभवा । ण ताव लेस्सापरावचीए एगसमओ लब्भदि, अपिपदलेस्साए परिणमिदविदियसमए तिस्से विणासाभावा, गुणंतरं गदस्स विदियसमए लेस्संतरगमणाभावादो च । ण गुणपरावचीए, अपिपदलेस्साए परिणदविदियसमए गुणंतरगमणाभावा । ण च वाघादेण, तिस्से वाघादाभावा । ण च मरणेण, अपिपदलेस्साए परिणदविदियसमए मरणाभावा ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सच्च सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ २८५ ॥

एदेसिमुदाहरणाणि । तं जघा- णील्लेस्साए अच्छिदस्स किण्हलेस्सा आगदा । तत्थ सच्चुक्कस्सपंतोमुहुत्तमच्छिय अधो सत्तमीए पुढवीए उववण्णो । तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाणि गमिय उववडिदो । पच्छा वि अंतोमुहुत्तकाले भावणवसेण सा चेव लेस्सा होदि । एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्हलेस्साए उक्कस्स-कालो होदि ।

पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, योग और कयाओंके समान लेश्यामें लेश्याका परिवर्तन, अथवा गुणस्थानका परिवर्तन, अथवा मरण और व्याघातसे एक समय कालका पाया जाना असंभव है । इसका कारण यह है कि न तो लेश्यापरिवर्तनके द्वारा एक समय पाया जाता है, क्योंकि, विवाक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें उस लेश्याके विनाशका अभाव है । तथा इसी प्रकारसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य लेश्यामें जानेका भी अभाव है । न गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समय संभव है, क्योंकि, विवाक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानके गमनका अभाव है । न व्याघातकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, वर्तमानलेश्याके व्याघातका अभाव है । और न मरणकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, विवाक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें मरणका अभाव है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्याओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक तेत्तीस सागरोपम, साधिक सत्तरह सागरोपम और साधिक सात सागरोपम प्रमाण है ॥ २८५ ॥

इनके उदाहरण इस प्रकार हैं— निलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके कृष्णलेश्या आगई । उसमें वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मरण कर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां वह तेत्तीस सागरोपम काल बिताकर निकला । सो पीछे भी अन्तर्मुहूर्त काल तक भावनाके वशसे वही ही लेश्या होती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक तेत्तीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ उत्कर्षेण त्रयश्रितस्तत्पञ्चसप्तसागरोपमाणि सातिरिकाणि । स. सि. १, ८.

णील्लेस्साए उच्चदे- काउलेस्साए अच्छिदस्स णील्लेस्सा आगदा । तत्थ दीह-मंतोमुहुत्तमच्छिदूण पंचमीए पुढवीए उववण्णो । तत्थ सत्तारस सागरोवमाणि ताए लेस्साए गमिय उववडिदो । उववडिदस्स वि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि । एवं दोहि अंतो-मुहुत्तेहि सादिरियाणि सत्तारस सागरोवमाणि णील्लेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

काउलेस्साए उच्चदे- तेउलेस्साए अच्छिदस्स सगद्वाए खीणाए काउलेस्सा आगदा । तत्थ दीहमंतोमुहुत्तमच्छिय तदियाए पुढवीए उववण्णो । तीए लेस्साए सच्च सागरोवमाणि तत्थ गमिय उववडिदो । उववडिदस्स वि सा चेव लेस्सा अंतोमुहुत्तं होदि । एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरियाणि सच्च सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्स-कालो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओधं ॥ २८६ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पहुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्ज-गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पहुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण छ अवलियाओ, एदेहि तिलेस्सागदसासणणं तदो भेदाभावा ।

अथ निलेश्याका काल कहते हैं— कापोतेलेश्यामें वर्तमान जीवके निलेश्या आ गई । उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह करके वह जीव पाचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर सत्तरह सागरोपम काल उस लेश्याके साथ बिताकर निकला । निकलने पर भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सत्तरह सागरोपम निलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

अथ कापोतेलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं— तेजोलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके उस लेश्याके कालके क्षीण हो जाने पर कापोतेलेश्या आगई । उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह कर मरण करके तृतीय पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर उसी लेश्याके साथ सात सागरोपम काल बिताकर निकला । निकलनेके पश्चात् भी वही लेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सात सागरोपम कापोतेलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २८६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी रात्रिसे असंख्यातगुणा पत्योपमका असंख्यातवां भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलीप्रमाण काल है । इस प्रकारसे तीनों अशुभ लेश्याओंको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके कालका ओघसे कोई भेद नहीं है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्भिण्यादृष्टोः सामान्योक्त कालः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि' ॥ २९३ ॥

तं जथा—एको मिच्छादिद्वी काउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अट्टाखण तेउलेस्सिओ जादो। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिदूण मदो सोहम्मे उववणो। वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागोवमाणि जीविदूण जुदो णट्टेस्सिओ जादो। लद्धा सगद्धिदी पुविहत्तोमुहुत्तेण अब्भाधिया। अंतोमुहुत्तूणअट्टाज्जसागरोवममेत्ता द्विदी किण्ण लब्भदे? ण, मिच्छादिद्वि-सम्मादिद्वीहि उवरिमदेवेसु बद्धमाउअमोवद्वणाधादेण घादिय मिच्छादिद्वी जदि सुहु महंतं करोदि, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागोवमाणि केदि, सोहम्मे उप्पज्जाणमिच्छादिद्वानं एदद्दादो अहियाउद्वणे सत्तीए अभावा। अट्टाज्जसागरोवमद्विदीए उप्पज्जाणसम्मादिद्वि मिच्छत्तं णेदूण उक्कस्सकालं भणिस्सामो? ण, अंतोमुहुत्तूण-ट्टाज्जसागरोवमेसु उप्पज्जाणसम्मादिद्विस्स सोहम्मणिवासिस्स मिच्छत्तगमणे संभवाभावा।

तेजोलेस्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक दो सागरोपम और पबलेस्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक अट्टारह सागरोपम है ॥ २९३ ॥

अैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव कापोतेलेस्यामें विद्यमान था। उस लेस्याके कालक्षयसे वह तेजोलेस्यावाला हो गया। उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सौघर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ। वही पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ और उसकी तेजोलेस्या नष्ट हो गई। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक दो सागरोपम सौघर्मकल्पकी मिथ्यादृष्टिसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति तेजोलेस्याकी प्राप्त हो गई।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेस्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम बढ़ाई सागरोपमप्रमाण क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा उपरिम देवोंमें बांधी हुई आयुको उर्वतनायातसे घात करके मिथ्यादृष्टि जीव यदि अच्छी तरह खूब बड़ी भी स्थिति करे, तो पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अत्यधिक दो सागरोपम करता है, क्योंकि, सौघर्मकल्पमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके इस उत्कृष्ट स्थितिसे अधिक आयुकी स्थिति स्थापन करनेकी शक्तिका अभाव है।

शंका—यदि हम बढ़ाई सागरोपम स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टिको मिथ्यात्वमें ले जाकर तेजोलेस्याका उत्कृष्ट काल कैसे तो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कम बढ़ाई सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सौघर्मनिवासी सम्यग्दृष्टि देवके मिथ्यात्वमें जानेकी संभावनाका अभाव है।

तं पि कथं णव्वदे? पलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागोवमाहियवेसागरोवममेत्ता सोहम्मीसाणे मिच्छाद्वि-आउद्विदी होदि त्ति आहरियपरंपरागदोवदेसा। अधवा अण्णेषुवएसेण अट्टाज्जसागरोवमाणि देवणाणि मिच्छादिद्विस्स वि संभवंति, भवणादिसहस्सारंतदेवेसु मिच्छाद्विस्स दुविहाउद्विदपरूवणणाहाणुवचीदो।

असंजदसम्मादिद्विस्स उव्वदे—एको असंजदो सोहम्मीसाणदेवेसु वे सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूण सागरोवमस्स अद्वं च आउवं करिय अंतोमुहुत्तं तेउलेस्सी होदूण कमेण कालं करिय सोहम्मे उववणो। सगद्धिदिमच्छिय पुणो मणुसेसुवजिय अंतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए परिणमिय पम्मलेस्सं काउलेस्सं वा गदो। लद्धाणि अंतोमुहुत्तूणअट्टाज्जसागरोवमाणि संपुणाणि। अहियाणि वा किण्ण होति त्ति उत्ते ण, पुन्नावरकालमिह लद्धअंतो-मुहुत्तादो अट्टसागरोवममिह पडिदंतोमुहुत्तस्स बहुत्तुवदेसा।

पम्मलेस्साए उव्वदे—एको मिच्छादिद्वी चट्टमाणतेउलेस्सिओ सगद्धाए खीणाए

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपमप्रमाण सौघर्म-ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टिकी आयुस्थिति होती है। इस प्रकारका आचार्यपरम्परगत उपदेश है अथवा अन्य उपदेशसे कुछ कम बढ़ाई सागरोपमकाल सौघर्म-ईशानकल्पवासी मिथ्यादृष्टि देवके भी संभव है, अन्यथा, भवनवासियोंसे लगाकर सबस्वकारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवके दो प्रकारकी आयुस्थितिकी प्ररूपणा हो नहीं सकती थी।

अब असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट तेजोलेस्याके कालको कहते हैं—एक असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव सौघर्म देशान देवोंमें दो सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम सागरोपमके अर्ध भागप्रमाण आयुको बांध करके एक अन्तर्मुहूर्त तेजोलेस्यावाला हो करके और क्रमसे मर कर सौघर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ। पुनः अपनी आयुस्थिति तक वहां रह कर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त तक उसी ही लेस्यासे परिणत हो, पबलेस्या या कापोतेलेस्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम पूरा बढ़ाई सागरोपमकाल प्राप्त हो गया।

शंका—अन्तर्मुहूर्तसे कम बढ़ाई सागरोपमकालसे अधिक काल क्यों नहीं होता है ? समाधान—नहीं, क्योंकि, बढ़ाई सागरोपमकालके आवि और अन्तर्मुहूर्त लब्ध होनेवाले अन्तर्मुहूर्तसे अर्ध सागरोपम कालमें पतित अन्तर्मुहूर्तके बहुत्वका उपवेश पाया जाता है।

अब पबलेस्याके उत्कृष्ट कालको कहते हैं—वर्धमान तेजोलेस्यावाला कोई एक

पम्मलेस्सिओ जादो । दीहमंतोसुहुचद्धमाच्छिय सदार-सहस्सरकरूपवासियदेवेसु उववणो । तथ अट्टारह सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोणम्महियाणि जीविदूण चुदस्स णट्ठा पम्मलेस्सा । असंजदसम्मदिद्विस्स उच्चदे-एको संजदो पम्मलेस्साए अंतोसुहुच-मच्छिदो सदार-सहस्सरदेवेसु अट्टारस सागरोवमाणि अंतोसुहुचूणमद्धसागरं च आउअं करिय कमेण कालं करिय सहस्सरदेवेसु उववक्षिय समद्धिमच्छिय चुदो मणुसो जादो । तथ वि अंतोसुहुचं पम्मलेस्साए अच्छिय सुक्खेस्सं तेउलेस्सं वा गदो । लद्धाणि अंतोसुहुचूणद्धसागरोवमेण अहियाणि अट्टारस सागरोवमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओधं ॥ २९४ ॥

कुदो ? गणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्ज गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तेउ-पम्मलेस्सियसासणणं तवो भेदाभावा ।

सम्माभिच्छादिट्ठी ओधं ॥ २९५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव अपने कालके क्षीण होने पर पम्बलेइयावाला हो गया । और वहां उस लेइयामें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके शतार-सहस्रारकरणवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर पत्थोपमके असंख्यातवें मागसे अधिक अठारह सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ, तब उसके पम्बलेइया नष्ट हो गई ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके पम्बलेइयाका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक संयत पम्बलेइयामें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा और शतार-सहस्रार देवोंमें अठारह सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमकी आयुको बांध कर, क्रमसे मरण कर, सहस्रारकरणके देवोंमें उत्पन्न होकर और अपनी स्थितिप्रमाण वहां रह करके च्युत हो मनुष्य होगया । वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक पम्बलेइयामें रह करके शुक्ललेइयाको या तेजोलेइयाको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम कालसे अधिक अठारह सागरोपम प्राप्त हुए ।

तेजोलेइया और पम्बलेइयावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अपनी राक्षिसे असंख्यातगुणा पत्थोपमका असंख्यातवां भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलिप्रमाण काल है । इस रूपसे तेजोलेइया और पम्बलेइयावाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघप्रकरणसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनों लेइयावाले सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९५ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्भिथ्यादृष्टयोः सामान्योक्त कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? गणजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुचं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण अंतोसुहुचमिच्चेएहि तेउ-पम्मलेस्सिय-सम्माभिच्छादिट्ठीणं तवो भेदाभावा ।

संजदासंजद-पमत-अपमतसंजदा केवचिरं कालादो होति, गणणा जीवं पडुच्च संवद्धां ॥ २९६ ॥

सुगममेदं सुतं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २९७ ॥

तथ ताव संजदासंजदाणमेगसमयपरूवणा कीरदे-एक्को मिच्छादिट्ठी असंजद-मम्मादिट्ठी वा वडुमाणतेउलेस्सिओ एगसमओ तेउलेस्साए अत्थि त्ति संजमासंजमं पडि-वणो । एगसमयं संजमासंजमं तेउलेस्साए सह दिट्ठं । विदियसमए संजदासंजदो पम्म-लेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावची (१) । अथवा एक्को संजदासंजदो हायमाणपम्म-लेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए खीणाए एगसमयं संजमासंजमगुणो अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ जादो । तेउलेस्साए सह संजमासंजमो एगसमयं दिट्ठो । विदियसमए तीए लेस्साए सह

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्थोपमका असंख्यातवां भागप्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकारसे तेजोलेइया और पम्बलेइयावाले सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीवोंका ओघप्रकरणसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनों लेइयावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २९७ ॥

इन्मेंसे पहले संयतासंयतोंके लेइयासम्यन्धी एक समयकी प्रकरण की जाती है— वर्धमान तेजोलेइयावाला एक मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तेजोलेइयाके कालमें एक समय अवशेष रह जाते पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । एक समय संयमासंयम तेजो-लेइयाके साथ दृष्टिगोचर हुआ । दूसरे समय वह संयतासंयत पम्बलेइयाको प्राप्त हो गया । यह लेइयापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्रकरण है (१) । अथवा, हायमाण पम्बलेइयावाला एक संयतासंयत पम्बलेइयाके कालके क्षीण हो जाते पर एक समय संयमासंयम गुणस्थानका अवशेष रहने पर तेजोलेइयावाला हो गया । तेजोलेइयाके साथ संयमासंयम एक समय दृष्ट

१ प्रतिपु ' अंतोसुहुचो मुहुच-' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' मिच्छादिट्ठी' इति पाठ ।

३ संयतासंयतपमताप्रमत्तानां नानाबोधिलेख्या सर्वे कालः । स. सि. १, ८.

४ एकजीव प्रति जघन्यतैकः समयः । स. सि. १, ८.

अमंजदसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी मिच्छादिद्वी वा जादो । एसा गुणपरावची (२) । मरण-वाधादेहि एगसमओ ण लब्भदि ।

संपदि पम्मलेस्साए उच्चदे । तं जघा- एगो मिच्छादिद्वी असंजद-सम्मादिद्वी वा बहुमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि ति संजमासंजमं पडिवणो । विदियसमए संजमासंजमेण सह सुक्कलेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावची (३) । अघवा बहुमाणतेउलेस्सिओ संजदासंजदो तेउलेस्सद्वाए खएण पम्मलेस्सिओ जादो । एगसमयं पम्मलेस्साए सह संजमासंजमं दिदं, विदियसमए अप्प-मचो जादो । एसा गुणपरावची । अघवा संजदासंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिओ सुक्क-लेस्सद्वाखएण पम्मलेस्सिओ जादो । विदियसमए पम्मलेस्सिओ चेव, किंतु असंजद-सम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी मिच्छादिद्वी वा जादो । एसा गुणपरा-वची (४) । मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विगुणद्वानेसु तेउ-पम्मलेस्साणं लेस्सा-गुणपरावचीओ अस्सिदूण एगसमओ किण्ण उच्चदे ? ण, तत्थ एगसमयसंभवाभावा । बहुमाणतेउलेस्सदो

हुआ । द्वितीय समयमें उसी लेश्याके साथ असंयतसम्यग्दृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या सातादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा हुई (२) । यद्वा पर मरण और व्याघातके द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है ।

अब पञ्चलेश्याके एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । जैसे—वर्धमान पञ्चलेश्यावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, पञ्चलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । द्वितीय समयमें संयमासंयमके साथ ही शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ । यह लेश्यापरावर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (३) । अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई संयतासंयत तेजोलेश्याके कालके क्षय हो जानेसे पञ्चलेश्यावाला हो गया । एक समय पञ्चलेश्याके साथ संयमासंयम दृष्टिगोचर हुआ । और वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई । अथवा, हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई संयतासंयत जीव शुक्ललेश्याके कालके पूरे हो जाने पर पञ्चलेश्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह पञ्चलेश्यावाला ही है, किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया । यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई (४) ।

शुंका—मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानोंमें तेज और पञ्च-लेश्यावाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तनोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं करी ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमें एक समयकी प्ररूपणाका होना समब नहीं है ।

पम्मलेस्सं गंतूण विदियसमए उवरिमगुणद्वानं गच्छंताणं मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणं पम्मलेस्साए एगसमओ लब्भदि । हायमाणतेउलेस्साए एगसमओ अत्थि चि मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विगुणद्वाने पडिवण्णानं तेउलेस्साए एगसमओ लब्भदि । एवं काउ-णील-लेस्साणं पि एगसमओ लब्भदि चि उत्ते ण लब्भदि, जदो मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मा-दिद्वीण एगसमयं लेस्साए परिणमिय विदियसमए अण्णगुणं लेस्संतरं वा ण गच्छंति । एदाणि गुणद्वानाणि पडिवज्जंता वि लेस्साए एगो समओ अत्थि चि ण पडिवज्जंति । कुदो ? समावदो । हेद्विमगुणद्वानाणि लेस्साए एगो समओ अत्थि चि जहा संजमासंजमगुण-द्वानं पडिवज्जंति, पमत्तसंजदो तहा संजमासंजमगुणद्वानं किण्ण पडिवज्जदे ? सहावदो । अघवा णत्थि एत्थ पडिसेदो ।

पमत्तस्स उच्चदे—एको पमचो हायमाण-पम्मलेस्साए अञ्छिदो । तस्से अद्वा-खएण पमत्तद्वाए एगो समओ अत्थि चि तेउलेस्सिओ जादो एगसमओ दिदो । विदिय-

वर्धमान तेजोलेश्यासे पञ्चलेश्याको जाकर द्वितीय समयमें उपरिम गुणस्थानोंको जाने वाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पञ्चलेश्याके साथ एक समय पाया जाता है । इसी प्रकार हायमान तेजोलेश्यामें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंके तेजोलेश्याके साथ एक समय पाया जाता है ।

शुंका—तेज और पञ्चलेश्याके समान ही कापोत और नीललेश्याओंका भी एक समय पाया जाता है, (फिर उसे क्यों नहीं कहा ?)

समाधान—कापोत और नीललेश्याके साथ एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें विवक्षित लेश्याके द्वारा परिणत होकर द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानको, अथवा अन्य लेश्याको नहीं जाते हैं । तथा इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाले भी जीव विवक्षित धारण की गई लेश्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर उन उन गुणस्थानोंको नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है ।

शुंका—अपनी लेश्यामें एक समय रहने पर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयम-संयम गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे गमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थान को क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है । अथवा, इस विषयमें कोई प्रतिषेध नहीं है ।

अथ गमत्तसंयतका काल कहते हैं—एक गमत्तसंयत हायमान पञ्चलेश्यामें विद्यमान था । उस लेश्याके कालक्षयसे तथा गमत्तसंयत गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह तेजोलेश्यावाला हो गया । एक समय वह तेजोलेश्याके साथ गमत्तसंयतके

समए तेउलेस्सा चैव, किंतु संजमांसंजमें असंजमेण सह सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासण-सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदो। एसा गुणपरावची (१)। अथवा, अप्पमत्तो तेउलेस्साए अच्छिदो। तिससे अप्पमत्तद्वाए खएण पमत्तो जादो। पमत्तो तेउलेस्साए सह एगसमयं दिट्ठो। विदियसमए मदो देवो जादो। एवं मरणेण (२)। पमत्तसंजदो तेउलेस्साए परिणमिय विदियसमए जेण लेस्संतरं ण गच्छदि, पमत्तगुणं पडिवज्जमाणो वि तेउलेस्सद्वाए एगसमओ अत्थि चि ण पडिवज्जदि, तेण लेस्सापरावची गत्थि। अप्पमत्तो हायमाण-पम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि चि पमत्तो जादो। विदियसमए वि पमत्तो चैव, किंतु तेउलेस्सिओ जादो। एसा लेस्सापरावची (३)। अथवा पमत्तो तेउलेस्साए अच्छिदो। तिससे अद्वाक्खएण पम्मलेस्सा आगदा। पम्मलेस्साए सह पमत्तो एगसमयं दिट्ठो। विदियसमए पम्मलेस्सिओ चैव, किंतु अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावची। पम्मलेस्सद्वाए अच्छिदो पमत्तो तिससे अद्वाक्खएण तेउलेस्साए परिणमिय विदियसमए अप्पमत्तो किण्ण कीरदे ? ण, हायमाणलेस्साए अप्पमत्तगुणगहणाभावा। मिच्छत्तादिगुणं

रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें तेजोलेश्या ही रही, किन्तु वह संयमा-संयमको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा सासादन-गुणस्थानको, अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होगया। यह एक समयरूप गुणस्थान-परिवर्तन है (१)। अथवा, कोई एक अप्रमत्तसंयत तेजोलेश्यामें वर्तमान था। उसी लेश्यामें रहते हुए ही अप्रमत्तगुणस्थानके कालक्षयसे वह प्रमत्तसंयत हो गया। वह प्रमत्तसंयत तेजोलेश्याके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मरा और देव होगया। इस प्रकार मरणकी अपेक्षा एक समय उपलब्ध हुआ (२)। प्रमत्तसंयत तेजोलेश्याके साथ परिणमित होकर द्वितीय समयमें चूंकि, दूसरी अन्य लेश्याको नहीं प्राप्त होता है, और प्रमत्त-संयत गुणस्थानको प्राप्त होता हुआ भी तेजोलेश्याके कालमें एक समय शेष रहता है, इसी लिए वह लेश्यात्तरको नहीं प्राप्त होता है। इस कारणसे यहां पर लेश्याका परिवर्तन नहीं है। हायमान पञ्चलेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, पञ्चलेश्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समयमें भी वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु तेजोलेश्या-वाला होगया। यह लेश्यासम्बन्धी परिवर्तन है (३)। अथवा, कोई प्रमत्तसंयत तेजोलेश्यामें विद्यमान था। उसके उस तेजोलेश्याके कालक्षयसे पञ्चलेश्या आगई। पञ्चलेश्याके साथ वह प्रमत्तसंयत एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें वह पञ्चलेश्यावाला ही रहा, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन हुआ।

शंका—पञ्चलेश्याके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यासे परिणमित होकर द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं हो जाता ?

किण्ण पडिवज्जदि ? ण, तेउलेस्साए पडिय अंतोमुहुत्तमणच्छिय हेड्डिमगुणगहणाभावा। अथवा अप्पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो अप्पमत्तद्वाखएण पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो।

अप्पमत्तसंजदस्स उच्चदे- मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्त-संजदो वा बहुमाणतेउलेस्सिओ तेउलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि चि अप्पमत्तो जादो। तेउलेस्साए सह एगसमयं अप्पमत्तो दिट्ठो। विदियसमए पम्मलेस्सिओ जादो। एसा लेस्सापरावची (१)। अथवा पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिओ एगसमयमप्पमत्तद्वा अत्थि चि पम्मलेस्सद्वाए खएण तेउलेस्सिओ जादो। विदियसमए पमत्तगुणं पडिवण्णो। एसा गुणपरा-वची (२)। अथवा पमत्तो बहुमाणतेउलेस्सिओ अप्पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो। एवं मरणेण (३)। पमत्तो बहुमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्वाए एगसमओ अत्थि

समाधान—नहीं, क्योंकि, हीयमान लेश्याके साथ अप्रमत्तगुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—तो उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तेजोलेश्यामें, गिर करके अन्तर्मुहूर्त रहे बिना नीचेके गुणस्थानोंके ग्रहण करनेका अभाव है।

अथवा, कोई अप्रमत्तसंयत पञ्चलेश्यामें विद्यमान था। वह अप्रमत्तसंयतगुणस्थानके कालक्षयसे प्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयसम्बन्धी लेश्यादिपरिवर्तनको कहते हैं—वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव, तेजोलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह तेजोलेश्याके साथ एक समय अप्रमत्तसंयतरूपसे दृष्टिगोचर हुआ, और द्वितीय समयमें पञ्चलेश्यावाला हो गया। यह लेश्यापरिवर्तन है (१)। अथवा, हायमान पञ्चलेश्या-वाला कोई प्रमत्तसंयत, एक समय अप्रमत्तसंयत कालके अवशेष रहने पर पञ्चलेश्याके काल क्षयसे तेजोलेश्यावाला हो गया, और द्वितीय समयमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तन है (२)। अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मरणसे एक समय लब्ध हुआ (३)। कोई वर्धमान पञ्चलेश्यावाला प्रमत्तसंयत, पञ्चलेश्याके

ति अप्पमत्तो जादो । विदियसमए अप्पमत्तो चैव, किंतु सुक्कलेस्सं गदो । एसा लेस्सा-
परावत्ती (१) । अथवा अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाएण पम्मलेस्सिगो
जादो । विदियसमए पम्मलेस्साए सह पमत्तगुणं पडिक्खणो । एसा गुणपरावत्ती (२) ।
अथवा पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि चि
अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो । एवं मरणेण (३) ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ २९८ ॥

तं जथा- संजदासंजदो पमत्तसंजदो अप्पमत्तसंजदो वा तेउ-पम्मलेस्सासु अप्पिद-
लेस्साए परिणमिय सञ्जुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिद्य अणप्पिदलेस्सं गदो ।

**सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं
पडुच्च सन्वद्धां ॥ २९९ ॥**

कुदो ? तिसु वि कालेसु सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वीणं विरहाभावा ।

कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया । वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत
ही रहा, किन्तु शुक्लेश्याको प्राप्त हो गया । इस प्रकार यह लेश्यापरिवर्तन हुआ (१) । अथवा,
हायमाण शुक्लेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत जीव शुक्लेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्यावाला हो
गया । द्वितीय समयमें पद्मलेश्याके साथ प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थान-
परिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (२) ।

अथवा, कोई प्रमत्तसंयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था । वह प्रमत्तकालके क्षीण हो
जाने पर, तथा एक समयप्रमाण जीवनके शेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया, दूसरे समयमें
मरा और देवत्वको प्राप्त हो गया । यह मरणके साथ एक समयकी प्ररूपणा हुई (३) ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोका
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९८ ॥

जैसे— कोई संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत, अथवा अप्रमत्तसंयत जीव तेजो-
लेश्या और पद्मलेश्याओंमेंसे विवक्षित किसी एक लेश्यामें परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवाक्षित लेश्याको प्राप्त हो गया ।

शुक्लेश्यामें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
सर्व काल होते हैं ॥ २९९ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

१ उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८

२ शुक्लेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

तं जथा— एको मिच्छादिद्वी चट्टमाणपम्मलेस्सिओ सगद्धाए खएण सुक्कलेस्सिओ
जादो । सञ्चजहणमतोमुहुत्तमच्छिद्य पम्मलेस्सं गदो, अणलेस्सागमणे संभवाभावा ।

उक्कस्सेण एकतीसं सागरोवमाणि सादिरयाणिं ॥ ३०१ ॥

तं जथा— एकको दन्गलिगी दन्वसंजममाहप्पेण उवरिमगवजेसु आउअं बंधिय
पम्मलेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्धाखएण सुक्कलेस्सा आगदा । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिद्य
कालं करिय उवरिमगेवेजेसु उववजिय सगद्धिदि गमिय जुदो तक्खणे चैव गट्टलेस्सिओ
जादो । एवं पटमिच्छंतोमुहुत्तेण सादिरगएक्कतीस सागरोवममेचो चि मिच्छत्तसहिद-
सुक्कलेस्सुक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ ३०२ ॥

सुक्कलेस्सेत्ति अणुवट्टे । कुदो ओघत्तं ? गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगो

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

जैसे— वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपनी लेश्याका काल
समाप्त हो जानेसे शुक्लेश्यावाला हो गया । वह उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह
करके पद्मलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, उसका पद्मलेश्याके सिवाय अन्य किसी लेश्यामें
जाना संभव ही नहीं है ।

शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागरोपम
है ॥ ३०१ ॥

जैसे— एक द्रव्यलिगी साधु द्रव्यसंयमके माहात्म्यसे उपरिम प्रैवेयकोंमें आयुको
बांधकर पद्मलेश्यामें विद्यमान था । उसके उस लेश्याके कालक्षयसे शुक्लेश्या आगई । उसमें
अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, कालको करके, उपरिम प्रैवेयकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थितिकी
धिताकर च्युत हुआ और उसी क्षणमें ही नष्टलेश्यावाला होगया । इस प्रकार प्रथम अन्त-
र्मुहूर्तके साथ साधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण मिथ्यात्वसहित शुक्लेश्याका उत्कृष्ट काल
होता है ।

शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०२ ॥

यथा पर 'शुक्लेश्या' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शुंका—सूत्रक ओघपना कैसे संभव है ?

समाधान—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल

१ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कृष्टेणैकविंशसागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिसंयोगेवत्पन्तानां ५५ सामान्योक्तः काल । स. सि. १, ८.

समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदिहि तदो भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३०३ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि सह ओघमम्मामिच्छादिट्ठीहि तो भेदाभावा ।

असंजदस्समादिट्ठी ओघं ॥ ३०४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि, इच्चेदेहि विसेसाभावा । णवरि पज्जवट्टियणए अवलं- बिज्जमाणे अत्थि विसेसो एत्थ । कुदो ? पच्छिममणुमसहगदअंतोमुहुत्तेण सादिरेगत्तुवलंभा । ओघमिदं देहणपुव्वकोडीए सादिरेगत्तदंसाणादो ।

संजदासंजदा पमत-अपमतसंजदा केवचिरं कालादो होति,

णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

पल्लोपमका असंख्यातवा भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण है । इस प्रकार ओघसे इसके कालमें कोई भेद नहीं होनेसे ओघपना बन जाता है ।

शुक्कलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०३ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघ-सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे कोई भेद नहीं है ।

शुक्कलेश्यावाले असंयतसम्पदृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्त-मुहूर्त है, उत्कृष्ट काल साधिक तैत्तलिस सागरोपम है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है । किन्तु केवल पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर यहाँ विशेषता है । यह इस प्रकार है— पिछले मनुष्यभवमें होनेवाली शुक्कलेश्याके एक अन्तर्मुहूर्तके साथ उक्त कालकी सातिरेकता पाई जाती है । किन्तु ओघमें देशोन पूर्वकोटीके साथ उक्त कालकी सातिरेकता देखी जाती है ।

शुक्कलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१-X-X सप्तासयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्व-कालः । स. वि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३०६ ॥

तं जधा— एक्को पमतसंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिगो एगो समया सुक्कलेस्साए अत्थि चि संजदासंजदो जादो । विदियसमए संजदासंजदो चैव, किंतु पम्मलेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । सेसगुणद्वानेहि तो संजमासंजमं पडिवज्जताणं सुक्कलेस्साए एगसमओ ण लब्भदि । कुदो ? वड्डमाणसुक्कलेस्साए संजमासंजमं पडिवण्णाणं विदियसमए पम्मलेस्साए गमणाभावा । अधवा संजदासंजदो वड्डमाणपम्मलेस्सिगो तिस्से अद्दावएण संजमा-संजमद्वाए एगो समओ अत्थि चि सुक्कलेस्सिओ जादो । विदियसमए सुक्कलेस्सिओ चैव, किंतु अप्पमतभावणे संजमं पडिवणो । एसा गुणपरावत्ती (२) ।

पमतस्स उच्चदे— एक्को अप्पमतो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्वाए एगो समओ अत्थि चि पमतो जादो । विदियसमए पमतो चैव, किंतु लेस्सा परावत्तिदा । एसा लेस्सापरावत्ती (१) । अधवा एक्को पमतो वड्डमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्वाए खएण सुक्कलेस्सिगो जादो । विदियसमए (सुक्कलेस्सिगो) चैव, किंतु अप्पमतो जादो ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३०६ ॥

जैसे— हायमान शुक्कलेश्यावाला एक प्रमत्तसंयत जीव, शुक्कलेश्याके कालमें एक समय शेष रहने पर संयतासंयत हुआ । द्वितीय समयमें वह संयतासंयत ही है, किन्तु पद्मलेश्याको प्राप्त हो गया । यह लेश्याका एक समयसम्बन्धी परिवर्तन है (१) । शेष गुण-स्थानोंसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके शुक्कलेश्याका एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वर्धमान शुक्कलेश्याके साथ संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके द्वितीय समयमें पद्मलेश्यामें गमनका अभाव है । अथवा कोई संयतासंयत वर्धमान पद्मलेश्यावाला है । उस लेश्याके कालक्षयसे और संयमासंयमके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह शुक्क-लेश्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह शुक्कलेश्यावाला ही है, किन्तु अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (२) ।

अब प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— हायमान शुक्कलेश्यावाला कोई एक अप्रमत्तसंयत शुक्कलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया । द्वितीय समयमें वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु लेश्या परिवर्तित हो गई । यह लेश्यापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (१) । अथवा, वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, पद्मलेश्याके कालक्षयसे शुक्कलेश्यावाला हो गया । द्वितीय समयमें वह (शुक्कलेश्यावाला) ही

१ एकजीव प्रति जघन्यनैक समयः । स. वि. १, ८.

एसा गुणपरावची (२) । अथवा अप्रमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्वाए सह पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो (३) ।

अप्रमत्तस्स उच्चदे- एको पमत्तो सुक्कलेस्साए अच्छिदो, सुक्कलेस्साए सह अप्रमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो (१) । अथवा अपुव्वकरणो ओदरंतो सुक्कलेस्सिगो अप्रमत्तो होदण मदो देवो जादो (२) । एत्थ एगसमयमंगपरुवणगाहा-

दो दो य तिण्णि तेज तिण्णि तिया होति पम्मलेस्साए ।

दो तिग दुग च समया वोद्धवा सुक्कलेस्साए ॥ ४१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०७ ॥

कुदो ? सुक्कलेस्साए परिणमिय उक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदण-सुक्कस्सकालुवलंभा ।

है, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया । यह गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तन है (२) । अथवा, हायमान शुक्कलेस्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, शुक्कलेस्याके ही कालके साथ प्रमत्तसंयत हो गया । पुनः दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (३) ।

अप्रमत्तसंयतके एक समयको प्ररूपणा करते हैं—शुक्कलेस्यामें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव शुक्कलेस्याके साथ ही अप्रमत्तसंयत हो गया । वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (१) । अथवा, शुक्कलेस्यावाला श्रेणीसे उतरता हुआ कोई अपूर्वकरणसंयत अप्रमत्तसंयत होकर मरा और देव हो गया (२) । यहां पर एक समयके मंगोंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है—

तेजोलेस्याके दो, दो और तीन समयमंग होते हैं । पम्बलेस्याके तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समयमंग होते हैं । तथा, शुक्कलेस्याके दो, तीन और दो समयमंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

विशेषार्थ—ऊपर जो एकसमयसम्बन्धी अनेक विकल्प बताये गये हैं, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तेजोलेस्यासम्बन्धी देशसंयतके दो मंग, प्रमत्तसंयतके दो मंग, और अप्रमत्तसंयतके तीन मंग, इस प्रकार कुल (२+२+३=७) सात मंग होते हैं । पम्बलेस्यासम्बन्धी देशसंयतके तीन मंग, प्रमत्तसंयतके तीन मंग और अप्रमत्तसंयतके तीन मंग, इस प्रकार कुल (३+३+३=९) नौ मंग होते हैं । शुक्कलेस्यासम्बन्धी देशसंयतके दो मंग, प्रमत्तसंयतके तीन मंग और अप्रमत्तसंयतके दो मंग, इस प्रकार कुल (२+३+२=७) सात मंग जानना चाहिये ।

उक्त तीनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०७ ॥

क्योंकि, शुक्कलेस्यासे परिणत होकर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह कर पम्बलेस्याको प्राप्त हुए जीवोंके उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

१ उत्कर्षणान्तर्मुहूर्त । स ति १, ८.

चटुण्हमुवसमा चटुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ॥ ३०८ ॥
कुदो ? एदेसिमोघे वि सुक्कलेस्सं मोत्तुण अण्णलेस्साभावा ।

एव लेस्सामगणा समत्ता ।

**भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति,
णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०९ ॥**

सुगममेदं सुत्तं ।

**एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज-
वसिदो ॥ ३१० ॥**

तं जहा- भवियत्तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदिमिदि । पुव्वमलद्धसम्मत्तस्स अणादिसपज्जवसिदं । सम्मत्तं लहिज्जण मिच्छत्तं गदस्स सादिसपज्जवसिदं । अणादितादो अकट्ठिमस्स ण विणासो चे ण, अण्णणस्स कम्मवंधस्स य अणादिसस वि

शुक्कलेस्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिनेत्रीका काल ओघके समान है ॥ ३०८ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानवालोंके ओघमें भी शुक्कलेस्याको छोड़कर अन्य लेस्याका अभाव है ।

इस प्रकार लेस्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है ॥ ३१० ॥

जैसे—भव्यत्व दो प्रकारका है, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । पूर्वमें नहीं प्राप्त हुआ है सम्यक्त्व जिसको, ऐसे जीवके अनादि-सान्त भव्यत्व होता है । सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वको गये हुए जीवके सादि-सान्त भव्यत्व होता है ।

शंका—जो वस्तु अनादि है, वह अकृत्रिम होती है और उसका विनाश नहीं होता । (इसलिए मिथ्यात्वको अनादि होनेसे अकृत्रिमता सिद्ध है, फिर उसका विनाश नहीं होता चाहिये ?)

समाधान—नहीं, क्योंकि, अज्ञानका और कर्मवन्धका, उनके अनादि होते हुए भी,

१ मन्वाजुवादेन मन्वेणु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया धर्मः काल । स. ति १, ८

२ एकजीवपेक्षया दो भगो, अनादि रूपवैधान, सादि सपर्यवसानम् । स ति १, ८

विणामुलंभा । अकारणचादो ण तस्स विणासो चे ण, अणादिबंधनचक्रकम्मकारणचादो । सिद्धाणं मिच्छतांसंजमकमायजोगकम्मामवविहिणायं ण संसारे पदणमत्थि, तदो ण सादि भवियत्तं । ण पडियणसम्मत्तस्स वि सादि भवियत्तं होदि, पुवं पि तत्थ भवि-यत्तुवलंभा ? एत्थ परिहारो बुच्चदे-ण संसारे णिवदिदसिद्धे अस्सिदूण भवियत्तं सादि उच्चदे । ण च ते संसारे णिवदंति, णट्ठासवचादो । किंतु गहिदसम्मत्तजीवस्स भवियत्तं सादि उच्चदे । ण च तं पुव्वमत्थि, सादिसांतस्सेदस्स पुव्विण्ण अणादि-अणतेण सह एयत्तविरोहा । पुव्विल्लमवि भवियत्तं सांतं चे ण, सत्ति पडुच्च तस्स सांतत्तुवएसा । ण वत्ति पडुच्च सम्मत्तगहणेण विणा अणंतसंसारस्स जीवस्स सांतं भवियत्तं, विरोहा । अणादि-अणतेण वि भवियत्तेण होदव्वं, अणहा भव्वजीवोच्छेदप्पसंगादो ।

अत्थि अणता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।

भावकलकइपउरा णिगोदवास ण मुंचत्ति' ॥ ४२ ॥

विनाश पाया जाता है ।

शंका—कारणरहित वस्तुका विनाश नहीं होता है, इसलिए अज्ञान या कर्मवन्धका भी विनाश नहीं होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अज्ञान या कर्मवन्धका कारण अनादिबन्धनवद्ध कर्म ही है ।

शंका—मिथ्यात्व, असंयम, कयाय और योगके द्वारा कर्मास्त्रवसे विरहित सिद्ध जीवोंका पुनः संसारमें पतन नहीं होता है, इसलिए भव्यत्व सादि-सान्त नहीं है । और न प्रतिपन्नसम्यक्ची जीवके भी भव्यत्व सादि होता है, क्योंकि, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पूर्व भी उस जीवमें भव्यत्व पाया जाता है ?

समाधान—अब उक्त आशंकाका परिहार कहते हैं—संसारमें पुनः लौटकर आने-वाले सिद्ध जीवोंकी अपेक्षासे भव्यत्वकी सादि नहीं कह सकते, क्योंकि, कर्मास्त्रवोंके नष्ट हो जानेसे वे संसारमें पुनः लौटकर नहीं आते । किन्तु ग्रहण किया है सम्यक्त्वको जिसने, ऐसे जीवके भव्यत्वको सादि कहते हैं, तथा, वध पूर्वमें भी नहीं है, क्योंकि, इस सादि-सान्त भव्यत्वके पूर्ववर्ती उस अनादि-अनन्त भव्यत्वके साथ एकत्वका विरोध है ।

शंका—पहलेके भव्यत्वको भी यदि सान्त मान लिया जाय, तो क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षासे उसके सान्तताका उपदेश किया गया है । व्यक्तिकी अपेक्षां सम्यक्त्वग्रहणके विना अनन्त संसारी जीवके सान्त भव्यत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है । अर्थात्, फिर तो भव्यत्वको अनादि-अनन्त भी होना पड़ेगा, अन्यथा, भव्य जीवोंके विच्छेदका प्रसंग प्राप्त होगा । तथा—

ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं कि जिन्होंने त्रसोंकी पर्याय अभी तक नहीं पाई है, और जो इषित भावोंकी अति-प्रचुरताके कारण कभी भी तिगोवके वासको नहीं छोड़ते हैं ॥ ४२ ॥

१ गो. जी. १९७

एयणिगोदसरिरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।

सिद्धेहि अणतगुणा सव्वेण वितीदकालेण' ॥ ४३ ॥

इच्छासुचंदसंगादो य । ण च मोक्खमगच्छंताणं भवियत्तं णत्थि चि वोत्तुं जुत्तं, मोक्खमगमसच्चिस्सभावं पडुच्च तेस्सि भवियत्तुव्वेसा' (३) । ण च सत्तिमंताणं सव्वेस्सि पि वचीए होदव्वमिदि णियमो अत्थि सव्वस्स वि हेमपासाणस्स हेमपज्जाएण परिणमण-प्पसंगा' । ण च एवं, अणुवलंभा । णिव्वुहं गच्छमाणां वि ण वोच्छिज्जदि भव्वरासि चि कधमेदं णव्वदे ? तस्साणंतियादो । सो रासी अणंतो उच्चइ, जो संते वि वए ण णिट्ठादि, अणहा अणंतववएसो अणत्थओ होज्ज । तम्हा तिविहेण भवियत्तेण होदव्वमिदि । ण च सुत्तेण सह विरोहो, सत्ति पडुच्च सुने अणादिसांतत्तुवएसा ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिदेसो' ॥ ३११ ॥

एक निगोदशरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीव सिद्धोंसे तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे अनन्तगुणे देखे गये हैं ॥ ४३ ॥

इत्यादि सूत्रोंके देखे जानेसे भी भव्य जीवोंके विच्छेदका अभाव सिद्ध है । तथा, मोक्षको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना नहीं होता है, ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, मोक्ष-गमनकी शक्तिके सद्भावकी अपेक्षा उनके भव्यत्वके पाये जानेका उपदेश है । तथा यह भी कोई नियम नहीं है कि भव्यत्वकी शक्ति रखनेवाले सभी जीवोंके उसकी व्यक्तिकी होना ही चाहिए, अन्यथा, सभी स्वर्गपापणके स्वर्णपर्यायसे परिणमनका प्रसंग प्राप्त होगा ? किन्तु इस प्रकारसे देखा नहीं जाता है ।

शंका—निवृत्ति (मोक्ष) को जानेके कारण नित्यव्ययात्मक भव्यराशि विच्छेदको प्राप्त नहीं होगी, यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, वध राशि अनन्त है । और वही राशि अनन्त कही जाती है, जो व्ययके होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है । अन्यथा, फिर उस राशिकी अनन्त संज्ञा अनर्थक हो जायगी । इसलिए भव्यत्व तीन प्रकारका ही होना चाहिए । तथा सूत्रके साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षा सूत्रमें भव्यत्वके अनादि-सान्तताका उपदेश दिया गया है ।

उक्त तीन प्रकारोंमेंसे जो भव्यत्व सादि और सान्त है उसका निर्देश इस प्रकार है ॥ ३११ ॥

१ गो. जी. १९६-

२ अ प्रती 'भवियत्तुव्वमदेसा' इति पाठ ।

३ मव्वत्तणस्स जीणा जे जीवा ते इवति मव्वसिद्धा । ण हु मव्वविगमे णियमा ताण कणजेवकाणमिद ॥

मो. जी. ५५८-

४ तत्र वादिः सपर्यवधानो नचन्यनान्वर्तकः । स. वि. १, ८-

तिष्ठं भवियाणं मज्जे जो सादिसपज्जवसिदो भविओ तस्स इमो णिहेसो परूवणा पणवणा णि उत्तं होदि । अथवा भवियाणं जं मिच्छत्तं तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छादिद्वी तस्स इमो णिहेसो चि वत्तन्वं । पुन्विस्समिह पुण अत्थे जो सादिओ सपज्जवसिदो भविओ तस्स मिच्छत्तस्स इमो णिहेसो परूवेदन्वो ।

जहण्णेण अंतोसुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

तं जघा- सम्मादिद्वी दिट्ठमगो मिच्छत्तं गंतूण सब्जहणमंतोसुहुत्तमच्छिय अणगुणं गदो ।

उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियट्ठं देसूणं ॥ ३१३ ॥

तं जघा- एक्को अणादियमिच्छादिद्वी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णो । तेण सम्मत्तेण उप्पज्जमाणेण अणंतो संसारो छिण्णो संतो अद्धपोगलपरियट्ठमंतो कदो । उवसमसम्मत्तेण जहणमंतोसुहुत्तमच्छिय उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियसेसाए आसाणं गंतूण मिच्छत्तं गेदन्वो । अहवा उवसमसम्मादिद्वी चेव मिच्छत्तं गंतूण अद्धपोगलपरियट्ठं

तीन प्रकारके भव्योंके मध्यमें जो सादिसान्त भव्य है, उसका यह निर्देश है, अर्थात् उसकी यह प्ररूपणा या प्रकापना की जाती है । अथवा, भव्य जीवोंके जो मिथ्यात्व है, वह दो प्रकारका होता है—(१) अनादि-सान्त, और (२) सादि-सान्त । उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्याद्विष्ट है, उसका यह निर्देश है, ऐसा कहना चाहिए । तथा पहलेके अर्थमें जो सादि-सान्त भव्य कहा है, उसके मिथ्यात्वका यह निर्देश है, ऐसा प्ररूपण करना चाहिए ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

जैसे—इष्टमार्गी कोई सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ३१३ ॥

जैसे—कोई एक अनादि मिथ्याद्विष्ट जीव तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्पन्न होनेके साथ ही उस सम्यक्त्वसे अनन्त ससार छिन्न होता हुआ अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालमात्र भर दिया गया । उपशमसम्यक्त्वके साथ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आबलियां शेष रह जाने पर उसी जीवको सासादनगुणस्थानमें ले जाकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिए । अथवा, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही मिथ्यात्वको जाकर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मिथ्यात्वके साथ परिश्रमण करके

देसूणं मिच्छत्तेण परियट्ठिय अंतोसुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं घेत्तूण अणंताणुबंधी विसंजो- इय विस्समिय दंसणमोहं खविय पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अधापमत्तकरणं काऊण अपुन्वो अणियट्ठा सुहुमो खीणो सजोगी अजोगी होदूण सिद्धो जादो । जादं देखणमद- पोगलपरियट्ठं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ ३१४ ॥

कुदो ? सासणादीणं भवियत्तं मोत्तूण अण्णस्सासंभवा ।

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च

सन्वद्धा ॥ ३१५ ॥

कुदो ? अव्ययत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ ३१६ ॥

कुदो ? मिच्छत्तं मोत्तूण तस्स गुणंतरगमणाभावा ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

अन्तर्मुहूर्तमात्र संसारके शेष रहने पर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, पुनः अनन्ताबुद्ध्यो कषायका विसंयोजन करके, पश्चात् विथाय ले, दर्शनमोहको क्षपण कर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके, अघःप्रवृत्तकरण कर, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, संयोगी और अयोगी हो करके सिद्ध होगया । इस प्रकारसे देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल सिद्ध हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तकका काल ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

क्योंकि, सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके भव्यत्वको छोड़कर अन्यका होना, अर्थात् अभव्यपना, असंभव है ।

अभव्यसिद्ध जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंका व्यय ही नहीं होता ।

एक जीवकी अपेक्षा अभव्योंका अनादि और अनन्त काल है ॥ ३१६ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वको छोड़कर अभव्यके अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है । इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्पत्ताणुवादेण सम्मादिह्नि-खह्यसम्मादिह्नीसु असंजदसम्मादिह्नि-
पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ ३१७ ॥

कुदो? सव्वगुणह्णानामप्यणो गाणेगजीवजहणुक्कस्सकाले अस्सिदूण भेदाभावा ।
णवरि खह्यसम्मादिह्नि-संजदासंजदेसु अत्थि भेदो । तं भणिस्सामो । ण चेसो भेदो सुत्तेण
अपरुद्धो, संगहिदविसेससामणमवलंबिय ओघामेदि णिहेसादो । तं जहा- एगो देवो
णेरहओ वा सम्मादिह्नी मणुसेसुवजिय अंतोमुहुत्तम्भहियगम्भादिअहुवस्से गमिय संजमा-
संजमं पडिचज्जिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयं खविय खह्य-
सम्मादिह्नी जादो । चहुहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअहुवस्सेहि ऊणियं पुण्वकोडिसंजमा-
संजममणुपालिय मदो देवो जादो । एत्थेव विसेसो, गत्थि अण्णत्थ कत्थ वि ।

वेदगसम्मादिह्नीसु असंजदसम्मादिह्निपहुडि जाव अपमत्तसंजदा
ति ओधं ॥ ३१८ ॥

कुदो? गाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि सव्वगुणह्णानं ओघगुणह्णान्हितो भेदाभावा ।

सम्यक्त्वमार्गणके अनुवादसे सम्पगृह्णि और क्षायिकसम्यगृह्णियोँ असंयतसम्य-
गृह्णि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकना काल ओघके समान है ॥३१७॥
क्योंकि, चौथे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानोंका अपने अपने नाना
जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका आश्रय करके सम्यगृह्णि जीवोंके साथ
कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि क्षायिकसम्यगृह्णि संयतासंयतोंके कालमें भेद है,
उसे कहते हैं । यह कहा जानेवाला भेद सूत्रके द्वारा न कहा गया हो, ऐसी बात नहीं है,
क्योंकि, संगृहीत हैं सामान्य और विशेष जिसमें, ऐसे द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके
'ओघ' ऐसा पद सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया है । अब उक्त कालका स्पष्टीकरण करते हैं- कोई
एक देव, अथवा नारकी सम्यगृह्णि जीव मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त अधिक, गर्भको
आदि लेकर आठ वर्ष बिताकर, संयमासंयमको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक
अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षण कर, क्षायिकसम्यगृह्णि हो गया । इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे
अधिक आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव
हुआ । यहाँ पर ही इतनी विशेषता है, और कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है ।

वेदकसम्यगृह्णियोँ असंयतसम्यगृह्णिते लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकका
काल ओघके समान है ॥ ३१८ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंकी अपेक्षा
सूत्रोक्त सर्व गुणस्थानोंके कालका ओघ गुणस्थानोंके कालसे कोई भेद नहीं है ।

१ सम्यक्त्वमार्गणके क्षायिकसम्यगृह्णीनाम संयतसम्यगृह्णाययोगकेन स्थानानां सामान्योक्तः काल

ब. वि. १, ८. २ क्षायोपशमिकसम्यगृह्णानां षट्पुर्णं सामान्योक्तः काल । घ. वि. १, ८.

उवसमसम्मादिह्नीसु असंजदसम्मादिह्नी संजदासंजदा केवचिरं
कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१९ ॥

तं जहा- सत्तट्ठ जणा बहुआ वा मिच्छादिह्णिणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा ।
उवसमसम्भत्तद्राणं छावलियसेसाए सव्वे आसाणं गदा । अंतरं गदं ।

उवकस्सेण पल्लिवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२० ॥

तं जहा- सत्तट्ठ जणा बहुआ वा मिच्छादिह्णिणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा । तत्थ
अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं सम्माभिच्छत्तं साणसम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदा । एदस्स
एगा सलागा णिविखाविदव्वा । तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिह्णिणो उवसमसम्मत्तं पडि-
वज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय चहुण्हं गुणह्णानमण्णदरं गदा । विदियसलागा लद्धा
होदि । एवं तिणि चचारि आदिं गंतूण पल्लिवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ
लम्भंति । तं कधं णव्वदे? आहरियपरं परागदुव्वेसादो । एदाहि सलागाहि उवसमसम्मत्तं
गुणिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो अणंतरकालो होदि ।

उपशमसम्यगृह्णि जीवोंमें असंयतसम्यगृह्णि और संयतासंयत जीव कितने काल
तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ३१९ ॥

जैसे— सात आठ जन, या बहुतसे मिथ्याहृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए,
और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवर्त्तप्रमाण कालके अवशिष्ट रहने पर सभीके सभी
सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गये और पुनः अन्तरको प्राप्त हुए ।

उपशमसम्यगृह्णि असंयत और संयतासंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट
काल पल्लोपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ३२० ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्याहृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए।
उसमें अन्तर्मुहूर्त रह करके वे सब वेदकसम्यक्त्वको, या सम्यग्मिथ्यात्वको, या सासादन-
सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इसकी एक शलाका स्थापित करना चाहिए ।
उसी समयमें ही अन्य भी मिथ्याहृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उसमें अन्तर्मुहूर्त
रह कर, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमें किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए । यह दूसरी शलाका
प्राप्त हुई । इस प्रकारसे तीन चारको आदि लेकर पल्लोपमके असंख्यातवें भागमात्र शलाकाएं
प्राप्त होती हैं ।

शुका—यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यक्त्वकी शलाकाएं पल्लोपमके
असंख्यातवें भागमात्र होती हैं?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे यह जाना जाता है ।

इन लब्ध शलाकाओंसे उपशमसम्यक्त्वके कालको गुणा करने पर अपनी राशिसे
भसंख्यातगुणा अन्तररहित उपशमसम्यक्त्वका काल होता है ।

१ औपकामिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यगृह्णितसंयतासंयतयोर्नानाजीवपेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त । घ. वि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्लोपमासंख्येयमात्र । घ. वि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

तं जहा- एको मिच्छादिद्वी उवममम्मच्चं पडिवणो, अवरो देससंजमेण सह तं चेन पडिवणो, मच्चजहणमद्वमच्छिय उवसमसम्मच्चदाए छात्रलियावेसेआए आसाणं गदा । एमो दोणं पि जहणकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

तं जहा- दो मिच्छादिद्विणो । तस्य एगो उवसममम्मच्चं, अवरो देससंजमं पडिवणो । सच्चुक्कम्ममतोमुहुत्तद्वमच्छिय दोणि वि तिण्हमणदरं गदा ।

पमत्तंसंजदपहुडि जाव उवसंतकसायीदरागछुदुमत्था ति केव-
चिरं कालादो होति, णाणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

तं जहा- पमत्त-अपमत्ताणं ताव उचदे । मत्तद्वज्जा बहुआ वा उवसमसम्मदिद्विणो उवसमसेदीदो ओदरिय पमत्तापमत्ता होदण एगसमयमच्छिय कालं करिय देवा जादा । अपुवकरणस्स ओदरमाणेहि, अणियद्वि-सुहुमसांपराइयाणं चढणोयरणकिरियावावेदिहि, उवसंतस्स चहंतोहि अपिदगुणपडिवणविदियसमए मेदेहि जीवेहि एगसमयो वत्तव्वो ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

जैसे- एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दूसरा देशसयमेक साथ उसी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दोनों ही जीव सर्वजघन्य काल अपने अपने गुण-स्थानोंमें रह करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन-गुणस्थानको प्राप्त हुए । यह दोनों गुणस्थानोंका जघन्य काल है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

जैसे- दो मिथ्यादृष्टि जीव हैं । उनमेंसे एक उपशमसम्यक्त्वको और दूसरा देशसंयमको प्राप्त हुआ । वहा वे दोनों ही जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके सम्य-निमध्यात्वं, मिथ्यात्वं, अथवा वेदकृतसम्यक्त्व, इन तीनोंमेंसे किसी एक को प्राप्त हुए ।

प्रमत्तमंयत्से लेकर उपशान्तकपायीवितरागलवस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ३२३ ॥

यह इस प्रकार है- उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत्तोंकी एक समयकी प्ररूपणा करते हैं- सात आठ जन, अथवा यगुत्से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीसे उतर कर प्रमत्तमंयत और अप्रमत्तसंयत होकर, वहाँ पर एक समय रह करके, मरण कर, देन हुए । अयुर्वकरण गुणस्थानमालेके उतरते हुए, अभिवृत्तिकरण और सुक्ष्मसांप्रसारिक गुणस्थानवालोंके आरोहण और अवतरण, इन दोनों ही क्रियाओंमें लगे हुए, तथा उपशान्त-कपायके चढ़ते हुए विषयित गुणस्थानको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें मरे हुए जीवोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

१ एकजीव पति अव-योत्कृष्टधत्तर्मुहूर्तः । स. ति. १, ८.

२ प्रमत्तामपयययुणंप्रपद्यमाना च नानाजीवपेक्षा एवजीवपेक्षा च जघन्यैक समय ।
इ. ति. १, ८.
३ प्रतिपु 'अप्यदशुणपडिवण' इति पाठ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२४ ॥

पमत्तापमत्ताणं ताव उचवेदे- सत्तद्वज्जा बहुआ वा देसणमोहणीयउवसामगा चरिचमोहणीयउवसामगा वा पमत्तापमत्तगुणे पडिवणणा । तेसु अंतोमुहुत्तद्वमच्छिय अण-गुणं गदा । तमिह चेव समए अणो उवसमसम्मदिद्विणो पमत्तापमत्तगुणे पडिवणणा । एवमेत्थ संवेज्जमलागा लभंति । एदाहि पमत्तापमत्तद्वं गुणिदे वि अंतोमुहुत्तं चेव होदि । कुदो? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते उदिद्वचादो । एवं चेव चहुण्हमुवसामगाणं वि वत्तव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३२५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि, णाणजीवजहणुक्कस्सकालपरुवणाए पल-विदत्तादो ।

सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ ३२७ ॥

सम्माभिच्छादिद्वी ओघं ॥ ३२८ ॥

मिच्छादिद्वी ओघं ॥ ३२९ ॥

उक्त गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२४ ॥
उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत्तोंका काल कहते हैं- सात आठ जीव अथवा बहुतसे जीव, चाहे वे दर्शनमोहनीयकर्मके उपशामक हों, अथवा चाहे चारित्र-मोहनीयकर्मके उपशामन करनेवाले हों, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुए । उन दोनों गुणस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए । उसी ही समयमें अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकारसे यहां पर संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं । इन शलाकाओंसे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके कालको गुणा करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा पद कहा गया है । इसी प्रकारसे चारों उपशामकोंका भी काल कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३२५ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, इनका अर्थ नाना जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणामें प्ररूपण किया जा चुका है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२९ ॥

१ उत्कृष्टगोचरार्तर्मुहूर्तः । स. ति. १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि विप्यादर्थां सामान्योक्त कालः । स. ति. १, ८.

ओघमिह उत्तसासणादीणं सम्मत्ताणुवादिह उत्तसासणादितिह गुणद्वानां च भेदाभावा ।

एव सम्मत्तमगणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहुत्तं ॥ ३३१ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेष, बहुसो परुविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदुधत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जघा- एगो असण्णी सण्णीसु उववण्णो सागरोवमसदुधत्तं तत्थेव भमिय णुणो असण्णित्तं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ ३३३ ॥

ओघं कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी कालप्ररूपणाका और सम्यक्त्वमार्गणके अनुवादमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी काल-प्ररूपणाका परस्परमें कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञामार्गणके अनुवादमें संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्गृह्यते है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशत-पृथक्त्व है ॥ ३३२ ॥

जैसे—कोई एक असंक्षी जीव संक्षियोंमें उत्पन्न हुआ और सागरोपमशतपृथक्त्वके अन्त तक वह संक्षियोंमें ही भ्रमण करके पुनः असत्त्वको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछदुस्य गुणस्थान तक संज्ञियोंकी कालप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३३ ॥

१ समानुवादेन समिधु मिथ्यादृष्टपावनिवृत्तिचिदादान्तानां पुर्ववत् । स. सि. १, ८.

२ शेषाणी सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सण्णिमासणादीणं ओघसासणादीणं च सण्णित्तं पडि भेदाभावा ।

असण्णी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवगहणं ॥ ३३५ ॥

तं जघा- एगो सण्णी असण्णीसु उपपज्जिय खुदाभवगहणमेत्तकालमच्छिय सण्णित्तं गदो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं ॥ ३३६ ॥

एव सण्णिमगणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३३७ ॥

क्योंकि, संक्षी सासादनदिकोंका और ओघ सासादनदिकोंका सत्त्विके प्रति कोई भेद नहीं है ।

असंक्षी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंक्षी जीवोंका जघन्य काल शुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ३३५ ॥

जैसे—कोई एक संक्षी जीव असंक्षियोंमें उत्पन्न होकर शुद्रभवग्रहणमात्र काल रह करके सत्त्विको प्राप्त हो गया ।

एक जीवकी अपेक्षा असंक्षियोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ३३६ ॥

जैसे—कोई एक संक्षी मिथ्यादृष्टि जीव असंक्षी होकर, आवल्लिके असंख्यातं भाग-मात्र पुद्गलपरिवर्तनोक्तं क उन्होंने परिभ्रमण करके सत्त्विको प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार संक्षीमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणके अनुवादसे आहारक्रममें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३७ ॥

१ असत्तिर्ना मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सर्वं कालं । स. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति जकन्येन शुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८,

३ उत्कर्षेणान्तं कालोऽसत्त्विके पुद्गलपरिवर्तो । स. सि. १, ८.

४ आहाराणुवादेन आहारक्रमेण मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सर्वं कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुतं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

एदं पि सुतं सुगमं चय, ओघमिह उत्तथादो ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी ॥ ३३९ ॥

तं जहा- एको मिच्छादिट्ठी विगहं कादूण उववण्णो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं असंखेज्जासंखेजा ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणं तत्थ परिमपिय आहारगो जादो । पुणो अवसाणे विगहं करिय अणाहारित्तं गदो । एवमाहारिमिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो सिद्धो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ३४० ॥

कुदो? पाणेगजीवजहणुक्कस्सकालेहि आहारिसासणदीणं ओघसासणदीहि भेदाभावा ।

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ ३४१ ॥

यह स्रज सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

यह स्रज भी सुगम ही है, क्योंकि, ओघमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है ॥ ३३९ ॥

जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके (आहारक मिथ्यादृष्टियोंमें) उत्पन्न हुआ । अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक उनमें परिभ्रमण करता हुआ आहारक रहा । पुन अन्तमें विग्रह करके अनाहारकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारकोंका काल ओघके समान है ॥ ३४० ॥

क्योंकि, नाना ओर एक जीवसम्यग्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंका ओघ सासादनानादि गुणस्थानोंके कालके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनाहारक जीवोंका काल कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३४१ ॥

१ एकजीव प्रति जघन्योनान्तर्मुहूर्त । स. वि. १, ८.

२ उत्कर्षेण गुणसंख्येयमाणा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य । स. वि. १, ८.

३ खेपणा सामान्योक्तः काल । स. वि. १, ८.

४ अनाशरकेणु मित्पादरेनानाजीवापेक्षया सर्व कालः । एकजीव प्रति जघन्यनैकः समयः । अन्तर्मुहूर्तः कालः ।

कुदो ? मिच्छादिट्ठी पाणाजीवं पडुच्च सच्चदं होति, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण तिणिण समय; सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वे समय; सयोगिकेवलीणं पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिणिण समय, उक्कस्सेण संखेज्जसमया, एकजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिणिण समय, उक्कस्सेण असंखेज्जसमया, एकजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिणिण समय । इधेहि अणाहारमिच्छादिट्ठिआदीणं कम्मइयकायजोगिमिच्छादिट्ठिआदीहितो विसंसाभावा ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४२ ॥

कुदो ? पाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण पंचहरस्तसखरुच्चारणकालो इच्चेदेहि भेदाभावा ।

(एव आहारसमयणा समत्ता ।)

एवं कालाणिओगहारं सम्मत्ते ।

क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं, और उत्कर्षसे तीन समय होते हैं, अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय तक होते हैं; सयोगिकेवलीका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे संख्यात समय है, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है, इस प्रकारसे अनाहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंका कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिसे विनोपताका अभाव है ।

अनाहारक अयोगिकेवलीका काल ओघके समान है ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल पांच हरस अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है, इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

(इस प्रकार आहारमार्गेणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

समया । सासादनसम्यग्दृष्टयसयतसम्यग्दृष्टोनानाजीवापेक्षया जघन्यनैकः समय । उत्कर्षेणवलिकाया असंख्येय-मयाः । एकजीव प्रति जघन्यनैक समयः । उत्कर्षेण द्वौ समयौ । सयोगिकेवलिनो नानाजीवापेक्षया अवयन त्रय-समया । उत्कर्षेण सख्येयाः समया । एकजीव प्रति जघन्यओत्कृष्टश्च त्रय समया । स. वि. १, ८.

१ अयोगिकेवलिनो सामान्योक्तः काल । स. वि. १, ८. २ कालो वर्णित । स. वि. १, ८.

पुस्तिका

१ खेतपरूवणासुचारिणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या
१	खेचाणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओषेण आदेसेण य ।	२	१० पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे । ७३
२	ओषेण मिच्छाहट्ठी केवडि खेत्ते, सन्वलोणे ।	१०	११ मणुसगदीए मणुम-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाहट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे । ७३
३	सासनसम्माहट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३९	१२ सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओषं । ७५
४	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सन्वलोणे वा ।	४८	१३ मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे । ७६
५	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय-गदीए णेरइएसु मिच्छाहट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माहट्ठि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	५६	१४ देवगदीए देवेसु मिच्छाहट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे । ७७
६	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	६५	१५ एवं भणवासायिप्पहुडि जाव उवरिम—उवरिमगेवज्जविमाण—वासियेदेवा ति । ७७
७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छा-दिट्ठी केवडि खेत्ते, सन्वलोणे ।	६६	१६ अणुदिसादि जाव सन्वदुसिदि-विमाणवासियेदेवा असंजदसम्मा-दिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागे । ८१
८	सासनसम्माहट्ठिप्पहुडि जाव संजदा-संजदा ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	६७	१७ इंदियाणुवादेण एइंदिया चादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सन्वलोणे । ८१
९	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाहट्ठिप्पहुडि जाव संजदा-संजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	६९	१८ चीइंदिय-चीइंदिय-चउरंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे । ८४

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९	पंचिदिय-पंचिदियपञ्चपसु मिच्छा- इष्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	८९	२७	सजोगिकेवली ओघं ।	१०१
२०	सजोगिकेवली ओघं ।	९०	२८	तसकाइयअपज्जत्ता पंचिदियअप- ज्जत्ताणं भगो ।	१०१
२१	पंचिदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	९१	२९	जेगणुत्रादेण पंचमणजोगि-पंच- वचिजोगीसु मिच्छादिष्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०२
२२	कायाणुत्रादेण पुढविकाइया आउ- काइया तेउकाइया चाउकाइया, चादरपुढविकाइया चादरआउकाइया चादरतेउकाइया चादरचाउकाइया चादरवणफ्फदिकाइयपत्तेयमरीरा त- स्सेव अपज्जत्ता, सुद्धमपुढविकाइया सुद्धमआउकाइया सुद्धमतेउकाइया सुद्धमचाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सन्व- लोगे ।	९२	३०	कायजोगीसु मिच्छाइद्दी ओघं ।	१०३
२३	चादरपुढविकाइया चादरआउकाइया चादरतेउकाइया चादरवणफ्फदि- काइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	९३	३१	सासनसम्मदिष्टिप्पहुडि जाव खीण- कमायीदीदरागछदुमरया केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०३
२४	चादरचाउकाइयपञ्चत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स सत्तेज्जदिभागे ।	९४	३२	सजोगिकेवली ओघं ।	१०४
२५	वणफ्फदिकाइयणिगोदजीवा चादरा सुद्धमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सन्वलोगे ।	९५	३३	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइद्दी ओघं ।	१०४
२६	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तपसु मि- च्छादिष्टिप्पहुडि जाव अजोगि- केवलि ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	९६	३४	सासनसम्मदिष्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१०५
			३५	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिद्दी ओघ ।	१०५
			३६	सासनसम्मदिद्दी असंजदसम्मा- दिद्दी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०६
			३७	वेउविचयकायजोगीसु मिच्छादिष्टि- प्पहुडि जाव असंजदसम्मदिद्दी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१०८
			३८	वेउविचयमिस्सकायजोगीसु मिच्छा- दिद्दी सासनसम्मदिद्दी असंजद- सम्मदिद्दी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०९

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३९	आहारकायजोगीसु आहारमिसस- कायजोगीसु पमत्तसंबदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१०९	५१	णाणानुवादेण भदिअण्णाणि सुद- अण्णाणीसु मिच्छादिद्वी ओघं ।	११७
४०	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाद्वी ओघं ।	११०	५२	सासनसम्मादिद्वी ओघं ।	११८
४१	सासनसम्मादिद्वी असंजदसम्मा- द्वी ओघं ।	११०	५३	विभंगणाणीसु मिच्छादिद्वी सासन- सम्मादिद्वी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११८
४२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा ।	१११	५४	आभिणिबोहिय सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था के- वडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	११९
४३	वेदानुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाद्विप्पहुडि जाव अणियद्वी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागे ।	१११	५५	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजद- प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग- छदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	११९
४४	णवुंसयवेदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वि त्ति ओघं ।	११२	५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।	१२०
४५	अपगदेवेदसु अणियद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११३	५७	अजोगिकेवली ओघं ।	१२०
४६	सजोगिकेवली ओघं ।	११३	५८	संजमानुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	१२१
४७	कसायानुवादेण कौधकसाह-माण- कसाह-मायकसाह--लोभकसाईसु मिच्छादिद्वी ओघं ।	११३	५९	सजोगिकेवली ओघं ।	१२२
४८	सासनसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११४	६०	सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियद्वि त्ति ओघं ।	१२२
४९	णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उव- समा खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११६	६१	परिहागसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप- मत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२३
५०	अकसाईसु चट्ठाणमोघं ।	११६	६२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुम- सांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवागा	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६३	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चट्ठा- णमोघं ।	१२४	७५	सुक्कलोस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागे ।	१२०
६४	संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२४	७६	सजोगिकेवली ओघं ।	१२१
६५	असंजदेसु मिच्छादिद्वी ओघं ।	१२४	७७	भविष्याणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगि- केवली ओघ ।	१२१
६६	सासनसम्मादिद्वी सम्मामिच्छा- दिद्वी असंजदसम्मादिद्वी ओघं ।	१२५	७८	अभवासिद्धिएसु मिच्छादिद्वी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	१२२
६७	दंसणानुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीण- कसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२६	७९	सम्मत्तानुवादेण सम्मादिद्वि-खइय- सम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वि- प्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	१२३
६८	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वी ओघं ।	१२७	८०	सजोगिकेवली ओघं ।	१२४
६९	सामणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	१२७	८१	वेदगसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मा- दिद्विप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१२४
७०	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ।	१२७	८२	उवसमसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मा- दिद्विप्पहुडि जाव उवसंतकसाय- वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२४
७१	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	१२७	८३	सासनसम्मादिद्वी ओघं ।	१२५
७२	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील- लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छा- दिद्वी ओघ ।	१२८	८४	सम्मामिच्छादिद्वी ओघं ।	१२५
७३	सासनसम्मादिद्वी सम्मामिच्छा- दिद्वी असंजदसम्मादिद्वी ओघं ।	१२८	८५	मिच्छादिद्वी ओघं ।	१२५
७४	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छा- इद्विप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि- भागे ।	१२९	८६	सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छा- दिद्विप्पहुडि जाव खीणकसाय- वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२६
			८७	असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	१२६

(५)

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	पटुमाए पुटवीएणेएएसु मिच्छा- इट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	१८२	१७	निदिपादि जाव छट्ठीए पुटवीए णेएएसु मिच्छादिट्ठि-सामणमम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	१८८
१७	निदिपादि जाव छट्ठीए पुटवीए णेएएसु मिच्छादिट्ठि-सामणमम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	१८८	१८	एण वे तिल्लि नचारि पंच चोएस्स- भागा मा देय्णाम् ।	१८८
१९	सम्माभिच्छादिट्ठि-अमंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	१८९	२०	सत्तमाए पुटवीएणेएएसु मिच्छा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	१९०
२१	छ चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१९०	२२	सामणमम्मादिट्ठि-मम्माभिच्छा- दिट्ठि-अमंजदसम्मादिट्ठीहि केव- डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	१९१
२३	मिदिनगदीए तिरिक्खेसु मिच्छा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, आयं ।	१९२	२४	मासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं नेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदि- भागो ।	१९३
२५	सत्त चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१९३	२६	सम्माभिच्छादिट्ठि-अमंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१९४

(५)

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८८	आहारणुवादेण आहारएसु मिच्छा- दिट्ठी ओयं ।	१३७	९१	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा- दिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१३८
८९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१३७	९२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंसेज्जेसु वा भागेसु, सत्त्वलोणे वा ।	१३८
९०	अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओयं ।	१३७			

फोसणपरुवणासुत्तानि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	पोसणाणुमेण दुविहो निदेसो, ओवेण आदेसेण य ।	१४१	१०	सजोगिकेवली केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदिभागो, असंसेज्जा वा भागा, सत्त्वलोणे वा ।	१७२
२	ओवेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सत्त्वलोणे ।	१४५	११	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय- गदीएणे एएएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१७३
३	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदि- भागो ।	१४८	१२	छ चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१७३
४	अट वारह चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१४९	१३	सामणमम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदि- भागो ।	१७७
५	सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१६६	१४	पंच चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१७७
६	अट चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१६६	१५	सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१७८
७	संजदसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंसेज्जदि- भागो ।	१६८	१६	छ चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१७८
८	छ चोइसभागा मा देय्णाम् ।	१६८	१७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगि- लोगस्स असंसेज्जदिभागो ।	१७८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३९	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सन्वल्लो गो वा ।	२२३	५० सोधम्मसीसणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि चि देवोधं ।	२३४
४०	मणुसअपज्जचोहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२३	५१ सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदारासहरसारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३७
४१	सन्वल्लो गो वा ।	२२४	५२ अट्ट चोहसभागा वा देखणा ।	२३७
४२	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२४	५३ आणद जाव आरणचुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३८
४३	अट्ट णव चोहसभागा वा देखणा ।	२२५	५४ छ चोहसभागा वा देखणा पोसिदा ।	२३८
४४	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२७	५५ णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३९
४५	मवणवासिय-णाणवैतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२२८	५६ अणुहिस जाव सन्वट्ठिसिद्धि विमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४०
४७	अट्टुडा वा, अट्ट णव चोहसभागा वा देखणा ।	२२९	५७ इंदियाणुवादेण एइंदिय-वादर-सुहुम-पज्जचापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सन्वल्लो गो ।	२४०
४८	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३३	५८ वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि	२४०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
५९	केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४२	६० पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२५०
६०	सन्वल्लो गो वा ।	२४३	६१ अट्ट चोहसभागा देखणा, सन्वल्लो गो वा ।	२५३
६१	पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४४	६२ सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली चि ओधं ।	२५३
६२	सजोगिकेवली ओधं ।	२४५	६३ तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली चि ओधं ।	२५४
६४	पंचिदियपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४६	६५ सन्वल्लो गो वा ।	२५४
६६	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वादरपुढविकाइय-वादरआउकाइय-वादरतेउकाइय-वादरवाउकाइय-वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरिर-तस्सेव अपज्जत्त-पुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सन्वल्लो गो ।	२४७	६७ वादरपुढविकाइय-वादरआउकाइय-वादरतेउकाइय-वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरिरपज्जत्तएहि केवडियं	२५८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
११४	सामणसम्मादिद्वीहि सेवे फोसिदं, लोगस अमंसे- अदिभागो ।	२७२	११७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणि- यट्टि ति ओपं ।	२७८
११५	अट्ट गज चोदमभागा देयणा ।	"	११८	अपगदेवदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओपं ।	२७९
११६	सम्माभिच्छादिद्वीहि-अमंजदमम्मा- दिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२७४	११९	मजोगिकेवली ओपं ।	२८०
११७	अट्ट चोदमभागा ग देयणा फोमिदा ।	"	१२०	कमायाणुवादेण कोषरुमाह-भाण- कमार-भायकसाह-लोभकमारसु भिच्छादिद्वीहिप्पहुडि जाव अणि- यट्टि ति ओपं ।	"
११८	संजदमंजदेहि केवडि मंसे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो ।	"	१२१	णवरि लोभकमारसु सुद्धम- मांपराइयउवममा सत्ता ओपं ।	"
११९	छ चोदमभागा देयणा ।	२७५	१२२	अकमारसु चट्टाणमोपं ।	"
१२०	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणि- यट्टिउवतामग-सत्तागहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसे- ज्जदिभागो ।	२७५	१२३	पाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-मुद- अण्णाणिसु भिच्छादिद्वी ओपं ।	२८१
१२१	णउंमयवेदएसु भिच्छादिद्वी ओपं ।	२७६	१२४	सासणमम्मादिद्वी ओपं ।	"
१२२	सामणमम्मादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसे- ज्जदिभागो ।	"	१२५	विमंगणणीसु भिच्छादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२८२
१२३	अट्ट चोदमभागा देयणा ।	२७६	१२६	अट्ट चोदमभागा देयणा, सव्व- लोगो वा ।	"
१२४	सामणमम्मादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसे- ज्जदिभागो ।	"	१२७	सामणसम्मादिद्वी ओपं ।	२८३
१२५	अट्ट चोदमभागा वा देयणा ।	२७७	१२८	आभिणिषोहिय—सुद—ओधि- णाणीसु अमंजदसम्मादिद्वीहिप्पहुडि जाव सौणकमायवीदारागछदु- मत्था ति ओपं ।	"
१२६	मम्माभिच्छादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो ।	"	१२९	मणपज्जणणीसु पमत्तसंजद- प्पहुडि जाव सौणकसायवीद- रागछदुमत्था ति ओपं ।	२८४
१२७	अमंजदसम्मादिद्वीहि-मंजदासंजदेहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२७८	१३०	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओपं ।	"
१२८	छ चोदमभागा देयणा ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७९	सासणसुम्मादिद्वीहिप्पहुडि जाव सौणकसायवीदारागछदुमत्था ओपं ।	२५८	९३	सम्माभिच्छादिद्वीहि अमंजदसम्मा- दिद्वी ओपं ।	२६७
८०	सजोगिकेवली ओपं ।	"	९४	वेउब्बियमिस्सकायजोगीसु भिच्छा- दिद्वी-सासणसम्मादिद्वीहि-अमंजद- सम्मादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो ।	२६८
८१	ओरालियकायजोगीसु भिच्छादिद्वी ओपं ।	२५९	९५	आहारकायजोगि-आहारमिस्स- कायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केव- डियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२६९
८२	सासणसम्मादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो ।	२६०	९६	कम्मइयकायजोगीसु भिच्छादिद्वी ओपं ।	"
८३	सत्त चोदमभागा वा देयणा ।	"	९७	सामणसम्मादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसे- ज्जदिभागो ।	२७०
८४	सम्माभिच्छादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो ।	२६१	९८	एक्कारह चोदमभागा देयणा ।	"
८५	अमंजदसम्मादिद्वीहि संजदा- संजदेहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२६२	९९	अमंजदसम्मादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसे- ज्जदिभागो ।	"
८६	छ चोदमभागा वा देयणा ।	२६२	१००	छ चोदमभागा देयणा ।	"
८७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगि- केवलीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२६३	१०१	मजोगिकेवलीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो, सव्वलोगो वा ।	२७१
८८	ओरालियमिस्सकायजोगीसु भिच्छा- दिद्वी ओपं ।	२६३	१०२	वेदणुवादेण इण्यवेद-पुरिस- वेदणसु भिच्छादिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसे- ज्जदिभागो ।	"
८९	सासणसम्मादिद्वीहि-अमंजदसम्मादिद्वी- सजोगिकेवलीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदिभागो ।	२६४	१०३	अट्ट चोदमभागा देयणा, सव्व- लोगो वा ।	२७२
९०	वेउब्बियकायजोगीसु भिच्छा- दिद्वीहि केवडियं सेवे फोसिदं, लोगस्स अमंसेज्जदि- भागो ।	२६६			
९१	अट्ट चोदमभागा वा देयणा ।	"			
९२	सासणसम्मादिद्वी ओपं ।	२६७			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३१	अजोगिकेवली ओषं ।	२८५	१४४	ओषिदंसणी ओधिणाणिमंगो ।	२८९
१३२	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओषं ।	"	१४५	केवलदंसणी केवलणाणिमंगो ।	२९०
१३३	सजोगिकेवली ओषं ।	"	१४६	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय- णीलेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छा- दिद्वी ओष ।	"
१३४	सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंज- देसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियड्ढि ति ओषं ।	२८६	१४७	सासणसम्मादिद्वीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	२९१
१३५	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्प- मत्तसंजदेहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१४८	पंच चत्तारि वे चोदसभागा वा देखणा ।	"
१३६	सुहुमसांपराहयसुद्धिसंजदेसु सुहु- मसांपराहय-उवसमा खवा ओषं ।	२८७	१४९	सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मा- दिद्वीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९३
१३७	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु च- दुड्ढणी ओषं ।	"	१५०	तेउलेस्सिएसु मिच्छादिद्वि- सासणसम्मादिद्वीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	२९४
१३८	संजदासंजदा ओषं ।	"	१५१	अट्टणव चोदसभागा वा देखणा ।	२९५
१३९	असंजदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि ति ओषं ।	२८८	१५२	सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मा- दिद्वीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१४०	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	"	१५३	अट्ट चोदसभागा वा देखणा ।	"
१४१	अट्ट चोदसभागा देखणा सव्व- लोगो वा ।	"	१५४	संजदासंजदेहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	२९६
१४२	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था चि- ओषं ।	२८९	१५५	दिवह् चोदसभागा वा देखणा ।	"
१४३	अजक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वि- प्पहुडि जाव खीणकसाय- वीदरागछदुमत्था चि ओषं ।	"	१५६	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओषं ।	२९७

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५८	अट्ट चोदसभागा वा देखणा ।	२९७	१७१	वेदगसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मा- दिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा ति ओषं ।	३०४
१५९	संजदासंजदेहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि- भागो ।	२९८	१७२	उवसमसम्मादिद्वीसु सम्मादिद्वी ओषं ।	"
१६०	पंच चोदसभागा वा देखणा ।	"	१७३	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवमत्त- कसायवीदरागछदुमत्थेहि केव- लियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०५
१६१	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओषं ।	२९९	१७४	सासणसम्मादिद्वी ओषं ।	३०६
१६२	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वि- प्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केव- लियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	१७५	सम्मामिच्छादिद्वी ओषं ।	"
१६३	छ चोदसभागा वा देखणा ।	"	१७६	मिच्छादिद्वी ओषं ।	"
१६४	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगि- केवलि ति ओषं ।	३००	१७७	सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छा- दिद्वीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१६५	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगि- केवलि ति ओषं ।	३०१	१७८	अट्ट चोदसभागा देखणा, सव्व- लोगो वा ।	"
१६६	अभवसिद्धिएहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	"	१७९	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओषं ।	३०७
१६७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि चि ओषं ।	३०२	१८०	असण्णीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	"
१६८	खइयसम्मादिद्वीसु असंजद- सम्मादिद्वी ओषं ।	"	१८१	आहाराणुवादेण आहारएसु मि- च्छादिद्वी ओषं ।	३०८
१६९	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगि- केवलीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०३	१८२	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओषं ।	"
१७०	सजोगिकेवली ओषं ।	३०४	१८३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगि- केवलीहि केवलियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ
१८४	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगि- मंगो ।	३०९	३०९
१८५	णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि-		

कालपरुवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ
१	कालाणुगमेण दुविहो गिहिसो, ओघेण आदेसेण य ।	३१३	३४२
२	ओघेण भिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो हति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३१४	३४४
३	एगजीवं पडुच्च अणादियो अपज- वसिदो, अणादियो सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो गिहिसो । जहणेण अंतोमुहुत्तं ।	३१५	३४५
४	उक्कस्सेण अद्रपोगलपरियद्धं देसणं ।	३१६	३४६
५	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो हति, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ ।	३१७	३४७
६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	३१८	३४८
७	एगजीवं पडुच्च जहणेण एग- समओ ।	३१९	३४९
८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ ।	३२०	३५०
९	सम्माभिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो सन्वद्धा ।	३२१	३५१

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ
२०	एगजीवं पडुच्च जहणेण एग- समयं ।	३५०	३५०
२१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५१	३५१
२२	चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो हति, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	३५२	३५२
२३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५३	३५३
२४	एगजीवं पडुच्च जहणेण एग- समयं ।	३५४	३५४
२५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५५	३५५
२६	चउण्हं खवगा अजोगिकेवली केव- चिरं कालादो हति, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ।	३५६	३५६
२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५७	३५७
२८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	३५८	३५८
२९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५९	३५९
३०	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो हति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३६०	३६०
३१	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	३६१	३६१
३२	उक्कस्सेण पुच्चकोडी देसणा ।	३६२	३६२
३३	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय- गदीए गेरइएसु भिच्छादिट्ठी केव- चिरं कालादो हति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३६३	३६३
३४	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	३६४	३६४
३५	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोवमाणि ।	३६५	३६५

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३६३	६२ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ३७०	३७०
४९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठं ।	३६४	६३ उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमानि, तिणि पलिदोवमानि देख्णानि ।	३७१
५०	सासनसम्मादिट्ठी सम्माभिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	"	६४ संजदासंजदा ओघं ।	"
५१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६५	६५ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता केव- चिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३७२
५२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	६६ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभव ग्गहणं ।	"
५३	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमानि ।	"	६७ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७२
५४	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६६	६८ मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
५५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	६९ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
५६	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देख्णा ।	"	७० उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमानि पुव्वकोडिपुघचेणवमहियाणि ।	३७३
५७	पंचिदियतिरिक्ख—पंचिदिय- तिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्ख- जोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६७	७१ सासनसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगममयं ।	३७४
५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	७२ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
५९	उक्कस्सं तिणिण पलिदोवमानि पुव्वकोडिपुघचेण अवमहियाणि ।	"	७३ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
६०	सासनसम्मादिट्ठी सम्माभिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३६९	७४ उक्कस्सं छ आवलियाओ ।	३७५
६१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	७५ सम्माभिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७५	९१ असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८१
७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३७६	९२ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
७८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	९३ उक्कस्सं तेचीसं सागरोवमानि ।	"
७९	असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	९४ भवणवासियपहुडि जाव सदार- सहस्सारकप्पवासियदेवसु मिच्छा- दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८२
८०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	३७७	९५ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
८१	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमानि, तिणिण पलिदोवमानि सादियेयानि, तिणिण पलिदोवमानि देख्णानि ।	३७८	९६ उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादियेयं चे सत्त चोहत्त सोलस राअट्ठस सागरानमानि सादिये- यानि ।	"
८२	संजदासंजदपहुडि जाव अजोगि- केवलि त्ति ओघं ।	३७९	९७ सासनसम्मादिट्ठी सम्माभिच्छा- दिट्ठी ओघं ।	३८५
८३	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ।	३८०	९८ आणद जाव णवगेवज्जविमाण- वासियदेवसु मिच्छादिट्ठी असं- जदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
८४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिमागो ।	३८०	९९ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
८५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"	१०० उक्कस्सेण चीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं णववीसं छव्वीसं सत्ता- वीसं अट्ठवीसं एगूणतीसं तीसं एक्कचीसं सागरोवमानि ।	३८६

(१८)

(१७)

परिशिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०१	सासनसम्मादिद्वी सम्माभिच्छा- दिद्वी ओषं ।	३८६	११२	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जादि- भागे असंखेज्जासंखेज्जाओ	३८९
१०२	अणुविस-अणुत्तरविजय-वह- जयत्त-जयत्त-अवराजिदविमाण- वासियेदेवसु असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणा- जीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३८७	११३	बादेइदियपज्जाचा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३९०
१०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्क- वत्तिं, वत्तिं सागरोवमाण	"	११४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"
१०४	उक्कस्सेण वत्तिं, तेत्तिं सादिरेयाणि ।	"	११५	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह- स्साणि ।	३९२
१०५	सन्वद्धसिद्विमाणवासियेदेवसु असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३८७	११६	बादेइदियअपज्जाचा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३९३
१०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णुकस्सण तेत्तिं सागरोवमाण ।	"	११७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"
१०७	इदियाणुवादेण इंदिया केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३८८	११८	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	३९५
१०८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"	११९	सुहुमइंदिया केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३९४
१०९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- योगलपरियद्धं ।	"	१२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"
११०	बादरइदिया केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३८९	१२१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"
१११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	"	१२२	सुहुमेइदियपज्जाचा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	३९५
११२	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"	१२३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"
११३	बादरपुढविकाइय-बादरआउ- काइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ- काइय-बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरिरपज्जाचा केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४०३	१२४	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुच्च कोडिपुघत्तेणम्भहियाणि, सागरोवमसदपुघत्तं ।	४००
११४	उक्कस्सेण कम्महिदी ।	"	१२५	सासनसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लि ति ओषं ।	"
११५	बादरपुढविकाइय-बादरआउ- काइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ- काइय-बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरिरअपज्जाचा केवचिरं	४०४	१२६	पंचिदिय-पंचिदियपज्जाचा एसु मि- च्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४०३
११६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा- भवग्गहणं ।	३९८	१२७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो- मुहुत्तं ।	"
११७	उक्कस्सेण कम्महिदी ।	"	१२८	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह- स्साणि ।	४००
११८	बादरपुढविकाइय-बादरआउ- काइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ- काइय-बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरिरअपज्जाचा केवचिरं	४०३	१२९	सासनसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवल्लि ति ओषं ।	"
११९	बादरपुढविकाइय-बादरआउ- काइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ- काइय-बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरिरअपज्जाचा केवचिरं	४०४	१३०	पंचिदियअपज्जाचा बोइंदिय- अपज्जाचमंगो ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४९	कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४०५	१६०	सासनसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ।	४०८
१५०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-भवग्गहणं	"	१६१	तसकाइयअपज्जसाणं पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो ।	"
१५१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१६२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंच-वचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्त-संजदा अपमत्तसंजदा सजोगि-केवली केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४०९
१५२	वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो ।	"	१६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	"
१५३	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४०६	१६४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४१२
१५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-भवग्गहणं ।	"	१६५	सासनसम्मादिट्ठी ओधं ।	"
१५५	उक्कस्सेण अट्ठाइजादो पोगल-परियट्ठं ।	"	१६६	सम्माभिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१३
१५६	बादरणिगोदजीवाणं वादरपुढवि-काइयाणं भंगो ।	४०७	१६७	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिमागो ।	"
१५७	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	"	१६८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	४१४
१५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	१६९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१५९	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधचेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि ।	४०८	१७०	चटुण्हसुवसमा चटुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होति, गाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१५
		"	१७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
		"	१७२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	"
		"	१७३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७४	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केव-चिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४१५	१८७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयो ।	४२०
१७५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	४१६	१८८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ सम-उणाओ ।	४२१
१७६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेजा पोगलपरियट्ठं ।	"	१८९	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१७७	सासनसम्मादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवलि ति मणजोगि-भंगो ।	४१७	१९०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१७८	ओरालियकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	"	१९१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	४२२
१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	४१८	१९२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१८०	उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देखणाणि ।	"	१९३	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च जह-ण्णेण एगसमयं ।	४२३
१८१	सासनसम्मादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवलि ति मणजोगिभंगो ।	"	१९४	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।	४२४
१८२	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि-च्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४१९	१९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमयो ।	"
१८३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-भवग्गहणं तिसमजणं ।	"	१९६	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सन्वद्धा ।	४२५
१८४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयो ।	"
१८५	सासनसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२०	१९८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१८६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिमागो ।	"	१९९	सासनसम्मादिट्ठी ओधं ।	४२६
		"	२००	सम्माभिच्छादिट्ठी मणजोगि-भंगो ।	"
		"	२०१	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मि-च्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी	"

(२३)

परिशिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२६१	सासनसम्मादिद्वी ओषं ।	४४९	२७३	जहाक्खादिविहारसुद्धिसंजदेसु चहुट्ठाणी ओषं ।	४५३
२६२	विभंगणणीसु मिच्छादिद्वी केव-चिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	२७४	असंजदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि चि ओषं ।	"
२६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	"	२७५	उक्कस्सेण तेचीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसुणाणि ।	"
२६४	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोवमाणि देसुणाणि ।	"	२७६	मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२६५	सासनसम्मादिद्वी ओषं ।	४५०	२७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	४५४
२६६	आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु अमंजदसम्मादिद्वि-प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था चि ओषं ।	"	२७८	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि ।	"
२६७	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था चि ओषं ।	"	२७९	सासनसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था चि ओषं ।	"
२६८	केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओषं ।	४५१	२८०	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वि-प्पहुडि जाव खीणकसायवीद-रागछदुमत्था चि ओषं ।	४५५
२६९	संजमाणुवादेण सजदेसु पमत्त-संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि चि ओषं ।	"	२८१	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	"
२७०	सामाहय च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंज-देसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अपियाद्वि चि ओषं ।	"	२८२	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"
२७१	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप-मत्तसंजदा ओषं ।	४५२	२८३	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मि-च्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२७२	सुहमसांपराहयसुद्धिसंजदेसु सुह-मसांपराहयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओषं ।	"	२८४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	"
			२८५	उक्कस्सेण तेचीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरयाणि ।	४५७
			२८६	सासनसम्मादिद्वी ओषं ।	४५८

(२४)

कालपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८७	सम्माभिच्छादिद्वी ओषं ।	४५९	३०२	सासनसम्मादिद्वी ओषं ।	४७२
२८८	असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	३०३	सम्माभिच्छादिद्वी ओषं ।	४७३
२८९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	"	३०४	अमंजदसम्मादिद्वी ओषं ।	"
२९०	उक्कस्सेण तेचीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसुणाणि ।	४६०	३०५	संजदामंजदा पमत्त-अप्यमत्त-संजदा केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२९१	तेउलेस्सिय-पमलेस्सिएसु मि-च्छादिद्वी असंजदसम्मादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाण-जीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४६२	३०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	४७४
२९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	"	३०७	उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।	४७५
२९३	उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरो-वमाणि सादिरयाणि ।	४६३	३०८	चदुण्हसुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओषं ।	४७६
२९४	सासनसम्मादिद्वी ओषं ।	४६५	३०९	भवियणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
२९५	सम्माभिच्छादिद्वी ओषं ।	"	३१०	एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्ज-वसिदो ।	"
२९६	संजदामंजद-पमत्त-अप्यमत्त-संजदा केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४६६	३११	ओ सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्वेसो ।	४७८
२९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	"	३१२	जहण्णेण अतोमुहुत्तं ।	४७९
२९८	उक्कस्समतोमुहुत्तं ।	४७१	३१३	उक्कस्सेण अद्रपोगलपरियट्ठं देखणं ।	"
२९९	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वी केव-चिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"	३१४	सासनसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि चि ओषं ।	४८०
३००	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतो-मुहुत्तं ।	४७२	३१५	अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होति, गाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	"
३०१	उक्कस्सेण एककर्त्तासं सागरो-वमाणि सादिरयाणि ।	"	३१६	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ।	"

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३१७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सदयसम्मदिट्ठीसु असंजद-सम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि चि ओंघं ।	४८१	३३०	सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वदा ।	४८५
३१८	वेदगसम्मदिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा चि ओंघं ।	"	३३१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
३१९	उवससम्मदिट्ठीसु असंजद-सम्मदिट्ठी संजदासंजदा केव-चिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४८२	३३२	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुघत्तं	"
३२०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-उज्जिभागो ।	"	३३३	सासणसम्मदिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्तया चि ओंघं ।	"
३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	४८३	३३४	असण्णी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वदा ।	४८६
३२२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३३५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-मवगहणं ।	"
३२३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंत-कसायवीदरागछुदुमत्तया चि केव-चिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	४८४	३३६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोगलपरियुट्ठं ।	"
३२४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३३७	आहाराणुवादेण आहाराएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति, गाणाजीवं पडुच्च सव्वदा ।	"
३२५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समय ।	"	३३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	४८७
३२६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३३९	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे-ज्जिभागो अमंखेज्जामंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी ।	"
३२७	सासणसम्मदिट्ठी ओंघं ।	"	३४०	सासणमम्मदिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि चि ओंघं ।	"
३२८	सम्मामिच्छादिट्ठी ओंघं ।	"	३४१	अणादाराएसु कम्मइयकायजोगि-मंगो ।	"
३२९	मिच्छादिट्ठी ओंघं ।	"	३४२	अजोगिकेवली ओंघं ।	४८८

२ अवतरण-गाथा-सूची

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा
४२	अतिथ अणंता जीवा	४७७ गो. जी	१९७	३	छावाट्टि च सव्वस्सं णव-	१५२	अभिधा रा. चन्द्रशब्दे
१	अपन्न गणिवारण्डं	२		२८	जह गेणहइ परियट्ठं पुरे-	३३४	
४	आगासं सण्देसं तु	७ अभिधा. रा.		९	णतिय चिरं वा क्षिपं	३१७ पंचा. गा.	२६.
३६	आवलिय अणागारे	३९१ कसायणाहुडे		३	ण य परिणमइ सयं सो	३१५ गो. जी.	५७०
७	इट्ठसलागावुत्तो चत्तारि	२०१		३३	ण य मरइ णेव संजम-	३४२	
१०	उच्छासानां सहस्राणि	३१८		२	गामं उवणा दवियं ति	३ स त	१, ६.
२९	उप्पज्जति विंयति य भावा	३३७ स. त.	१, ११.	२५	णिरक्काउआ जहण्णा	३३३ स. सि.	१, १० गो. जी.
३१	उवसमसम्मत्तद्धा	२४१		३५	तिणिण सया छत्तोसा	३९० गो. जी.	१२३.
३२	उवसमसम्मत्तद्धा जइ	३४२		४१	दो हो य तिणिण तेज	४७५	
१९	एयक्खेत्तोगाढं सव्व	३२७ गो	क. १८५.	१७	नन्दा भद्रा जया रिक्का	३१९	
४०	एक्कारस छ सत्त य	४१५		११	निमेयाणां सहस्राणि	३१८	
१४	एक्कारमय निस्सु हेट्ठिमेसु	२३६		१८	पणुवीस असुराणं	७९ त्रि. सा.	२४९.
३४	एकं तिय सत्त वस तव	३६१		१२	पण्णासं तु सहस्सा	२३५	
४३	एयणिगेवसरि जीया	४७८ गो जी.	१९६	२७	परियट्ठिदाणि वहुसो	५६० (संस्कृत-छाया)	
२४	ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी	३३३ स सि, २, १० गो. जी.	५६०.	५	पहो सायर सूरि पदरो य	१० ति. प.	१, ९३.
१	कालो ति य ववएसो	३१५ पंचा. गा	२४	६	पंचरिथया य छज्जोव-	३१६ मूलाचा.	३९९
२	कालो परिणामवो	३१५ पंचा. गा.	१०८	११	वम्हे कण्ये वम्हेसरे य	२३५	
३७	केवलदंसण-णाणे कसा-	३९१ कसायणाहुडे		५	वाहिरसूरिवगो अमं-	१९५ ति प.	५, ३६.
३	सेत्तं खलु आगासं	७				त्रि सा.	३१६
२१	गहणसमयमिह जीवो	३३२				(अर्धसमता)	
३९	गुणजोगपरावसो वाघा-	४११		१६	बीजे जोणीभूदे जीवो	२५१ गो. जी.	१९०.
१५	गेवज्जाणुवरिमया णव-	२३६		३८	माणद्धा कोघद्धा मायद्धा	३९१ कसायणाहुडे	मत्ताप.
२	चंदारब्ध गेहेहि चेवं	१५१		९	मुह-तलसमास-मदं	२० ति प	१, १६५
१३	छयेय सव्वस्सां सयार-	२३६				जं. प.	१, १०८
५	छप्पंचणवधिदाणं कट्या-	३१५ गो जी.	५६०			५१	"

क्रम सख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा	क्रम सख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहा
१७	मुह-भूमिविलेसमिह दु	५७		२३	सव्यमिह लोगबेले	३३३ स. सि २, १०.	
१	मुहसहिदमूलमद	१४६		२६	सव्यासि पगदीणं अणु-	३३४	गो. जी. ५६०
१०	मूलं मज्जेण गुणं	२१ जं प ११, ११०		१८	सव्ये वि पोगला खलु	३२६	टीका
१५	"	५१	"	२२	"	३३३	"
१३	रोहणो बलनामा च	३१८		१४	सावित्रो धुर्यसंक्षथ	३१९	"
१२	रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च	३१८		१५	सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च	"	"
७	लोमो अकहिमो खलु	११ त्रि. सा ४.		२०	सुहुमद्विदिसंजुतं आस-	३३१ गो. जी. ५६०.	टीका.
८	लोयस्त य विस्वभो	११ जंबू, प. ११, १०७.		६	सोलह सोलसहिं गुणे	१९९	
४	लोयायासपदेसे एकैके	३१५ गो जी. ५८८		१२	संको पुण वारह जोय-	३३	
१०	बसीस सोहमे अट्टा-	२३५		३०	सते वप ण णिट्ठादि	३३८	
८	विकलंभवगदसगुण-	२०९ त्रि सा ९३		६	हेट्टा मज्जे उवरि वेत्ता-	११ जंबू. प ११, १०६.	
११	वेदण कसाय-वेडविय-	२९ गो. जी. ६६७					
१३	व्यास तावत्कत्वा वदन-	३५					
९	व्यासं षोडशगुणितं	४२					
१४	"	२२१					
४	सत्त णव सुण्णा पंच य १९४						
७	सन्भावसद्वावाणं जीवा-	३१७ पंचा. गा. २३.					
८	समभो णिमिसो कट्ठा	३१७ पंचा गा २५,					
१६	समयो रात्रिदिनयो-	३१९					

३ न्यायोक्तियां

क्रम सख्या	पृष्ठ	क्रम सख्या	पृष्ठ
१ अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेष्वपि वर्तन्ते इति न्यायात् ।	११६	४ गौण-मुख्ययोर्मुख्ये सम्प्रत्ययः इति न्यायात् ।	४०३
२ खीरकुम्भस्तस्य मधुकुम्भो न्व ।	२४	५ जहा उद्देशो तद्वा णिद्देशो ।	१०, १४५, ३२३, ३४०
३ निग्गहकालरक्कलछाहीन	३४०		

४ ग्रन्थोल्लेख

पृष्ठ	१३२	२८४	१८४	२०६	२४५	३९१	३१६	३१५	३६२
	१ अप्पावहुगसुत्त								
	१ तसरासिमसिदूण वुत्तबंधपावहुगसुत्तादो णज्जदे ।								
	२ करणाणिओगसुत्त								
	१. ण च सत्तरज्जु गहल्लं करणाणिओगसुत्तविकदं, तस्स तत्थ विधिप्पडि- सेधाभावादो ।								
	३ कालसुत्त								
	१. 'वे सत्त दस चोदस सोलसट्ठारस य वीस वावीसा' एदीए गाहाए सह एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । तं जहा- वुत्तं सुत्तं बंधप्पडिबद्धं । कालसुत्तं पुण संतमवेक्खिय द्दिदमिदि ।								
	४ सुदाबंधसुत्त								
	१ कदजुम्मेहि पंचिदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणिजोदिसिय-चेतरदेव-अव- हारकालेहि सुदाबंधसुत्तसिद्धेहि अकदजुम्भजगपदेरे भाने हिदे एदाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज ? ण च एदं, जीवाणं छेदाभावा ।								
	२ सुदाबंधम्मि उववादपरिणयसासणाणभेक्कारहचेहसभागोत्तणपरुवय- सुत्तादो च णव्वदे ।								
	५ खेत्ताणिओगहार								
	१ एदेसिं चेव खेत्ताणिओगहारोघाहि उत्तपरुवणाए वुल्ला ।								
	६ गाहासुत्त (कसायपाहुड)								
	१ ' आवलिय अणागारे '... (३६-३८) इदि गाहासुत्तादो (कसायपाहुड)								
	७ जीवद्वुण								
	१ जीवद्वुणादिसु वव्वकालो ण वुत्तो ऽत्ति तस्साभावो ण वोत्तुं सक्किज्जे, एत्थं छद्ववपदुण्णायणे अदियाराभावा ।								
	८ जीवसमास								
	१ जीवसमासाए वि उत्तं—' छप्पंचणवविहाणं								
	९ गिरयाउबंधसुत्त								
	१ ' एकं तिय सत्त वत्त '.. इदि गिरयाउबंधसुत्तादो ।								

१० तत्त्वार्थसूत्र (तत्त्वार्थसूत्र)

१. तद् गिद्धापिच्छादिरियप्ययासिवत्सङ्गत्यसुप्ते वि' वर्तनोपरिणामक्रिया परत्वा-
परत्वे च कालस्य ' इति दन्वकालो परुविदो ।

३१६

११ तिलोपपणत्ती

१. एसा तप्याभोगसखेजऊरूवाहियजंयुदीवछेदणयसाहिदवीवसायररूवमेत्त-
रउजुछेदपमाणपरिकवाविही ण अण्णादिरिओवेदेसपरपराणुसारिणी, केवलं
तु तिलोपपणत्तिसुत्ताणुसारिजोविसियदेवमागह्वारपदुप्पाइयसुत्तावलंविजुत्तिवलेण
पयदगच्छसाहणट्टमग्देहि परुविदा, प्रतिनियतसुत्तावष्टमभवलविजुत्तिमितगुणप्रतिपन्न-
प्रतिबद्धासंभेययावलिकावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसस्यानोपदेशवत्ता ।

१५७

१२ दन्वाणिओगद्दार

१. किं च दन्वाणिओगद्दारवक्खणाग्निह् बुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पा अभावसुव-
डुक्कते, अवगसमुद्धिदलोगत्तादो ।

१६२-६३

१३ परियम्म

१ जत्तियाणि दीवसागररूवाणि जवूदीवछेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि
रउजुछेदणाणि ति परियम्मेण पद्द वम्खणं किण्ण विरुज्जवे ? एदेण सह विरुज्जवे,
किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्जवे । तेणेदस्स वक्खणास्स गह्वण कायव्व, ण परियम्मस्स;
तस्स सुत्तविरुज्जवे । ण सुत्तविरुज्ज वक्खणा होमिह, अहप्पसंगादो ।

१५६

२ रज्जू सत्तगुणिक्का जगसेदी, सा वगिगदा जगपव्वरं, सेढीए गुणिदजगपव्वरं
चणलोओ होवि ति परियम्मसुत्तेण सव्वाहरियसम्मेदेण विरोहप्पसंगादो ।

१८४

३. के वि आहरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उण्यणा ति कज्जे
कारणेयारमवलंथिय बादरट्ठिदीए वेय कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते ।

४०३

४ कम्मट्ठिदिमावलियाए असखेजजिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा ति
परियम्मवयेण सह परं सुत्त विरुज्जवे ति नेदस्स ओम्भत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्म-
ययेण ण होमि ति तस्सेय ओक्खत्तप्पसंगा ।

३९०

१४ पंचत्थिपाहुड

१ बुत्त च पंचत्थिपाहुडे—' कालो ति य चउरतो ' इत्यादि १-४ गाथा

३१५

२ बुत्तं च पंचत्थिपाहुडे वज्जारकालस्स अत्थित्तं—सम्भावसद्भावानं ।

३१७

७-९ गाथा.

१५ वग्गणसुत्त

१. अंगुलस्स असंखेजजिभागमेत्त माहल्लतिरिगपदरग्निह् सेढीए असंखेजजिदि-
भागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ गिरयगइया-
ओगाणुपुञ्चीए पयडीओ ति वग्गणसुत्तादो ।

१७५-१७६

२ महामच्छओगाहणग्निह् एगवंचणव्वदलज्जीव णे कायंणमेत्थित्तं कचं णव्वदे ?
वग्गणग्निह् उत्तअप्पावडुगादो ।

२१५

१६ वेदणाखेत्तविधाण

१ ' एगजीवस्स जह्वणोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेजजिभागमेत्ता ' ति
वेदणाखेत्तविधाणे परुविदत्तादो ।

२४

२. पत्तेयसरीरपज्जसजह्वणोगाहणादो बोद्धियपज्जसजह्वणोगाहणा असं-
खेजगुणा ति कुदो णव्वदे ? वेदणाखेत्तविहाणग्निह् बुत्तओगाहणदंडयादो ।

१७ संताणिओगद्दार

१ जदि सासणा पदंदिपसु उप्पज्जंति, तो तत्थ देओ गुणहुणाणि होति । ण
च पदं, संताणिओगद्दारे तत्थ एक्कमिच्छादिहिगुणप्पदुप्पायादो ।

१५६

२. पदं पि वक्खणं संतद्व्यसुत्ताविरुद्धं ति ण धेत्तव्व ।

५ पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना—यहां शब्दोंके केवल उन्हीं पृष्ठोंका उल्लेख किया गया है जहां उनके विषयमें कुछ
विशेष कहा गया पाया जाता है ।

शब्द	अ	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अकर्मभाव	अ	३२७	अद्यान	४७६
अकृतयुग्मजगप्रतर		१८५	अणुजगत	३७८
अकृत्रिम		११, ४७६	अतिप्रसंग	२३, २०८
अक्षयराशि		३३९	अतीतकालविशेषितक्षेत्र	१४५
अगृहीतग्रहणाद्धा		३२७, ३२९	अतीतानागतवर्तमान--	१४८
अविस्मरव्यस्पर्शन		१४३	कालविशिष्टक्षेत्र	१५८
अच्युतकल्प	१६५, १७०, २३६	अर्थोन्निद्रिय	अर्थ	२००
	२६२, २०८	अर्थ	अर्थपद	१८७

परिशिष्ट

(३१)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अक्षा	३१८	अपनयनधुराराशि	२०१
अर्धचतुर्थीयक्षेत्र	३७, १६९	अपनयनराशि	२००
अर्धचतुर्थीयक्षेत्रपसमुद्र	२१४	अपर्याप्त	९१
अधोलोक	९, २५६	अपराजित	३८६
अधोलोकक्षेत्रफल	१६	अपरीतसंसार	३३५
अधोलोकप्रमाण	३२, ४१, ५०	अपवर्तना	३८, ४१, ४३, ४७, १०३, १२६, १३०
अधःप्रवृत्तकरण	३३५, ३५७	अपवर्तनाघात	४६३
अधःप्रवृत्तविशोधि	३३६	अपित	३९३, ३९८
अधस्तनविकल्प	१८५	अपूर्वकरण	३३५, ३५७
अन्तरकाल	१७९	अपूर्वकरणक्षपक	३३६
अन्तर्मुहूर्त	३२४, ३८०	अपूर्वकरणगुणस्थान	३३६
अन्तः	३३८	अप्रशस्ततैजसशरीर	३५३
अनन्तकाल	३२८	अभिजित्	२८
अनन्तव्यपदेश	४७८	अभिव्यक्तिजनन	३१८
अनन्तानुबन्धी	३३६	अमेद	३२२
अनर्पित	३२३, ३९८	अमूर्त	१४४
अनवस्था	३२०	अयन	१४४
अनवस्थाप्रसंग	१६३	अयोगी	३१७, ३९५
अनाकारोपयोग	३९१	अर्यमन्	३३६
अनादि	४३६	अरुण	३१८
अनादिमिश्याहृदि	३३५	अलोकाकारा	३१९
अनाहारक	४८७	अल्पबहुत्व	९, २२
अनिवृत्तिकरण	३३५, ३५७	अवक्षिप्तप्रसंग	२५
अनिवृत्तिकक्षपक	३३६	अवर्गसमुत्थितलोक	३९०
अनुकृष्टि	३५५	अवगाहनलक्षण	१८५
अनुगम	९, ३२२	अवगाहना	८
अनुसरविमान	२३६, ३८६	अवगाहनागुणकार	२५, ३०, ४५
अनुविशविमान	८१, २३६, २४०, ३८६	अवगाहनाविकल्प	४४, ९८
अनुसंचिताक्षा	३७६	अवगाहनाविमान	१७६
अन्योन्याभ्यस्त	१५९, १९६, २०२	अवधिसेत्र	२३
अपकर्षण	३३२	अवबोध	३८, ७९
अपक्रमणोपक्रमण	२६५	अवहारकाल	३२२
अपक्रमपट्टनियम	१७९		१५७, १८५

पारिभाषिक शब्दसूची

(३२)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अवसत्रासत्र	२३	आयतचतुरस्रक्षेत्र	१३
अवसर्पिणी	३८२	आयतचतुरस्रलोकसंस्थान	१५७
अविभागप्रतिच्छेद	१५	आयाम	१३, १६५, १८१
अविसंवाद	१५८	आरण	१६५, १७०, २३६
अष्टमशुथिनी	९०, १६४	आवलिका	४३
अष्टाविंशतिसत्कर्मिक- मिथ्याहृदि	३४९, ३६२, ३६६, ३७७, ४३९, ४४३, ४६१	आवली	३१७, ३४०, ३९१
असद्भावस्थापनाकाल	३१४	आवास	७८
असंयम	४७७	आहारकसमुदाय	२८
असंयमबहुलता	४८	आहारवर्गणा	३३२
असंयतसम्पत्ति	३५८	आहारशरीर	४५
असंख्यराशि	३३८	इच्छाराशि	५७, ७१, १९९, ३४१
		इन्द्र	३१९
		इन्द्रक	१७४, २३४
आकाश	८, ३१९		
आकाशप्रदेश	१७६		
आगमद्रव्यकाल	३१४	ईशान	२३५
आगमद्रव्यक्षेत्र	५	ईशानागमारपृथिवी	१६२
आगमद्रव्यस्पर्शन	१४२		
आगमभावकाल	३१६	उच्छेदणी	८०
आगमभावक्षेत्र	७	उत्तानशय्या	३७८
आगमभावस्पर्शन	१४४	उत्पत्तिक्षेत्र	१७९
आत्मकनिष्ठता	२८	उत्पत्तिक्षेत्रसमानक्षेत्रान्तर	१७९
आदित्य	१५०	उत्पाद	३३६
आदेश	१०, १४४, ३२२	उत्तरकुठ	३६५
आदेशनिर्देश	१४५, ३२२	उत्तरामिमुखकेवली	५०
आधार	८	उत्सर्पिणी	३८९
आधेय	८	उत्सेध	१३, २०, ५७, १८१
आनुपूर्वनामकर्म	३०	उत्सेधकृति	२१
आनुपूर्वीप्रायोग्यक्षेत्र	१९१	उत्सेधकृतिगुणित	५१
आनुपूर्वीविपाकाप्रायोग्यक्षेत्र	१७७	उत्सेधगुणकार	२१०
आवाधा	३२७	उत्सेधयोजन	३४
आयत	११, १७२		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
उत्सेधांगुल	२४, १६०, १८५	अङ्गुलन	१८०	कर्मभूमिप्राप्तिमाग	२१४	क्रोधाद्धा	३९१
उत्सेधांगुलप्रमाण	४०	अङ्गु	३१७, ३९५	कर्मपुद्गल	३३२	कांडक	४३५
उदयविनियेक	३२७	ए		कर्मपुद्गलपरिवर्तन	३२२, ३२५	कांडर्जुगति	७८, २१९
उद्धर्तन	३८३	एकक्षेत्रावगाढ	३२७	कर्मस्त्रिव	४७७	कुडलपर्वत	१९३
उद्देश	१७	एकविवर्तकमवीचारशुल्कान	३९१	कर्मस्थिति	३९०, ४०२, ४०७	क्षण	३१७
उपक्रमणकाल	७१, १२९	एकवृद्ध	२२६	कर्मस्थितिकाल	३२२	क्षपक	३५४, ४४७
उपक्रमणकालगुणकार	८५	एकनारकायासविष्कम्भ	१८०	कल्प	३२०	क्षपकश्रेणी	३३५, ४४७
उपपाद्	२६, १६६, २०५	ऐ		कल्पवासिवेश	२३८	क्षपकश्रेणीप्रायोग्यविशेषोचि	३४७
उपचार	२०४, ३३९	ऐरावत	४५	कपाय	३९१	क्षायिकसस्यवदष्टि	३५७
उपपादकाल	३२२	ओ		कपायसमुदात	२६, १६६	क्षीणकपाय	३३६, ३५६
उपपादक्षेत्र	८५	ओच		कार्मेणवर्गणा	२३५	क्षुद्रभव	३९०
उपपादक्षेत्रप्रमाण	१६५	ओय	९, १४४, ३२२	कार्मेणशरीर	३३२	क्षुद्रभवप्रहण	३७१, ३७९, ३८८, ३९१, ४०१, ४०६
उपपादक्षेत्रायास	७९	ओयनिर्देश	१४५, ३२२	काययोग	२४, १६५		६, २३१
उपपादक्षेत्रमनसमुल्लङ्घनक्षेत्र	१७२	ओयप्ररूपणा	२५९	कायस्थितिकाल			३२५
उपपादयोग	३३२	औ		कायोत्सर्ग	३९१		३३४
उपपादशरीर	३३	औदारिकशरीर	२४	काल	३१८, ३२१		"
उपपादस्पर्शन	१६५	औपचारिकनोर्कर्मद्रव्यक्षेत्र	७	कालपरिवर्तन	३२५		१८०
उपमालोक	१८५	औ		कालपरिवर्तनकाल	५०		१९५
उपरिमोक्ष	८०	औपचारिकनोर्कर्मद्रव्यक्षेत्र		कालपरिवर्तनवार	३३४		२००
उपरिमाधिक्य	१८५	अंगुल	५७	कालसंसार	३३३		३३३
उपशमक्षेत्र	३५१, ४४७	अंगुलगणना	४०	कालस्पर्शन	१४१		१४१
उपशमसम्यक्स्वरुण	४४, ३३९, ३४१, ३४२, ३४४, ३४९, ३४९, ४८३	क		कालानुगम	३१५		२
उपशमसम्यक्त्वाद्धा	३५१, ४४७	कथन	१४४, ३२२	कालोष्कसमुद्र	३१३, ३२२		
उपशान्तकाल	३५३	कपाटगत केबर्की	४९	काष्ठा	१५०, १९४, १९५		
उपशामक	३५२, ४४६	कपाटसमुदात	२८, ४३६	कुलशैल	३१७		१२, १८१, १८६
उपार्थपुद्गलपरिवर्तन	३३६	करण	३३५	कुतगुग्म	१९३, २१८		
उश्वास	३९१	करणाया	२०३	कृति	१८४		
ऊर्ध्वकपाटच्छेदनकनिष्पन्न	१७६	कर्ण	१४	कृतीकरण	२३२		
ऊर्ध्वलोक	९, २५६	कर्णक्षेत्र	१५	कृष्णाविमिथ्यात्वकाल	३९१		१५३, २०१
ऊर्ध्वलोकक्षेत्रफल	१६	कर्णिकार	७८	केवलज्ञान	३२४		१५४
ऊर्ध्वलोकप्रमाण	३२, ४१, ५१	कर्म	२३	केवलदर्शन	३९१		१५३
ऊर्ध्वदृष्ट	१७२	कर्मद्रव्यक्षेत्र	६	केवलसमुदात	२८		३५, २०९
ऊर्ध्वगति	२६, २९, ८०	कर्मवन्ध	४७६	कोटाकोटी	१५२		१६३
		कर्मभूमि	१४, १६९	कोटी	१४		२००
				क्रोधकपायाया	४४४		७६
							१९६

परिशिष्ट

(३५)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
गुणकारशालाकासंकलना	२०१	छिन्नायुष्काल	१६३
गुणपरावृत्ति	४०९, ४७०, ४७१	ज	
गुणस्थितिकाल	३२२	जगप्रतर	१८, ५३, १५०, १५१, १५५, १६९, १८०, १८४, १९९, २०९, २०२, २३३
गुणान्तरसक्रमण	३२५	जगश्रेणी	१०, १८, १८४
गुह्यकाचरित	३२८	जगव्यावाहना	२२, ३३
गृहीतग्रहणाद्धा	३२९	जम्बूद्वीप	१५०
गृहीतग्रहणाद्धाशालाका	२९	जम्बूद्वीपक्षेत्र	१९४
गोमूत्रकगति	३४	जम्बूद्वीपच्छेदनक	१५५
गोभिर्क्षेत्र	१४५	जम्बूद्वीपशालाका	१९६
गौणभाव	१५१	जयन्त	३८६
ग्रह	२३६	जया	३१९
त्रैवेयक		जाति	१६३
घनफल	२०	जिह्वेन्द्रिय	३९१
घनरज्जु	१४६	जीवसमास	३१
घनलोक	१८, १८४, २५६	ज्योतिष्कजीवराशि	१५५
घनलोकप्रमाण	५०	ज्योतिष्कस्वस्थानक्षेत्र	१६०
घनांगुल	१०, ४३, ४४, ४५, १७८	ज्योतिष्कसावनसम्यग्दृष्टि- स्वस्थानक्षेत्र	१५०
घनागुलगुणकार	३३	झ	
घनागुणप्रमाण	"	झल्लरीसंस्थान	११, २१
घनागुलभागहार	९८		
घातक्षुद्रभवग्रहण	३९२		
घ्राणेन्द्रिय	३९१		
चक्षुरिन्द्रिय	३९१	त	
चतुर्थपृथिवी	८९	तङ्गवसामान्य	३
चतुर्थसमुद्रक्षेत्र	१९८	तद्व्यतिरिक्तनोवागमद्रव्य	३१५
चतुर्वरागुणस्थाननिर्बद्ध	१४८	तद्व्यतिरिक्तनोवागमद्रव्यस्पर्शन	१४२
चतुरस्र	१७८	तलबाहल्य	१३
चन्द्र	१५०, ३१९	तारा	१५१
चन्द्रविम्बशालाका	१५९	तालप्रमाण	४०
चित्रा	२१७	तालवृत्तसंस्थान	११, २१
चित्राउपरिमतल	२३९	तिथि	३१९
		तिर्यक्क्षेत्र	३६

पारिभाषिक शब्दसूची

(३६)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
तिर्यक्लोक	३७, १६९, १८३	वृद्ध	१५९
तिर्यक्लोकप्रमाण	४१, १५०	वृद्धगतकेवली	४८
तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७६	वृद्धसमुदात	"
तिर्यगप्रतर	२११	द्रव्य	२८
तिर्यगस्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र	१९४, २०४	द्रव्यकाल	३३१, ३३७
तिर्यञ्च	२२०	द्रव्यक्षेत्र	३३३
तृतीयपृथिवी	८९	द्रव्यत्व	३३६
तृतीयपृथिवीव्यस्तनतल	२२५	द्रव्यपरिवर्तन	३२५
तैजसशरीर	२४	द्रव्यलिङ्ग	२०८
तैजसशरीरसमुदात	२७	द्रव्यलिङ्गी	४२७, ४२८
तोरण	१६५	द्रव्यस्पर्शन	१४१
त्र्यंश	१७८	द्रव्यार्थिक	"
त्रिकोणक्षेत्र	१३	द्रव्यार्थिकनय	३, १४५, १७०, ३२२, ३३७, ४४४
त्रिसमयाधिकावली	३३२	द्रव्यार्थिकप्ररूपणा	२५९
त्रैराशिकक्रम	४८		
दर्शनमोहनिर्णय	३३५	घन	१५९
दात्रक	३१९	घटुप	४५, ५७
दाष्टान्त	२१	घरणीतल	२३६
दिवस	३१७, ३२५	धर्म	३१९
दिशा	२२६	धातकीबंड	१५०, १९५
द्वितीयद्वंद्वस्थित	७२	धुर्य	३२९
द्वितीयपृथिवी	८९	ध्रुवत्व	१४१
द्विसमयाधिकावली	३३२		
दुष्कम्भदुष्टाहुक्षेत्रफल	२१८	नक्षत्र	१५१
दृष्टान्त	२२	नन्दा	३१९
देवकुरु	३६५	नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७५, १९१
देवक्षेत्र	३६६	नयवैवेयकाविमान	३८५
देवता	३१९	नामकाल	३१३
देवपथ	८	नामक्षेत्र	३
देशामर्शक	५७	नामस्पर्शन	१४१
देशोनलोक	५६	नारक	५७
दैत्य	३१८	नारकसर्वावास	१७९
दंड	३०	नारकावास	१७७

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
नाली	३१८	पर्यायार्थिकप्ररूपणा	१४९, १७२, १८६,
निक्षेप	२, १४१	पूर्व	२०७, २५९
निगोवजीव	४०६	पल्य	३१७
निगोवशरीर	४७८	पल्योपम	९, १८५, ३८९
निबितक्रम	७६		९, ७७, १८५, ३१७,
निमिष	३१७		३४०, ३७९
निर्देश	९, १४४, ३२२	पल्योपमशतपृथक्त्व	४३७
निःसृचीक्षेत्र	१२	पल्यंकासन	४९
निस्सरणात्मकतैजसशरीर	२७	पञ्चावकृतमिथ्यात्व	३४९
नैकत	३१८	पाणिमुक्तागति	२९
नोआगमद्रव्यकाल	३१४	पारमार्थिकनोकार्मद्रव्यक्षेत्र	७
नोआगमद्रव्यस्पर्शन	१४२	पिंड	१४४
नोआगममावकाल	३१६	पुद्गलपरिवर्तन	३६४, ३८८, ४०६
नोआगमभावक्षेत्र	७	पुद्गलपरिवर्तनकाल	३२७, ३३४
नोआगमभावस्पर्शन	१४४	पुद्गलपरिवर्तनवार	३३४
नोकार्मद्रव्य	६	पुद्गलपरिवर्तनसंसार	३३३
नोकार्मपर्याय	३२७	पुष्करद्वीप	१९५
नोकार्मपुद्गल	३३२	पुष्करद्वीपार्ध	१५०
नोकार्मपुद्गलपरिवर्तन	३२५	पुष्करसमुद्र	१९५
		पुष्पवृन्त	३१९
		पूर्व	३१७
		पूर्वकोटी	३४७, ३५०, ३५६, ३६६,
		पूर्वकोटीपृथक्त्व	३६८, ३७३, ४००, ४०८
		पूर्वाभिमुखकेवली	५०
		पृथिवी	३६०
		पृथक्त्ववितर्कवीचार—	
		शुक्लभ्यान	३९१
		पंचकयहुलपृथिवी	२३२
		पंचद्रव्याधारलोक	१८५
		पंचमपृथिवी	८९
		पंचांश	१७८
		पंचेन्द्रियतिर्यग्गति—	
		प्रायोग्यानुपूर्वी	१९१
		प्रक्रान्त	३२२
		प्रकीर्णक	१७४, २३४
		प्रकृतिविकल्प	१७६
		प्रतरगतकेवली	१९
		प्रतरगतकेवलिक्षेत्र	५६

(३८) पारिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
प्रतरसमुदात	२९, ४३६	ब्रह्मोत्तर	२३५
प्रतराकार	२०४		
प्रतरावली	३८९	भद्रा	३१९
प्रतरांगुल	१०, ४३, ४४, १५१, १६०, १७२	भरत	४५
प्रतरांगुलमागहार	९८	भवनवासिउपपावक्षेत्र	८०
प्रतिभाग	८२	भवनवासिक्षेत्र	७८
प्रत्यक्ष	३३९	भवनवासिजगप्रणधि	"
प्रथमपृथिवी	८८	भवनवासिजगमूल	१६४
प्रथमपृथिवीस्वस्थानक्षेत्र	१८२	भवनवासिप्रायोग्यानुपूर्वी	२३०
प्रत्यवस्थान	"	भवनवासी	१६२
प्रत्यासत्ति	३७७	भवनविमान	"
प्रत्यासत्तविपाकानुपूर्वीफल	१७५	भवपरिवर्तन	३२५
प्रधानभाव	१४५	भवपरिवर्तनकाल	३३४
प्रभापटल	८०	भवपरिवर्तनवार	"
प्रमत्ताप्रमत्तरावर्तनसहस्र	३४७	भवस्थिति	३३३, ३९८
प्रमाण	३९६	भवस्थितिकाल	३२२, ३९९
प्रमाणयानांगुल	३५	भब्यत्व	४८०
प्रमाणलोक	१८	भव्यद्रव्यस्पर्शन	१४२
प्रमाणराशि	७१, ३४१	भव्यतोआगमद्रव्यकाल	३१४
प्रमाणवाक्य	१४५	भव्यराशि	३३९
प्रमाणांगुल	४८, १६०, १८५	भागहार	७१
प्रमेयत्व	१९१	भाष्टु	३१९
प्रवेद्य	२८	भाग्य	३१८
प्रशस्ततैजसशरीर	५७	भावकाल	३१३
प्रस्तार	५७, ७१, ३४१	भावक्षेत्र	३
		भावक्षेत्रागम	६
फलराशि	३१८	भावपरिवर्तन	३२५
		भावपरिवर्तनकाल	३३४
बल	३८३	भावपरिवर्तनवार	"
ब्रह्मयुष्कधात	६९	भावसंसार	"
ब्रह्मयुष्कमनुव्यस्यगद्यि	२५१	भावास्थितिकाल	३२२
बाह्वरिनिगोवप्रतिष्ठित	३९०, ४०३	भावास्थितिकाल	१४१
बाह्वरस्थिति	१३, ३५, १७२	भावरूपार्शन	१४
बाह्वस्य	१५१	भुज	२३२
बाह्यपक्षि	३३५	भूत	८
बांघावली	२३५	भूमि	१४४
ब्रह्म	२३५	भेद	

परिशिष्ट

(४०)

पारिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
भेदप्ररूपणा	२५९	रूपोत्पत्तिक	४३
भोगभूमि	२०९	रोहण	३१८
भोगभूमिप्रतिभाग	१६८	रौद्र	"
भोगभूमिप्रतिभागद्वीप	२११	शंख	१९
भोगभूमिसंस्थानसंस्थित	१८९	लघिसम्पन्नमुनिघर	११७
भोग	३३६, ४११	लयसप्तम	३५३
भोगप्ररूपणा	४७५	लव	३१७
अभरक्षेत्र	३३	लवणसमुद्र	१५०, १९४
		लवणसमुद्रक्षेत्रफल	१९५, १९८
मध्यमक्षेत्रफल	१३	लान्तव	२३५
मध्यमगुणकार	४१	लागलिकगति	२९
मध्यममतिपति	३४०	लेख्यापरावृत्ति	४७०, ४७१
मध्यमविस्तार	११	लोक	९, १०
मध्यलोक	९	लोकनाली	२०, ८३
मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७६	लोकपूरणसमुदात	१४८, १६४
मनुष्यलोकप्रमाण	४२	लोकप्रतर	१७०, १९१
मनोयोग	३९१	लोकप्रमाण	२९, ४३६
मरण	४७१	लोकाकाश	१०
महामत्स्यक्षेत्र	३६	लोकाकाशविभाग	१४६, १४७
महामत्स्यक्षेत्रस्थान	६६	लोकाकाश	९
महाशुक्र	२३५	लोभाद्या	२२
मागधप्रस्थ	३२०	वर्ग	३९१
मानाद्या	३९१	वर्गण	२०, १४६
मानुषक्षेत्र	१७०	वर्गमूल	२००
मानुषक्षेत्रव्यपदेशान्यथापुनपति	१७१	वचनयोग	२०२
मानुषक्षेत्रपरपर्वत	१९३	वर्तमानविशिष्टक्षेत्र	३९१
मानुषक्षेत्रशैल	१५०, २१६	वर्धनकुमारमिथ्यात्वकाल	१४५
मायाद्या	३९१	सर्धितराशि	३२४
मारणान्तिककाल	४३	वर्ष	१५४
मारणान्तिकक्षेत्रायास	६६	वर्षपृथक्त्व	३२०
मारणान्तिकराशि	८५	वर्षसङ्ख्य	३४८
मारणान्तिकसमुदात	२६, १६६	भाज्यवाचकशक्ति	४१८
मास	३१७, ३९५	यातवलय	२
माहेन्द्र	२३५	वायु	५१
मिथ्यात्व	३३६, ३५८, ४७७	'वाक्य	३१९
मिथ्यात्वादिकारण	२४		३१८
मिश्रग्रहणाद्या	२२९, ३२८		२३२

पारिभाषिक शब्दसूची

(४१)

(४२)

परिशिष्ट

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
वैकृतिकसमुदात	२६, १६६	सत्त्व	१४४	साम्परायिक	३९१	संस्थाननामकर्म	३०
वैजयन्त	३१९, ३८६	सतुक्खमदुवाह	१८७	सारभट	३१८	संस्थानविपाकी	१७६
वैरोचन	३१८	सद्भावस्थापनाकाल	३१४	सावित्र	३१९	स्वकप्रत्यय	२३४
वैश्वदेव	"	सतमपृथिवी	९०	सासादनकाल	३५१	स्तूपतल	१६२
व्यन्तरवेव	१६१	सतमपृथिवीनारक	१६३	सासादनमारणान्तिकक्षेत्रायाम	१६२	स्थापना	३, ३१४
व्यन्तरवेवराशि	"	समचतुरस्र	८३	सासादनसम्यक्त्वपुष्टायत	३२५	स्थापनाकाल	३१३
व्यन्तरवेवसासावनसम्यदष्टि-		समपरिमंडलसंस्थित	१७२	सिद्ध	४७७, ३३६	स्थापनाक्षेत्र	३
स्वस्थानक्षेत्र		समय	३१७, ३१८	सिद्धलेन	३१९	स्थापनास्पर्शन	३
व्यन्तरावास	१६१, २३१	समानजातीय	१६३	सिद्धार्थ	"	स्थिति	१४१
व्यभिचार	४६, ३२०	समीकरण	१७८	सुगन्धर्व	"	स्पर्शन	३३६
व्यवहारकाल	३१७	समीकृत	५१	सूक्ष्मक्षपक	३३६	स्पर्शानुगम	१४४
व्याख्यान	७९, १४४, १६५, ३४१	समुदात	२६	सूचीक्षेत्रफल	१६	स्पर्शनिन्द्रिय	३९१
व्याघात	४०९	समुदातकेवलजीवप्रेष	४५	सूच्यगुल	१०, २०३, २१२	स्वयंप्रभपर्वत	२२१
व्यापक	८	समुद्राम्यन्तरप्रथमपंक्ति	१५१	सुर्यक्षेत्र	१३	स्वयंप्रभपर्वतपरभाग	२१४
व्यास	२२१	समुद्राव्यन्तरप्रथमपंक्ति	१५८	सूर्य	३१९, १५०	स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्र	१६८
व्यजनपर्याय	३३७	सम्यक्त्व	३५८	सौघर्म	२३५	स्वयंप्रभपर्वतोपरिभाग	२०९
शत	२३५	सम्यग्मित्यात्व	"	सौघर्मविमानशिखर-वज्रदंड	२२९	स्वयंप्रभपर्वतपरभाग	१५१
शतसहस्र	"	सम्यग्मित्यादृष्टि	"	सौघर्मोदि	१६२	स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्रफल	१९८
शतार	२३६	सयोगिकाल	३५७	संकलन	१५९	स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्रफल	१६८
शलाका	४३५, ४८४	सयोगी	३३६	संकलना	१५९	स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्रफल	२६, ९२, १२१
शलाकासंकलना	२००	सर्वलोकप्रमाण	४२	संख्येयराशि	३३८	स्वस्थान	२६, १६६
शशिपरिवार	१५२	सर्वोकाश	१८	संयतराशि	१५९	स्वस्थानक्षेत्रमेलापनविधान	३१
शालभजिका	१६५	सर्वार्थसिद्धि	२४०, ३८७	संयततराशि	४६	स्वस्थानस्वस्थान	
शुक	२६५	सर्वार्थसिद्धिविमान	८१	संयतासंयतउत्सेध	१६९	स्वस्थानस्वस्थानराशि	
शंखक्षेत्र	३५	सर्वार्थ	३६३	संयतासंयतस्वस्थानक्षेत्र	"	ह	
श्रेणी	७६, ८०	सहस्र	२३५	संयम	३४३	हस्त	५७
श्रेणीबिम्ब	१७४, २३४	सहस्रार	२३६	संयमासंयम	३४३, ३५०	हानि	१९
श्वेत	३१८	साहानवस्थानलक्षणविरोध	२५९, ४१२	संयोग	१४४	हुताशन	३१९
श्रोत्रेन्द्रिय	३९१	सागर	१०, १८५	संबतसर	३१७, ३९५	हेतुवाद	१५८
		सागरोपम	३९१	संवर्ग	१७	हेमपायाण	४७८
		सागरोपमशतपृथक्त्व	४००, ४४१, ४८५				
षडंश	१७८	सान्तरूपक्रमणवार	३४०				
पट्टापक्रमनियम	२१८, २२६	सादृशासामान्य	३				
पष्ठपृथिवी	९०	साध्य	३९६				
साचिसद्रव्यस्पर्शन	१४३	साधन	"				
		सान्तकुमार	२३५				

